(५०१)

वैद्यकीय सुभाषितसाहित्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
१८४

वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्

अथवा

साहित्यिकसुभाषितवैद्यकम्

संकलनकर्ता और व्याख्याकार

आयुर्वेदाचार्य श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर,

बी. एस्सी., एम् बी. बी. एस्.

सेवानिवृत्त चिकित्साधिकारी, विकृतिवैज्ञानिक, नैदानिकी-प्रयोगशालाप्रमुख, हिन्दूविश्वविद्यालय; लेखक : स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि (मराठी), स्वास्थ्यविज्ञान, जीवाणुविज्ञान, जीवरसायनचिकित्सा, औपसर्गिक रोग, रक्तरोग, मूत्ररोग, आयुर्वेदरहस्यदीपिका (सुश्रुतसंहिताटीका), काशी-वाराणसीदर्शन (मराठी), स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि, Ayurvedic Conception about urine formation, Comparative Survey of Ayurvedic Nosology; Member : Ayurveda Faculty, Lucknow University; Member : Faculty of Medical Sciences, B. H. U., Member : Expert Advisory Committee in Medicine (terminology), Ministry of Education, New Delhi.

पुरस्कृति-लेखक

डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्य

एम्. ए., पी. एच्. डी.

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६८

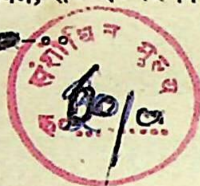
CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, सं० २०२५ वि०

मूल्य : [redacted]-००



© The Chowkhamba Sanskrit Series Office

Gopal Mandir Lane,

P. O. Chowkhamba, Post Box 8.

Varanasi-1 (India)

1968

Phone : 3145

प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ३०७६

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

184

*****

VAIDYAKĪYASUBHĀṢITASĀHITYAM

OR

SĀHITYIKASUBHĀṢITAVAIDYAKAM

(An Anthology of Didactic Sayings on Health)

Compiled and Interpreted

By

Dr. BHASKARA GOVINDA GHĀṆEKAR,

B. Sc., M. B. B. S., Āyurvedācārya

Retired Medical Officer, Surgeon and In-charge of the Bacteriological Laboratory, Banaras Hindu University; Author of Jīvāṇu vijñāna, Comparative Survey of Āyurvedic Nosology etc. etc. and Member : Ayurvedic Faculty, Lucknow University, Faculty of Medical Sciences, B. H. U. and Expert, Advisory Committee in Medicine (terminology), Ministry of Education, New Delhi.

With a Foreword

By

Dr. PARAŚURĀMA LAKṢMAṆA VAIDYA, M. A., Ph. D.

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1 (India)

1968

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

First Edition

1968

Price Rs. [redacted]-00

60/01

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

Publishers and Antiquarian Book-Sellers

Chowk, Post Box 69, Varanasi–1 (India)

Phone : 3076

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

समर्पण

मेरा अपना कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लगे है मोर॥

इस ग्रन्थ को लिखने के लिए जिसने दीर्घायुष्य, शरीरस्वास्थ्य तथा बुद्धिवैभव प्रदान किया उस परमकारुणिक सृष्टिकर्ता परमेश्वर को तथा जिन्होंने अपने सुधासम सुभाषित प्रदान किये उन शब्दसृष्टि के ईश्वरों को मैं यह ग्रन्थ अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक समर्पण करता हूँ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पुरस्कृतिः

अस्मत्प्रियसुहृद्भिः डॉ० घाणेकरमहोदयैः नवीनतया संदृब्धं 'वैद्यकीय-सुभाषितसाहित्यम्' अथवा 'साहित्यिक-सुभाषितवैद्यकम्' इत्यमुं ग्रन्थं वाचकेभ्यः पुरतः स्थापयतामस्माकं चेतः कमपि विलक्षणं प्रमोदमनुभवति। सन्ति खलु संस्कृतसाहित्ये प्राचीनैर्नवीनैश्च पण्डितैर्विरचिताः सुभाषित-रत्नकोष-सुभाषितावली-सुभाषितरत्नभाण्डागारप्रभृतयः सुभाषितसंग्रहरूपा बहवो ग्रन्थाः। तेभ्यश्चातिशेते अयं ग्रन्थः बहुभिरंशैः। ये खलु प्राचीनाः सुभाषितसंग्रहाः, ते प्रायः साहित्यत्वेन प्रसिद्धेभ्यो ग्रन्थेभ्यः समुद्धृताः 'सुभाषितम्' इति प्रसिद्धिमुपगताः प्रायः पद्यमयाः संग्रहाः। अयं नवीनो ग्रन्थः गद्यपद्यमयः। अस्य आकरग्रन्थास्तु प्रायः आयुर्वेदीयाः स्वास्थ्यारोग्य-गदचिकित्साविषयका ग्रन्थाः, ये नीरसा इति जनैः संभावयितुं शक्यन्ते। तथापि तेष्वपि सुभाषितानि विद्यन्ते इति इदंप्रथमत्वेन वाचकेभ्यो बोधयितु-मयं ग्रन्थः संदृब्धः इत्येव यावदस्य ग्रन्थस्य प्रथमो विशेषः। यतः अत्र हि प्राधान्येन आयुर्वेदीयचरकसुश्रुतवाग्भटादीनामेव ग्रन्थानुपजीव्य सुभाषितो-च्चयः कृतः। सन्ति क्वचन क्वचन रघुवंशादिभ्यः साहित्यत्वेन प्रसिद्धेभ्यो ग्रन्थेभ्यः समुद्धृतानि वचनानि तथापि तेषां संख्याऽपि नाल्पा। तान्यपि स्वास्थ्यशिक्षाबोधकानीत्येव अस्मिन्ग्रन्थे प्रविष्टानीत्यवधेयं पाठकैः।

अन्यच्च। अयं सुभाषितग्रन्थः विषयविभागं प्रदर्शयन् विविधेषु प्रकरणेषु विभक्तः। विषयावतारश्च चरकसुश्रुतादिभिरनुसृतेन पथा 'अथातो वैद्यक-शास्त्रविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः, अथातो रोगारोग्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः, अथातः स्नानविधिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः' इत्येवंप्रकारकः। मन्ये अस्य ग्रन्थस्य पठनेन यथावदध्ययनेन च आयुर्वेदीयाः सर्वेऽपि विषयाः विनैव आयासेन सुभा-षितमुखेन परिचिता भविष्यन्ति, यथासमयं च कथमस्माभिरीदृश्यामव-स्थायां वर्तितव्यम्, इत्युपदेशोऽपि दत्तो भविष्यति। एवं बहुफलोऽयं सुभाषितग्रन्थः।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपरं च । अस्मिन्ग्रन्थे आयुर्वेदीयग्रन्थेभ्य इव श्रुतिस्मृतिपुराणादि-ग्रन्थेभ्यः सुभाषितान्युचित्योचित्य संग्रहः कृतः। संग्रहकारेण मन्ये सार्ध-द्विशतग्रन्थाननुवाच्य मधुकरेणेव मधुबिन्दूनामयं घटः वाचकेभ्यः पुरतः स्थापितः। प्रायः सहस्रद्वयादप्यधिकानि वचनान्यत्र समुच्चितानि। सर्वाण्यपि तानि पञ्चचत्वारिंशदध्यायेषु विषयक्रमेण वर्गीकृतानि दृश्यन्ते। हिन्दीभाषया न केवलं सर्वेषां सुभाषितानामनुवादः प्रदत्तः, अपि तु बहूनां सुभाषितानां विषये ग्रन्थकारेण सुभाषितमर्मग्राहि वक्तव्यमपि अनुसूचितम्, येन केनाप्यंशेन कठिनानां पदानां मर्मज्ञानं सुलभतया वाचकानां मनसि स्फुरेत्।

अन्ततः। विस्तृतेऽस्मिन्सुभाषितसंग्रहे विषयविज्ञान-विभागसौकर्याय आकरग्रन्थसूची, पदानामकारादिसूची, विषयविभागसूची, इत्यादीनि परि-शिष्टानि संयोजितानि। येन सौलभ्येन ग्रन्थनिर्देशः, आकरनिर्देशः, विषय-निर्देशः कर्तुं पार्यते। सर्वथा अतीवोपयुक्तः अयम् आयुर्वेदीयसाहित्यसुभा-षितसंग्रहः यत्कृते पाठकाः डॉ० घाणेकरमहोदयेभ्यः कार्तज्ञ्यं धारयेयुः। इति शम्।

पूना
२६–२–६८

वैद्योपाह्वः श्रीपरशुरामशर्मा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लेखक की भूमिका

ग्रन्थ की कल्पना—शालेय और महाविद्यालयीन विद्यार्थिजीवन में लेखक व्यायाम का जितना उतना ही संस्कृत का प्रेमी रहा। इसका प्रत्यक्ष साक्षी महाकवि भारवि है, क्योंकि विज्ञानमहाविद्यालय में पढ़ते समय १९१७ की खेलकूद प्रतियोगिता की पाँच मील दौड़ में प्रथम आने पर पुरस्कारार्थ दिये जाने वाले चांदी के चषक के स्थान में लेखक ने अपनी ओर से सूचित करके भारवि का किरातार्जुनीय महाकाव्य प्राप्त कर लिया था। तात्पर्य, संस्कृत का अच्छा ज्ञान पहले से होने के कारण वैद्यक विद्यालय में प्रविष्ट होने पर लेखक ने अपनी ओर से आधुनिक पाश्चात्यवैद्यक के साथ प्राचीन आयुर्वेद का अध्ययन किया और उसकी उपयुक्तता से प्रभावित हो जाने के कारण एम्० बी० बी० एस्, हो जाने पर १९२६ में 'स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि, नामक स्वास्थ्यरक्षा और व्याधि-परिमोक्ष के विविधविषयों से संबन्धित आयुर्वेदीय सुभाषित वचनों का कतिपय संस्कृत साहित्यिक वैद्यकीय सुभाषितों के साथ एक छोटा सा ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किया, जिसकी उस समय परमपूज्य कै० डॉ० वाय्० जी० नाडगीर,* डीन, ग्रांट मेडिकल कॉलेज, बम्बई, अन्य डाक्टरों और वृत्तपत्रों से बहुत प्रशंसा हुई। संस्कृत के काव्यनाटकादि अनेक ग्रन्थों में स्वास्थ्यरक्षणादि विषयों से सम्बन्धित बहुत सुभाषित वचन लेखक के दृष्टिपथ में आये थे। उनकी अधिक खोज करके और उनके साथ कतिपय आयुर्वेदीय सुभाषित मिला करके इसी स्वरूप का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाय ऐसी कल्पना इस कारण से लेखक के मन में उदित हुई। परन्तु चालीस वर्ष तक वह कल्पना प्रत्यक्ष ग्रन्थ रूप में परिणत न हो सकी। यह अत्यन्त दीर्घकालीन विलम्ब ग्रन्थ की दृष्टि से दैवी वरदान ही ठहरा, क्योंकि यदि उस समय यह ग्रन्थ लिखा जाता तो उसका

---

* I have known Dr. B. G. Ghanekar, B. Sc., M. B. B. S., several years. Since qualifying he has published a booklet Hygiene based on Ayurvedic writings, which is very creditable to him. (The booklet) is really good, quotations very apt and show that even in those early days our ancestors realized the importance of hygienic rules.

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपरं च । अस्मिन्ग्रन्थे आयुर्वेदीयग्रन्थेभ्य इव श्रुतिस्मृतिपुराणादिग्रन्थेभ्यः सुभाषितान्युचित्योचित्य संग्रहः कृतः। संग्रहकारेण मन्ये सार्धद्विशतग्रन्थाननुवाच्य मधुकरेणेव मधुबिन्दूनामयं घटः वाचकेभ्यः पुरतः स्थापितः। प्रायः सहस्रद्वयादप्यधिकानि वचनान्यत्र समुचितानि। सर्वाण्यपि तानि पञ्चचत्वारिंशदध्यायेषु विषयक्रमेण वर्गीकृतानि दृश्यन्ते। हिन्दीभाषया न केवलं सर्वेषां सुभाषितानामनुवादः प्रदत्तः, अपि तु बहूनां सुभाषितानां विषये ग्रन्थकारेण सुभाषितमर्मग्राहि वक्तव्यमपि अनुसूचितम्, येन केनाप्यंशेन कठिनानां पदानां मर्मज्ञानं सुलभतया वाचकानां मनसि स्फुरेत्।

अन्ततः। विस्तृतेऽस्मिन्सुभाषितसंग्रहे विषयविज्ञान-विभागसौकर्याय आकरग्रन्थसूची, पद्यानामकारादिसूची, विषयविभागसूची, इत्यादीनि परिशिष्टानि संयोजितानि। येन सौलभ्येन ग्रन्थनिर्देशः, आकरनिर्देशः, विषयनिर्देशः कर्तुं पार्यते। सर्वथा अतीवोपयुक्तः अयम् आयुर्वेदीयसाहित्यसुभाषितसंग्रहः यत्कृते पाठकाः डॉ० घाणेकरमहोदयेभ्यः कार्तज्ञ्यं धारयेयुः। इति शम्।

पूना
२६-२-६८

वैद्योपाह्वः श्रीपरशुरामशर्मा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लेखक की भूमिका

ग्रन्थ की कल्पना—शालेय और महाविद्यालयीन विद्यार्थिजीवन में लेखक व्यायाम का जितना उतना ही संस्कृत का प्रेमी रहा। इसका प्रत्यक्ष साक्षी महाकवि भारवि है, क्योंकि विज्ञानमहाविद्यालय में पढ़ते समय १९१७ की खेलकूद प्रतियोगिता की पाँच मील दौड़ में प्रथम आने पर पुरस्कारार्थ दिये जाने वाले चांदी के चषक के स्थान में लेखक ने अपनी ओर से सूचित करके भारवि का किरातार्जुनीय महाकाव्य प्राप्त कर लिया था। तात्पर्य, संस्कृत का अच्छा ज्ञान पहले से होने के कारण वैद्यक विद्यालय में प्रविष्ट होने पर लेखक ने अपनी ओर से आधुनिक पाश्चात्यवैद्यक के साथ प्राचीन आयुर्वेद का अध्ययन किया और उसकी उपयुक्तता से प्रभावित हो जाने के कारण एम्० बी० बी० एस्, हो जाने पर १९२६ में 'स्वास्थ्यशिक्षापाठावलि, नामक स्वास्थ्यरक्षा और व्याधि-परिमोक्ष के विविधविषयों से संबन्धित आयुर्वेदीय सुभाषित वचनों का कतिपय संस्कृत साहित्यिक वैद्यकीय सुभाषितों के साथ एक छोटा सा ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किया, जिसकी उस समय परमपूज्य कै० डॉ० वाय्० जी० नाडगीर,* डीन, ग्रांट मेडिकल कॉलेज, बम्बई, अन्य डाक्टरों और वृत्तपत्रों से बहुत प्रशंसा हुई। संस्कृत के काव्यनाटकादि अनेक ग्रन्थों में स्वास्थ्यरक्षणादि विषयों से सम्बन्धित बहुत सुभाषित वचन लेखक के दृष्टिपथ में आये थे। उनकी अधिक खोज करके और उनके साथ कतिपय आयुर्वेदीय सुभाषित मिला करके इसी स्वरूप का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जाय ऐसी कल्पना इस कारण से लेखक के मन में उदित हुई। परन्तु चालीस वर्ष तक वह कल्पना प्रत्यक्ष ग्रन्थ रूप में परिणत न हो सकी। यह अत्यन्त दीर्घकालीन विलम्ब ग्रन्थ की दृष्टि से दैवी वरदान ही ठहरा, क्योंकि यदि उस समय यह ग्रन्थ लिखा जाता तो उसका

---

* I have known Dr. B. G. Ghanekar, B. Sc., M. B. B. S., for several years. Since qualifying he has published a booklet on Hygiene based on Ayurvedic writings, which is very creditable to him. (The booklet) is really good, quotations are very apt and show that even in those early days our ancestors realized the importance of hygienic rules.

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नामरूप कुछ और हो जाता और उसमें आज के ग्रन्थ के विस्तार, विशालता, प्रौढ़ता, उदारता, स्पष्ट मतप्रदर्शन तथा अन्य गुण कदापि न आ सकते, क्योंकि ये गुण वयोवृद्धत्व, दीर्घकालीन अध्ययन, अवलोकन, अनुशीलन, अनुचिन्तन, अनुभव, आत्मविश्वास और सबसे विशेष परिणतप्रज्ञता के फल हैं।

ग्रन्थ का नाम—इस ग्रन्थ का साहित्य वैद्यकीय सुभाषितों का होने से इसको 'वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्' ऐसा नाम दिया गया है। परन्तु ये सब सुभाषित मुख्यतया संस्कृत साहित्य से संकलित किये जाने के कारण और ग्रन्थ का विषय वैद्यक होने के कारण इसके लिए 'साहित्यिकसुभाषितवैद्यकम्' नाम भी उतना ही यथार्थ है। अतः मुखपृष्ठ पर दोनों नाम दिये गये हैं।

ग्रन्थ का स्वरूप—यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य पुष्पवाटिका के ग्रन्थ-पुष्पों से मधुकरवृत्त्या सकलित किये गये सुभाषित रूप मधुबिन्दुओं का करण्डक है। संकलन इस दृष्टि से किया गया है कि संकलित मधु अधिक से अधिक ग्रन्थ-पुष्पों के मधुबिन्दुओं का संग्रह हो। इससे इस मधुकरण्डक में आयुर्वेद के विविध ग्रन्थ, उनकी टीकोपटीका-श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास-काव्य-नाटक-चम्पू-सूत्रग्रन्थ-दर्शन-ज्योतिष-व्याकरण-कोश, उनकी टीकोपटीका, भाष्य इत्यादि विविध स्वरूप के ढाई सौ से अधिक ग्रन्थ-पुष्पों के मधुबिन्दु संकलित हो सके। इससे कोई यह न समझे कि संस्कृत साहित्य पुष्पवाटिका के सब ग्रन्थपुष्प समाप्त हो गये। संस्कृत साहित्य अनन्तपार है। बृहस्पति भी उसका पार पा नहीं सकेगा। फिर लेखक के समान एक तुच्छ व्यक्ति के सामने पार पाने का प्रश्न ही नहीं है। तिसपर भी यदि यह कहा जाय कि संस्कृत साहित्य पुष्पवाटिका के लगभग सब सुप्रसिद्ध लोकप्रिय ग्रन्थपुष्पों से, यद्यपि सब नहीं तथापि कुछ न कुछ मधुबिन्दु इस मधुकरण्डक में जरूर संकलित किये गये हैं तो इस कथन में जरा भी अत्युक्ति न होगी।

इस ग्रन्थ के लिए यद्यपि वैद्यकीय सुभाषित साहित्य नाम रक्खा गया है तथापि इससे कोई यह न समझे कि संकलित किये गये सब वचन वैद्यकीय सुभाषित हैं। इसमें ऐसे सैकडों वचन हैं जिनका केवल एक अल्पांश वैद्यकीय सुभाषित है। परन्तु इतरांश में संदर्भ, पूर्वपीठिका, परिस्थिति, इतिहास इत्यादि सम्बन्धित सुभाषित समझ में आने की दृष्टि से उपयुक्त साधन सामग्री होने के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कारण अथवा उसमें लौकिक व्यवहार और पारमार्थिक जीवन का मार्गदर्शन करने की दृष्टि से उपयुक्त सुभाषित होने के कारण संपूर्ण वचन सकलित किये गये हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे ऐसे भी सैकड़ों वचन हैं जिनका वैद्यक से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु विषय हृदयंगम कराने की दृष्टि से उपयुक्त होने के कारण उनका भी सकलन किया गया है (पृष्ठ २१८ पर श्लोक २७; पृष्ठ ३८२ श्लोक १३, १४; पृष्ठ ३५३ पर वचन ५ का वक्तव्य देखिए); इस प्रकार के वचन अधिकतर वक्तव्य में और पूर्व स्वरूप के वचन मुख्यतया मूल ग्रन्थ में पाये जाते हैं।

इस ग्रन्थ में संकलित किये गये संपूर्ण गद्यपद्यवचनों की संख्या ढाई हजार से अधिक है और ये मूलग्रन्थ और वक्तव्य इनमें विभक्त हुए हैं। वैद्यकीय सुभाषित एवं तत्सम, तद्भव तथा तत्सम्बन्धित वचनों का समावेश मूल ग्रन्थ में किया गया है। मूलवचनों का प्रथम सरल हिन्दी अनुवाद दिया है और जहाँ पर मूल अनुवाद से अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता रही वहाँ पर वैद्यक रहस्य-दीपिका नामक वक्तव्य दिया है। वक्तव्य में दिये गये वचनों का अनुवाद नहीं किया है।

ग्रन्थ की सूचियाँ—ग्रन्थान्तर्गत संपूर्ण वचनों, वक्तव्यों तथा विषयों का आवश्यकता विदित होने पर उपयोग किया जा सके इसलिए ग्रन्थ के अन्त में वर्णमालानुक्रम से दस सूचियाँ दी गयी हैं। प्रथम सूची में जिनके वचनों से ग्रन्थ का निर्माण हुआ है उन सब संस्कृत ग्रन्थ-ग्रन्थकारों के नाम दिये हैं। द्वितीय सूची में ग्रन्थान्तर्गत संपूर्ण आयुर्वेदीय, साहित्यिक, वैद्यकीय या वैद्यक सम्बन्धी वचन हैं। जब इनमें से किसी विषय के वचन के सम्बन्ध में लेखक का मन्तव्य देखने की जिज्ञासा हो तब उस वचन को इस सूची में देखिए। इसमें वह वचन न मिले तो तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ सूची में देखें। ये सूचियाँ साहित्य और वैद्यक के विद्यार्थियों और अध्यापकों को बहुत उपयोगी हैं। तृतीय से षष्ठ सूचियाँ केवल वैद्यकीय सुभाषितों की हैं। यद्यपि ग्रन्थ का नाम वैद्यकीय सुभाषित साहित्य है तथापि ग्रन्थान्तर्गत प्रत्येक वचन को वैद्यकीय सुभाषित नहीं कह सकते। अतः जो वचन वस्तुतः स्वास्थ्यरक्षाव्याधिपरिमोक्षादि विषयों के सिद्धान्तदर्शी होने से सुभाषित कहने योग्य हैं वे ही केवल गद्य, श्लोक, श्लोकार्ध

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और श्लोकपाद इन चार विभागों में विभक्त करके इन चार सूचियों में दिये गये हैं। जैसे, गीता या भागवत के कुछ सारभूत श्लोक निकाल कर सप्तश्लोकी गीता, चतुःश्लोकी भागवत जैसे स्तोत्र बने हैं और उनको पढ़ने से गीता भागवत पढ़ने का श्रेय प्राप्त होता है वैसे इस ग्रन्थ का सार यह चतुःसूची है और एक वार ग्रन्थ पढ़ने के पश्चात् इसको कण्ठ करने से या बारबार पढ़ने से ग्रन्थ पढ़ने का श्रेय प्राप्त हो सकता है। सप्तम सूची में हिन्दी सुभाषित, अष्टम में आँग्ल सुभाषित और नवम में पाश्चात्य वैद्यकीय आँग्ल संज्ञाएँ दी गयी हैं। यह सूची आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए बहुत उपयोगी है। दशम सूची ग्रन्थान्तर्गत संपूर्ण विषयों की हैं और बहुत विस्तार से दी गयी है। ग्रन्थ का अधिक से अधिक उपयोग होने या करने की दृष्टि से द्वितीय और दशम सूची अधिक से अधिक उपयोगी है।

ग्रन्थ के उद्देश्य—(१) चतुर्विध पुरुषार्थों का आद्यसाधन हृष्टपुष्ट स्वस्थ शरीर है; रोगी शरीर नहीं है, वह मृतकल्प होता है। अतः शरीर को सदैव स्वस्थ, मन को प्रसन्न आधिव्याधिनिर्मुक्त रखने का प्रयत्न करना प्रत्येक का कर्तव्य होता है। इसके लिए स्वास्थ्यरक्षा और व्याधि परिमोक्ष के यमनियमों के ज्ञान की आवश्यकता हुआ करती है। मनुष्य मनोरंजन के लिए अनेक मनोरंजक ग्रन्थ पढ़ता है, परन्तु स्वास्थ्यरक्षण विषय नीरस होने के कारण सुशिक्षित मनुष्य भी उसके ग्रन्थों को प्रायः नहीं (पृष्ठ ३८७ देखें) पढ़ते। इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर मनोरंजन के साथ स्वास्थ्यरक्षण का ज्ञान हो जाय तथा स्वास्थ्यरक्षण विषय की नीरसता नष्ट होकर वह मनोरंजक हो जाय (पृष्ठ ४६१ का वक्तव्य देखें) इस प्राथमिक उद्देश्य से यह ग्रन्थ सर्वसामान्य वाचकों के लिए लिखा गया है।

(२) संस्कृत साहित्य के टीकाकार तथा अध्यापक व्युत्पत्ति, व्याकरण, अलंकार इत्यादि साहित्य सम्बन्धित विषयों को जितना यथार्थतया जानते हैं उतना यथार्थतया वैद्यकीय विषयों को नहीं जानते जिससे वे साहित्यान्तर्गत वैद्यकीय उपमादृष्टान्तार्थान्तरन्यास इत्यादि की उचित व्याख्या नहीं कर सकते और एकाध बार अयथोचित अर्थ (पृष्ठ १८९, १९० पर आमयावी का वक्तव्य देखें) भी कर जाते हैं। एक आधुनिक संस्कृत पण्डित ने अपने ग्रन्थ में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

'निजदोषावृतमनसाम्' (पृ० ३६० पर इस श्लोक का वक्तव्य देखें) श्लोक के 'पित्तोपहत' शब्द पर 'पित्तम्—एको नेत्ररोगो यस्मिन् हि सति सर्वमेव दृश्यमानं पीतपीतमेव प्रतीयते' ऐसी पादटिप्पणी दी है। इस श्लोक में पित्त 'कारणे कार्योपचारात्' इस न्याय से कामला के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसलिए 'पित्तोपहतः' का अर्थ 'कामलोपहतः' होता है, क्योंकि कामला में पीतावलोकन एक लक्षण होता है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण दृष्टिपथ में आने के कारण संस्कृत के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को साहित्यान्तर्गत वैद्यकीय स्थलों का वैद्यकशास्त्र विहित, यथार्थ तथा विशद ज्ञान हो यह भी ग्रन्थ लिखने का दूसरा उद्देश्य रहा है।

(३) आयुर्वेद केवल आयुर्वेद की चरकादि संहिताओं में मर्यादित नहीं है, उसका व्यावहारिक स्वरूप संस्कृतसाहित्य के विविध स्तरों के सब ग्रन्थों में बिखरा हुआ है तथा उसका आधुनिक विज्ञानाधिष्ठित स्वरूप आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में प्रतिबिम्बित है। अतः उसका यथार्थ ज्ञान होने की दृष्टि से आयुर्वेद विद्यार्थी विशेषतया वैद्य और अध्यापक इनको इन दोनों का अध्ययन आवश्यक है। इस आवश्यकता का सोदाहरण तथा सोपपत्तिक दिग्दर्शन करना यह भी ग्रन्थ लिखने का तीसरा उद्देश्य रहा है।

(४) स्पृश्य मनुष्य अस्पृश्य की ओर, गौरवर्ण कृष्णवर्णी की ओर और स्वस्थमनुष्य गलत्कुष्ठी की ओर जिन मनोवृत्ति से देखता है ठीक उसी मनोवृत्ति से अनेक पाश्चात्यवैद्यकविभूषित चिकित्सक आयुर्वेदादि अन्य वैद्यक शास्त्रों तथा उनके चिकित्सकों की ओर देखते हैं! अपने को बुद्धिवादी कहने वाले ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की इस प्रकार की मनोवृत्ति प्राचीनशास्त्र, लौकिक व्यवहार और प्रत्यक्ष वस्तुस्थिति के आधार पर किसी प्रकार से समर्थनीय नहीं है इसको सिद्ध करना इस ग्रन्थ को लिखने का चौथा उद्देश्य रहा है।

(५) विविध व्याधियों से पीड़ित जीवों को व्याधिमुक्त करके उन्हें सुखस्वास्थ्य प्रदान करना आयुर्वेदावतार का मुख्य उद्देश्य रहा है—भगवन्! शारीरमानसागन्तुव्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान् विक्रोशतश्चामानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडा भवति, तेषां सुखैषिणां रोगोपशमनार्थमात्मनश्च प्राणयात्रार्थं प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छामः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सुश्रुत ।। इस उच्च उद्देश्य की पूर्ति सर्वतोमुखी उपयुक्त, परन्तु जरा-सा विपर्यय और असावधानी होने पर हानिकर आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के चिकित्सक कैसे कर सके इसको शास्त्राधार से चिकित्साकमभ्यास में दिग्दर्शित करना ग्रन्थ लिखने का अन्तिम उद्देश्य रहा है।

तात्पर्य, सर्व मनुष्य स्वस्थ और व्याधि-वैद्यनिर्मुक्त रह सके तथा सर्व चिकित्सक अपने रोगियों के लिए सदा सर्वदा अधिक से अधिक उपकारक व सुखदायक और कम से कम अपकारक व कष्टदायक सिद्ध हो एतदर्थ प्राच्य मनीषियों के प्राचीन काव्यमय वैद्यकीय सुभाषित वचनों को आधुनिक वैद्यकशास्त्र की भाषा, परिभाषा तथा व्याख्या से स्थान स्थान पर सुप्रकाशित करके मार्गदर्शन करने का यह एक अल्प-सा विनीत प्रयत्न है।

ग्रन्थवैशिष्ट्य—(१) यह ग्रन्थ अन्य सुभाषित ग्रन्थों के समान ग्रन्थ या विषय के अनुसार किया हुआ सुभाषितों का संग्रह नहीं है। इसमें वैद्यकशास्त्र, स्वास्थ्यविज्ञान, व्याधिनिदान चिकित्सा से सम्बन्धित विविध विषय सुसंगतिक क्रम से पैंतालीस अध्यायों में विभक्त किये गये हैं और प्रत्येक अध्याय में तत्तद्विषय के अनेक ग्रन्थों से संकलित किये हुए सब सुभाषित इस प्रकार सुसंगति से रक्खे हैं कि यदि सुभाषितों का ग्रन्थ निर्देश निकाल दिया जाय तो प्रत्येक अध्याय एक एक विषय का एक स्वतन्त्रमौलिक प्रबन्ध-सा मालूम हो सके (पृष्ठ २५६ पर स्वभाव का अध्याय देखें)। तात्पर्य सुसंगतिकता इस सुभाषित ग्रन्थ का प्रथम वैशिष्ट्य है।

(२) वैद्यकरहस्यदीपिका नामक वक्तव्य इसका दूसरा वैशिष्ट्य है। इसमें व्याकरण, अलंकार, व्युत्पत्ति इत्यादि साहित्यिक विषयों का विवरण किया है; नानार्थी शब्दों के विविधार्थों का विचार किया है; कुछ शब्दों के लिए नवीन व्यावहारिक अर्थ (१६८ पृष्ठ पर ब्रह्मचर्य, ३३१ पृष्ठ पर रस, ५६९ पृष्ठ पर मूर्ख) सूचित किये हैं; अनेक वचनों के एक से अधिक अर्थ बतलाये हैं (पृष्ठ ३७ पर ५ वाँ श्लोक); अवैद्यकीय सुभाषित वैद्यकीयदृष्ट्या कितने उपयुक्त होते हैं (५४१ पृष्ठ पर ६ वाँ और ५४२ पर ७ वाँ श्लोक) यह सिद्ध किया है; समानार्थी तथा समान भाषाशैली के वचनों के सूक्ष्मभेद (पृष्ठ २१६ पर श्लोक २३) दर्शाये गये हैं; अनेकों के पाठभेद देकर उनकी विशेषता तथा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्रेयस्करता सिद्ध की है (१७२ पृष्ठ पर श्लोक १७); अनेक दार्शनिक वचनों के व्यावहारिक अर्थ बतलाये हैं। यह कार्य कहीं कोश, कहीं धर्मशास्त्र, कहीं दर्शन, कहीं आयुर्वेद, कहीं आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक (पृष्ठ १७६ पर ओज), कहीं संदर्भ इत्यादि अधिष्ठानों पर सम्पन्न किया है। ग्रन्थ वैद्यक शास्त्र का होने के कारण अन्य विषयों की अपेक्षा वचनों के वैद्यकीय शब्द तथा विषयों पर (पृष्ठ ३६३ और ३६४ पर गलत्कुष्ठ तथा श्वित्र रोगों का विवरण एवं पृष्ठ ३२० का वक्तव्य और ४१४ पृष्ठ पर ४० वें श्लोक का विस्तृत वक्तव्य देखें) विशेष ध्यान देकर उनका विस्तृत विवरण किया गया है।

(३) इस ग्रन्थ का तीसरा किन्तु सबसे महत्व का वैशिष्ट्य है वक्तव्य में विविध विषयों पर किया हुआ मतप्रदर्शन। यह मतप्रदर्शन दुर्बुद्धि, दुराग्रह, दुरभिमान, दांभिकता, स्वार्थपरता, पक्षपात, परद्वेष, परप्रत्ययनेयता, परोपदेशे पाण्डित्य इत्यादि पर अधिष्ठित न होकर, सदिच्छा, सद्बुद्धि, सयुक्तिकता, वैद्य-सद्वृत्त (पृष्ठ ४२८), सत्यप्रियता, समदर्शिता, सततचिन्तन, सततावलोकन, स्वप्रत्ययनेयता, स्वकर्मानुष्ठान इत्यादि पर प्रतिष्ठित है। इसलिए किसी को यह अप्रिय या कटु प्रतीत होने का कारण नहीं है। जैसे, कामलापीडित व्यक्तियों को वस्तु शुभ्र होते हुए पीली और मधुर होते हुए कटु प्रतीत हुआ करती है वैसे विविध दोषों से पीडित व्यक्तियों को स्वदोषानुसार (पृष्ठ ३५९, ३६०), यह मतप्रदर्शन कहीं कहीं अप्रिय या कटु प्रतीत हो सकता है। वैसे ही 'पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना' इस न्याय से कुछ सत्यप्रिय निष्पक्षपाती व्यक्तियों का भी इसमें कहीं कहीं मतभेद हो सकता है।

ग्रन्थफलश्रुति—(१) इस ग्रन्थ के पढ़ने से पाठकों को मनोहारी संस्कृत साहित्यविश्व का मुखदर्शन होगा, साथ ही साथ शरीर स्वस्थ रखने के लिए तथा व्याधियों से मुक्त रहने के लिए आवश्यक आहारविहारादि के नियमों का ज्ञान प्राप्त होगा और यदि वे तदनुसार आचरण रखेंगे तो न केवल गदों से किन्तु अगदङ्कारों से भी कोसों दूर रहेंगे।

(२) इस ग्रन्थ का पठन आयुर्वेद के विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा चिकित्सकों को आयुर्वेद के अध्ययन, अध्यापन और चिकित्सा व्यवसाय में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अत्यन्त सहायक, उपकारक और मार्गदर्शक होगा, साथ ही साथ अत्यन्त उन्नत आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक का तुलनात्मक स्वरूप उनके सामने रखेगा, जिससे रोगी चिकित्सा के लिए केवल आयुर्वेदीय औषधों पर संतोष करने की उनकी संकीर्ण मनोवृत्ति दूर हो जायगी।

(३) वैसे ही इस ग्रन्थ के पठन से आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा पद्धति के अनर्थकारी छिद्र ज्ञात होंगे तथा आयुर्वेदादि अन्य प्राचीन तथा अर्वाचीन चिकित्सा पद्धतियों की उपयुक्तता तथा आवश्यकता विदित होगी, जिससे वे रोगियों की चिकित्सा सदैव सावधान रहकर अनपायी हो इस प्रकार करने का प्रयत्न करेंगे तथा अपने रोगियों को चिकित्सा के लिए केवल अपनी ही चिकित्सा पद्धति पर संतुष्ट रहने की अपनी संकुचित बुद्धि छोड़कर जहाँ आवश्यकता विदित हो वहाँ पर अन्य चिकित्सा पद्धतियों से भी लाभ दिलाने की उदारता प्रकट करेंगे।

ग्रन्थ प्रस्तावना—इस ग्रन्थ के लिए किसी अपने से वयोवृद्ध, अच्छे आयुर्वेदज्ञ तथा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित से प्रस्तावना लिखवायी जाय ऐसी कल्पना लेखक के मन में ग्रन्थ का मुद्रण समाप्त होने के समय उत्पन्न हुई। और सौभाग्य से उसके ही चिरपरिचित मित्र तथा वेलिंगडन महाविद्यालय (सांगली १९१९), व हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी १९४७-१९५२) में उसके सहाध्यापक (Colleague) डॉ० परशुराम लक्ष्मण वैद्य इस काम के लिए सर्व प्रकार से सुयोग्य निकले। आपने प्राचीन ढंग से प्रथम आयुर्वेद और संस्कृत पढ़ा, पश्चात् संस्कृत लेकर आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम्० ए० और पारिस के पी० एच्० डी० हुए। आप पाँच वर्ष हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत-पाली विभाग के प्रमुख तथा मयूरभंज अध्यासन के प्राध्यापक, पश्चात् चार वर्ष दरभंगा की मिथिला संस्कृत संशोधन संस्था के निदेशक और इस समय आप पूना के भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर द्वारा सम्पादित महाभारत के प्रधान सम्पादक हैं। प्रस्तावना लिखने के लिए प्रार्थना करने पर आपने तुरन्त और सहर्ष उसको स्वीकार किया और लेखक की इच्छा पूर्ण की। अतः लेखक अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक आपको अनेक धन्यवाद देता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ग्रन्थ प्रकाशन—इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार काशी के सुप्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थान चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के अध्यक्ष बाबू श्री जयकृष्णदासजी गुप्त तथा उनके कनीयान् अनुज बाबू श्री कृष्णदास जी गुप्त ने ग्रहण किया था। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आप दोनों का बीच में ही देहान्त हो गया और यह कार्य आपके उत्तराधिकारियों ने पूर्ण किया। अतः लेखक प्रथम गोलोकवासी बाबू जयकृष्णदास जी तथा बाबू कृष्णदास जी उभयबन्धुओं को श्रद्धांजलि अर्पण करता है और उनके अनुरूप उत्तराधिकारी योग्य पुत्र श्री मोहनदास जी तथा श्री विट्ठलदास जी एवं उनके भाइयों को हार्दिक धन्यवाद देता है।

ग्रन्थशुद्धिपत्र—इस ग्रन्थ का मुद्रण पूना से पाँच सौ कोस दूरी पर वाराणसी में होने से अन्तिम मुद्रणपूर्व संशोधन भली भाँति न हो सका। इससे ग्रन्थ में अनेक मुद्राराक्षस घुस सके। इनको ढूँढ़ निकाल कर जो अनर्थकारी प्रतीत हुए उनको शुद्धिपत्र रूप हवालात में बन्द कर दिया है। पाठक प्रथम इनका परिचय कर लें और पश्चात् ग्रन्थ को पढ़ें।

ग्रन्थसमाप्ति—अन्त में जिसकी कृपा से चालीस वर्ष पहले की कल्पना ग्रन्थ रूप में परिणत होकर प्रत्यक्ष आँखों से देखने का परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है उस परम कारुणिक परमात्मा को अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक प्रणामांजलि अर्पण करके लेखक भूमिका को और उसके साथ ग्रन्थ को समाप्त करता है।

हनुमज्जयन्ती
चैत्र पौर्णमासी २०२४
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भास्कर गोविन्द घाणेकर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अनुक्रमणिका

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्

वैद्यकशास्त्रसम्बन्धी

प्रथमो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रथमोऽध्यायः

अथातो वैद्यकशास्त्रविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ (चरक)

आयुर्वेदव्याख्या—हितकर, अहितकर, सुखकर, दुःखकर (करके) आयु (चार प्रकार की) होती है । उस आयु के लिए हितकर, अहितकर (सुखकर दुःखकर) क्या होता है ? आयुर्मान कितना होता है ? उसका विवरण जिसमें है वह आयुर्वेद कहलाता है ।

वक्तव्य—आयु—तत्र आयुर्जीवितमुच्यते । (काश्यप) सुख दुःख—स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य—सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च (चरक) हिताहित सुखदुःख आयु का वर्णन—तत्र शारीरमानसाभ्यां रोगाभ्यामनभिद्रुतस्य समर्थानुगतवलवीर्ययशःपौरुषपराक्रमस्य ज्ञानविज्ञानेन्द्रियेन्द्रियार्थबलसमुदये वर्तमानस्य परमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्य समृद्धसर्वारम्भस्य यथेष्टविचारिणः सुखमायुः । असुखमतो विपर्ययेण । हितैषिणः पुनर्भूतानां परस्वादुपरतस्य सत्यवादिनः शमपरस्य परीक्ष्यैककारिणोऽप्रमत्तस्य त्रिवर्गं परस्परेणानुपहतमुपसेव्यमानस्य ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य वृद्धोपसेविनः सततं विविधप्रदानपरस्य तपोज्ञानप्रशमनित्यस्याध्यात्मविदस्तत्परस्य लोकमिमं चामुं चावेक्षमाणस्य हितमायुरुच्यते । अहितमतो विपर्ययेण । (चरक) आयुर्वेद—इसमें विद् धातु है । यह अनेक गणों का है और प्रत्येक गण में उसका अर्थ भिन्न है । उसके अनुसार आयुर्वेद शब्द की अनेक निरुक्तियाँ होती हैं । सत्तायां विद्यते, ज्ञाने वेत्ति, विन्ते विचारणे । विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्नमृशश्चिवदं क्रमात् ॥ (१) आयुरस्मिन् विद्यते इत्यायुर्वेदः, इसमें प्रतिपाद्य विषय के रूप में आयु वर्णित है, इसलिए यह आयुर्वेद है। (२) आयुर्विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति आयुर्वेदः; इससे आयु का ज्ञान प्राप्त होता है इसलिए यह आयुर्वेद है। (३) इसी अर्थ में यह भी निरुक्ति है—वेदयति इति वेदः, आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः। (४) अनेन वाऽऽयुर्विन्दति इत्यायुर्वेदः; इससे मनुष्य दीर्घ तथा स्वस्थ जीवित प्राप्त करता है, इसलिए यह आयुर्वेद कहलाता है। (५) आयुर्विद्यते विचार्यतेऽनेन वा इत्यायुर्वेदः, इससे आयु का विचार होता है, इसलिए यह आयुर्वेद है। मान—आयुर्मान (Span of life)। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति का आयुर्मान भिन्न होता है। आयुर्वेद में उसको जानने के साधन बतलाये हैं। स्वस्थ मनुष्य में ये देह का सारसंहनन, प्रकृति के वातादि भेद, विविध अंगों के प्रमाण, चिह्न और लक्षण होते हैं और रोगी में रोग के लक्षण और अरिष्ट होते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि आयुर्वेद अर्थात् भारतीय वैद्यकशास्त्र ऐहिक जीवन के साथ-साथ पारलौकिक जीवन का भी विचार करता है, जिससे उसके मार्गदर्शन के अनुसार आहार-विहार तथा आचार-विचार रखनेवाले मनुष्य को ऐहिक सुख-स्वास्थ्य के साथ-साथ पारलौकिक सद्गति भी प्राप्त हुआ करती है। अपने वैद्यकशास्त्र की यह विशेषता है, इसलिए वैद्यकीय सुभाषित साहित्य को पढ़ते समय इसको ध्यान में रखना चाहिए। 'व्यञ्जनादिशुभाविद्या' श्लोक देखें।

(२) कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः समुपस्थिताः ।
चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः ॥ (वाक्यपदीय)

चिकित्साशास्त्र—शरीर, भाषा और बुद्धि इनके विषय में जो दोष उत्पन्न हुआ करते हैं उनकी शुद्धि चिकित्साशास्त्र, व्याकरणशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र से होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मलाः—शरीर, भाषा और बुद्धि को मलीन करते हैं इसलिए मल कहा है—मलिनीकरणान्मलाः। (शार्ङ्गधर) शरीर को मलीन करनेवालों को वैद्यक में 'दोष' कहते हैं और इन्हीं से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। अतः शरीर की दृष्टि से मल का अर्थ वातादि विकृतदोष तथा उनसे उत्पन्न हुए रोग—दोषा अपि रोगशब्दं लभन्ते। (चरक) लक्षणम्-व्याकरणम्-लक्ष्यं च लक्षणं चैतत् समुदितं व्याकरणं भवति। (पातंजलमहाभाष्य) चिकित्सा—चिकित्साशास्त्र (Therapeutics), रोग उत्पन्न होने पर उसका प्रतीकार करने का शास्त्र—चिकित्सा रुक्प्रतिक्रिया। (अमरकोश) बोलचाल में लोक वैद्यकशास्त्र और चिकित्साशास्त्र एक ही समझते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। वैद्यकशास्त्र (Science of medicine) व्यक्ति तथा समाज के रोगारोग्य का सर्वतोमुख विचार करने वाला व्यापक शास्त्र है; चिकित्साशास्त्र उसका एक अंग है जिसमें केवल रोगहरण का विचार होता है। इसी को ही कायचिकित्सांग कहते हैं—कायचिकित्सा नाम सर्वांगसंश्रितानां व्याधीनां ज्वररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहातिसारादीनामुपशमनार्थम् (सुश्रुत) अध्यात्म—अध्यात्मशास्त्र बुद्धि-मलों को नष्ट करके मनुष्य को सद्गति या मुक्ति प्रदान करता है। बुद्धिमल शारीरिक तथा मानसिक विकारों के हेतु होते हैं। आयुर्वेद में इनको 'प्रज्ञापराध' कहते हैं—बुद्ध्या विषमविज्ञानं विषमं च प्रवर्तनम्। प्रज्ञापराधं जानीयात्। (चरक) इनका नाश करने के लिए आयुर्वेदोपदेश में अध्यात्मविद्या भी समाविष्ट है। इसलिए आयुर्वेद उभयलोकहितकर है तथा उसके अध्यात्मविद्यापूर्ण उपदेश के अनुसार व्यवहार करने से तथा अन्यों से कराने से परम धर्म की प्राप्ति होती है ऐसा कहा है—तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः। वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितः॥ यच्चायुर्वेदोक्तमध्यात्ममनुध्यायति वेदयत्यनुविधीयते वा सोऽस्य परो धर्मः। (चरक) नीचे 'एकं शास्त्रं' श्लोकवक्तव्य भी देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) सद्यः फलति गांधर्वं, मासमेकं पुराणकम् ।
वेदाः फलन्ति कालेषु, ज्योतिर्वैद्यौ निरन्तरम् ॥

वैद्यक की सार्वकालिक फलवत्ता—गायन तत्काल, पुराण एक मास में, वेद दीर्घकाल में फलप्रद होते हैं; परन्तु ज्योतिष और वैद्यक सर्व-काल फलप्रद हुआ करते हैं ।

वक्तव्य—ज्योतिर्वैद्यौ निरंतरम्—निरन्तर फलवत्ता की दृष्टि से ज्योतिष और वैद्यक समान बतलाये गये हैं, तथापि यदि साहित्यिक विनोद ही करना हो तो ज्योतिष की अपेक्षा वैद्यक फलवत्ता की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि जहाँ ज्योतिष के अंग पाँच, वहाँ वैद्यक के अंग आठ होते हैं—चतुरंगबलो राजा जगतीं वशमानयेत् । अहं पञ्चांग-बलवानाकाशं वशमानये ॥ कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् । अष्टावंगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता । (अष्टांगहृदय)

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं प्राप्तेषु वा तेषु न तैश्च किञ्चित् ।
चिकित्सितज्यौतिषमन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥
(कल्पतरु)

वैद्यक की प्रतिपद प्रत्ययावहता—इतरशास्त्र केवल मनोविनोद के लिए होते हैं, अतः उनके प्राप्त होने में या न होने में कोई विशेष अन्तर नहीं होता; परन्तु वैद्यकशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा मन्त्रशास्त्र (प्राप्त होने पर ये अपने अस्तित्व का) पग-पग पर प्रत्यय दिया करते हैं ।

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा सौख्यं चैकं यत्सुखं वा तपं वा ।
वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा ह्येकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा ॥
(हारीतसंहिता)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वैद्यक की एकमेवाद्वितीयता—शास्त्र केवल एक है, वैद्यक अथवा वेदान्त; सौख्य केवल एक है, स्वास्थ्य अथवा तप; वन्द्य केवल एक है, राजा अथवा यति और कर्म केवल एक है, श्रेय(स्कर कर्म) अथवा यश(स्कर कर्म) ।

वक्तव्य—अध्यात्मक—वेदान्तशास्त्र—अध्यात्मविद्या विद्यानाम् । (गीता) तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा। न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी ॥ सुख—स्वास्थ्य—सुखसंज्ञकमारोग्यम् । (चरक) श्रेयः-श्रेयस्कर अर्थात् पुण्यप्रद या मोक्षप्रद कर्म । यशः—कीर्तिप्रद कर्म ॥ भूपतिर्वा यतिर्वा—इस कथन की यथार्थता भर्तृहरि के निम्नश्लोक से स्पष्ट होगी—त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः । इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः । (वैराग्यशतक) 'एकं शास्त्रं' इस श्लोक को पढ़कर साहित्यिकों को निम्नश्लोक का स्मरण होगा—एको देवः केशवो वा शिवो वा, एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा । एको वासः पत्तने वा वने वा, एका भार्या सुंदरी वा दरी वा ॥ (नीतिशतक)

अध्यात्म मोक्षप्राप्ति का अद्वितीयशास्त्र है इसमें कोई सन्देह नहीं । परन्तु केवल मोक्षप्राप्ति से मनुष्यजीवन की सार्थकता नहीं होती । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष मनुष्य के चार पुरुषार्थ हैं । प्रथम तीनों का उचित सेवन करके मोक्ष को प्राप्त करने में जीवन की सार्थकता है, केवल एक अर्थ का सेवन करने वाला मनुष्य ऋषियों ने जघन्य माना है—धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स नरो जघन्यः ॥ चतुर्विध पुरुषार्थों के सेवन का आद्य साधन शरीर है—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् । (कुमारसंभव) परन्तु रोगग्रस्त मृतकल्प शरीर से यह कार्य नहीं हो सकता, उसके लिए नीरोग स्वस्थ शरीर की आवश्यकता हुआ करती है—धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(चरक) अध्यात्मशास्त्र से न चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं, न उनके यथोचित सेवन के लिये स्वस्थ शरीर प्राप्त होता है। इसके विपरीत आयुर्वेद से पुरुषार्थसेवन का आद्यसाधन स्वस्थ शरीर मिलता है और उसमें अध्यात्म भी होने से ('कायवाग्बुद्धिविषया' पृष्ठ ४ के वक्तव्य में 'अध्यात्म' देखें) धर्मार्थ काम यथोचित सेवन करने के पश्चात् मोक्ष भी प्राप्त होता है। तात्पर्य, दोनों शास्त्र तुल्य होने पर भी प्रारम्भ आयुर्वेदोपदेशानुसार करना उचित होता है।

(६) यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति निश्चितम्।
तस्मिन् परिश्रमः कार्यः, किमन्यच्छास्त्रभाषितम् ॥ (शिवसंहिता)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये वैद्यकशास्त्रविज्ञानीयो नाम
प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥



जिसके जानने से यह सब ज्ञान निश्चिति से प्राप्त होता है उस शास्त्र को जानने का प्रयत्न करें; अन्य शास्त्रों से क्या करना है ?

वक्तव्य—वैद्यक के समान स्वास्थ्यरक्षण योगशास्त्र का भी उद्देश्य होने के कारण उससे संबंधित अनेक बातों का योग के अनेक ग्रन्थों में विवरण पाया जाता है। उसमें से अनेक उपयुक्त वचन इस ग्रन्थ में विषयानुरूप दिये गये हैं। यह श्लोक योग का ही है; किन्तु समान उद्देश्य के कारण यह वैद्यक के लिए उपयुक्त हो रहा है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां वैद्यकशास्त्रविज्ञानीयो नाम
प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्वितीयोऽध्यायः

अथातो वैद्यकसंहिताविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथाऽपरः।
मुख्याश्च संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे॥ (हारीत)

मुख्य संहिताएँ—चरक, सुश्रुत और वाग्भट ये युग-युग की तीन मुख्य संहिताएँ हैं।

वक्तव्य—वाग्भट—अष्टांगसंग्रह तथा अष्टांगहृदय। युगे युगे—कृतयुग में चरक, द्वापर में सुश्रुत और कलियुग में वाग्भट। 'अत्रिः कृतयुगे' श्लोक देखिए।

(२) अथ मैत्रीपरः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः।
शिष्येभ्यो दत्तवान् षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया॥

(३) अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्णः पराशरः।
हारीतः क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेर्वचः॥ (चरक)

मूलसंहिताकार ऋषि—मैत्रीपरायण पुनर्वसु सर्वभूतों की अनुकम्पा से पुण्यप्रद आयुर्वेद को अपने छः शिष्यों को देते भये और अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि उनके वचनों को यथावत् ग्रहण करते भये।

(४) बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः।
तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत्॥ (चरक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अग्निवेशसंहिता—इनमें अग्निवेश प्रथम तन्त्रकर्ता भया, क्योंकि वे मेधावी थे, इसलिए नहीं कि पुनर्वसु ने उन्हें कोई विशेष उपदेश प्रदान किया था।

वक्तव्य—मूल अग्निवेशसंहिता उपलब्ध नहीं, परन्तु चरकप्रतिसंस्कृत उपलब्ध है, जो चरकसंहिता करके प्रसिद्ध है। अन्य शिष्यों ने अग्निवेश के पश्चात् संहिताएँ रचीं; इनमें भेलसंहिता टूटी-फूटी मिली है, हारीतसंहिता उपलब्ध है परन्तु उसके मूलस्वरूप के संबन्ध में सन्देह है। जतूकर्ण, पाराशर, क्षारपाणि की संहिताएँ अनुपलब्ध हैं; परन्तु अन्य ग्रन्थों में उनके वचन मिलते हैं।

(५) अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥ (दृढबल)

चरकसंहितावैशिष्ट्य—चरकप्रतिसंस्कृत अग्निवेशतन्त्र (अर्थात् चरकसंहिता के नाम से प्रसिद्ध) में जो ज्ञान उपलब्ध होता है वह अन्यत्र (अन्य संहिताओं में) भी उपलब्ध होता है, परन्तु जो ज्ञान चरकसंहिता में नहीं पाया जाता वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

वक्तव्य—चरकप्रतिसंस्कृते—इस समय जो चरकसंहिता उपलब्ध है उसमें चिकित्सा १४वें अध्याय तक ही चरकप्रतिसंस्कृत अग्निवेशतंत्र है। चिकित्सा के अन्तिम १७ अध्याय, कल्प और सिद्धिस्थान 'दृढबलसंपूरित' हैं। यदिहास्ति—चरक की अद्वितीयतानिदर्शक यह श्लोकार्ध दृढबलसंपूरित चरक के अन्त में पाया जाता है। परन्तु यह दृढबल का नहीं, महाभारत का है जो व्यासजी ने महाभारत की पुरुषार्थसिद्धि की दृष्टि से अद्वितीयता प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किया—धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥ (महाभारत) उसके पश्चात् योगवासिष्ठ के लिए उसका उपयोग किया गया—यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

न तत्क्वचित् । इमं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधाः ॥ (योगवासिष्ठ) इन दोनों के लिए यह वचन कितना यथार्थ है इसको विद्वानों को कहने की आवश्यकता नहीं है। चरक जैसे कायचिकित्सा की वैसे सुश्रुत शल्यांग की अद्वितीय संहिता है, परन्तु उसमें 'अष्टास्वपि चायुर्वेदतन्त्रेषु एतदेवाधिकमभिमतम्' ऐसा अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने का वचन होने पर भी इस प्रकार का कोई वचन नहीं रहा। अतः आयुर्वेदरहस्यदीपिका नामक टीका लिखते समय दृढबल के समान लेखक ने सुश्रुत शल्यांग की अद्वितीयता प्रदर्शित करने के लिए इस वचन में परिवर्तन करके उसे निम्नस्वरूप प्रदान किया—कायबालग्रहोर्ध्वे च जरादंष्ट्राविषे तथा। तदिहास्ति यदन्यत्र शल्यं चास्य तु न क्वचित् ॥

(६) यदि चरकमधीते तद् ध्रुवं सुश्रुतादि-
प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः ।
अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिव खलु करोतु व्याधितानां वराकः ॥ (अष्टांगहृदय)

चरक-सुश्रुत दोनों *पढ़ने का महत्व*—यदि कोई वैद्य केवल चरक (आदि कायचिकित्सा की संहिताओं) को पढ़कर ही रहे तो वह सुश्रुत आदि (शल्यचिकित्सा की संहिताओं) द्वारा वर्णित रोगों के नामों से भी अनभिज्ञ होगा। इसके विपरीत यदि वह चरक (आदि कायचिकित्सा की संहिताओं) के ज्ञान से विरहित रहा तो वह बेचारा (सुश्रुतोक्त शल्यरोगों की) प्रक्रिया में कृतपरिश्रम होने पर भी (कायचिकित्सा के कासश्वासज्वरातिसारादि) रोगों से पीडित रोगियों का क्या हित कर सकेगा ?

(७) अष्टांगसंग्रहे ज्ञाते वृथा प्राक्तन्त्रयोः श्रमः ।
अष्टांगसंग्रहेऽज्ञाते वृथा प्राक्तन्त्रयोः श्रमः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अष्टांगसंग्रह का महत्व—अष्टांगसंग्रह का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेने पर उससे पहले के तन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेने का परिश्रम व्यर्थ होता है। वैसे ही यदि अष्टांगसंग्रह का ज्ञान प्राप्त न किया तो पूर्वतन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेने का परिश्रम भी व्यर्थ होता है।

वक्तव्य—वाग्भटाचार्य के पहले जो संहिताएँ रची गयीं वे प्रायः एक-एक दो-दो अंगों की रहीं; जैसे, चरक कायचिकित्सा की, सुश्रुत शल्यचिकित्सा की इत्यादि। अतः वैद्यों को अष्टांग आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनेक संहिताओं को पढ़ने की आवश्यकता रही, जिसमें अधिक परिश्रम करना पड़ता था और अधिक समय नष्ट होता था। वाग्भटाचार्य ने अपना संग्रह उनका सारांश लेकर अष्टांग-व्यापी तथा 'अस्थानविस्तराक्षेपपुनरुक्तादिवर्जित' बनाया। इससे अष्टांगसंग्रह के उपर्युक्त वचन की यथार्थता स्पष्ट होगी। इन्हीं गुणों से युक्त 'हृदयमिव हृदयमेतत् सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः' ऐसी वाग्भटाचार्य की अष्टांगहृदय करके दूसरी संहिता है। यह संहिता अष्टांगसंग्रह से संक्षिप्त है। अतः अष्टांगसंग्रह को अष्टांग आयुर्वेद की Treatise or Text book और अष्टांगहृदय को अष्टांग आयुर्वेद का Manual or Hand book कह सकते हैं।

(८) निदाने माधवः श्रेष्ठः, सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठश्चरकस्तु चिकित्सिते॥

संहिताश्रेष्ठस्थान—निदान में माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थान में वाग्भट (का अष्टांगहृदय या अष्टांगसंग्रह) श्रेष्ठ है, शारीरस्थान में सुश्रुत श्रेष्ठ है और चिकित्सास्थान में चरक श्रेष्ठ है।

वक्तव्य—निदान—पंचनिदान, रोगविज्ञानसंबंधी ज्ञातव्य पाँच बातें—निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा। संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम्। (माधवनिदान) निदाने माधवः—पंचनिदान के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विषय में, निदानस्थान में नहीं, माधवनिदान ग्रन्थ। माधवकर ने 'माधवनिदान' करके एक ग्रन्थ रचा है जिसमें केवल रोगविज्ञान-संबंधी पंचनिदान का एकमात्र विषय है, अन्य संहिताओं के समान न उसमें अन्य विषय हैं, न कोई स्थान है। शारीरे सुश्रुतः—इसमें सन्देह नहीं है कि अन्य संहिताओं की तुलना में सुश्रुत का शारीर सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु इससे सुश्रुत की श्रेष्ठता शारीर में है ऐसा नहीं कह सकते। शस्त्रचिकित्सा (Surgery) सुश्रुत की श्रेष्ठता या विशेषता है और इसका स्पष्ट निर्देश 'एतदेवाधिकमभिमतमाशु क्रियाकरणात्, यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानात्' इस प्रकार प्रारम्भ में ही किया गया है। संधानशस्त्रचिकित्सा (Plastic Surgery) सुश्रुत की दुनिया को देन है। इससे उसकी श्रेष्ठता किसमें है यह स्पष्ट होगा। अतः सुश्रुत की श्रेष्ठता विषय की दृष्टि से प्रदर्शित करना हो तो 'शल्यांगे सुश्रुतः श्रेष्ठः' और यदि स्थान की दृष्टि से प्रदर्शित करना हो तो 'सुश्रुतः सूत्रस्थाने च' ऐसा होना चाहिए था, क्योंकि शस्त्रचिकित्सा के मूलभूत तत्व तथा संधानशस्त्रचिकित्सा सूत्रस्थान में ही वर्णित है। लेखक ने, इसलिए, सूत्रस्थान की भूमिका में 'तच्छल्यं सौश्रुते सूत्रे वस्तुतः परिकीर्तितम्। सर्वस्थानेष्वतः सूत्रस्थानं श्रेष्ठतमं मतम्'। इस प्रकार अपना मत स्वकृत श्लोक में प्रदर्शित किया है।

शस्त्रचिकित्सा में सुश्रुत की श्रेष्ठता इतनी स्पष्ट होने पर भी उत्तर-काल में बौद्धधर्म के अहिंसावादी आचार-विचार-प्रचार के प्राबल्य से शवविच्छेदन और शस्त्रकर्म (Operation) इन दोनों का व्यवहार बंद सा हो गया जिससे शस्त्रचिकित्सा की उपयुक्तता समझने के लिए अयोग्य बने उस समय के सुभाषितकार ने सुश्रुत के द्वितीयोत्तम (Second best) शारीरस्थान को सर्वोत्तम पद प्रदान किया।

(९) सुश्रुतं न श्रुतं येन किमन्यैर्बहुभिः श्रुतैः।
नालोकि चरकं येन स वैद्यो वैद्यनिन्दितः॥ (क्षेमकुतूहल)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सर्वसंहिताओं में चरक-सुश्रुत की श्रेष्ठता—जिसने अच्छी तरह न सुश्रुत सुना न चरक का अवलोकन किया उसका अन्य अनेक ग्रन्थों के सुनने, अवलोकन करने से क्या लाभ होने वाला है ?

(१०) ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥ (अ० हृदय)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये वैद्यकसंहिताविज्ञानीयो नाम
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥



ऋषियों से लिखित इसलिए यदि प्रीति हो तो चरक और सुश्रुत को छोड़कर भेडादि (संहिताएँ) क्यों नहीं पढी जाती हैं ? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तम ही ग्राह्य होता है ।

वक्तव्य—भेडादि आत्रेय पुनर्वसु के शिष्य ऋषि थे, अतएव उनकी संहिताएँ आर्ष होती हैं । इसके विपरीत चरक और सुश्रुत ऋषि नहीं थे । इसलिए उनकी संहिताएँ अनार्ष होती हैं । ऋषिप्रणीत कार्य साधारणतया आदर-श्रद्धा-भक्ति करने योग्य माना जाता है और जो ऋषिप्रणीत नहीं है वह उससे निकृष्ट माना जाता है । चरक सुश्रुत संहिताएँ जब से बनीं तब से आज तक बीच-बीच में संशोधित-परिवर्धित होकर अविच्छिन्नरूप से पठन-पाठन में रही हैं । इसके विपरीत भेडादि संहिताओं का संशोधन परिवर्धन दूर रहा, केवल उनका पठन-पाठन तक अधिक काल तक न होता रहा जिससे उनका अस्तित्व तक नष्ट हो गया है । तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्—इससे यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी द्रव्य, गुण, कर्म, वचन, भाषण, लेखन यदि उत्तम हो तो उसका ग्रहण करना चाहिए, फिर वे द्रव्यादि गन्दे स्थान के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तथा बाल, दुर्जन, शत्रु, अपवित्र मनुष्य से भी क्यों न आ जायँ ? इस दृष्टि से मनु के निम्नवचन ध्यान देने योग्य हैं—श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्। विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ तात्पर्य उत्तम वस्तु कहीं से भी लेनी चाहिए। ज्ञानप्राप्ति के संबंध में ज्योतिषशास्त्र ने कहा है कि उत्तम ज्ञान जिससे प्राप्त होता है वह ऋषि न होने पर भी ऋषि के समान पूजनीय होता है—म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्वेदविद्द्विजाः ॥ (रसहृदय)

मालविकाग्निमित्र लिखते समय जैसे महाकवि कालिदास के मन में 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः' यह शंका उत्पन्न हुई और उसका निरसन करने के लिए तथा दर्शकों को अपना नाटक देखने को आकर्षित करने के लिए कालिदास ने 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।' यह सुन्दर सुभाषित लिख डाला, वैसे अष्टांगहृदय लिखते समय भिषग्वर वाग्भटाचार्य के मन में भी 'प्रथितयशसां भेडादिऋषीणां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानभिषग्वरस्य वाग्भटाचार्यस्य क्रियायां कथं बहुमानः' इस प्रकार की महाकवि कालिदास के समान शंका उत्पन्न हुई होगी, अन्यथा अपने ग्रन्थ की उत्कृष्टतासंबन्धी आत्मविश्वासदर्शक तथा आयुर्वेदज्ञचित्ताकर्षक उपर्युक्त सुभाषित अष्टांग आयुर्वेद के विविध विषयों का विवरण करने वाले अष्टांगहृदय के लिए लिखने की तथा उसको उसी में अन्तर्भूत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। ये दोनों सुभाषित स्वतन्त्रतया पढ़ने पर भाषा और भाव में दोनों में अल्पांश में भी समानता न होने से एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न प्रतीत

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यदि उपर्युक्त विवरण के आधार पर दोनों का सूक्ष्म विचार किया जाय तो कालिदास ने अपने सुभाषित में जो तत्व ग्रथित किया है उसी का सोदाहरण स्पष्टीकरण वाग्भट के सुभाषित में दिखाई देगा।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां वैद्यकसंहिताविज्ञानीयोनाम
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तृतीयोऽध्यायः

अथातो वैद्यकसंहिताप्रणेतृविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति स्मृतौ ।
यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम् ॥
प्रशीर्णा दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
वज्रिणश्च भुजस्तम्भस्ताभ्यामेव चिकित्सितः ॥ (चरक)

अश्विनीकुमार—अश्विनीकुमार देवताओं के भिषज हैं, वे यज्ञवाह कहलाते हैं; यज्ञपुरुष का कटा हुआ सिर इन्होंने जोड़ दिया; पूष्ण के दाँत गिरे, भग के नेत्र नष्ट हुए और इन्द्र को भुजस्तम्भ हुआ, इन्होंने ही ये सब ठीक किये ।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णम् आजा खेलस्य परितक्मायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥
(ऋग्वेद)

खेल नामक राजा की पत्नी विश्पला के पैर पक्षियों के पंखों के समान युद्ध में कट गये थे; अश्विनीकुमारों ने रात में जाकर उसे अच्छी तरह चलने फिरने के लिए उपयुक्त लोहे की जङ्घा बनाकर दे दी ।

वक्तव्य—अश्विनीकुमार कायचिकित्सा (Medicine), शस्त्र-चिकित्सा (Surgery) और विकलांगचिकित्सा (Orthopaedics) इनके अति कुशल चिकित्सक थे । शस्त्रकर्म करने से पूर्व वेदनाहरण के लिए, शस्त्रकर्म में कटे हुए अंग को संधित करने के लिए और शस्त्रकर्म समाप्त होने पर रोगी को शीघ्र होश में लाने के लिए उनके पास प्रभावी औषधियाँ थीं । इससे उनके शस्त्रकर्म रोगियों को किसी प्रकार का कष्ट न होते हुए निर्विघ्नतया सफल हुआ करते थे । इसलिए

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देवताओं से वे पूजित थे और उनके यज्ञकर्मों में हविर्भाग पाते थे। अधिक विवरण के लिए 'शस्त्रप्रणिधान' अध्याय में भोजराजा के मस्तिष्क का शस्त्रकर्म और उसका वक्तव्य देखिए।

ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रदर्शकः।
बिभ्रत् कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः॥ (अग्निपुराण)

धन्वन्तरि—फिर (सुरा के पश्चात्) विष्णु के अंशरूप तथा आयुर्वेद के पथप्रदर्शक भगवान् धन्वन्तरि अमृत से पूर्ण कमण्डलु लेकर (समुद्र से) बाहर आ गये।

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥ (सुश्रुत)

देवताओं की जरा, व्याधियाँ और मृत्यु का नाश करनेवाला मैं आदिदेव धन्वन्तरि (कायचिकित्सादि) अन्य अंगों के साथ शल्यांग का मुख्यतया उपदेश करने के लिए (स्वर्ग से) इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुआ हूँ।

धन्वन्तरिर्धन्वभृतां वरिष्ठममृतोद्भवम्।
चरणावुपसंगृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति॥ (सुश्रुत)

सुश्रुत—धार्मिकों में श्रेष्ठ, अमृतमहासागर से उत्पन्न हुए भगवान् धन्वन्तरि से दोनों चरणों को स्पर्श करके महर्षि सुश्रुत पूँछते भये।

वक्तव्य—धन्वन्तरि-मूलधन्वन्तरि समुद्रमन्थन से उत्पन्न होकर स्वर्ग में रहे। वे ही इहलोक में काशिराज दिवोदास के रूप में अवतीर्ण हुए और उन्हीं से महर्षि सुश्रुत ने आयुर्वेद ग्रहण किया—धन्वन्तरिस्तु दीर्घतमसोऽभूत्। भगवता नारायणेन च अतीतसंभूतावस्मै वरो दत्तः काशिराजगोत्रेऽवतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि॥ विष्णुपुराण॥ धन्वन्तरि ने अपनी पढाई में शस्त्रचिकित्सा पर विशेष बल दिया जिससे सुश्रुत उत्तम शस्त्रचिकित्सक बन गये। परन्तु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शस्त्रकर्म करने के लिए अश्विनीकुमारों के पास जो प्रभावी औषधियाँ थीं वे सुश्रुत के पास न होने के कारण वे स्वयं कुशल शस्त्रचिकित्सक होते हुए भी उनके शस्त्रचिकित्सा का क्षेत्र अश्विनीकुमारों के चिकित्सा-क्षेत्र से संकुचित रहा और उसमें उतनी सफलता न आ सकी। 'राक्षसी मानुषी' और 'राजन् न भेतव्यं' इनका वक्तव्य देखिए।

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।

मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥ (चक्रपाणि)

शेषभगवान्—पातञ्जल योगसूत्र, व्याकरण महाभाष्य और अग्निवेश संहिता का चरकप्रतिसंस्करण करके जिसने मन, वाणी और शरीर इनके दोषों का हरण किया उस भगवान् शेष को मेरा नमस्कार।

वक्तव्य—अहिपति-भगवान् शेष समय-समय पर इस भूलोक में योगसूत्रकार पतञ्जलि, व्याकरण महाभाष्यकार पतञ्जलि और अग्निवेश-संहितासंस्कर्ता चरक के रूप में अवतीर्ण हुए। यही बात नीचे के वचन में चरक की व्युत्पत्ति बतलाते समय प्रदर्शित की गयी है—

यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः।

तस्माच्चरकनाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले॥ (भावप्रकाश)

चरक—चूँकि गुप्तचर के रूप में (शेष भगवान्) आये और किसी से पहचाने नहीं गये, इसलिये वे 'चरक' नाम से भूमण्डल पर विख्यात हुए।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

(योगवार्तिक)

पतञ्जलि—योगशास्त्र से जिन्होंने चित्त का, व्याकरण महाभाष्य से भाषा का, और वैद्यकशास्त्र से शरीर का मल दूर किया उस पतञ्जलि को मैं अञ्जलिबद्ध प्रणाम करता हूँ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथाऽनन्तो भुजंगमे ।
देवानां च यथा शम्भुस्तथाऽऽत्रेयोऽस्ति वैद्यके ॥ (हारीत)

आत्रेय—मृगेन्द्रों में जैसे सिंह, सर्पों में जैसे अनन्तनागशेष, देवताओं में जैसे महादेव (श्रेष्ठ होता है) वैसे वैद्यों में आत्रेय होता है ।

ब्रह्मणस्तनयो योऽभूत् मरीचिरिति विश्रुतः ।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत्, कश्यपानात् स कश्यपः ॥

(मार्कण्डेयपुराण)

काश्यप—ब्रह्मा जी का पुत्र मरीचि नाम से जो विख्यात रहा उसका पुत्र कश्यप है, यह पुत्र कश्य (सुरा) पान से कश्यप कहलाता है ।

वक्तव्य—कश्यप–'सर्वं जगत् सर्वदा सौक्ष्म्येण पश्यति' इति कश्यपः । 'पश्यक इत्यस्य वर्णविपर्ययेण कश्यप इति नाम सिद्धं भवति' यह भी कश्यप नाम की दूसरी निरुक्ति दी जाती है ।

अत्रिः कृतयुगे वैद्यो, द्वापरे सुश्रुतः स्मृतः ।
कलौ वाग्भटनामा च, गरिमाऽत्र प्रदिश्यते ॥ (हारीत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये वैद्यकसंहिताप्रणेतृविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।



युग-युग के वैद्यक प्रणेता—कृत में पुनर्वसु आत्रेय, द्वापर में सुश्रुत, कलि में वाग्भट (इस प्रकार युगानुसार) वैद्यक प्रणेताओं की महत्ता बतलायी जाती है ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां वैद्यकसंहिताप्रणेतृविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

अथातश्चिकित्सामाहात्म्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः। इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

धर्मार्थं नार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम्॥ (चरक)

वैद्यकशास्त्र का उद्देश्य—स्वर्ग में अक्षयस्थान प्राप्त करने की इच्छा करने वाले धर्मनिष्ठ महर्षियों ने आयुर्वेद का प्रकाशन धर्म करने की दृष्टि से किया है, न कि काम या धन प्राप्त करने की दृष्टि से।

इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः।
विचार्य नानाशास्त्राणि शर्मणेऽत्र परत्र च॥
भीतेभ्यश्चाभयं देयं, व्याधितेभ्यस्तथौषधम्।
देया विद्यार्थिने विद्या, देयमन्नं क्षुधातुरे॥ (काशीखण्ड)

चतुर्विध दान—नाना शास्त्रों का विचार करके महर्षियों ने इहलोक तथा परलोक में सुखप्राप्ति के लिए निम्न चार दान बतलाये हैं। भयातुर को अभयदान, रोगी को औषधिदान, विद्यार्थी को विद्यादान और क्षुधातुर को अन्नदान।

वक्तव्य—अभयदान-आरोग्यदान। भय के अनेक कारण होते हैं। मृत्यु भय का सबसे बड़ा कारण होता है। मृत्यु के अनेक कारण होते हैं। सर्वसामान्य कारण व्याधि है। अतः व्याधिग्रस्त होने पर व्याधित को औषधि देकर व्याधिनिर्मुक्त करने से उसे अभयदान मिलता है। तात्पर्य, इन चार महादानों में से दो महादानों का श्रेय केवल चिकित्सा से प्राप्त होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सन्ति दानान्यनेकानि किं तैस्तुच्छफलप्रदैः ।

अभीतिदानतुल्यं तु परमेकं न विद्यते ॥ (काशीखण्ड)

आरोग्यदान की श्रेष्ठता—दान नाना प्रकार के होते हैं; उन तुच्छ-फल देने वाले दानों से क्या करना है ? उनमें अभयदान के समान एक भी दान नहीं है ।

एकतः क्रतवः सर्वे सहस्रवरदक्षिणाः ।

अन्यतो रोगभीतानां प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥ (महाभारत)

एक ओर एक से एक बढ़कर दक्षिणा दिये जाने वाले सहस्रावधि यज्ञ और दूसरी ओर रोगों से भयभीत हुए प्राणियों का प्राण रक्षण ।

वक्तव्य—एकतः, अन्यतः—ये समानतादर्शक अव्यय हैं । तात्पर्य, चिकित्सा द्वारा रोगी का किया हुआ प्राण रक्षण, या उसको दिया हुआ आरोग्यदान तुलना में सहस्रावधि महायज्ञों के बराबर हुआ करता है ।

आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्यवगम्यते ।

तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित् ॥ (स्कन्दपुराण)

आकाश का अन्त जैसे देवताओं को भी ज्ञात नहीं है वैसे (चिकित्सा द्वारा रोगी को दिये गये) आरोग्यदान (के पुण्य) का अन्त (किसी को) ज्ञात नहीं है ।

(७) धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं साधनं यतः ।

तस्मादारोग्यदानेन तद्दत्तं स्याच्चतुष्टयम् ॥ (स्कन्दपुराण)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन (चतुर्विध पुरुषार्थों) का साधन (शरीर का) आरोग्य होने से आरोग्यदान करने पर रोगी को (पुरुषार्थ) चतुष्टय का दान होता है ।

(८) श्रान्तसंवाहनं रोगी परिचर्या सुरार्चनम् ।

पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥ (याज्ञ. स्मृति)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

थकेमांदे का श्रमापनयन, रोगी की चिकित्सा, देवताओं का पूजन, (आये हुए द्विजों का) पादधावन और (भोजनोत्तर) उनके उच्छिष्टों को उठाना ये कर्म गोप्रदानसम (पुण्यप्रद) होते हैं।

वक्तव्य—संवाहनम्—आसनशयनादिदानेन श्रमापनयनम्। परि-चर्या—चिकित्सा 'यथाशक्त्यौषधादिदानेन'। मिताक्षरा ॥ 'इक्षुदण्डाः' का वक्तव्य भी देखें।

(९) नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते।
तस्मादुपाचरेत् स्वेन स्वेन निस्वतपस्विनः (अ० संग्रह)

(रोगियों की चिकित्सा करके उन्हें दिये हुए) जीवितदान से बढ़कर और कोई दान नहीं होता है; इसलिए निर्धन, तपस्वी (साधु संन्यासी इत्यादि रोगियों) की अपने धन से चिकित्सा करें।

वक्तव्य—स्व-धन तथा अपना-स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने ॥ अमरकोश ॥ निःस्वः-निर्धन—निस्वो वष्टि शतं शती दशशतं। शांतिशतक ॥ जीवितदान—दानं वै भूतरक्षणम् (महाभारत)

(१०) क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ (अ. संग्रह)

चिकित्सा के लाभ—कभी धर्म, कभी मित्रता, कभी धन, कभी कीर्ति और कभी अनुभव (इतने अनेक लाभ चिकित्सा से होते हैं) इस प्रकार चिकित्सा कदापि निष्फल नहीं होती।

वक्तव्य—इस श्लोक में चिकित्सा से कितने अच्छे-अच्छे लाभ हुआ करते हैं उनका निर्देश किया गया है। चिकित्सा का सबसे बड़ा लाभ पुण्य प्राप्ति है जिसका विवरण ऊपर विविध दानों के साथ किया गया है। पारलौकिक जीवन के लिए आवश्यक इस लाभ का प्रथम निर्देश करके पश्चात् ऐहिक जीवन के लिए उपयुक्त अन्य लाभों का निर्देश किया गया है। जो चिकित्सक अपना व्यवसाय धार्मिक दृष्टि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

से करते हैं उनको धन की राशि भले ही कुछ कम प्राप्त हो, परन्तु यशादि अन्य लाभ बहुत अधिक प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत जो चिकित्सक केवल धन के लिए चिकित्सा की विक्री किया करते है उनको भले ही धन की राशि बहुत अधिक मिल जाय, अन्य लाभ नहीं होते हैं और उनकी स्थिति वस्तुतः 'काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्यथा' (शान्तिशतक) इस प्रकार की हुआ करती है।

(११) सनातनत्वाद् वेदानामक्षरत्वात्तथैव च।
चिकित्सितात्पुण्यतमं न किञ्चिदपि शुश्रुम ॥ (सुश्रुत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते-वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये चिकित्सामाहात्म्यविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।



आयुर्वेद अनादि तथा अविनाशी होने से उसकी चिकित्सा से अधिक पुण्यप्रद और कोई हमारे सुनने में नहीं है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां चिकित्सामाहात्म्यविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वास्थ्यविज्ञानसंबंधी

द्वितीयो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चमोऽध्यायः

अथातो रोगारोग्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः ।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वास्थ्यलक्षणम् ॥ (महाभारत)

स्वास्थ्यलक्षण—कफ (शीत) पित्त (उष्ण) और वायु ये तीन शरीर के गुण (दोष या धातु) होते हैं। इन गुणों की जो साम्यावस्था होती है उसको (शारीरिक) स्वास्थ्य कहते हैं।

(२) सत्त्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः ।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥ (महाभारत)

सत्त्व, रजस् और तमस् ये मन के तीन गुण होते हैं। इन गुणों की जो साम्यावस्था होती है उसको (मानसिक) स्वास्थ्य कहते हैं।

(३) समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ (सुश्रुत)

जिसके (सत्त्वादिगुण तथा वातादि) दोष, (जठर तथा काय की) अग्नि, (रसादिसप्त) धातु, (पुरीषादि) मल इनकी क्रियाएँ सम हों तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न हों वह स्वस्थ कहलाता है।

वक्तव्य—इस श्लोक के प्रथमार्ध में स्वास्थ्य के जो लक्षण दिये हैं वे व्यक्ति से स्वयं अनुभूत होनेवाले अर्थात् स्वप्रत्यय (Subjectiue) हैं। इसके विपरीत द्वितीयार्ध के लक्षण जितने स्वप्रत्यय हैं उतने ही दूसरों के समक्ष में आनेवाले अर्थात् परप्रत्यय (Objectiue) भी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हैं। अतः ये लक्षण अपना स्वास्थ्य तथा अस्वास्थ्य समझने के लिए जितने उपयुक्त हैं उतने ही दूसरों के स्वास्थ्यास्वास्थ्य का अनुमान करने के लिए भी उपयुक्त होते हैं—दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत्। अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलो भिषक्॥ सुश्रुत॥

साम्यम्–समता (Normal State)—स्वरूपादप्रच्युतिः। अरुणदत्त॥ गुण—शारीरिक गुणों को वैद्यक में धातु, दोष तथा मल कहते है—शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्। वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः॥ शार्ङ्गधर॥ मानसिक गुणों को साम्यावस्था में वैद्यक में गुण ही या महागुण कहते हैं और विषमावस्था में दोष कहते हैं और दोषों में सत्त्व का समावेश नहीं होता—सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयः प्रोक्ता महागुणाः॥ रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ॥ अष्टांगसंग्रह॥ आगे के श्लोक का वक्तव्य भी देखें। प्रथम श्लोक में शरीरक्रिया विज्ञान की दृष्टि से, द्वितीय श्लोक में मनोविज्ञान की दृष्टि से और तृतीय श्लोक में इन दोनों के साथ-साथ नैदानिकीय (Clinical) और लाक्षणिक (Symptomatic) दृष्टि से स्वास्थ्य की परिभाषा वर्णित है। स्वास्थ्य की इतनी सुन्दर, सर्वसंग्राहक और व्यावहारिक परिभाषा अन्यत्र मिलना मुश्किल है।

(४) विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥ (चरक)

रोगारोग्यव्याख्या—शरीर के वातादि दोषों का तथा रसरक्तादि धातुओं का वैषम्य (Abnormal state) विकार है और उनका साम्य प्रकृति (स्वास्थ्य) है। (वैद्यक में) आरोग्य के लिए सुख संज्ञा और विकार के लिए दुःख संज्ञा होती है

वक्तव्य—शारीरिक स्वास्थ्य जैसे वातादि त्रिदोषों की साम्यावस्था पर निर्भर होता है वैसे मानसिक स्वास्थ्य सत्त्वादि त्रिगुणों की

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

साम्यावस्था पर निर्भर होता है। भेद अस्वास्थ्य की उत्पत्ति में है। शारीरिक अस्वास्थ्य वातादि तीनों दोषों की विषमता से होता है, परन्तु मानसिक अस्वास्थ्य सत्त्व छोड़कर शेष दो ही गुणों के वैषम्य से होता है—सत्त्वेतरं च द्वंद्वं च मानसामयहेतवः। (काश्यपसंहिता) यह भेद सत्त्वगुण के अविकारित्व के कारण है—तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ। (गीता)

(५) किं भाग्यं देहवतामारोग्यं, कः फली ? कृषिकृत्।
कस्य न पापं ? जपतः, कः पूर्णो ? यः प्रजावान् स्यात्॥
(शंकराचार्य)

आरोग्य के लाभ—मनुष्यों के लिए (वस्तुतः) भाग्य कौन सा है ? आरोग्य; धनधान्यवान् कौन है ? किसान; पाप किसको नहीं लगता है ? जप करने वाले को; पूर्ण कौन है ? बालबच्चेवाला।

(६) धन्यानामुत्तमं दाक्ष्यं, धनानामुत्तमं श्रुतम्।
लाभानां श्रेष्ठमारोग्यं, सुखानां तुष्टिरुत्तमा॥ (महाभारत)

धनप्रद गुणों में दाक्ष्य (इमानदारी, चतुरता); संपत्ति में विद्या; लाभों में आरोग्य और सुखों में संतोष श्रेष्ठ है।

(७) सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशैस्तु यो भुंक्ते, यस्तु दारैर्न संगतः॥ (शौनक)

जो ऋणहीन है, जो व्याधियों से मुक्त है, जो शान्ति से भोजन करता है, जो स्त्री युक्त नहीं है वही मनुष्य सुख से नींद ले सकता है।

(८) को धर्मो ? भूतदया; किं सौख्यं ? नित्यमरोगिता जगति।
कः स्नेहः ? सद्भावः; किं पाण्डित्यं ? परिच्छेदः॥ (हितोपदेश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

धर्म कौन सा है ? प्राणीमात्र पर दया करना; सौख्य कौन सा है ? सदैव व्याधिनिर्मुक्त रहना; स्नेह कौन सा है ? (प्राणिमात्र के प्रति) सद्भाव रखना; पाण्डित्य कौन सा है ? परिच्छेद।

वक्तव्य—परिच्छेद-युक्तायुक्त, हिताहित, न्याय्यान्याय्य इत्यादि में भेदकरके निर्णय करने की बुद्धिमत्ता—परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदापन्ना विपत्तयः। अपरिच्छेदकर्तॄणां विपदः स्युः पदे पदे (हितोपदेश)

(९) धनं रूपमवैक्लव्यं, धनं कुलं सुमङ्गलम्।
धनं यौवनमम्लानं, धनमायुर्निरामयम्॥ (चाणक्यनीतिशास्त्र)

विकाररहित रूप, सुमङ्गल कुल, म्लानतारहित (स्फुर्तीला) यौवन और नीरोग जीवन धन है।

(१०) अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ (महाभारत)

हे राजन् ? धनप्राप्ति, सदैव शरीर स्वास्थ्य, मधुरभाषिणी प्रियपत्नी, आज्ञाकारी पुत्र, धनोत्पादक विद्या ये छः संसारी जीवन के सुख हैं॥

(११) आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

आरोग्य, विद्वत्ता, सज्जनों से मित्रता, अच्छे कुल में जन्म (हर एक बात में) स्वावलम्बन ये मनुष्यों के धन के विना भी ऐश्वर्य हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१२) सुभिक्षं कृषके नित्यं, नित्यं सुखमरोगिणि ।
भार्या भर्तुः प्रिया यस्य तस्य नित्योत्सवं गृहम् ॥
(चाणक्यशतक)

किसान के यहाँ सदैव (धान्य का) सुभिक्ष रहता है; नीरोग को सदैव सुख मिलता है और जिसकी पत्नी प्रिय रहती है उसके घर में सदैव मंगल रहता है।

(१३) यथा नेच्छति नीरोगः कदाचित् सुचिकित्सकम् ।
तथाऽऽपद्रहितो राजा सचिवं नाभिवाञ्छति ॥ (पंचतन्त्र)

जैसे, नीरोग मनुष्य चिकित्सक अच्छा होने पर भी किसी समय उसके पास (पाश) में जाना नहीं चाहता, वैसे (अन्तर्बाह्य) आपत्तियों से मुक्त राजा मन्त्री के पास (पाश) में जाना नहीं चाहता।

(१४) अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं
जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥ (कुमारसंभव)

(हे पार्वति ?) यहाँ पर तुम्हें (होमादि) क्रियाओं के लिए समिधा, दर्भ आसानी से मिल रहे हैं ? स्नानविधि के लिए जल योग्य है ? तपाचरण अपने बल पर ही चल रहा है ? (क्योंकि) धर्माचरण में शरीर ही आद्य साधन होता है।

वक्तव्य—शरीर–स्वस्थशरीर, व्याधितशरीर बाधा डालता है, 'आलस्यं स्त्रीसेवा' श्लोक देखिए। आद्यं धर्मसाधनम्—धर्मादि चतुर्विध पुरुषार्थों का मूलभूत आधार—धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकविद् ॥ (शार्ङ्गधर) 'एकं शास्त्रं वैद्यं' श्लोक का पृष्ठ ७ पर वक्तव्य भी देखिए।

इस श्लोक के प्रथम तीन पादों में शंकर जी ने स्वयं एक गुप्तचर के समान ब्रह्मचारी का रूप धारण करके पार्वती से पूछे हुए तीन प्रश्न हैं। इनका स्वरूप राजनैतिक (Political) है और तपाचरण में जरा सा भी कष्ट होता हो तो पार्वती को पता न लगे इस प्रकार उसको मालूम करना इनका उद्देश्य है।

(१५) पुरस्य दाढर्ये योगस्य सिद्धिः सर्वार्थसाधनी ।
अखण्डानन्दसिद्धिश्च फलं तेनैव जायते ॥ (जीवानन्द)

आरोग्यमाहात्म्य—(शरीररूपी) नगर दृढ (स्वस्थ) होने पर योग की सर्वार्थ साधक तथा शाश्वत आनन्दप्रदायक सिद्धि फलरूपेण उसी के द्वारा प्राप्त होती है।

(१६) पुराभिमानो न वृथा, तद्दाढर्येन विना कथम् ।
चित्तस्वास्थ्यं, विना तच्च शिवभक्तिर्दृढा कथम् ॥
(जीवानन्द)

शरीर स्वास्थ्य का प्रेम व्यर्थ नहीं है, क्योंकि उसके विना चित्त-स्वास्थ्य कहाँ से होगा? और उसके विना शंकर जी की दृढ भक्ति कैसे होगी?।

(१७) सर्वमेव परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनश्यति ॥
(चाणक्यराजनीतिशास्त्र)

सब का परित्याग करके प्रथम शरीर (स्वास्थ्य) का रक्षण करें। क्योंकि शरीर नष्ट होने पर सब का नाश हो जाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—शरीर-शरीरस्वास्थ्य। शरीरनाश-स्वास्थ्यनाश या रुग्णावस्था—मृतकल्पा हि रोगिणः। (महाभारत)

(१८) दानं धर्मश्च विद्या च रूपं शीलं कुलं तथा।
सुखमायुर्यशश्चैव नव गोप्यानि यत्नतः॥
(चाणक्यनीतिशास्त्र)

दान, धर्म, विद्या, रूप, शील, कुल, स्वास्थ्य तथा जीवित इन नवों का यत्न से रक्षण करना चाहिए।

(१९) आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥ (अष्टांगहृदय)

धर्म, अर्थ, तथा विविध सुखों का साधनभूत दीर्घजीवित चाहने वाले को वैद्यकशास्त्र के (आहार-विहार, आचार-विचार संबंधी) उपदेशों का आदर कर (तदनुरूप आचरण कर) ना चाहिए।

(२०) शरीरमेवायतनं सुखस्य दुःखस्य चाप्यायतनं शरीरम्।
यद्यच्छरीरेण करोति कर्म तेनैव देही समुपाश्नुते तत्॥
(सुभाषितावलि)

स्वास्थ्य का अधिष्ठान केवल शरीर है और रोग का अधिष्ठान भी शरीर ही है। जीव शरीर द्वारा जो-जो कर्म करता है उसीसे ही वह स्वास्थ्य या रोग का अनुभव करता है।

वक्तव्य—सुख-दुःख या रोगारोग्य मनुष्य के कर्मों का ही फल होता है इसमें जरा भी सन्देह नहीं होता है। इसलिए तात्त्विक दृष्ट्या ज्ञानी मनुष्य वैद्यकोपदिष्ट मार्गानुसार चलकर जीवन भर अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकता है। परन्तु इस संसार में मनुष्य सदैव अपना स्वामी नहीं हो सकता, उसपर समाज, परिस्थिति, व्यवसाय इत्यादि के अनेक बंधन ('अथाग्निवेशः सततातुरान् नरान्' श्लोक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देखिए) होते हैं जिनके कारण उसका स्वास्थ्य एक सा नहीं रहता, कभी-कभी उसको रोग पीडित होना पड़ता है । यही व्यावहारिक सत्य नीचे के वचनों में बतलाया है ।

(२१) शारीरो मानसो वाऽपि कच्चिदेनं न बाधते ।
संतापो वाऽभितापो वा, दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ (रामायण)

(रामचन्द्र जी पूछते हैं—) पिता जी को कोई शारीरिक या मानसिक व्याधि तो पीडा नहीं दे रही है ? क्योंकि सदा सर्वदा शारीर-स्वास्थ्य दुर्लभ होता है ।

(२२) कस्य दोषः कुले नास्ति, व्याधिना को न पीडितः ।
केन न व्यसनं प्राप्तं, श्रियः कस्य निरन्तरा ॥ (गरुडपुराण)

किसके कुल में दोष नहीं पाया जाता ? (जीवन भर में) व्याधि से पीडित नहीं हुआ ऐसा कौन है ? (जीवन भर में) आपत्ति से पीडित नहीं हुआ ऐसा कौन है ? किसकी संपत्ति शाश्वत है ?

(२३) आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः ।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत न त्रसेत् ॥ (चरक)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभा-
षितसाहित्ये रोगारोग्यविज्ञानीयो नाम
पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।



तात्पर्य । अपने को ही रोगारोग्य का कर्ता समझे और श्रेयस्कर मार्ग का सदैव अवलंबन करें, फिर डरने का कोई कारण नहीं होता ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकर-
हस्यदीपिकायां रोगारोग्यविज्ञानीयोनाम
पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

षष्ठोऽध्यायः

अथातो व्यायामविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) तुलभ्रमगुणाकर्षधनुराकर्षणादिभिः ।
आयामो विविधोऽङ्गानां व्यायाम इति कीर्तितः ॥ (धनुर्वेद)

व्यायामव्याख्या—तुल (मुद्गर तथा उसी प्रकार के घुमाये जानेवाले भारी आयुधों) को घुमाना, रस्सा खींचना, धनुष्य का आकर्षण करना इत्यादि (विविध कर्मों) से शरीर के विविध अङ्गों का जो आयाम होता है उसे व्यायाम कहते हैं ।

वक्तव्य—व्यायाम—विविधानामङ्गानामायामो व्यायामः । यह व्यायाम शब्द की व्युत्पत्ति है तथा उसकी परिभाषा भी है, जो व्यायाम के कर्म को बहुत ही स्पष्ट और सरल कर देती है । महाभारत के 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' इस श्लोकार्ध में जैसे पाप पुण्य के सम्बन्ध का सारसर्वस्व प्रदर्शित किया गया है, वैसे धनुर्वेद के उपर्युक्त उत्तर श्लोकार्ध में व्यायाम के सम्बन्ध का सारसर्वस्व प्रदर्शित किया है ।

(२) शरीरायासजनकं कर्म व्यायामसंज्ञितम् । (सुश्रुत)

शरीर में आयास उत्पन्न करनेवाले कर्म व्यायाम कहलाते हैं ॥

वक्तव्य—शरीर—संपूर्ण शरीर, शरीर के संपूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग, अवयव, आशय, एकाध अङ्ग नहीं । आयास-परिश्रम, श्रान्ति । व्यायाम-शारीरिक परिश्रम ।

यह श्लोकार्ध भी धनुर्वेद के उपर्युक्त श्लोकार्ध के समान व्यायाम की दृष्टि से सारसर्वस्व है, अन्तर केवल इतना ही है कि धनुर्वेद के श्लोकार्ध में व्यायाम कहने के लिए शारीरिक कर्मों का स्वरूप कैसा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होना चाहिए यह बतलाया है और इस श्लोकार्ध में व्यायाम कहने के लिए वे कर्म कबतक करने चाहिएँ इसकी मर्यादा बतलायी है।

(३) व्यायामः स्थैर्यकराणाम्। (चरक)

व्यायामगुण—व्यायाम शरीरस्थैर्य करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ है।

वक्तव्य—स्थैर्यकर—शरीर को दृढ़, कठिन तथा चिरजीवी बनानेवाला। इस श्लोकार्ध में व्यायाम करने का जो फल बतलाया है वह केवल उपर्युक्त स्वरूप का और उपर्युक्त मर्यादातक व्यायाम करनेवालों को मिलता है, दूसरों को नहीं। व्यवहार में व्यायाम अधिकतर पेहलवानी पेशा तथा प्रतियोगिताओं (Competitions) के लिए होता है जिसमें एक ही कर्म या खेल बहुत अधिक तथा प्रतिदिन किया जाता है। इससे उन कर्मों या खेलों में नैपुण्य भले ही प्राप्त हो, शरीर दृढ़ और चिरजीवी स्वस्थ होगा यह नहीं कह सकते। अतः शरीर दृढ़ और दीर्घजीवी होने के लिए व्यायाम कैसे करना चाहिए इसका मार्ग दर्शन नीचे के वचनों में किया जाता है।

(४) शनैरर्थः, शनैः पन्थाः, शनैः पर्वतमारुहेत्।
शनैर्विद्या च धर्मश्च, व्यायामश्च शनैः शनैः॥

(चाणक्यनीतिशास्त्र)

व्यायामसेवनविधि—धीरे-धीरे धनोपभोग लेना चाहिए, धीरे-धीरे मार्गगमन करना चाहिए, धीरे-धीरे पहाड़ों पर चढ़ना चाहिए, धीरे-धीरे विद्या और धर्म का साधन करना चाहिए और धीरे-धीरे व्यायाम करना चाहिए।

वक्तव्य—अर्थ—'शनैः शनैश्च भोक्तव्यं' इस श्लोक को देखिए। शनैः पन्थाः—शनैरध्वसु वर्तेत योजनान्न परं व्रजेत्॥ शनैर्विद्या—क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थंच साधयेत्॥ शनैर्धर्मः—धर्मं संचिनुयाच्छनैः॥ व्यायामश्च शनैः शनैः—जो भी और जितना भी व्यायाम करना हो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

धीरे धीरे करें; जिससे करते समय न हाँफनी मालूम हो, न करने के पश्चात् थकावट तथा दण्ड बैठक इत्यादि दैनिक व्यायाम के प्रकारों में जो वृद्धि करना हो वह भी प्रतिदिन थोड़ी थोड़ी करके करें। व्यायाम से शरीर की वृद्धि जरूर होती है, परन्तु वह व्यायाम बहुत तेजी से और बहुत जल्दी बढ़ाने से नहीं होती। Rome was not built in a day इस कहावत के अनुसार आप व्यायाम चाहे जितना करे, शरीर एक दिन में नहीं बनता है।

(५) स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम्।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः॥

(शिशुपालवध)

राजाकी दृष्टि से—शक्ति के अनुसार उद्योग करने में शमवान् राजाओं की (राज्य संपदा की) वृद्धि होती है। शक्ति से अधिक उद्योग राज्यसंपदा के क्षय का मूल कारण होता है।

वक्तव्य—शमवताम्—कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनं शमः। कौ० अर्थशास्त्र। कार्यफलों का अबाधित उपभोग लेने योग्य शान्तता की स्थिति। इस प्रकार की शान्तता की जिसके राज्य की स्थिति है ऐसे राजाओं की। अङ्गिनाम्—अङ्ग अस्त्यर्थे इनि। जिनको अङ्ग है ऐसे राजाओं की। राजाओं के सात अङ्ग होते हैं और सप्तांग को राज्य कहते हैं—स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्यांगानि। अमरकोश॥ परस्परोपकारीदं सप्तांगं राज्यमुच्यते। कामंदकीनीतिसार। व्यायामे—कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः। कौ० अर्थशास्त्र। प्रारम्भ किये हुए कार्यों का फल प्राप्त करने के लिए किया जानेवाला उद्योग प्रयत्न या व्यापार। यह प्रयत्न षड्गुण होता है—संधिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। षड्गुणाः। अमरकोश। उसको करने में। शक्त्या—प्रभाव, मन्त्र, उत्साह इस प्रकार त्रयात्मक शक्ति होती है। उसके उचित बलके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अनुसार–राज्यं नाम शक्तित्रयायत्तम् । शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुगृहीताः कृत्येषु क्रमन्ते । मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थानाम् । प्रभावेण प्रारम्भः । उत्साहेन निर्वहणम् ।। दशकुमारचरित ।। वृद्धिः—राज्यसंपदा की वृद्धि । अयथाबलम्—शक्त्यतिक्रमेण, आत्मशक्तिमविचार्य, अतिमात्रं सेवितम्, साहसिकम् । आरम्भः—षड्गुणात्मक वृद्धि करने का प्रारम्भ या प्रयास । क्षय संपदः—सप्तांग राज्य वृद्धि की विपरीत अवस्था दर्शाने के लिए यह शब्द प्रयोग किया गया है, अर्थात् राज्यवृद्धि रूप संपदा का क्षय ।

व्यायाम की दृष्टि से—वस्तुतः शारीरिक शक्ति के अनुसार व्यायाम करने में प्रसन्नवृत्ति (विचारी) मनुष्यों की स्वास्थ्यसंपदा बढ़ती है । (इसके विपरीत) शक्ति से बहुत किया हुआ व्यायाम स्वास्थ्यसंपदा के क्षय का मूल हेतु होता है ।

वक्तव्य—शमवताम्—शान्तवृत्ति, प्रसन्नचित्त, विचारी—शमथस्तु शमः शान्तिः । अमरकोष ।। शमश्चित्तप्रशान्तता ।। अङ्गिनाम्—षडंगयुक्तमनुष्यों के—शिरोऽन्तराधिर्द्वौ बाहू सक्थिनी च समासतः । षडंगमङ्गम् । अष्टांगहृदय । व्यायामः—दण्ड बैठक इत्यादि । शक्त्या-यथाबलम् । शक्त्या व्यायामे·निम्न श्लोकार्ध के अनुसार 'यथाबलमारम्भः । आरम्भः—व्यायाम, परिश्रम । क्षयसंपदः—संपदः क्षयः क्षयसंपत्, तस्याः, स्वास्थ्यसंपदा की हानि का, शरीर की कृशता या क्षीणता का ।

(६) अयथाबलमारम्भः प्राणोपरोधिनाम् । (चरक)

शक्ति से अधिक किया हुआ कोई भी कर्म आयुष्य और शक्ति इनको बाधक होनेवालों में सर्वश्रेष्ठ होता है ।

वक्तव्य—आयुर्वेद का यह एक शाश्वत सिद्धान्त है कि जिन भावों की प्रशस्तता या सम्पत्ति मनुष्य को स्वास्थ्यसंपन्न बनाती है उन्हीं भावों की अप्रशस्तता या विपत्ति मनुष्य को व्याधिसंपन्न भी कर देती है—येषामेव हि भावानां संपत् सञ्जनयेन्नरम् । तेषामेव विपद् व्याधीन्

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विविधान् समुदीरयेत् ॥ चरक ॥ अतः यथाबल व्यायाम करने से जैसे शरीर दृढ, स्थिर, स्वास्थ्यसंपन्न होकर उसपर 'व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव' यह स्थिति होती है, वैसे अयथाबल व्यायाम करने से कृश और क्षीण हुए शरीर पर छोटे मोटे अनेक रोग आक्रमण करते हैं—क्षयतृष्णारुचिच्छर्दिरक्तपित्तभ्रमक्लमाः। कासशोषज्वरश्वासा अतिव्यायामसंभवाः ॥ सुश्रुत ॥ शक्ति से अधिक व्यायाम का परिणाम भ्रमक्लम और श्वासकासादि तक ही मर्यादित नहीं रहता, किन्तु वह इन सब रोगों का राजा जो राजयक्ष्मा उसको भी शरीर में प्रवेश देता है। अधिक विवरण के लिए रोगनिदान में 'अयथाबलमारम्भः' का वक्तव्य देखिए।

(७) मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥

(शाकुन्तल)

मृगया—चरबी का नाश होने से तोंद घटकर शरीर हलका और उद्योग क्षम बनता है, जिन प्राणियों की शिकार की जाती है उनके चित्तपर भय और क्रोध का प्रभाव होता है वह भी देखने को मिलता है, चलायमान लक्ष्य पर जब बाण वेध करने में सफल होते हैं तब धनुर्धारियों के लिए वह एक आत्मगौरव की बात होती है; तात्पर्य, मृगया को व्यर्थ में व्यसन कहते हैं, इससे अधिक मनोविनोद कहाँ से प्राप्त होगा।

वक्तव्य—उत्थानयोग्य—उद्यम, उद्योग, पौरुष, युद्ध इत्यादि के लिए योग्य—उत्थानमुद्यमेतन्त्रे पौरूषेरणे। मेदिनी ॥ सत्वानामपि—सत्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम्। दशकुमारचरित ॥ व्यसन—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषप्रसंगः पीडा वा व्यसनम् । व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ कौ० अर्थशास्त्र । व्यसनविज्ञानीय अध्याय भी देखें ।

(८) खिन्नं विनोदयति मानसमातनोति
स्थैर्यं चले वपुषि लाघवमादधाति ।
उत्साहबुद्धिजननीं रणकर्मयोग्यां
राज्ञां मुधैव मृगयां व्यसनं वदन्ति ॥ (चण्डकौशिक)

मृगया खिन्न के लिए मनोविनोद है, मन (के क्षेत्र या क्षितिज) को विस्तृत करती है, दुर्बल शरीर में बल और लाघव उत्पन्न करती है; इस प्रकार उत्साह और बुद्धि बढानेवाली, युद्ध कर्म का सम्यक् अभ्यास दिलानेवाली राजाओं की मृगया को व्यर्थ में व्यसन कहते हैं ।

वक्तव्य—रणकर्म योग्या-युद्धकर्म का सम्यक् कर्माभ्यास—सम्यक् कर्मणः सम्यग्योगाय तत्सदृशकर्माभ्यासो योगः, तेन योगाय प्रभवतीति योग्या । (भानुमती व्याख्या) पृष्ठ ४४ पर 'आदित्यस्य नमस्कारं' श्लोक का वक्तव्य देखें ।

(९) देव यथा मृगया ह्यौपकारिकी न तथान्यत् । अत्र हि व्यायामोत्कर्षादापत्स्वपकर्ता दीर्घाध्वलङ्घनक्षमो जङ्घाजवः । कफापचयादारोग्यैकमूलाशयाग्निदीप्तिः । मेदापकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यलाघवादीनि । शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम् । (दशकुमारचरित)

हे राजन् ! मृगया के समान दूसरा कोई खेल उपकारक नहीं होता है । इसमें व्यायामोत्कर्ष से टाँगों का वेग (चाहे पैदल हो, चाहे घोड़े पर हो) लम्बा मार्ग तय करने में क्षम बनता है और (प्राणात्यय

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जैसी) आपत्तियों में उपकारक सिद्ध होता है। कफ का क्षय होने से इसमें आरोग्य का मूल जो जठराग्नि वह प्रदीप्त होती है। चरबी कम होने से अंगप्रत्यंग मजबूत, कड़े और लघु होते हैं। शीत, उष्ण, वात, वर्षा, क्षुधा और तृषा इनको सहन करने की शक्ति आती है।

वक्तव्य—मृगया एक अच्छा शारीरिक तथा मानसिक व्यायाम है और उसकी विशेषता 'रणकर्मयोग्या' में। इसलिए वह क्षत्रियों तथा राजाओं के लिए एक आवश्यक कर्म है। 'पानमक्षास्तथा नार्यः' श्लोक देखें।

(१०) हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम् ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

आसन—हठयोग का प्रथम अंग होने से आसन (के गुण और उनकी विधि) को प्रथम कहते हैं। आसन (शरीर तथा मन में) स्थैर्य, आरोग्य, और अंगलाघव उत्पन्न करते हैं।

वक्तव्य—प्रथमाङ्ग—आसनं प्राणसंयामः प्रत्याहारोऽथ धारणा। ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥ (गोरक्षशतक) इसके अतिरिक्त हठयोग के अभ्यास क्रम में भी आसन का अभ्यास प्रथम में ही होता है—आसनं कुम्भकं चित्रं मुद्राख्यकरणं तथा। अथ नादानुसंधानमभ्यासानुक्रमो हठे ॥ (हठयोगप्रदीपिका) आसन–शरीर और उसके षडंगों की विशिष्ट स्थिति को आसन कहते हैं। प्रत्येक योनि के जीव का आसन भिन्न होने से और शास्त्र में जीवयोनि की संख्या ८४ लक्ष होने से आसनों की कुल संख्या ८४ लक्ष होती है। शिव जी ने प्रत्येक लक्ष योनि के आसनों में से एक एक आसन छाँटकर अभ्यास के लिए उनकी संख्या ८४ निर्धारित की ऐसा उनका इतिहास दिया है—आसनानि तु तावन्ति यावत्यो जीवयोनयः। चतुराशीतिलक्षाणा-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मेकमेकमुदाहृतम् । ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम् (गोरक्ष-शतक) इन आसनों के शरीरसंवर्धनात्मक (Cultural) और ध्यान-धारणात्मक (Meditative) करके दो प्रकार होते हैं। शरीर संवर्धनात्मक आसन बैठने के नहीं होते। उनकी अन्तिम स्थिति में पहुँचने के लिए पृष्ठवंश तथा शरीर के षडंगों को मोड़ने की तथा तानने की आवश्यकता होती। इसलिए उनको सिद्ध करने में तथा सिद्ध करने पर दीर्घकाल तक धारण करने में बहुत कष्ट होते हैं। शीर्षासन, सर्वाङ्गासन, भुजंगासन, मयूरासन, पश्चिमोत्तासन, धनुरासन, हलासन, शलभासन इसके सर्वपरिचित उदाहरण हैं। ध्यानधारणात्मक आसन दीर्घकाल तक ध्यानधारण करने के लिए होने से वे सरल सुखप्रद हुआ करते हैं और अल्प अभ्यास से दीर्घ कालतक धारण किये जा सकते हैं। सिद्धासन और स्वस्तिकासन प्रमुख ध्यानधारणात्मक आसन हैं। निम्न वचनों में इसी का ही निर्देश है—स्थिरसुखमासनम्। (योगसूत्र)। सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्। आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम्। (तेजोबिन्दूपनिषद्)। 'यमेष्विव मिताहारम्' श्लोक देखिए। व्यायाम की दृष्टि से शरीरसंवर्धनात्मक आसन ही उपयुक्त होते हैं। अङ्गलाघव-मलखांब के समान ये आसन अङ्गलाघव उत्पन्न करनेवाले हैं। परन्तु इसके लिए प्रतिदिन एक आसन दीर्घ काल तक करने की अपेक्षा अनेक आसन थोड़ी-थोड़ी देर तक करना, प्रतिदिन कुछ नये नये आसनों को बदलते रहना और इस प्रकार परिवर्तन के साथ अधिक से अधिक आसनों को करने का अभ्यास रखना श्रेयस्कर है।

(११) आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मुक्तिमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ (मत्स्यपुराण)

सूर्यनमस्कार—सूर्यदेवता से आरोग्य की, अग्नि से धन की, शंकरजी से ज्ञान की, और विष्णु से मोक्ष की इच्छा करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१२) आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥

जो प्रतिदिन (प्रातःकाल) सूर्यनमस्कार (का व्यायाम) करते हैं उनमें (इस जन्म में ही नहीं, आनेवाले) अनेक जन्मजन्मान्तरों में भी दारिद्र्य उत्पन्न नहीं होता।

वक्तव्य—दारिद्र्यम्-शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की दरिद्रता। आदित्य ऊर्जा (energy), तेज, ओज, आरोग्य की स्रोत है और इन्हीं की प्राप्ति के लिए भगवान् सूर्यनारायण की उपासना की जाती है। इसलिए जो सूर्य नमस्कार का व्यायाम करते हैं वे आरोग्य के दारिद्र्य से कदापि पीड़ित नहीं होते। आसन और सूर्य नमस्कार वैद्यकीय दृष्ट्या आदर्श व्यायाम है। आसन योग का अङ्ग होने से उसको 'यौगिक व्यायाम' कह सकते हैं। सूर्यनमस्कार में व्यायाम के अतिरिक्त भगवान् सूर्य की आराधना, पूजा, नामस्मरण, तीर्थसेवन इत्यादि दैवी कर्म होने से उसको 'दैवीव्यायाम' कह सकते हैं। अधिकसंख्य व्यायाम केवल शरीरबलवर्धक होते हैं उनको 'शारीरिक व्यायाम' कह सकते हैं। केवल शारीरिक व्यायामों की अपेक्षा यौगिक तथा दैवी व्यायाम अधिक श्रेयस्कर हुआ करते हैं, क्योंकि उनमें शरीर के साथ मन के भी सहयोग की आवश्यकता होती हैं।

इन प्रकारों के अतिरिक्त वैयक्तिक और सांघिक करके भी व्यायाम के दो प्रकार होते हैं। आसन, मलखांब, सूर्यनमस्कार, दण्ड बैठक ये वैयक्तिक व्यायाम के और कुश्ती, खेलों की प्रतियोगिताएं तथा शर्तें (Competitions and races), फुटबाल, हाकी, कबड्डी इत्यादि सांघिक व्यायाम के उदाहरण हैं। वैयक्तिक व्यायाम मनुष्य अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार कर सकता है और करता भी है जिससे व्यायाम का अतियोग और तज्जन्य विविध रोग (पृष्ठ ३९ पर 'अयथाबलमारम्भ' का वक्तव्य देखिए) होने की संभावना बहुत कम हुआ करती हैं। इसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विपरीत सांघिक व्यायामों में मनुष्य अपनी इच्छा तथा शक्ति के अनुसार व्यायाम करने में असमर्थ होने के कारण अतियोग तथा तज्जन्य विविध रोग उत्पन्न होने की संभावना बराबर बनी रहती है। यह दोष होते हुए भी सांघिक में एक में एक बड़ाभारी गुण होता है और वह है 'रणकर्मयोग्या' जिसका उल्लेख (पृष्ठ ४०) मृगया में किया गया है और उसका अर्थ है प्रतिस्पर्धी, शत्रु आदि के साथ टक्कर देने की मनोवृत्ति, उसमें जय पाने की महत्त्वाकाङ्क्षा और तदनुरूप कर्माभ्यास। ऐहिक जीवन एक बड़ा भारी द्वन्द्व या कलह है। इस जीवनकलह (Struggle for existence) में केवल स्वस्थ और सबल होने से काम नहीं चलता, रणकर्मयोग्यता भी होने की आवश्यकता होती है। 'बलवानपि निस्तेज' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें। अतः वैयक्तिक व्यायाम करते हुए भी मर्यादा में कुछ सांघिक या प्रतियोगिता व्यायाम जरूर करें। ये व्यायाम भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (दौड़, तैराक आदि) करके दो प्रकार के होते हैं। जीवनकलह में बल के साथ हिम्मत बढ़ने की दृष्टि से प्रत्यक्षप्रतियोगिता के व्यायाम अधिक श्रेयस्कर होते हैं। जैसे, मल्लयुद्ध, मुष्टियुद्ध, कबड्डी, मृगया इत्यादि।

(१३) परिश्रमो मिताहारो भूगतावश्विनीसुतौ।

तावनादृत्य नैवाहं वैद्यमन्यं समाश्रये॥

व्यायाम भूगत अश्विनीकुमार—परिश्रम और मिताहार ये दोनों इह लोक के अश्विनीकुमार हैं; इनका अनादर करके मैं दूसरे किसी वैद्य का आश्रय न करूँगा।

वक्तव्य—अश्विनीसुतौ—'यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नं' श्लोक (पृष्ठ १७) देखिए।

मिताहार :—(१) अपने लिए साधारणतया अन्न की उचित मात्रा निर्धारित करके प्रतिदिन उतनी ही मात्रा का सेवन करना अर्थात् नियमित मात्राहार। (२) उचित मात्रा से भी कुछ कम अर्थात् अल्पमात्राहार—प्रोक्तमेवमिताहारस्त्वन्येषामल्पभोजनम्। वसिष्ठ संहिता॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

'यद्वा आत्मसंमितमन्नं' इस वचन को तथा उसके पश्चात् के वचनों को और उनके वक्तव्यों को देखिए। इस वचन का तात्पर्य यह है कि यदि मनुष्य आलसी न रहे और भोजन में अतियोग न करें तो वह बीमार नहीं होगा और यदि कोई मनुष्य बीमार हुआ तो वह यदि परिश्रम और मिताहार या स्वल्पाहार करें तो उसे वैद्य डाक्टरों का मुखापेक्षी होने की प्रायः जरूरत न होगी ॥

(१४) चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥
(ऐतरेयब्राह्मण)

परिश्रम करने पर मनुष्य मधु को, परिश्रम करने पर ही मधुर मधुर उदुम्बर फल को प्राप्त करता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, जो सदैव चलने का परिश्रम करने पर भी थकता नहीं।

वक्तव्य—इस वचन का तात्पर्य यह है कि निरन्तर परिश्रम करते रहने से ही मनुष्य जीवन भर परिश्रम करने योग्य बना रहता है तथा जीवन का आनन्द भोग सकता है।

(१५) कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन् ॥
चरैवेति । (ऐतरेय ब्राह्मण) ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये व्यायामविज्ञानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ।



व्यायाम से कृत युग—निद्रा लेनेवाला कलियुगी, निद्रा त्यागनेवाला द्वापारयुगी, खड़ा रहनेवाला त्रेतायुगी और चलने फिरने वाला कृतयुगी है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि निद्रालु, आलसी परिश्रम न करनेवाला मनुष्य कलि के समान शरीर में दुर्बल और अस्वस्थ ('श्रुतिः शिथिलतां गता' श्लोक देखिए) होता है और परिश्रमी मनुष्य कृतयुगी के समान नीरोग और दीर्घायु होता है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं और प्रजा के गुणों की दृष्टि से ये उत्तरोत्तर निकृष्ट होते हैं ऐसा माना जाता है। अर्थात् कृतयुग के लोग सर्वश्रेष्ठ होते हैं—अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते, त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥ (चरक)। निरामयो ह्यरोगश्च यथा कृतयुगे तथा (रामायण) मनुष्य को अपना प्रपंच चलाने के लिए तथा जीविका कमाने के लिए कूटना, पीसना, कपड़े धोना, बर्तन मांजना, [लकड़ी चीरना, जमीन खोदना, बोझ उठाना तथा ढोना इत्यादि विविध स्वरूप के शारीरिक परिश्रम करने पड़ते हैं। व्यावहारिक दृष्टया ये परिश्रम यद्यपि व्यायाम नहीं कहलाते हैं तथापि शास्त्रीय दृष्ट्या ये व्यायाम ही होते हैं। पृष्ठ ३५ पर 'आयामो विविधोङ्गानां' श्लोक देखिए। अतः जो लोग अपनी इच्छा से ये परिश्रम करते हैं अथवा जिनको अनिच्छा से ये परिश्रम करने पड़ते हैं उन्हें व्यायामशाला में जाकर व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं होती। दरिद्रों तथा श्रमजीवियों का इसके लिए उत्तम उदाहरण है। 'शक्ति करोति संचारे' तथा 'के वा भुवि' वचनों को देखिए। व्यायामशाला के व्यायामों की आवश्यकता धनियों और बैठे व्यवसाय करनेवालों के लिए होती है। 'द्विजो हि वेदाध्ययनव्रतादिक' श्लोक देखिए।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायां व्यायामविज्ञानी-
योनामषष्ठोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सप्तमोऽध्यायः

अथातः प्राणायामविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रियार्थाना-मभिवोढा, आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतः ॥ (चरक)

वायु शरीररूपी यन्त्र का धारण करनेवाला, शरीर की छोटी बड़ी (सब प्रकार की) चेष्टाओं का प्रवर्तक, (अनभीष्ट विषयों को ओर जानेवाले) मन का नियन्त्रक और (अभीष्ट विषयों की ओर जानेवाले मन का) प्रेरक, सब इन्द्रियों का भी प्रेरक, सब इन्द्रियार्थों को मनकी ओर ले जानेवाला और आयु की निरन्तरता का साक्षी होता है ।

(२) वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ॥ (चरक)

वायु जीवन है, वायु बल है, वायु शरीरधारक है, वायु यह सर्व विश्व है । और वायु ही सबका प्रभु कहा गया है ।

(३) वायुरेव महाभूतं वदन्तु निखिला जनाः ।
आयुरेवैष भूतानामिति मन्यामहे वयम् ॥ (जगन्नाथपंडित)

वायु को लोग (पंचमहाभूतों में से एक) महाभूत भले ही कहें, हम तो उसको सब भूतों (प्राणियों) के प्राण ही समझते हैं ।

(४) यावद् वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते ।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥
(हठयोगप्रदी०)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जब तक शरीर में वायु है तबतक जीवन है। उसका निकल जाना मृत्यु है, इसलिए उसका नियन्त्रण (प्राणायाम का अभ्यास) करें।

(५) शरीरं हि विना वायुः समतां याति दारुभिः ।
वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत् ॥ (रामायण)

वायु के बिना शरीर लकड़ियों के समान (निर्जीव अचेतन) हो जाता है। इसलिए वायु ही शरीर का प्राण है, स्वास्थ्य है, संक्षेप में सब कुछ है।

(६) प्राणमाहुर्मातरिश्विनं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ (अथर्ववेद)

प्राण को मातरिश्वा कहते हैं और वायु को प्राण ही कहते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान सर्व प्राण में ही अधिष्ठित है।

(७) यावदस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः ॥
(कौषीतकी उप०)

जब तक शरीर में प्राण होता है तब तक जीवन होता है।

(८) येन जीवति जीवोऽयं निर्जीवो यं विना भवेत् ।
स प्राण इति विख्यातो वायुः क्षेत्रचरः परः ॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

जिससे (शरीरस्थ) यह जीव जीवित रहता है, जिसके बिना (शरीर) निर्जीव हो जाता है वह प्राणवायु कहलाता है। शरीर में विचरण करने वालों में यह वायु सर्वश्रेष्ठ है।

वक्तव्य—प्राणवायु—उपर्युक्त वचनों में प्राण या प्राणवायु का जो वर्णन किया गया है उससे व्यावहारिक दृष्ट्या यह वायु आक्सिजन (oxygen) है यह स्पष्ट होगा। शार्ङ्गधरसंहिता में उसको 'विष्णुपदामृत'

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

या 'अम्बरपीयूष' कहा है—नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् । कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥ पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः । प्रीणयन् देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम् ॥

(९) सुषुम्नया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति ।
जीवः प्राणसमारूढो रज्ज्वां कोल्हाटिको यथा ॥
(शार्ङ्गधर दीपिका)

जैसे कोल्हाटी रस्सी से ऊपर चढ़ता है और नीचे उतरता है (और अपने खेलकूद करता है) वैसे प्राणवायुयुक्त जीव सुषुम्ना से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक चढ़ता है और वहाँ से नीचे उतरता है (और इस प्रकार अपने जीवन व्यापार करता है) ।

वक्तव्य—इस वचन में यह बतलाया है कि प्राणवायु शरीर को केवल जीवित ही नहीं रखता, वह जीव का अपने सर्व व्यापार करने में भी आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त इसमें शरीरकार्यविज्ञान की दृष्टि से (Physiologically), संवेदी (Sensory) और प्रेरक (Motor) कार्य कैसे होते हैं यह भी बतलाया है।

सुषुम्ना—पृष्ठवंश या मेरुदण्ड (Spinal column) के विवर (Spinal canal) में स्थित यह नाड़ीतन्तुओं की बनी एक रज्जु (Spinal cord) है। दोहरे चौहरे लोहमार्गों (Railway lines) के समान इसमें नाडी तन्तुओं (Nerve fibers) से बने अनेक मार्ग या पथ (Tracts) होते हैं। इनमें जो पथ ऊपर मस्तिष्क की ओर जानेवाले होते हैं उन्हें संवेदी पथ कहते हैं और जो मस्तिष्क से नीचे की ओर जानेवाले होते हैं उन्हें 'प्रेरक' पथ कहते हैं—मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा। धुस्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः कन्दमध्या शिरःस्था; वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलंती ॥ (षट्चक्र-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निरुपण)। या मुण्डाधारदण्डा(Spinal column|)न्तरविवर (canal) गता। (त्रिपुरासारसमुच्चय)॥ इडा वामे स्थिता नाडी दक्षिणे पिङ्गला मता। तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्ना वंशमाश्रिता॥ षट्चक्रविवृति॥ वंश–पृष्ठवंश। कोल्हाटिक–सर्कसमें रस्सीपर काम करनेवाले आजकल के जैसे खिलाड़ीहोते हैं वैसे खुली सड़क में रस्सीपर खेलकूद दिखाकर अपनी उपजीविका करनेवाले प्राचीन कालके जंगली या आदिवासी लोग। सुषुम्ना के कार्य को प्रदर्शित करने के लिए कोल्हाटिक का यह दृष्टान्त बहुत ही यथार्थ तथा हृदयंगम है।

(१०) प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि जीवन्ति, प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तैत्तिरीयोपनिषद्।

प्राण से ही जीवसृष्टि उत्पन्न होती है, (उत्पन्न होनेपर) प्राणसे ही जीवित रहती है और (नाश के समय) प्राणमें ही जाकर विलीन होती है।

(११) प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्च ये।
प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते॥ (तैत्तिरीय)

देवता, मनुष्य तथा पशुपक्षी प्राण के अनुगामी होकर प्राणन (जीवन) किया करते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' (आयु प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ) कहलाता है।

(१२) सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते।
प्राणो हि भूतानामायुः तस्मात्सर्वायुषमुच्यते॥ (तैत्तिरीय)

जो प्राण की ब्रह्मरूप से उपासना करते हैं वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' कहलाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१३) आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवी मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ (अथर्ववेद)

प्राणायामलाभ—हे प्राण ! जब तक तुम प्रेरणा करते (हुए शरीर-में रहते) हो तब तक आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियाँ सफल होती हैं ।

(१४) ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः ।
अभूवन्नन्तकभयात्तस्मात्पवनमभ्यसेत् ॥ (हठयोगप्रदीपिका)

ब्रह्मादि देवता भी मृत्यु के भय से पवनाभ्यास (प्राणायाम) में तत्पर हुए; इसलिए प्राणायाम का अभ्यास करें ।

(१५) दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ (मनु)

जैसे अग्नि में धौंके जाने वाले धातुओं के मल नष्ट होते हैं, वैसे प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट होते हैं ।

(१६) यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद् वश्यः शनैःशनैः ।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

जैसे सिंह, हाथी, बाघ धीरे-धीरे वशमें होते हैं (शीघ्र नहीं), वैसे धीरे-धीरे अभ्यास करने पर प्राण (वशमें होता है), शीघ्रता करने पर वह साधक का नाश करता है ।

(१७) प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विधियुक्त किये हुए प्राणायाम से सर्व रोगों का नाश होता है और अविधिवत् किये हुए प्राणायाम से सर्व प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ।।

(१८) प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति ।
आचार्याणां तु केषांचिदन्यत्कर्म न संमतम् ।।

(हठयोगप्रदीपिका)

केवल प्राणायाम करने से शरीरगत सब दोष शुष्क (होकर नष्ट) हो जाते हैं; इसलिए कुछ आचार्यों को (प्राणायाम के अतिरिक्त) अन्य कर्म करना संमत नहीं है ।

(१९) मूर्च्छितो हरते व्याधीन् , मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां धत्ते रसो वायुश्च पार्वति ।।

(हठयोगप्रदीपिका)

हे पार्वती ! मूर्च्छित वायु और पारद रोगों का नाश करते हैं, मृत वायु और पारद पुनर्जीवन देते हैं तथा बद्ध वायु और पारद आकाश-गमन सिद्धि प्रदान करते हैं ।

वक्तव्य—मूर्च्छित-औषधियों से जिसकी चञ्चलता नष्ट की गयी है ऐसा रस और कुम्भक के अन्त में रेचक से निवृत्त वायु । मृत—भस्म हुआ पारद और ब्रह्मरन्ध्र में लीन वायु ।

(२०) पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते ।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते ।। (हठयोगप्रदीपिका)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यक-
सुभाषितसाहित्ये प्राणायामविज्ञानीयो
नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जिससे वायु का निग्रह होता है उससे मन का भी निग्रह होता है और जिससे मन का निग्रह होता है उससे वायु का भी निग्रह होता है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायां प्राणायामविज्ञानीयोनाम
सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः स्नानविधिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न युज्यते ।
तस्मात्कार्यविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ॥

(भविष्यपुराण)

स्नानमाहात्म्य—(शरीर की) निर्मलता और (मन की) भावशुद्धि स्नान के विना प्राप्त नहीं होती; अतः (शारीरिक तथा मानसिक) कार्य-विशुद्धि के लिए सर्वप्रथम स्नान करना उचित होता है ।

(२) स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः स्मृतिश्रुत्युदिता नृणाम् ।
तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम् ॥

(याज्ञवल्क्य)

मनुष्यों के श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त सर्वधर्मकर्मस्नानमूलक (स्नान करने के पश्चात) होते हैं । अतः नित्य स्नान किया जाय । वह शोभा, पुष्टि तथा स्वास्थ्य बढ़ानेवाला होता है ।

(३) मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥ (याज्ञवल्क्य)

सप्तविधस्नान—मान्त्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण, और मानस करके क्रमसे सात (प्रकार के) स्नान होते हैं ।

(४) आपोहिष्ठादिभिर्मान्त्रं, मृदालम्भं च पार्थिवम् ।
आग्नेयं भस्मना स्नानं, वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।
वारुणं चावगाहं तु, मानसं ह्यात्मचिन्तनम् ॥
(याज्ञवल्क्य)

आपोहिष्ठादि (वेदमन्त्र) से (जल ले कर अंगों पर छींटा जावे वह) 'मान्त्र'; (शरीरपर) मिट्टी मलने से 'भौम'; भस्म मलने से 'आग्नेय'; गौके खुरसे उड़नेवाली धूलिके कण शरीर पर उड़ने से 'वायव्य'; धूप के साथ गिरने वाली वर्षा से 'दिव्य'; जलावगाहन से 'वारुण' और आत्मचिन्तन से 'मानस' स्नान होता है।

(६) सर्वेषामेव स्नानानां विशिष्टं तत्र वारुणम् ॥ (महाभारत)

वारुणस्नानश्रेष्ठता—सब प्रकारके स्नानों में जलस्नान विशेष महत्व का है।

(७) नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥ (मनु)

स्नान के स्थान—नदी, देवतातीर्थ, तालाब, सर (नदीसम परन्तु नदी से कुछ छोटा जलप्रवाह) गर्त, निर्झर इनमें सदैव स्नान करें।

वक्तव्य—स्नान सदैव ठण्डे पानी से और खुले स्थान में करें। इससे सर्दी लगने का (Exposure) डर नहीं रहता। स्वावलंबन, स्वास्थ्य-रक्षण तथा शरीर में शीतादि के लिए सहिष्णुता उत्पन्न होने की दृष्टि से सदैव ठण्डे पानी से स्नान करना ही श्रेयस्कर है। इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए धर्मशास्त्र में गरम पानी से स्नान करने वालों को कुछ दिन ठण्डे पानी से स्नान करने के लिए कहा है—संक्रान्त्यां भानुवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने। आरोग्यपुत्रमित्रार्थी न स्नायादुष्णवारिणा ॥

(८) सद्योमांसं नवान्नं च बाला स्त्री क्षीरभोजनम् ।
घृतमुष्णोदकस्नानं सद्यः प्राणकराणि षट् ॥ (चाणक्यशतक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उष्णोदकस्नान—ताजा मांस, ताजा भोजन, बाला स्त्री, क्षीर (तथा क्षीर से बने हुए मट्ठा, दही, मक्खन इत्यादि से युक्त) भोजन, घी और गरम जल से स्नान तत्काल शक्तिस्फूर्तिदायक होते हैं।

वक्तव्य—सद्योमांस—हत्या के पश्चात् तुरन्त काममें लाया हुआ मांस। मांस उष्ण प्रदेशों में तथा ग्रीष्मऋतु में जल्दी सड़ने लगता है। इसलिए भारतवर्ष में ताजे मांस का ही सदैव उपयोग करना श्रेयस्कर होता है। ऐसा ही मांस प्राणवर्धक होता है—मांसं वृष्यं च बल्यं च मांसं प्राणविवर्धनम्। काश्यपसंहिता। बासी मांस से अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। अन्नम्—पकाये हुए खाद्य द्रव्य—शस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं, सतुषं धान्यमुच्यते। निस्तुषस्तण्डुलः प्रोक्तः, स्विन्नमन्नमुदाहृतम्। वसिष्ठ। बाला स्त्री—सोलह साल की स्त्री—बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश। योगरत्नाकर। क्षीरभोजनम्—विना गोरसं को रसो भोजनानाम्। उष्णोदक-स्नानम्—गरम पानी का स्नान स्नानगृह जैसे बंद स्थान में ही करना श्रेयस्कर होता है। क्योंकि उसपर हवा का झोका लगने से सर्दी लगने का डर बराबर बना रहता है। अतः बंद स्थान में स्नान करके शरीर अच्छी तरह पोंछकर और कपड़े पहन कर फिर बाहर निकलें। गरमपानी सदैव स्नान के लिए अच्छा नहीं। सिरपर गरमपानी न लिया जाय। सुकुमार प्रकृति, सर्दी कफ से पीडित, शरीर में पीड़ा होने वाले, थकेमांदे इत्यादि के लिए वह श्रेयस्कर होता है।

(९) प्रातःस्नानं, गवां सेवा, आरामः, पुष्पवाटिका।
मातापित्रोश्च शुश्रूषा शास्त्राय च सुखाय च ॥

प्रातःस्नान—प्रातःस्नान, गायों की सेवा, उपवन, पुष्पवाटिका (में काम करना) और माता-पिता की सेवा ये कर्म पुण्यप्रद और स्वास्थ्यप्रद होते हैं।

वक्तव्य—प्रातःस्नान—प्रातःस्नान से स्नान के तो सब लाभ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(पृष्ठ ५८ देखिए) प्राप्त होते ही हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त बड़े तड़के ब्राह्म मुहूर्त में उठने के भी लाभ प्राप्त होते हैं तथा प्रसन्नता और स्फूर्ति अधिक अनुभव होती है—Early to bed and early to rise makes man healthy, wealthy and wise गवां सेवा—गायों के पालन से शरीर स्वास्थ्य के लिए दूध, दही मट्ठा, मक्खन, घी इत्यादि सर्वोत्तम खाद्यद्रव्य प्राप्त होते हैं, गृहस्वच्छता, आराम और पुष्पवाटिका के लिए गोबर (पृष्ठ ६४ पर 'लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं' श्लोक देखिए) जैसा सर्वोत्तम खाद मिलता है, यकृत् तथा पाचन के विकारों के लिए गोमूत्र तथा पंचगव्य प्राप्त होता है, बगीचे में काम करने से खुले वातावरण में व्यायाम होता है और मन को प्रसन्न और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सुगंधी पुष्प तथा शाकफल ताजे मिल जाते हैं।

(१०) शुकवद् भाषणं कुर्याद्, बकवद्ध्यानमाचरेत्।
अजवच्चर्वणं कुर्याद्, गजवत्स्नानमाचरेत्॥

स्नानविधि—तोते के समान (स्पष्ट) भाषण करें; बगुले के समान (बाह्याडंबरयुक्त) ध्यान करें, बकरी के समान (तेजीसे) चर्वण करें और हाथी के समान (मस्ती से) स्नान करें।

वक्तव्य—गजवत् स्नानम्—हाथी स्नान के लिए बहुत तथा गहरा पानी चाहता है—आपातालगभीरे मज्जति नीरे निदाघसंतप्तः। न स्पृशति पल्वलाम्भः पञ्जरशेषोऽपि कुञ्जरः क्वापि॥ गाहन्ते च करेणुभिः सह नदीमारण्यका वारणाः॥ जीवानन्द॥ नदी, जलाशय इत्यादि के ऐसे बहुत गहरे पानी में जाकर बहुत देर शरीरपर सूँड़ से बहुत जोर से पानी के फुहारे छोड़ छोडकर जब तक तृप्ति न हो तब तक हाथी मस्ती से स्नान करता रहता है। इस प्रकार के बहुत पानी से बहुत देर मनःसंतोष होने तक किये हुए स्नान को गजवत् स्नान कह सकते हैं।

संस्कृत साहित्य में गजस्नान का शब्दप्रयोग अस्वच्छ स्नान अतएव व्यर्थ स्नान के लिए होता है—यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः। दूषयत्यात्मनो देहम्॥ रामायण॥ अवशेन्द्रियचित्तानां

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गजस्नानमिव क्रिया । हितोपदेश ॥ रविततो गजः पद्मानागृह्यान् बाधितुं ध्रुवम् । सरो विशति न स्नातुं गजस्नानं हि निष्फलम् ॥ कुवलयानन्द ॥ नदी या तालाब में जब बहुत पानी नहीं होता तब हाथी के जाने से वह पानी गंदा होता है और उसीसे ही उसको स्नान करना पड़ता है और वह भी जब पर्याप्त नहीं होता तब लौटते समय हाथी सड़क की धूलि भी शरीर पर फेंका करता है। इसलिए गजस्नान की निष्फलता उसके स्वभाव की विशेषता का परिणाम मानने की अपेक्षा यथेच्छ स्नान करने को न मिलने का परिणाम मानना ही उचित है।

(११) गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गंधश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥
(महाभारत)

स्नानगुण—नित्यप्रति स्नान करने वाले को बल, रूप, स्वर और वर्ण की शुद्धता, स्पर्श और गंध (की सूक्ष्मता), शरीरस्वच्छता, मुखश्री (की शोभा), तारुण्य और (विवाह में) सुंदर स्त्रियाँ ये दस लाभ होते हैं।

(१२) स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्नविध्वंसनं
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसः ।
रूपद्योतकरं रिपुप्रमथनं कामाग्निसंदीपनं
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः ॥
(चाणक्यराजनीति)

स्नान मन में प्रसन्नताउत्पादक, दुःस्वप्ननाशक, पवित्रता का अधिष्ठान, अपवित्रता का अपहारक, तेजवर्धक, रूपवर्धक, शत्रुनाशक, कामाग्निदीपक, स्त्रियों का मन हरण करने वाला और थकावट दूर करने वाला होता है। स्नान में ये दस गुण होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—दुःस्वप्नविध्वंसन—स्वप्न प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में अधिक दिखाई देते हैं, क्योंकि उस प्रहर में नींद गाढी नहीं होती। यदि इसी प्रहर में याने ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नान किया जाय तो स्वप्नों का आपसे आप नाश हो जाता है। योगरत्नाकर में 'प्रातःस्नान-मलघ्न' ऐसा ही प्रारम्भ है।

(१३) न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि।
न वासोभिः सहाजस्रं, नाविज्ञाते जलाशये॥

(मनु)

स्नाननिषेध—भोजन करने पर, रोग पीडित होनेपर, मध्य रात्रि में, बहुत वस्त्र पहन कर तथा अज्ञात जलाशय में स्नान न करे॥

वक्तव्य—भुक्त्वा—भोजनोत्तर स्नान करने से अन्नपचन ठीक नहीं होता। आतुरः-रुग्णावस्था में स्नान करने से रोग बढ़ता है। वासोभिः सहाजस्रं—बहुत कपड़े पहनकर स्नान करने से स्नान के समय शरीर की सफाई ठीक नहीं कर सकते हैं। नाविज्ञाते जलाशये—अज्ञात जलाशय में स्नान करने से कीचड़ शैवाल में फँस जाने का या मकरादि जलचरों का शिकार बनने का डर रहता है—ग्राहाद्याक्रान्तागाधरूपतया च विशेषेणाज्ञाते जलाशये च॥ मन्वर्थमुक्तावलि॥

(१४) अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्॥
आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः॥

(जाबालस्मृति)

रोगियों के स्नान—स्नान करने में (रोग, दुर्बलता, वृद्धावस्था इत्यादि के कारण) असमर्थता हो तब सिर छोड़कर नीचे स्नान करे अथवा गीले कपड़े से शरीर को पोंछे।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१५) अशक्तो वारुणे स्नाने आग्नेयादि समाचरेत् ।

(मस्करिभाष्य)

जलस्नान करने में असमर्थ होने पर आग्नेयादि अन्य स्नान करें।

वक्तव्य—व्यावहारिक दृष्ट्या जलस्नान सब स्नानों में श्रेष्ठ है। पृष्ठ ५५ पर, 'सर्वेषामेव' श्लोक देखें। जब उसमें असमर्थता हो तब अशिरस्कादि स्वरूप का जलस्नान करें और उसमें भी जब असमर्थता हो तब आग्नेयादि स्नान करें।

(१६) असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ।
मन्त्रस्नानादिकं प्रोक्तं मुनिभिः शौनकादिभिः ॥

(आचारमयूख)

शरीर दुर्बल होने पर समय और अपनी शक्ति का विचार करके (उपर्युक्त स्वरूप का भी स्नान न करके केवल) मन्त्रादि स्नान किया जाय ऐसा शौनक आदि ऋषियों का कहना है।

वक्तव्य—ऊपर जो सात प्रकार के स्नान बतलाये हैं उनमें मानस छोड़कर अन्य बाह्य स्नान हैं। वारुण या जलस्नान विशेषतया शीत-जलस्नान स्वस्थ मनुष्यों के लिए है। मानस स्नान स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों के लिए है। शेष स्नान वारुण या जलस्नान करने की असमर्थता होनेपर मनुष्य अपनी इच्छा और शक्ति के अनुसार सेवन करें।

(१७) स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्यं, धर्ममिन्द्रियनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो, दानं वै भूतरक्षणम् ॥

यथार्थस्नान—स्वधर्म में स्थिरता यह स्थैर्य है, इन्द्रियों का निग्रह धर्म है, मन के दोषों का क्षालन स्नान है और भूतरक्षण दान है।

वक्तव्य—भूतरक्षण—'इह चत्वारि दानानि' इस श्लोक को तथा उसके पश्चात् के अनेक श्लोकों को पृष्ठ २१ पर देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१८) न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिशुद्धमनोमलः ॥

(महाभारत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभा-
षितसाहित्ये स्नानविधिविज्ञानीयो नाम
अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ।



जल से गीले किये हुए शरीर को स्नान नहीं कहते हैं, जो शम-दमादि द्वारा मनोमल से शुद्ध हुआ है वही वस्तुतः स्नात है ।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों का तात्पर्य यह है कि जल के द्वारा शरीर स्वच्छता की आवश्यकता है, परन्तु उससे संतोष न करके वह स्वच्छता पूजापाठ, शमदम, आत्मचिन्तन इत्यादि के द्वारा मन तक पहुँचाना चाहिए ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायां स्नानविधिविज्ञानीयो
नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्तर्बाह्यशौचविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, दया, दम और क्षमा ये सबके लिये धर्मप्राप्ति के साधन होते हैं ।

वक्तव्य—शौच–शरीर और मन की अन्तर्बाह्य स्वच्छता । गीता के तेरहवें अध्याय में शौच क्षेत्रज्ञ के ज्ञान का और सोलहवें अध्यायमें दैवी संपद् का एक लक्षण बतलाया है । सर्वेषां धर्मसाधनम्–ब्राह्मणाद्याचाण्डालान्तम् । मिताक्षरा । मनुष्य का धर्म, जाति, पंथ कोई हो प्रत्येक के लिए धर्म की प्राप्ति का साधन

(२) यो वर्तते शुचित्वेन स वैश्वानर उच्यते ।
यो वर्ततेऽशुचित्वेन स वै श्वा नर उच्यते ॥ (सुश्लोकलाघव)

जो शुद्धता से रहता है वह वैश्वानर और जो अशुद्धता से रहता है वह कुत्ता कहलाता है ।

वक्तव्य—वैश्वानरः—अग्निर्वैश्वानरो वह्निः । अमरकोश । अग्नि स्वयं शुद्ध है अतः शुचिः भी उसका नाम है—शुचिरप्पित्तम् ॥ अमरकोश । वह दूसरों से शुद्धि नहीं चाहता, पृष्ठ ६६ पर 'उत्पत्तिपरिपूतायाः' श्लोक देखिए । अतः शुद्धता का आदर्श करके यहाँपर उसका उल्लेख किया है ।

(३) मनःशौचं, कर्मशौचं, कुलशौचं तथैव च ।
शरीरशौचं, वाक्शौचं शौचं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ (महाभारत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चविध शौच—मन का, कर्मका, कुलका, शरीर का तथा वाणीका इस प्रकार शौच पञ्चविध होता है।

(४) पञ्चस्वेतेषु शौचेषु हृदि शौचं विशिष्यते।
हृदयस्य तु शौचेन स्वर्गं गच्छति मानवः॥ (महाभारत)

इन पाँचों शौचों में मनःशौच विशेष होता है। उसके शौच से मनुष्य स्वर्ग में जाता है।

(५) शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनःशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (वसिष्ठसंहिता)

द्विविध शौच—बाह्य और आभ्यन्तर करके शौच दो प्रकार का होता है; मिट्टी और जल से बाह्य तथा मनःशुद्धि से आभ्यंतर शौच होता है।

वक्तव्य—द्विविधं शौचम्—मनुष्यसमाज की दृष्टि से शौच के दो विभाग होते हैं, एक वैयक्तिक (Individual) और दूसरा सार्वजनिक (Public) या सामाजिक (Social)। इस वचन में जो द्विविध शौच बतलाया है वह वैयक्तिक शौच का है, एक बाह्य शरीर का और दूसरा अंतः शरीर का अर्थात् मन का। मनःशुद्धिसाधन 'अद्भिर्गात्राणिशुद्धयन्ति इस श्लोक से (पृष्ठ ६६) आगे अनेक वचनों में बताये गये हैं। बाह्य वैयक्तिक शुद्धि का जैसे अपने शरीर से संबन्ध होता है वैसे समाज से भी होता है। उसके लिए क्या करना चाहिए इसका दिग्दर्शन 'क्लृप्तकेशनखश्मश्रु' इस श्लोक से (पृष्ठ ७१) आगे के वचनों में किया गया है।

(६) ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनोवार्युपाञ्जनम्।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम्॥ (मनु)

शुद्धि के साधन—ज्ञान, तप, अग्नि, आहार, मिट्टी, मन, वायु, जल, उपाञ्जन (लीपापोती) कर्म, सूर्यप्रकाश और काल (का बीतना) ये मनुष्यों के पास शुद्धि के साधन होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—आहार:—(१) सात्त्विक, युक्त या मित आहार। (२) निराहार, लंघन, उपवास—पश्चात्तापो निराहार: सर्वेऽपि शुद्धिहेतव:। याज्ञवल्क्यस्मृति।

(७) भस्मना शुद्धयते कांस्यं, ताम्रमम्लेन शुद्धयति।
रजसा शुद्धयते नारी, नदी वेगेन शुद्धयति॥

(वृद्धचाणक्य)

राखी से कांसा, (नींबु, इमली, मट्ठा इत्यादि) अम्लद्रव्यों से तांबा, (फिर से) मासिक धर्म होने पर स्त्री और प्रवाह से नदी ये शुद्ध होते हैं।

वक्तव्य—वर्षभर नदी के दोनों तटोंपर तथा पानी में बहुत गंदगी होती रहती है। बरसात में जब यह गंदगी बह जाती है तब कुछ काल तक उसका पानी शुद्ध रहता है। वैसे ही जो नदी बारहों मास प्रवाह युक्त रहती है उसका भी पानी शुद्ध रहता है। अत: यदि पीने के लिए नदी का पानी लेना हो तो जहाँपर प्रवाह तेज हो वहाँ से लिया जाय—बहता पानी निर्मला, बन्धा गन्दा होय।

(८) संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चभिः॥ (मनु)

भूमि की शुद्धि—झाड़ू लगाना, गोबर से पोतना, (जल से) सिंचन करना, खोद (कर ऊपर की मिट्टी को फेंक) ना, गायों को बाँधना, इन पाँच साधनों से भूमि की शुद्धि होती है।

(९) लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला।
गोमयालेपनं तस्मात् कर्तव्यं पाण्डुनन्दन॥ (महाभारत)

गोमय—गाय के ताजे गोबर में नित्य पवित्र, मङ्गलकारी लक्ष्मी वास करती है। इसलिए हे पाण्डव ! गोमय से लेपन किया जाय।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—गोमय में जीवाणुनाशक गुण होता है यह आधुनिक विज्ञान से सिद्ध हुआ है। अतः दूषित भूमि को शुद्ध करने के लिए ताजे गोबर का हमारे यहाँ उपयोग करने का जो रिवाज है वह योग्य है।

(१०) यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि भविष्यति।
तथा त्वदर्चिनिर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति ॥ (महाभारत)

सूर्य और अग्नि—जैसे सूर्य की किरणों से स्पृष्ट (प्रभावित) हुए सब द्रव्य शुद्ध हो जाते हैं वैसे (हे अग्नि!) तेरी ज्वालाओं से दग्ध हुए सब द्रव्य शुद्ध हो जाते हैं।

वक्तव्य—वैद्यकीय दृष्ट्या सूर्य और अग्नि शुद्धि की दृष्टि से बहुत ही महत्व के साधन हैं। इनके द्वारा दूषित वस्तुओं का निर्जीवाणुकरण (Sterilization) होकर वे निर्दोष हो जाया करती हैं। अर्थात् उनमें यदि कोई उपसर्गकारी (Infective) रोगोत्पादक सूक्ष्मजीव हों तो वे नष्ट होते हैं। शस्त्रकर्म पूर्व इसलिए 'अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्' ऐसा सुश्रुत ने कहा है और डल्हण ने उसपर 'अन्यथा पाक (Suppuration) भयं स्यात्' ऐसी टीका की है। सूचिकाभरण (Injection) द्वारा औषधि प्रदान करते समय निर्जीवाणुकरण (Sterilization) पर ध्यान न देने से अनेक रोग ('उपायसंदर्शनजा' श्लोक का वक्तव्य देखिए) उत्पन्न हुआ करते हैं। उसके निवारण के लिए सुई को खौलते हुए पानी से शुद्ध करने के लिए कहा है—सूच्याऽतिसूक्ष्मया तोयस्विन्नयाऽतिप्रयत्नतः॥ शुद्धीकरण की दृष्टि से सूर्य के उपयोग के लिए नीचे के श्लोक का वक्तव्य देखिए।

(११) पन्थानश्च विशुद्ध्यन्ति सोमसूर्यांशुमारुतैः।

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

मार्गशुद्धि—रास्ते (तथा अन्य खुले स्थान) चन्द्रसूर्य की रश्मियों से तथा वायु (प्रवाह) से शुद्ध होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मनुष्य बस्ती के आसपास सड़कों पर तथा अन्य खुले स्थानोंपर मल-मूत्र, थूक-श्लेष्मा, कूडा-कर्कट इत्यादि की जो गंदगी होती है उसकी सफाई अधिकांश स्थानों में होती ही नहीं, और जहाँ होती है वहाँ पर केवल कूड़ाकर्कट की की जाती है। सामाजिक आरोग्य की दृष्टि से इसका कुछ भी मूल्य नहीं होता, क्योंकि मलमूत्रादि से भूमिपर उत्सृष्ट हुए जीवाणुओं का सफाया झाडू से नहीं हो सकता, उसके लिए जीवाणुनाशक साधन को आवश्यकता होती है। परन्तु जैसे मनुष्यकृत सिंचनकारी साधन से दो चार खेतों की सिंचाई हो सकती है, संपूर्ण खेती की नहीं हो सकती, उसके लिए बहुत व्यापक क्षेत्रों पर सिंचन करने वाले वर्षा और वात नामक नैसर्गिक साधनों की आवश्यकता होती है, वैसे मनुष्यकृत जीवाणुनाशक साधन से मर्यादित स्थानों की शुद्धि हो सकती है, संपूर्ण सड़कों और अन्य खुले स्थानों की नहीं हो सकती, उसके लिए व्यापकतया शुद्धि करनेवाले नैसर्गिक साधनों की ही आवश्यकता होती है। ये नैसर्गिक साधन हैं सूर्य, वायु और चन्द्र। इनमें सूर्य सबसे महत्व का है। सूर्य के जीवाणुनाशक तथा अन्य गुणों के लिए 'औषधान्वेषणक्लेशैः' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए।

(१२) अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥ (मनु)

जल से शरीरगात्र, सत्य से मन, विद्या और तप से भूतात्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध (तथा पवित्र) हो जाते हैं।

वक्तव्य—सत्यम्—सत्यं भूतहितं प्रोक्तं यथान्यायाभिभाषणम्। प्रियं च सत्यमित्युक्तं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ वसिष्ठसंहिता॥ तपः—विधिनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिना। शरीरशोधनं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम्॥ वसिष्ठसंहिता॥

(१३) मनःशुद्धिश्च विज्ञेया धर्मेणाध्यात्मविद्यया॥ (वसिष्ठसंहिता)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मनःशुद्धि—मन की शुद्धि धर्म (के अनुसार आचार-विचार आहार-विहार रखने) से तथा आध्यात्मिक विद्या (का अभ्यास करने) से होती है।

(१४) आत्मानदी संयमपूर्णतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुनन्दन
न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥ (महाभारत)

हे पाण्डव ! (यदि तुम अपने अन्तरात्मा की शुद्धि चाहते हो तो) सत्य जिसका जल है, शील जिसके तट हैं, मनःसंयम जिसमें चढ़ने उतरने का घाट है, दया जिसकी लहरें हैं ऐसी आत्मज्ञान रूप नदी में तू स्नान किया कर; केवल पानी से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती।

(१५) मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकानां शतेन च।
न शुद्धयति दुराचारो भावोपहतचेतनः ॥ (बृहस्पति)

हजारों (प्रकार की तथा हजारों बार) मिट्टियों से (शरीर रगड़ने पर), तथा सैकड़ों (नदियों के या तीर्थों के) जल से (शरीर स्नान करने पर दुष्ट) भावनाओं से जिसका चित्त मारा गया है ऐसा दुराचारी शुद्ध नहीं होता है।

(१६) शुद्धयति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः ॥ (प्रबोधसुधाकर)

श्रीकृष्णपदकमल की भक्ति के बिना अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती, जैसे क्षार (सोडा, साबुन) के पानी से वस्त्र स्वच्छ होता है वैसे भक्ति से मन शुद्ध होता है।

(१७) मनःशुद्धयैव शुद्धिः स्याद् देहिनां नात्र संशयः।
वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम् ॥ (ज्ञानार्णव)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मनकी शुद्धि से ही मनुष्यों की वास्तविक शुद्धि हुआ करती है इसमें कोई संदेह नहीं है। उसके बिना (बाह्य शरीर की शुद्धि का प्रयास) शरीर को निरर्थक कष्ट देना है।

(१८) सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ (मनु)

अर्थशौच—सर्व प्रकार के शौच में अर्थ शौच सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। इसलिए जो अर्थ में शुद्ध है वही वास्तव में शुद्ध होता है, पानी मिट्टी से शुद्ध हुआ शुद्ध नहीं होता।

वक्तव्य—अर्थशौच—(१) धनार्जन में शुद्धता। यह श्लोक 'ज्ञानं तपोऽग्निराहारो' इस श्लोक के (पृष्ठ६३) पश्चात् आया है और कुल्लूकभट्ट ने अपनी मन्वर्थमुक्तावलि में इसका अर्थ धन की दृष्टि से किया है—अर्थशौचमन्यायेन परधनहरणपरिहारेण यद्धनेहा तत्परं प्रकृष्टं स्मृतम् ॥ परन्तु इस अर्थ की अपेक्षा आगे दिया हुआ अर्थ संदर्भ की दृष्टि से अधिक अच्छा है। (२) विषय या इन्द्रियार्थ में शुचि। अर्थ का एक अर्थ इन्द्रियार्थ या शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध के विषय—इन्द्रियेभ्यः परा अर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥गीता॥ इसका तात्पर्य यह है कि सेवन किये जाने वाले इन्द्रियार्थों की शुचिता सर्वश्रेष्ठ शुचिता है और जो इन्द्रियार्थों की शुच्यशुचिता का विचार करके केवल पवित्र, शुचि, हितकर इन्द्रियार्थों का सेवन करता है वही वास्तव में शुचि होता है, पानी और मिट्टी से शरीर और बर्तनों को साफ करने वाला नहीं।

इन्द्रियजय की दृष्टि से जैसे सब इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय (जिह्वा) श्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसकी जीत से सब इन्द्रियों की जीत हो जाया करती है ('तावज्जितेन्द्रियो न स्यात्' श्लोक देखिए), वैसे अर्थशौच की दृष्टि से रसनेन्द्रियार्थ (रस, षड्रस अन्न) की शुद्धि सर्वश्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसकी शुचिता पवित्रता रखने से सब इन्द्रियार्थों की शुद्धि होती है या शुद्ध इन्द्रियार्थ सेवन करने के लिए मन बलवान् तथा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सिद्ध होता है। इसलिए कुछ मनीषी सर्व अर्थ शुद्धि में रस या अन्न की शुद्धि को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः' इस वचन का वक्तव्य (पृष्ठ ६०) देखिए।

(१९) उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥
(उत्तररामचरित)

जन्म से ही जो शुद्ध है उस (सीता) को अन्य शुद्धिकर साधनों से क्या करना है ? तीर्थोदक और अग्नि (जो उत्पत्तिपरिपूत रहते हैं) अन्य शुद्धिकर साधनों द्वारा शुद्धि करने योग्य नहीं होते हैं।

वक्तव्य—इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि किसी द्रव्य की उत्पत्ति या किसी कर्म की क्रिया यदि संबंधित सर्व बातों की शुद्धता की ओर ध्यान देकर की जाय तो फिर उत्पन्न द्रव्य और सिद्ध क्रिया अन्य शुद्धिकर साधनों से शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती, यदि इस प्रकार से न किया जाय तो शुद्धीकरण की आवश्यकता होती है। वैद्यकीय दृष्ट्या प्रत्येक का एक-एक व्यावहारिक उदाहरण दिया जाता है।

(१) दूध—बझारू दूध गौ का स्वास्थ्य, स्तन-हस्त-पात्रादि की शुद्धता की ओर ध्यान न देकर दोहा जाता है, जिससे वह प्रायः दूषित रहता है। अतः अग्नि से शुद्ध किये बिना उसका सेवन हानिकर होने की संम्भावना बराबर बनी रहती है। इसके विपरीत स्वस्थ गौ का स्तनहस्तपात्रादि की ठीक शुद्धि करके दोहा हुआ दूध उत्पत्ति-परिपूत होने से सेवन करने के लिए उसको अग्निद्वारा शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। ताजे निकाले हुए मन्दोष्ण दूध को 'धारोष्ण' दूध कहते हैं और वह अमृतसम बताया है—धारोष्णममृतोपमम्। अष्टांगहृदय॥ अग्नितप्त करने पर दूध के आगन्तुक दोष जरूर नष्ट हो जाते हैं, परन्तु उसके साथ उसके नैसर्गिक रासायनिक संघटकों की

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हानि भी हो जाती है। धारोष्ण दूध में यह हानि न होने से वह दूध अमृतसम कहा गया है। (२) शस्त्रकर्म—इसमें यदि यन्त्रशस्त्रवस्त्र हस्त इत्यादि के निर्जीवाणुकरण अर्थात् शुद्धता की ओर ध्यान न दिया जाय तो व्रण दूषित होने की संभावना बराबर बनी रहती है। अतः जो शस्त्रचिकित्सक इस शुद्धता की ओर विशेष ध्यान नहीं देते उन्हें अपना शस्त्रकर्म दूषित न हो इसलिए शस्त्रव्रणों पर जीवाणुनाशक द्रव्य का और रोगी को प्रतिजीवी (Antibiotic) औषधियों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत जो शस्त्र-चिकित्सक यन्त्रशस्त्रादि की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान देकर शस्त्र-कर्म किया करते हैं उनका वह कर्म उत्पत्तिपरिपूत होने से उन्हें अपना शस्त्रकर्म दूषित (septic) न हो इसलिए उपसर्गनाशक तथा प्रति-जीवी द्रव्यों का बाह्य या आभ्यन्तर उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे शस्त्रकर्म अपूतिक (Aseptic) कहलाते हैं।

(२०) नान्यमद्यादेकवासा, न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न मूत्रं पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोव्रजे ॥ (मनु)

एक वस्त्र पर भोजन न करें, विवस्त्र होकर स्नान न करें, रास्ते में, अग्नि की रक्षा पर तथा गोशाला में मूत्रोत्सर्जन न करें।

वक्तव्य—एकवासाः—दिनरात भर जो एक वस्त्र पहना जाता है, जिसको पहन कर रात में शयन, दिन में भ्रमण, मलमूत्रोत्सर्जन तथा अन्य कर्म किये जाते हैं उसको पहन कर भोजन न करें, किन्तु भोजन के समय स्वतन्त्र धौत वस्त्र या कौशेयक वस्त्र पहने। पाश्चात्य देशों में भी भोजन का स्वतन्त्र पहनावा होता है। न नग्नः स्नानमाचरेत्-यह उपदेश समाज की दृष्टि से है तथा नदी इत्यादि खुले स्थान के स्नान के लिए है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) ग्रामावसथतीर्थाणां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि।
विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत, न कृष्टे, न च गोव्रजे ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

गांव, घर, तीर्थ, क्षेत्र इनके मार्गों में, जोते हुए क्षेत्र में, गोशाला में मलमूत्रोत्सर्जन न करें।

वक्तव्य—न कृष्टे—मनुष्यों के मल मूत्र में अनेक रोगों के विकारी जीवाणु हो सकते हैं। यदि शाक सब्जी, धान्य बोये हुए खेत में मलमूत्र त्याग किया जाय तो तद्गत विकारी जीवाणुओं से शाकादि उपसृष्ट (Infected) होकर मनुष्यों पर अपना उपसर्ग-संक्रान्त कर सकते हैं। अतः ऐसे क्षेत्र में मलत्याग न किया जाय। मल त्यागने के लिए अनाकृष्ट क्षेत्र सर्वोत्तम होते हैं, क्योंकि वहाँ पर त्यक्त मलमूत्र की अच्छी खाद कुछ काल के पश्चात् बन जाती है और वह क्षेत्र अच्छा उपजाऊ बनता है। गोव्रजे—गोशाला में गौ के मल सूत्र होते हैं परन्तु वे अमेध्य नहीं होते, न मनुष्यों की दृष्टि से दूषित रहते हैं। पृष्ठ ६४ पर 'लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं' श्लोक देखिए।

(२२) क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥ (मनु)

केश और नख काटें, दाढी करें, दमयुक्त होकर रहे, शुभ्र वस्त्र पहनें, शुद्ध रहें, और धन होनेपर फटा और मलीन वस्त्र न पहनें।

(२३) उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्।
उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥ (मनु)

दूसरों के द्वारा प्रयुक्त हुए पादत्राण, वस्त्र, जनेऊ, आभूषण, माला, कमण्डलु (जलपात्र) काम में न लावें।

वक्तव्य—दूसरों की वस्तुएँ, विशेषतया त्वचा और मुखनासादि शरीर द्वारों के साथ संबंध रखनेवाली, प्रयुक्त न करें। इसमें अस्वच्छता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के साथ दूसरों के उपसर्ग (Infection) का संक्रमण होने का डर रहता है।

(२४) तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रं केशभस्मकपालिकाः ॥

(मार्कण्डेयपुराण)

वैसे ही (रास्ते में या भूमिपर होने वाले) भूसी, कोयला, हड्डी के टुकड़े, रस्सी, (फटे पुराने) कपड़े, मल, मूत्र, केश, भस्म, कपार इनपर पैर न रक्खें।

वक्तव्य—नाधितिष्ठेत—दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम् (पृष्ठ ८१) ॥

(२५) नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ (मनु)

जलशुद्धिमहत्व—जलाशय में मूत्र, मल, थूक अथवा (मलमूत्रादि) अमेध्य से दूषित अन्य द्रव्य, रक्त या विष न फेकें।

वक्तव्य—पानी जीवन के लिए एक अत्यन्त आवश्यक पेय है। इसके दूषित होने से मनुष्यों के अनेक अन्तर्बाह्य रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। अतः उसको किसी भी प्रकार से अदूषित रखना मनुष्यों का कर्तव्य है। प्राचीन काल में पानी को किसी प्रकार से दूषित करना कितना महत्पाप माना गया था इसकी सत्यता भरतजी के निम्नवचन से स्पष्ट होती है। भरतजी कह रहे हैं कि यदि मेरे कथन से रामचन्द्रजी वनवास गये हों तो मुझे पानी दूषित करनेवाले का पाप लग जाय—पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके। यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ रामायण ॥ अमेध्य—मानुषास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्तवं वसा। स्वेदाश्रुदूषिकाश्लेष्ममलं चामेध्यमुच्यते ॥ मिताक्षरा ॥

(२६) मनसश्चक्षुषो यत्र संतोषो जायते भुवि ।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसंमतम् ॥ (वास्तुशास्त्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वास्तुभूमिशुद्धि—जिस भूमि में मन और नेत्र दोनों को प्रसन्नता हो जाती है उस भूमिपर सबको गृह बनवाना चाहिए ऐसा गर्गादि ऋषियों का मत है।

(२७) सोपद्रव्यं तथाऽस्वच्छं दुर्गन्धेन समन्वितम्।
अभद्रदर्शनं वेश्माध्युषितः कः सुखं व्रजेत्॥

गृहशुद्धि—(कीटक मूषकादि के) उपद्रव से युक्त, मलीन, दुर्गन्धित, देखने में अभद्र ऐसे गृह में रहने वाला कौन सा मनुष्य सुखी (स्वस्थ) हो सकता है?

(२८) शौचात्स्वांगजुगुप्सापरैरसंसर्गः। (योगसूत्र)

बाह्यशुद्धि का फल—(बाह्य) शौच (के अभ्यास) से अपने ही मलीन अङ्गों से घृणा और मलीन रहने वाले अन्यों से संसर्ग न रखने की प्रवृत्ति होती है।

(२९) सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि।
(योगसूत्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन सङ्कलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये शौचविज्ञानीयो नाम
नवमोऽध्यायः समाप्तः।



अन्तःशुद्धि का फल—(अन्तः) शुद्धि (के अभ्यास) से चित्त-शुद्धि, मन की प्रसन्नता, मन की एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्म-साक्षात्कार होने की योग्यता उत्पन्न हुआ करती है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां शौचविज्ञानीयोनाम
नवमोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दशमोऽध्यायः ।

अथातो जलविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव च तन्मयम् ।
न हि तोयाद्विना वृत्तिः स्वस्थस्य व्याधितस्य वा ॥
(अ० संग्रह)

जल का महत्व—जल जीवसृष्टिका प्राण है, विश्व ही जलमय है; क्या स्वस्थ और क्या रोगी, किसी का जीवन जल के विना सम्भव नहीं है ।

वक्तव्य—जीवसृष्टि जलमय है । जीव निर्जीव होने पर जलहीन होने लगते हैं । एककोशिकीय (Unicellular) जीव पानी के समान होते हैं । मनुष्य शरीर में ¾ पानी है । तात्पर्य, जीवसृष्टि का जीवन जलपर होने से जल को जीवन कहा है—जीवयति इति जीवनम् । जल के इस माहात्म्य के कारण उसको देवता भी मानते—जीवानां प्रसव नमोस्तु जीवनाय ॥ किरातार्जुनीय ॥

(२) नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ (रामायण)

जल की उत्पत्ति—सूर्य की किरणों से समुद्र का जल पीकर आकाशरूपी स्त्री (कार्तिक से) नौ मास तक उस जल को धारणकर (पश्चात् आषाढ मास में) रसायन (सम हितकर उस जल रूप) गर्भ को जन्म देती है ।

(३) प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ (रघुवंश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जैसे हजार गुना अधिक देने के लिए सूर्य (पृथ्वी से) जल का ग्रहण करता है वैसे दिलीप राजा प्रजा को हजार गुना अधिक देने के लिए उससे कर ग्रहण करता रहा ॥

वक्तव्य—सूर्य की उष्णता से पृथ्वी के जल की बराबर भाप होती रहती है जिससे मेघ बनते हैं और उनसे वर्षाऋतु में वर्षा होती है। जीवसृष्टि के लिए आवश्यक जल का यही मूलस्रोत है। पृथ्वी से जितना जल भाप होकर ऊपर उठता है उतना ही वर्षा के रूप में नीचे गिरता है, उससे जरा भी अधिक नहीं। परन्तु, सूर्य समुद्र से बहुत अधिक जल ग्रहण करने पर भी पृथ्वी के स्थल क्षेत्र पर बहुत अधिक जल उत्सर्गित करता है और इसी वस्तुस्थिति को सहस्रगुण शब्द से प्रदर्शित किया है।

(४) आन्तरीक्षमुदकानां (पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमम्) (चरक)

मेघजलश्रेष्ठता—समस्त जलों में पथ्यतम होने से वर्षाजल जलों में श्रेष्ठतम होता है।

(५) नास्ति मेघसमं तोयं, नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुसमं तेजो, नास्ति धान्यसमं प्रियम् ॥

(वृद्धचाणक्य)

मेघ (जल) के समान (दूसरा शुद्ध) जल नहीं; आत्म (बल) के समान (शरीर में दूसरा कोई) बल नहीं, नेत्र (तेज) के समान (शरीर में दूसरा कोई) तेज (स्त्री इन्द्रिय) नहीं, और अन्न के समान (दूसरी कोई वस्तु) प्रिय नहीं ॥

वक्तव्य—नास्ति मेघसमं तोयम्—मेघका जल पृथ्वी पर होने वाले भाप से बनता है। भाप से बनाये जाने वाले जलको तिर्यक्-पातित (Distilled) कहते हैं। मेघ में यह क्रिया मनुष्य कृत न होकर निसर्गकृत होने से उसमें तिर्यक्पातन के स्थान में ऊर्ध्वपातन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(Sublimation) होता है। संक्षेप में मेघ का जल पृथ्वी के जल-दोषों से जैसा अलिप्त वैसा गुणवत्ता और पवित्रता में बहुत ऊँचा रहता है। वह ऊर्ध्वपातन होने पर किसी पात्र में इकट्ठा नहीं किया जाता, अपात्रस्थ होता है! इसलिए उसमें किसी पात्रके भी दोष नहीं आते। इन कारणों से मेघजल सर्व संसार भर एकसा रहता है—जल-मेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात् ॥चरक॥ परन्तु वह जब नीचे गिरता है तब स्थानिक वातावरण के दोषों के अनुसार धूलि, धूम, सूक्ष्मजीव, विष इत्यादि से दूषित होकर आता है। इसलिए वर्षा ऋतु के प्रारम्भ का तथा अकाल में होने वाले वर्षा का जल सेवन न करें—अनार्तवंच यद्दिव्यमार्त्तवं प्रथमं च यत्। लूतादितन्तुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम्। न पिबेत् ॥ अष्टांगहृदय॥ परन्तु वर्षा से वातावरण काफी धुल जाने के पश्चात् शुद्ध पात्र में उसको ग्रहण करके पीवे—ऐन्द्रमम्बु सुपात्रस्थ-मविपन्नं सदा पिबेत् ॥ वाग्भट ॥

(६) शुद्धं भूमिगतं तोयं, शुद्धा नारी पतिव्रता।
शुचि क्षेमकरो राजा, संतुष्टो ब्राह्मणः शुचिः ॥

(वृद्धचाणक्य)

स्रोतजलशुद्धता—भूमि के भीतर का जल, पतिव्रता स्त्री, प्रजा का कल्याण करने वाला राजा और संतुष्ट ब्राह्मण ये शुद्ध होते हैं।

वक्तव्य—वर्षा का अधिकांश जल नदीनालों द्वारा बड़े-बड़े तालाबों में तथा समुद्र में बहकर चला जाता है। परन्तु उसका कुछ अंश भूमि के भीतर जाकर भूगर्भगत स्रोतों को उत्पन्न करता है। ये स्रोत भूमि के भीतर बनाये गये वापीकूपतडागादि कृत्रिम जलाशयों को सालभर पानी की रसीद पहुँचाते हैं। कुछ स्रोत निर्झर के रूप में बराबर बहते रहते हैं। भूगर्भगत स्रोतों का जल भूमि में से छनकर आने के कारण एक प्रकार से उस को आधुनिक दृष्ट्या निस्यन्दित (Filtered) जल कह सकते हैं। अन्तर इतना ही है कि निस्यन्दित

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जलमें निस्यन्दक का कोई अंश घुलकर नहीं आता और स्रोतों के जल में भूमि का कुछ अंश जरूर आता है। आगे का श्लोक देखिए। शुद्धि और निर्मलता में निर्झरों का जल सर्वोत्तम होता है और वापीकूप-तडागादिका जल संचित तथा खुला रहने के कारण और अनेक लोगों का संबंध आने के कारण निर्झरों के समान शुद्ध और निर्दोष नहीं होता।

(७) यथा भूमिस्तथा तोयं, यथा बीजं तथाऽङ्कुरः।
यथा देशस्तथा भाषा, यथा राजा तथा प्रजा॥

स्थानानुसार जलभेद—जैसी भूमि वैसा (तद्गत) जल, जैसा बीज वैसा उसका अंकुर, जैसा देश वैसी उसकी भाषा और जैसा राजा (या शासन) वैसी उसकी प्रजा।

वक्तव्य—भूमिस्तथा तोयम्—पानी एक ऐसा द्रव है कि जिस में सब सेन्द्रिय निरिन्द्रिय (Organic inorganic) द्रव्यों को न्यूनाधिक मात्रा में अपने भीतर विलीन करने की शक्ति होती है, जिससे वह विश्वविलेयक (Universal solvent) कहलाता है। इस कारण से प्रत्येक स्थान के जल में उस स्थान के द्रव्य न्यूनाधिक मात्रा में मिले रहते हैं। और उनके अनुसार उसके रूप रसादि बाह्य तथा पाचनादि आभ्यन्तर गुणों में अंतर आ जाता है। तात्पर्य, जल का मूल स्रोत एक होने पर भी भूमिके अनुसार उसमें नवीनत्व भिन्नत्व तथा नानारसत्व आ जाता है—प्रकृत्या दिव्यमुदकं भ्रष्टं पात्रमपेक्षते चरक। तत्पात्रापेक्षितवति पात्रदोषेण तत्त्वतः। नानारसत्वं भजते तोयं संप्राप्य भूतलम्। काश्यप। जिसमें खनिज बहुत अधिक मात्रा में मिले रहते हैं उसको 'खनिज जल' (Mineral) कहते हैं। जब पानी ज्वालामुखी की भूमि में से बहता है तब वह उष्ण और गंधक युक्त रहता है। ऐसे पानी के स्रोत को उष्णजल स्रोत (Hot spring) कहते हैं। इन जलों का उपयोग बाह्याभ्यन्तर पद्धति से अनेक रोगों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

की चिकित्सा के लिए किया जाता है।। बीजं तथाङ्कुरः—कारण के अनुसार कार्य। इसको 'बीजांकुरन्याय' कहते हैं। यह न्याय जाति की दृष्टि से पूर्णतया सत्य होता है, यथा गेहूँ से गेहूँ, घोड़े से घोड़ा, मनुष्य से मनुष्य इत्यादि—सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता। व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः। यथा बीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा। मनु। 'नान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिः' इस वचन को तथा उसके पश्चात् दिये गये वचनों को देखिए। यह न्याय शारीरिक संहनन तथा गुणों की दृष्टि से इतना सत्य नहीं होता है; जैसे, रेस के घोड़े, शिकारी कुत्ते, दुधार गायें इत्यादि जानवरों की अवलाद प्रायः इन्हीं के समान हुआ करती है, परन्तु सब जानवरों में और सर्वांशों में नहीं। इसका कारण यह है कि शारीरिक गुणों पर परिस्थिति, आहार प्रशिक्षा इत्यादि का भी प्रभाव पड़ता है। मानसिक विकास बुद्धिमत्ताकी दृष्टि से मनुष्यों में यह न्याय अल्पांश में ही सत्य होता है। इसकी सत्यता संसार के महापुरुषों की तथा उनके पितापुत्रों की ओर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाती है। जब कोई व्यक्ति बड़ा होता है तब उसके मातापिता के गुणों का तथा चारित्र्य का वर्णन किया जाता है। वास्तविकता और शिष्टाचार की दृष्टि से यह ठीक है, परन्तु माता-पिता के गुणों का और पुत्र के बडप्पन का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता, केवल 'यथा काष्ठं च काष्ठं च' इस प्रकार का संयोग होता है। मनुष्यों में बीज और अंकुर इन के बीच में मानसिक गुणों में और बुद्धिमत्ता में ये जो असंगति दिखाई देती है उसके अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु लिंगशरीर या सूक्ष्म शरीर का हमारे शास्त्र में दिया हुआ कारण प्रत्यक्ष न होने पर भी चिन्त्य है—पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्म पर्यन्तम्। संसरति निरूपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्। सांख्य कारिका। क्षेत्रनाशे स्थितिस्तस्य वायव्ये तैजसेऽपि वा। सूक्ष्मलिङ्गशरीरेऽस्मिन्नवच्छिन्नात्मनः सदा।। लिङ्गदेहेन सर्वत्र वर्तते जीवसंज्ञकः। पुण्यपापवशाद्देहं तेनेवान्यं बिभर्ति च। एवमेव भ्रमेज्जीवो यावत्कर्म-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परिक्षयः ॥ वसिष्ठ संहिता ॥ इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने जीवन में जो कर्म करता है उसके संस्कार लिंगशरीर के रूप में दूसरे जन्म में जाते हैं और इस प्रकार मनुष्य की किसी जन्म में जो बुद्धिमत्ता, चारित्र्य, मानसिक विकास इत्यादि की सम्बन्ध में अवस्था होती है वह अनेक पूर्वजन्मकर्मसंसिद्धि का फल होता है। संक्षेप में मनुष्यों की बुद्धिमत्ता सच्चरित्रता, वीरता इत्यादि की परम्परा उसके पूर्वजों के इन गुणों की परम्परा की अपेक्षा उसके पूर्व जन्मों की इन गुणों की परम्परा पर अधिक अधिष्ठित होती है—मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् रघुवंश।

(८) पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना, कुण्डे कुण्डे नवं पयः।
जातौ जातौ नवाचारा, नवा वाणी मुखे मुखे ॥

प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि में, प्रत्येक जलाशय के जल में, प्रत्येक जाति के आचारों में और प्रत्येक मनुष्य की वाणी में (कुछ न कुछ) नवीनता (अन्तर भेद) हुआ करती है।

वक्तव्य—नवं पयः—प्रत्येक कुण्ड का पानी भिन्न भिन्न भूमि में से आने के कारण उस में रस, रङ्ग, गंध इत्यादि में दूसरे कुण्ड के पानी से भिन्नता या नवीनता होती है। ऊपर का श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखिए।

(९) रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते।
देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः ॥ (रघुवंश)

जैसे केवल एक रसयुक्त आन्तरिक्ष जल (पृथ्वी पर गिरने पर पृथ्वी के प्रत्येक स्थान में भिन्न भिन्न रसों को प्राप्त होता है वैसे हे भगवन्! तुम अविकार होते हुए गुणों से लिप्त होने पर अनेक अवस्थाओं को प्राप्त होते हो।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—एकरसम्—मधुरादि षड्रसों में से एक रस युक्त ऐसा इसका अर्थ नहीं है, किन्तु एक भी रस जिसमें व्यक्त या स्पष्ट अनुभूत नहीं होता ऐसा अव्यक्त रस–तथाऽव्यक्तरसं विद्यादैन्द्रम् । चरक । रसान्तराणि–अव्यक्त रस से मधुरादि षड्रसों में । यह रसान्तर भूमि के कारण होता है—'यथा भूमिस्तथा तोयं' (पृष्ठ ७७) श्लोक देखिए । जैसे स्वर्ग में रहने वाला निर्गुण निराकार परमात्मा पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेपर सगुण साकार होता है वैसे अव्यक्तरस दिव्य जल भूमिपर गिरनेपर षड्रसयुक्त होता है ।

(१०) अगस्त्योदये विषशुद्धिः । (कादंबरी)

जलशुद्धि साधन (१) अगस्ति—अगस्ति तारा आकाश में उदित होने पर जल शुद्ध होते हैं ।

वक्तव्य—विष–जल–विषमप्सु च । अमरकोश । विषं जलधरैः पीतं मूर्च्छिताः पथिकाङ्गनाः । चन्द्रालोक । अगस्ति–अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः । वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यवातापिमर्दनः ॥ ब्रह्मपुराण ॥

(११) प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः ।
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः ॥ (रघुवंश)

महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्ति (नक्षत्र का आकाश में) उदय होने पर पृथ्वी के ऊपर होने वाले मलीन जल तो प्रसन्न हो गये, परन्तु पृथ्वीपर रघुराजा का उदय होने पर पराभव की आशङ्का से उसके शत्रु के मन प्रसन्न न हो सके ।

वक्तव्य—कुम्भयोनि—जिसका जन्म घट में हुआ है ऐसा अगस्ति ऋषि । 'घटो जन्मस्थानं' यह सुभाषित इसके लिए प्रसिद्ध है ।

(१२) दिवा सूर्यांशुसंतप्तं निशि चन्द्रांशुशीतलम् ।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१३) हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि।
स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथाऽमृतम् ॥ (चरक)

(२) *सूर्यचन्द्र किरण*—दिन में सूर्य की किरणों से तप्त हुआ, रात में चन्द्रकिरणों से शीतल हुआ, (उचित) काल (व्यतीत होने) के कारण पक्व हुआ, अगस्ति के किरणों से निर्विष हुआ शरद् ऋतु का निर्मल जल 'हंसोदक' कहलाता है जो स्नान, पान और अवगाहन के लिए अमृतसम हितकर रहता है।

वक्तव्य—कालेन पक्वम्—वर्षाऋतु के प्रारम्भ से शरद् ऋतु तक के दीर्घकाल में नदी में आयी हुई सब अशुद्धियाँ बह जाती हैं और उसमें भूमिगत स्रोतों का ही जल आता रहता है, इसलिए पक्व और निर्दोष। अगस्ति नक्षत्र का उदय आकाश में इसी समय होता है। हंसोदकम्—हंसशब्देन सूर्याचन्द्रमसावभिधीयेते, ताभ्यां शोधितमुदकं हंसोदकं; यदि वा हंससेवायोग्यं हंसोदकं, हंसाः किल विशुद्धमेवोदकं भजन्ते। चक्रपाणि। तात्पर्य, नदी का जल वर्षाऋतु में सेवन करने योग्य नहीं होता, शरद् ऋतु में अगस्त्योदयके पश्चात् (पृ० ८०) स्नानपानादि के लिए हितावह होता है।

(१४) दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं, वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
सत्यपूतां वदेद् वाचं, मनःपूतं समाचरेत् ॥ (मनुस्मृति)

(३) *वस्त्र*—दृष्टि से देखे हुए स्थान पर पैर रखें, वस्त्र से शोधित किये हुए जल को पीयें; सत्य से पवित्र भाषण करें, और मन को जो पवित्र मालूम हो ऐसा व्यवहार करें।

वक्तव्य—दृष्टिपूतम्—रास्ते में गढा ईंट, पत्थर, अग्नि, सर्प, वृश्चिक इत्यादि जीव, मलमूत्र थूक इत्यादि गंदी चीजें होती हैं। इनके द्वारा स्वास्थ्य को विविध प्रकार से हानि पहुँच सकती हैं। अतः चलते समय रास्ता देखकर चलना चाहिए। वस्त्रपूतम्—पीने का पानी केवल देखने में निर्मल होने से उसे स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर नहीं कह सकते हैं। उसके लिए वह तृणकाष्ठादि से तथा छोटे जीवजन्तुओं से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विरहित होना चाहिए। पानी छानने के लिए स्वच्छ, शुभ्र, मोटा, चौपत किया हुआ कपड़ा होना चाहिए। इससे भी रोगाणु (Pathogenic organisms) दूर नहीं हो सकते, परन्तु मोटे जीवजन्तु तथा उनके अण्डे (Ova), जिनमें जोंक तथा स्नायुक कृमि (Guinea worm) के अण्डों की जलपिस्सू (Water flea) विशेष महत्त्व की हैं, दूर हो जाते हैं—घनवस्त्रपरिस्रावैः क्षुद्रजन्त्वभिरक्षणम् ॥ अ-संग्रह ॥ जलेषु क्षुद्रजन्त्वादिवारणार्थं वस्त्रशोधितं जलं पिबेत। मन्वर्थमुक्तावलि। पृष्ठ ७२ पर 'तुषाङ्गारास्थि' श्लोक देखिए।

(१५) मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।

पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ (मालविकाग्निमित्र)

(४) निर्मली—जैसे निर्मली के फल के संसर्ग से जल निर्मल हो जाता है, वैसे बुद्धिमान् के संसर्ग से मन्दबुद्धि भी बुद्धिमान् बनते हैं।

वक्तव्य—पङ्कच्छिद-कतक, निर्मली (Strychnos potatorum) इसका बीज चन्दन के समान पानी के साथ घीसकर मटियाले पानी में मिलाया जाता है। यह अवक्षेपक (Precipitant) द्रव्य है जो पानी में मिले हुए मिट्टि आदि द्रव्यों को नीचे तलो में अवक्षेपित करके उसको निर्मल करता है। फिटकिरी भी ऐसा ही काम करती है। प्राचीनकाल में मटियाले पानी को निर्मल करने के लिए इसका बहुत प्रयोग किया जाता था। सुश्रुत में जल-प्रसादक द्रव्यों में इसका प्रथम उल्लेख किया है—तत्र सप्त कलुषस्य प्रसादनानि भवन्ति-कतक-गोमेदकबिसग्रन्थिशैवालमूलवस्त्राणि मुक्तामणिश्चेति।

कतक जल को कैसे निर्मल करता है इसका शास्त्रोक्त विवरण देखिए—यथा पयो पयोऽन्तरं जरयति, स्वयं च जीर्यते; यथा विषं विषांतरं शमयति, स्वयं च शाम्यति; यथा वा कतकरजो रजोऽन्तराविले पाथसि प्रक्षिप्तं रजान्तराणि भिन्दत् स्वयमपि भिद्यमानमनाविलं पाथः करोति; एवं कर्म अविद्यात्मकमपि अविद्यान्तराणि अपगमयत् स्वयमप्यपगच्छतीति। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य भामती टीका॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१६) न हि कतकं पयसः इव पङ्कस्य प्रसादनाय प्रभवति ।

पानी के समान कीचड़ को निर्मल बनाने में कतक सफल नहीं होता ।

वक्तव्य—पङ्कस्य प्रसादनाय—पानी में जब कीचड़ बहुत अधिक होता है तब कतक फल से उसका शोधन हो सकता नहीं। अतः कतक का प्रयोग साधारण मटियाले पानी को निर्मल बनाने के लिए विहित होता है ।

(१७) मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं, नदी वेगेन शुद्ध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा, संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ (मनुस्मृति)

(५) *प्रवाह*—मिट्टी और जल से (धातुपात्रादि) शोध्य वस्तु, प्रवाह से नदी, (परपुरुष के साथ) दूषितमना स्त्री मासिक धर्म होने पर और संन्यास से ब्राह्मण शुद्ध होते हैं ।

(१८) कूपोदकं, वटच्छाया, श्यामा स्त्री, चेष्टकालयम् ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ॥

(चाणक्यशतक)

कूपजलवैशिष्ट्य—कूएँका पानी, वटवृक्ष की छाया, श्यामा स्त्री, ईटों का मकान, ये शीतकाल में उष्ण और उष्णकाल में शीत होते हैं ।

वक्तव्य—कूपोदक-यह जाडे में कम ठण्ढा और गर्मियों में ठण्ढा रहने से सर्व ऋतुओं में स्नानपान दोनों के लिए सुखावह होता है । इष्टकालय—भारतवर्ष जैसे ऊष्ण प्रदेश में पत्थर या सीमेंट के मकानों से इसलिए ईटों के मकान सुखावह होते हैं । श्यामा(१)यौवनमध्यस्था (२)शीते सुखोष्णसर्वांगी ग्रीष्मे या सुखशीतला । तप्तकांचनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१९) अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषप्रदम् ॥

(वृद्धचाणक्य)

जलपान—अजीर्ण में (भोजन न करके केवल) पानी का सेवन औषधि का काम करता है; भोजन पच जाने पर (अर्थात् भोजन के ३ घण्टे के उपरान्त) सेवन किया हुआ जल (पाचन में बाधा उत्पन्न न करने के कारण) बलदायक होता है; भोजन के बीच में (घूँट घूँट सेवन किया हुआ) जल ('प्रक्षालयेदद्भि' श्लोक देखिए) रुचि उत्पन्न करने के कारण) अमृत के समान होता है और भोजन करके तुरन्त सेवन किया हुआ जल (पाचकरसों को पतला करके और भोजन को जल्दी महास्रोत में नीचे ले जाने के कारण) विषसम (अहितकर) होता है।

(२०) अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः ।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥

(क्षेमकुतूहल)

अधिक पानी पीने से अन्न का पाचन ठीक नहीं होता, और पानी न पीने में भी वही दोष होता है। इसलिए जठराग्निवर्धनार्थ मनुष्य बराबर थोडा थोडा पानी पिया करें।

(२१) अपां संस्पर्शनात् स्नानात् पानाद् दर्शनतोऽपि वा ।
मनुष्या सिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तरक्षालिताः ॥

(पद्मपुराण)

इति श्री भास्करशर्मणा गोविदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये जलविज्ञानीयो नाम
दशमोऽध्यायः समाप्तः



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जलोपयोगमार्ग—(आवश्यकता नुसार शीतल या उष्ण) जल के संस्पर्शन से, स्नान से, पीने से तथा उसके दर्शन से भी अन्तर्बाह्य शुद्ध हुए मनुष्य (अपने रोगहरणादिकार्यों में) सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

वक्तव्य—संस्पर्शन—इससे अभिमन्त्रण, प्रोञ्छन (Sponging) आर्द्रवस्त्रावेष्टन (Wet pack), स्वेदन इत्यादि बाह्य उपचार अभिप्रेत होते हैं।

इति भास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां जलविज्ञानीयोनाम
दशमोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकादशोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) अन्नाद् भूतानि जायन्ते; जातान्यन्नेन वर्धन्ते ।
अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते ॥
(तैत्तिरीयोपनिषद्)

अन्ननिरुक्ति—अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही वृद्धि करते हैं। (प्राणियों द्वारा) भक्षण किया जाता है (अद्यते) तथा (प्राणियों को) भक्षण करता है (अत्ति) इसलिये उसे अन्न कहते हैं।

(२) अद्यते विधिवद् भुक्तमत्ति भोक्तारमन्यथा ।
आयुष्यं स्वास्थ्यदं पूर्वमन्यथैवेतरत् स्मृतम् ॥

यथाविधि सेवन किया हुआ अन्न भोक्ता के द्वारा भक्षित होता है, इसके विपरीत (अयथाविधि सेवित अन्न) भोक्ता को भक्षण करता है। प्रथम दीर्घायुष्यप्रद और स्वास्थ्यकर और द्वितीय अल्पायुष्कर और अस्वास्थ्यप्रद होता है ऐसा कहते हैं।

(३) आहारात्सर्वभूतानि संभवन्ति महीपते ।
आहारेण विवर्धन्ते तेन जीवन्ति जन्तवः ॥ (महाभारत)

हे राजन् ! आहार से सर्व जीवों की उत्पत्ति होती है तथा आहार से ही सर्व जीवों की वृद्धि होती है; (तात्पर्य) आहार से ही जीव जीवित रहते हैं।

(४) शक्यते दुस्त्यजेऽप्यर्थे चिररात्राय जीवितुम् ।
न तु भोजनमुत्सृज्य शक्यं वर्तयितुं चिरम् ॥ (महाभारत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्नमाहात्म्य—त्याग करने के लिए कठिन धन को छोड़कर भी जीव दीर्घकालतक जीवित रह सकता है, परन्तु आहार को छोड़कर दीर्घकाल जीवित रहना अशक्य है।

(५) तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति।
यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा॥

(मार्कण्डेयपुराण)

जहाँ निवास होता है वह गृह है, जिससे जीव जीवित रहता है वह अन्न है, जिससे मोक्ष मिलता है वह ज्ञान है और अन्य सब अज्ञान है।

(६) अन्नाहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं
कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं
तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम्॥ (योगवासिष्ठ)

अनिन्द्य कर्म से आहारप्राप्ति करें, प्राणों का धारण करने के लिए आहारसेवन करें, तत्त्वजिज्ञासा के लिए प्राण धारण करें और दुःख निवृत्ति के लिए तत्त्वजिज्ञासा करें।

वक्तव्य—प्राणसंधारणार्थम्—न कि जिह्वालौल्यार्थम्।

(७) अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्)
अन्न को परब्रह्म समझना चाहिए।

(८) अन्नं न निन्द्यात्, तद्व्रतम्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्)
अन्न की निन्दा न करें, यही व्रत (सदैव) धारण करें।

(९) अन्नं न परिचक्षीत, तद्व्रतम्॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्)
अन्न का परित्याग न करें, यही व्रत (सदैव) धारण करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१०) अन्नं च बहु कुर्वीत, तद्व्रतम् ॥ (तैत्तिरीयोपनिषद्)

अन्न की प्रशंसा करें, यही व्रत (सदैव) धारण करे ।

(११) उपघातमृते दोषं नान्नस्योदीरयेद्बुधः ॥ (मार्कण्डेयपुराण)

उपघात (जनक दोष) को छोड़कर अन्न के अन्य किसी दोष का उच्चार न करें ।

वक्तव्य—उपघात-प्राणघात या रोगोत्पत्ति ।

(१२) पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ (मनु)

अन्न का सदैव संमान करें; निंदा न करते हुए उसको सेवन करें; उसको देखकर हर्षित तथा प्रसन्न हुआ करें, तथा सदैव उसका प्रतिनन्दन करें ।

वक्तव्य—प्रतिनन्दनम्—नित्यमस्माकमेतदस्त्वित्यभिधाय वन्दनम् (मन्वर्थमुक्तावलि)

(१३) पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति ।
अपूजितं तु तद् भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ (मनु)

पूजित अन्न (सेवन करने वाले को) सदैव बल (Strength) और ऊर्जा (energy) प्रदान करता है और अपूजित अन्न दोनों का नाश करता है ।

वक्तव्य—पूजितम्—पूज्य भावना रखकर सेवन किये हुए अन्न का पाचन तथा परिपाक अच्छा होता है, तथा वह स्वास्थ्यप्रद होता है अन्यथा नहीं–प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति । (सुश्रुत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१४) अमृतं कल्पयित्वा तु यदन्नं समुपागतम् ।
प्राणाग्निहोत्रविधिना भोज्यं तद्वदघापहम् ॥
(बृहद्याज्ञवल्क्य स्मृति)

जो अन्न सामने आता है उसको अमृतसम मानकर प्राणाग्निहोत्र-विधिसे सेवन करना चाहिए। तब वह पापहर (रोगहर) होता है।

(१५) न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारानुपयोजयेत् ।
परीक्ष्य हितमश्नीयाद्, देहो ह्याहारसंभवः ॥ (चरक)

जिह्वा लौल्य या अज्ञान से अन्नद्रव्यों का सेवन न करें, किन्तु उनका ठीक परीक्षण करके सेवन करें, क्यों कि देह आहार से बना है।

वक्तव्य—मनुष्य जिन खाद्य द्रव्यों को सेवन करता या करना चाहता है उनके गुणधर्मों को जान लें और जो प्रकृति की दृष्टि से अनुकूल हितकर हो उन्हें उपर्युक्त स्वरुप की मनोवृत्ति से सेवन करें।

(१६) अन्नमशितं त्रेधा विधीयते; तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांऽसं, योऽणिष्ठस्तन्मनः ।
(छांदोग्योपनिषद्)

अन्न का त्रिविध विपाक—सेवन किया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त होता है, उसका स्थूल (दुष्पाच्य) भाग पुरीष बनता है, मध्यम (रस) भाग मांस (आदि धातुओं से बना हुआ शरीर) बनता है; और सूक्ष्म भाग मन बनता है।

(१७) आचारः कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।
वचनं श्रुतमाख्याति, स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥
(शिवपुराण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्न और शरीर संहनन—मनुष्य का आचरण उसके कुलशीलको, शरीर संहनन उसके द्वारा सेवन किये जानेवाले अन्नको, भाषण उसकी विद्वत्ता को और नेत्र उसके सौहार्द को प्रकट करते हैं।

वक्तव्य—वपुराख्याति भोजनम्—अस्थि, संधि, मांस इत्यादि धातुओं की दृष्टि से शरीरका संहनन–गात्रं वपुःसंहननम्। अमर। तत्र समसुविभक्तास्थि सुबद्धसन्धि सुनिविष्टमांसशोणितं सुसंहतं शरीरमित्युच्यते। (चरक) इसके विपरीत कुसंहतशरीर होता है।

यह कथन मनुष्य के नित्य प्रति सेवन किये जानेवाले भोजन के संबंध में है, नैमित्तिक एकाधदिन सेवन किये गये भोजन के लिए नहीं है। क्योंकि एकाधदिनके उत्कृष्ट या निकृष्ट भोजन का संहनन पर कोई दृश्य परिणाम नहीं होता। जब मनुष्य का भोजन सात्त्विक, स्निग्ध, हृद्य, उचित मात्रा में 'सर्वग्रह' 'परिग्रह' युक्त अर्थात संतुलित (Balanced) रहता है तब उस का शरीर सुसंहत होता है और भोजन निकृष्ट होने से शरीर कुसंहत हुआ करता है। अतः किसी व्यक्ति के शरीरसंहनन को देखकर वह नित्य किस प्रकार का भोजन सेवन करता है इसका अनुमान किया जा सकता है यह इस वचन का अर्थ है।

(१८) दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ (वृद्धचाणक्य)

अन्न और प्रजा—दीप अन्धकार को भक्षण करता है और (काली) कज्जली को उत्पन्न करता है। (ठीक ही है) सदैव जैसा अन्न सेवन किया जाता है वैसी प्रजा होती है।

वक्तव्य—अन्न से ही पुरुष के शरीर में शुक्राणु या पुँबीज (spermatozoa) और स्त्री के शरीर में आर्तव या स्त्रीबीज (ovum) उत्पन्न होता है और इनसे प्रजा उत्पन्न होती है।

(१९) आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः। (छांदोग्योपनिषद्)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्न और मन—सेवन किये जाने वाला अन्न शुद्ध रहने से अन्तः करण भी शुद्ध होता है।

(२०) सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते। (बृहस्पति)

अन्नशुद्धि श्रेष्ठता—सब शुद्धियों में अन्नशुद्धि का विशेष (महत्त्व) होता है।

वक्तव्य—अन्नशौच—शरीर, मन और प्रजा अन्न से ही उत्पन्न होने के कारण तथा प्रभावित होने के कारण उनको शुद्ध, पवित्र तथा स्वस्थ रखने का सर्वश्रेष्ठ साधन शुद्ध अन्न ही होता है। अतः मनुष्य को जिन-जिन विषयों में शुद्धता रखने की आवश्यकता होती है उन सब विषयों में अन्न प्रथम क्रमांक में आता है।

पूर्वकाल में बाजारहाट में शुद्ध खाद्यपेय मिलने की अधिक संभावना रहती थी और धार्मिक बन्धनों के कारण घर के बाहर यावच्छक्य खान-पान नहीं किया जाता था। अब विज्ञान की उन्नति, यान्त्रिक प्रगति, कृत्रिम खाद्यपेयों की उत्पत्ति, लोभी भ्रष्टाचारी समाज-कण्टक खाद्यपेयविक्रेताओं द्वारा खाद्यपेयों में की जानेवाली स्वास्थ्य-हानिकर द्रव्यों की मिलावट, गंदे जलपान गृह, होटेल, रेस्टोराँ तथा उन में खाद्यपेय सेवन करने की प्रवृत्ति तथा परिस्थिति इत्यादि कारणों से शुद्ध खाद्यपेय मिलना अशक्यप्राय हो गया है और प्राप्त करना एक समस्या उत्पन्न हुई है। फिर भी शरीर, मन और प्रजा को स्वस्थ और पवित्र रखने की इच्छा रखनेवालों को निराश न होना चाहिए, किन्तु वैद्य डाक्टरों से दूर रहने के लिए तथा औषधियों के लिए होनेवाले अन्धा-धुन्ध धनापव्यय से बचने के लिए भरसक प्रयत्न कर शुद्ध सात्त्विक अन्न प्राप्त कर लेना चाहिए और यदि उसके लिए अधिक धनव्यय करने की आवश्यकता हो तो भी करना चाहिए। संक्षेप में, प्रत्येक व्यक्ति को अपने धनव्यय के विषयों में शुद्धान्न को अग्राधिकार (First preferance) और मनोविनोद, भोगविलास के विषयों को गौण स्थान देना चाहिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ (वृद्धचाणक्य)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्येऽन्नविज्ञानीयो नाम-
एकादशोऽध्यायः समाप्तः ।



पृथ्वीपर (वस्तुत) जल, अन्न और सुभाषित ये ही तीन रत्न हैं (और दूसरे रत्न नहीं हैं) परन्तु मूर्खों ने पत्थरों के टुकडों को रत्न संज्ञा प्रदान की है ।

वक्तव्य—रत्न-जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते (मल्लीनाथ)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायामन्नविज्ञानीयोनाम-
एकादशोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो विविधाशितपीतविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण ।
तप्तं विकृतं मथितं तथापि यत्स्नेहमुद्गिरति ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

दूध—जो तपाने पर, जमानेपर मथानेपर स्नेह (मक्खन) को उगलता है उस सहज मधुर, पवित्र दूध की तुलना में कौन बैठ सकता है ।

(२) नोचेद् गवां यदि पयः पृथिवीतलेऽस्मिन्
संवर्धनं न च भवेद्विधिसंततीनाम् ।
यो जायते विधिवशेन तु सोऽपि रूक्षो
निर्वीर्यशक्तिरहितोऽतिकृशः कुरूपः ॥

गोदुग्ध—इस पृथ्वी पर यदि गौ का दूध न हो तो ब्रह्मा की प्रजा का ठीक संवर्धन नहीं हो सकता । दुर्भाग्यवश जो उसके विना जन्म लेगा वह रूक्ष, निर्वीर्य, दुर्बल, अतिकृश और कुरूप बनेगा ।

वक्तव्य—जायते विधिवशेन—प्राणियों के शरीर की नीव गर्भावस्था में बनती है । उस अवस्थामें उसको पौष्टिक खाद्य मिलना आवश्यक होता है । जैसे जन्म के पश्चात् वैसे जन्म के पूर्व भी दूध विशेषतः गौ का दूध, सर्व श्रेष्ठ खाद्य होता है । तात्पर्य प्रत्येक स्त्री को सगर्भावस्था में दूध मिलने पर ही उसका बालक हृष्टपुष्ट और स्वस्थ हो सकता है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ।
तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ॥

गौ का दूध अमृत है ऐसा इन्द्रने कहा है; अतः जो गोदान देता है वह (दान लेने वाले को) अमृत का ही दान देता है ।

वक्तव्य—गवां क्षीरम्—सर्व दुग्धों में श्रेष्ठ–गोक्षीरं क्षीराणाम् (चरक) गव्यं तु, जीवनीयं रसायनम् । (अ० संग्रह) यदि वह धारोष्ण मिले तो फिर क्या कहना है । 'उत्पत्ति परिपूतायाः' श्लोक (पृष्ठ ६६) का वक्तव्य देखिए ।

(४) अमरत्वं यथा स्वर्गे देवानाममृताद्भवेत् ।
तक्राद् भूमौ तथा नृणाममरत्वं हि जायते ॥ (क्षेमकुतूहल)

तक्र—जैसे स्वर्ग लोक में अमृत के कारण देवता अमर हो जाते हैं, वैसे इहलोक में तक्र के कारण मनुष्य अमर हो (सक)ते हैं ।

(५) अमृतं दुर्लभं नृणां, देवानामुदकं तथा ।
पितृणां दुर्लभः पुत्रस्तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥

जैसे मनुष्यों के लिए अमृत, देवताओं के लिए जल, पितरों के लिए पुत्र वैसे इन्द्र के लिए तक्र दुर्लभ होता है ।

(६) कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्
वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः ।
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः
कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनताममिश्च किं विन्दति ॥

कैलास में यदि तक्र होता तो (विष प्राशन के पश्चात्) शंकर नीलकण्ठ क्यों बनते ? वैकुण्ठ में यदि तक्र होता तो कृष्ण काले क्यों बनते ! इन्द्र भगयुक्त, चन्द्र क्षययुक्त, गणपति तोंदयुक्त, कुबेर कुष्ठयुक्त और अग्नि दाहयुक्त क्यों रहते ?

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(७) घृतेन जुहुयादग्निं, घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।
घृतं दद्याद् ,घृतं प्राशेद् गवां पुष्टिं समश्नुते ॥

घृत—अग्नि में गोघृत से आहुति दें, स्वस्तिवाचन करें, उसका दान करें और उसी का सेवन करें, इससे पुष्टि प्राप्त होती है ।

(८) आयुर्घृतं, नदी पुण्यं, भयं चोरः, सुखं प्रिया ।
वैरं द्यूतं, गुरुर्ज्ञानं, श्रेयो ब्राह्मणपूजनम् ॥

(रुद्रालंकारटीका)

घी आयुर्वर्धक, नदी (स्नान) पुण्यदायक, चोर भयावह, पत्नी सुखदायक, द्यूत शत्रु, गुरु ज्ञानदायक और ब्राह्मणपूजन श्रेयस्कर होते हैं ॥

(९) अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति ।
शोभैव मन्थरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना ॥

(शिशुपालबध)

विद्वान् लोक अग्नि में जो हवन करते हैं वही वस्तुतः अमृत है । मन्थराचलरूप मथनी से मथे गये समुद्र (के क्षुब्ध होने का और उससे अमृत के निकलने) का वर्णन केवल शोभामात्र है ।

वक्तव्य—मन्त्रजिह्वः—मन्त्रा एव जिह्वा येषाम्, अग्नि–मन्त्रजिह्वः सप्तजिह्वः सुजिह्वो हव्यवाहनः । (वैजयन्ती) अमृतम्–घृत—अमृतं यज्ञशेषे स्यात पीयूषे सलिले घृते (मेदिनी) इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि समुद्रमन्थन से निकला हुआ अमृत एक काल्पनिक वस्तु है, इहलोक के लिए घृत ही अमृत है ।

(१०) श्रेयः पुष्पफलं वृक्षाद् , दध्नः श्रेयो घृतं स्मृतम् ।
श्रेयस्तैलं च पिण्याकाच्छ्रेयान् धर्मस्तु मानुषात् ॥

(पंचतन्त्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वृक्ष से पुष्पफल श्रेयस्कर होते हैं, दही से घृत श्रेयस्कर होता है; पिण्याक से तेल श्रेयस्कर होता है और मनुष्य से धर्म श्रेयस्कर होता है।

वक्तव्य—पिण्याकः-तिलादीनां निष्पीडितकल्क-उद्धृततैलस्तिलादिपिण्डः (हेमाद्रि) तिलादि की खली। तिल्ली, आखरोट, चीनियाबादाम, बादाम, सूखी या गीली नारियल की गरी ये द्रव्य भीतरी तेल के कारण श्रेयस्कर अन्न द्रव्य होते हैं। तेल निकालने पर जो खली बचती है वह भोजन की दृष्टि से अत्यन्य निकृष्ट होती है। दूध भी अत्यन्त श्रेयस्कर अन्न द्रव्यों में से है। इसकी श्रेयस्करता तद्गत घी के ऊपर अधिष्ठित है। जब वह घृत मलाई मक्खन के रूप में निकाल दिया जाता है तब बचा हुआ दूध खली के समान निकृष्ट हो जाता है। आजकल निःशर (Skimmed) दूध, पृथक्कृत (Separated) दूध तथा बलदत्त (Toned) दूध ये सब निकृष्ट दूध के ही प्रकार होते हैं।

स्नेह (Fat) शरीर के लिए अनेक प्रकारों से उपकारक होता है। शर्कराजातीय (Carbohydrate) तथा मांसजातीय (Proteins) द्रव्यों की अपेक्षा स्नेह से दुगुनी उष्णता और शक्ति शरीर में उत्पन्न हुआ करती है। तात्पर्य, स्नेह थोड़ी मात्रा में अधिक काम करते हैं। स्नेह द्रव्य शरीर में वसा (Fat) के रूप में संचित होते हैं और दीर्घ अनशन के काल में बंक में जमा किये हुए पैसे के समान उपयोगी होते हैं। शरीर के लिए अनेक जीवनीयों (Vitamins) की आवश्यकता होती है। इनमें 'बी' जीवनीय जो मस्तिष्क संस्थान के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त होता है, स्नेहविलेय है। अतः स्निग्ध द्रव्यों के ही द्वारा उसको मनुष्य प्राप्त कर सकता है। वैद्यकशास्त्र की दृष्टि से सब स्नेहों में घृत सर्वश्रेष्ठ होता है—सर्पिस्तैलं वसा मज्जा सर्वस्नेहोत्तमा मताः। एषु चैवोत्तमं सर्पिः (चरक) अतः स्निग्ध द्रव्यों में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसीका सेवन सबसे अधिक होना हितकर है, परन्तु समय ऐसा आगया है कि सामान्य मनुष्यों के लिए, जैसे कि निम्न सुभाषित में वर्णित है, उसका दर्शन तक अशक्य हो गया है—आनंदताण्डवपुरे द्रविडस्य गेहे, चित्रं वसिष्ठवनितासममाज्यपात्रम्। विद्युल्लतेव परिनृत्यति तत्र दर्वी धारां विलोकयति योगबलेन सिद्धः ॥ 'न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं' श्लोक (पृष्ठ १११) भी देखिए।

(११) यत्र नास्ति दधिमन्थनघोषो, यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि ।
यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि किं बत गृहाणि वनानि ॥

जिन घरों में दही मथने की आवाज, नन्हें नन्हें बच्चे, गुरुजनों का आदर और पूजन नहीं है, क्या वे घर हैं या जंगल ?।

वक्तव्य—लघुलघूनि शिशूनि-गृहरत्नानि बालकाः। दधिमन्थनघोष-इससे दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घी तथा दूध से बनने वाले अन्य खाद्य द्रव्यों की ओर संकेत होता है। तात्पर्य यह एक उपलक्षण है—स्वप्रतिपादकत्वे सति स्वेतरप्रतिपादकत्वम्। वैद्यकीय दृष्ट्या शाकाहार निकृष्टाहार है। उसको उत्कृष्ट करने की दृष्टि से उसमें दूध जैसे प्राणिज द्रव्यों का होना अत्यन्त आवश्यक है। व्यावहारिक दृष्ट्या दूध के खाद्य द्रव्यों से शाकाहार में बहुत विविधता, रोचकता और परिपूर्णता ('विना गोरसं को रसो भोजनानां' यह श्लोक (पृष्ठ १०८) तथा उसके आगे के कुछ श्लोक देखिए) आ जाती है। गृहाणि वनानि—इसका आशय यह है कि जिन शाकाहारियों के भोजन में दूध के पदार्थ नहीं होते वे वस्तुतः कन्द-मूल-शाक-फल सेवन करनेवाले जंगली हैं, फिर वे जंगल में भले ही न रहते हो।

(१२) भारतं चेक्षुदण्डं च कलानाथं च वर्णय ।
कालिदासः कविर्ब्रूते प्रतिपर्वरसावहम् ॥ (भोजप्रबन्ध)

इक्षु—(भोज राजा कालिदास से कहते हैं); महाभारत, इक्षुदण्ड

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और चन्द्र इनको तुम (एक शब्द में) वर्णन करो। तिसपर कवि कालिदास कहते हैं कि ये तीनों प्रतिपर्वरसावह होते हैं।

वक्तव्य—पर्व—(१) महाभारत के विभाग, (२) गन्ने के पोर, गाँठों के बीच का भाग, (३) चन्द्र की पौर्णिमा प्रतिपदा इत्यादि तिथियाँ। प्रतिपर्वरसावह—प्रत्येक पर्व पर अधिकाधिक मधुर रस देने वाला। आगे का श्लोक देखिए।

(१३) इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः।

तद्वत्सज्जनमैत्री, विपरीतानां तु विपरीता ॥ (भोजप्रबंध)

जैसे गन्ने के अग्र से क्रमशः (नीचे की ओर) पर्व पर्व में रस-विशेषता हुआ करती है वैसे सज्जनों की मैत्री होती है और विपरीतों की इससे विपरीत रहती है।

वक्तव्य—गन्ना अग्र के पास कुछ नीरस रहता . परन्तु मूल की ओर प्रत्येक पर्व में वह अधिकाधिक मधुर तथा रसीला होता जाता है।

(१४) कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि
किञ्चासि पञ्चशरकार्मुकमद्वितीयम्।
इक्षो तवास्ति सकलं परमेकमूनं
यत्सेवितो भजसि नीरसतां क्रमेण ॥ (भोजप्रबंध)

हे ईख ! तुम ऊपर से चमकीले हो, सदैव मधुर हो तथा रस से भरे हों, कामदेव के अद्वितीय बाण हो; तात्पर्य तुझमें सब कुछ है परन्तु चूसने पर तुम धीरे-धीरे रसहीन हो जाते हो यह एक तुझमें बड़ा भारी दोष है।

(राजा की दृष्टि से)-हे राजन् ! तुम कमनीय हो, सदैव मधुर-(भाषी) हो, रसिक हो, सर्वाधिक मोहक हो, तुझमें सभी गुण हैं किन्तु एक बात की कमी है कि सेवा करते रहने पर तुम धीरे-धीरे उसकी अवज्ञा करने वाले बनते हो।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—भोज राजा के यहाँ मयूर कवि थे। अतिपरिचय से उनकी कुछ अवज्ञा हुई थी जिसका शल्य उनके मन में था। एकबार राजा और कवि साथ थे, उतने में माली ने बगीचे से इक्षुदण्ड लाकर उनके सामने रक्खा। तब ईख का निमित्त करके कवि ने इस अन्योक्ति के रूप में राजाको चुटकी ले ली। तब 'राजा कविहृदयं ज्ञात्वा मयूरं संमानितवान्'।

पञ्चशरकार्मुक—कामदेव के प्रसिद्ध पञ्चबाण ये हैं—अरविंदमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः॥ इनमें इक्षु नहीं है, परन्तु अन्यत्र उसका उल्लेख मिलता है—इक्षुर्धन्वशराः प्रसूनविततिर्भृङ्गावली सिञ्जिनी। ये कामदेव के वृक्षबाण हैं। उसके गुणबाण भी होते हैं—संमोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः॥ इसके आधार पर 'सर्वाधिक मोहक तथा उन्मादक जिसका रूप है' ऐसा राजा की दृष्टि से इसका अर्थ होता है। सेवित—(१) सेवा करने पर। (२) चर्वण, भक्षण करने पर। परमेकमूनम्—यह शब्दप्रयोग न द्व्यर्थी है, न गुण-दोपदर्शक है, यह केवल वस्तुस्थितिनिदर्शक है और इसका अर्थ है रसहीन होना, जो राजा और इक्षु दोनों के लिए समानरूपेण लागू है। इस वचन से कवि ने यह बतलाया कि भक्षण (सेवन) करनेवालों के प्रति ईख का रसहीन होना उसके लिए शोभादायक होता है, परन्तु सेवा करने वालों के प्रति आपका रसहीन होना आपको शोभा नहीं देता। इक्षु जहाँ तक हो सके स्वयं दाँतों से निष्पीडन करके सेवन करना चाहिए। इसमें ईख की सफाई की ओर ध्यान जाता है, मुख की सफाई होती है, दाँत और चर्वण की पेशियाँ मजबूत बनते हैं, रस अल्पाल्पमात्रा में और बहुत लालाके साथ मिश्र होकर पेट में चला जाता है जिससे उसका पाचन और प्रचूषण शीघ्रता से हुआ करता है। इसके अतिरिक्त बहुत देर तक मधुर रस सेवन करने के लिए मिलने के कारण मनको बड़ा भारी संतोष होता है। वैद्यक में इसलिए इक्षु दाँतों से ही सेवन करने के लिए कहा—दन्तैर्निष्पीड्य साक्षादमृत-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मयरसं भक्षयेदिक्षुदण्डम् ॥ धन्वन्तरिनिघण्टु ॥ यन्त्रपीडित रस की स्थिति इससे पूर्णतया विपरीत होने से जहाँ तक हो सके उसका सेवन न करना चाहिए।

(१५) सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य जगत् समस्तं
त्रयः पदार्था हृदयं प्रविष्टाः।
इक्षोर्विकारा मतयः कवीनां
मुग्धाङ्गनापाङ्गतरंगितानि ॥ (भोजप्रबन्ध)

संपूर्ण जगत् का बारंबार चिन्तन करने पर केवल तीन पदार्थ मन में बैठ गये हैं; (प्रथम) इक्षु के (रस गुड़, शर्करा तथा उनसे बनाये गये असंख्य मिष्टान्नादि) पदार्थ; (द्वितीय) कवियों के (काव्यों में प्रकट हुए सुंदर सुंदर) विचार; (तृतीय) मुग्ध युवतियों के अपांगों की चञ्चलता।

(१६) इतरवृक्षफलं फलमेवतन्नृप रसालफलं त्वमृतं मतम्।
यदि तदीयरसः सितया युतः सघृतपोलिकयास्य न चोपमा॥
(शिवकाव्य)

आम्र—हे राजन्! इतर वृक्षों के फल कहने को फल हैं, आम्रफल ही अमृत फल है। यदि उसका रस शुभ्र शर्करा और घी मिलाकर रोटी के साथ सेवन किया जाय तो वह अनुपम होता है।

(१७) ख्यातः सर्वरसानां हि लवणो रस उत्तमः।
गृहीतं च विना तेन व्यञ्जनं गोमयायते॥ (हितोपदेश)

लवण—सब रसों में लवण रस सर्वोत्तम (रुचिकारक) होता है, क्योंकि तद्विना किया हुआ व्यंजन गोमय के समान (नीरस) लगता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—व्यञ्जन-व्यञ्जनं शाकसूपादिमिष्टान्नं तेमनं स्मृतम् (राजनिघण्टु); लवण रस के न होने से इतर रस होते हुए भी शाकसूपादि खाद्य द्रव्यों की रुचि कितनी घृणाजनक होती है यह इस श्लोक में और उसके होने से वे कितने हृदयंगम होते हैं यह अगले श्लोक में बतलाया है।

(१८) अस्माच्छास्त्रवराद् बोधा जायन्ते ये विचारितात्।
लवणैर्व्यञ्जनानीव भान्ति शास्त्रान्तराणि तैः॥

(योगवासिष्ठ)

लवण से जैसे (शाकादि) व्यञ्जन रुचिकर मालूम होते हैं वैसे विचार-प्रवर्तक (योगवासिष्ठ नामक इस) श्रेष्ठ शास्त्र से जो बोध प्राप्त होते हैं उनसे अन्य शास्त्र हृदयंगम हो जाते हैं।

(१९) मुग्दाली गदव्याली कवीन्द्र वितुषा कथम्।
भक्तवल्लभसंयोगे जाता विगतकञ्चुकी॥

(भोजनप्रबंध)

मूँग की दाल—हे कवीन्द्र! रोगों के लिए नागिन (के समान घातक) यह मूँग की दाल छिलके से विरहित कैसे हो गयी? (इस पर कालिदास कहते हैं) जैसे पति से एकान्त होनेपर स्त्री विवस्त्र हो जाती है वैसे चावल रूप अपने पति के साथ होनेपर दाल निस्तुष हो गयी।

वक्तव्य-गदव्याली-गदानां व्याली सर्पिणी विनाशकारी। मुद्गदाली-मूँग एक अत्यन्त पथ्यकर अन्न है और सर्व दालों में श्रेष्ठ है—मुद्गाः शमीधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमा भवन्ति। (चरक); यूष या सूप बनाने के द्रव्यों में भी मूँग सर्वश्रेष्ठ है और उसका यूष भी यूषों में पथ्यतम हुआ करता है—मुद्गः सूप्योत्तमः स्मृतः। (चरक) ज्ञेयः पथ्यतमश्चैव

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मुद्गयूषः कृताकृतः । (सुश्रुत); मूँग का सेवन रोगियों के लिए खिचड़ी के रूप में या जिनको केवल द्रवान्न सेवन करना है उनके लिए यूष या सूप के रूपमें हुआ करता है। मूँग अन्न है। अन्न महौषधि है और पथ्यकर अन्न रोगनाशन में औषधियों से भी श्रेष्ठ होता है। इसलिए मूँग को गदव्याली कहा है।

भोजराजा ज्वरित हुए तब पथ्याहार करके उन्हें मूँग की खिचड़ी खाने के लिए कहा गया। जब खिचड़ी सामने आ गयी तब प्रथम श्लोकार्ध का प्रश्न उन्होंने किया और कालिदास ने द्वितीय श्लोकार्ध में उसका उत्तर दिया।

(२०) नवं वस्त्रं, नवं छत्रं, नव्या स्त्री, नूतनं गृहम्।
सर्वत्र नूतनं शस्तं, सेवकान्ने पुरातने ॥

(नीतिप्रदीप)

पुराना धान्य—नवीन वस्त्र, नवीन छत्र, नवोढा स्त्री, नवीन घर ये सब नये नये प्रशस्त होते हैं, परन्तु सेवक और अन्न (नये नहीं) पुराने ही प्रशस्त होते हैं।

वक्तव्य—अन्न—धान्य, अनाज जैसे गेँहू, चावल इत्यादि—आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा। (मनु) पर्जन्यादन्नसंभवः। (गीता) भोजन के लिए पकाया हुआ अन्न यह अर्थ (पृष्ठ ५६) यहाँ नहीं है। पुरातन-एक वर्ष से पुराना धान्य। एक वर्ष तक धान्य गरिष्ठ और पेट में वायु प्रकोपक होता है उसके बाद वह हलका सुपाच्य होता है। इसलिए वैद्यक में एक वर्ष से अधिक पुराना धान्य सेवन करने के लिए कहा है—नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोषितम्। शूकधान्यं शमीधान्यं समातीतं प्रशस्यते। (चरक)

(२१) अभ्रच्छाया खलप्रीतिः सिद्धमन्नं च योषितः।
किञ्चित्कालोपभोग्यानि यौवनानि धनानि च ॥ (हितोपदेश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सिद्धान्न—मेघों की छाया (भ्रमणशील होने से), दुर्जनों की मित्रता (उनके दुष्ट स्वभाव के कारण), पकाया हुआ अन्न (जल्दी खराब होने के कारण) स्त्रियाँ, यौवन और धन (अतिदीर्घ काल सेवन करने पर स्वास्थ्यनाश होने के कारण) ये अल्पकाल तक ही उपभोग लेने योग्य होते हैं।

वक्तव्य—सिद्धान्न—पकान्न, कृतान्न, भोजन करने के लिए पकाया हुआ अन्न। यह अन्न उष्ण स्थिति में ही सेवन करना चाहिए। यह स्थिति अधिक काल तक नहीं रह सकती। अधिक काल रहनेपर अन्न ठण्डा, नीरस और कभी कभी खराब भी हो जाता है।

(२२) पक्कान्नमिव राजेन्द्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः।
प्रत्यक्षे च परोक्षे च रक्षितव्याः प्रयत्नतः॥

(सुभाषितावलि)

हे राजेन्द्र! पकाये हुए अन्न के समान सामने तथा पीछे बहुत प्रयत्न करके सर्व सामान्य स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए।

वक्तव्य—पकाया हुआ अन्न भोजन के समय सामने और अवशिष्ट अन्न भोजन के पश्चात् परोक्ष में मक्खियाँ, धूलि इत्यादि से परिरक्षित करके रखना चाहिए।

(२३) अन्नाद्दशगुणं पिष्टं, पिष्टाद्दशगुणं पयः।
पयसोऽष्टगुणं मांसं, मांसाद्दशगुणं घृतम्॥ (वृद्धचाणक्य)

विविध अन्नों की पौष्टिकता—चावल से कई गुना (गेहूँ आदि का) आटा, आटे से कईगुना दूध, दूधसे कई गुना मांस और मांस से कई गुना घी पुष्टिकर होता है।

(२४) शाकेन रोगा वर्धन्ते, पयसा वर्धते तनुः।
घृतेन वर्धते वीर्यं, मांसान्मासं प्रवर्धते॥ (वृद्धचाणक्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शाकों से रोग, दूध से शरीर, घी से वीर्य और मांस से मांस बढ़ता है।

वक्तव्य—शाकेन रोगा वर्धन्ते—शाक भाजी बहुत जल्दी बासी होती है, सड़ती है, कीड़ों मकोड़ों से तथा उनके अण्डों से युक्त रहती हैं, मलमूत्रयुक्त पानी से उत्पन्न की जाती है जिससे आन्त्रज्वर, विसूचिका, अतीसार (Dysentery) कृमि इत्यादि के उपसर्ग संक्रान्त हो सकते हैं। अतः उनकी ओर ध्यान न देने से वे अनेक रोगों का कारण हो सकती हैं। मांसान्मांसम्—धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारविकारैरभ्यनस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति। तस्मान्मांसमाप्यायते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः। चरक। इसका तात्पर्य यह है कि मांस से शरीर के सब धातु बढ़ते हैं परन्तु मांस सबसे अधिक। इसलिए शरीर पुष्टि के लिए मांस से बढ़कर अन्य कोई द्रव्य नहीं है—न हि मांससमं किञ्चिदन्यद् देहबृहत्त्वकृत। (वाग्भट) पृष्ठ ५६ पर वक्तव्य देखें।

(२५) प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।

स्थावरं जंगमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ (मनु)

मांसान्न—ब्रह्माने यह सर्वसृष्टि प्राणियों के अन्न के लिए उत्पन्न की है। अतः स्थावर जंगम सब सृष्टि प्राणियों का भोजन होता है।

(२६) अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम्।

फल्गूनि तत्र महतां, जीवो जीवस्य जीवनम्॥ (भागवत)

हाथ न होनेवाले हाथ होनेवालों के, पैर न होनेवाले चतुष्पादों के और छोटे बड़ों के, इस प्रकार (एक) जीव (दूसरे अधिक बलवान्) जीव का भोजन होता है।

(२७) मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।

एतन्मांसस्य मां स त्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ (मनुस्मृति)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मांसनिरुक्ति—इहलोक में जिसका मांस मैं खाता हूँ परलोक में मुझे वह खाता है यह मांस शब्द का मांसत्व विचारी कहते हैं।

(२८) योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥

(हितोपदेश)

मांसाहार का महादोष—जब कोई किसी का मांस खाता है तब दोनों में अन्तर देखिए; एक को (मांस खाते समय) क्षणैक आनंद होता है और दूसरा (सदा के लिए अपने) प्राणों को खो बैठता है।

(२९) यद्यस्य विहितं भोज्यं न तत्तस्य प्रदुष्यति।
अभक्ष्ये बहुदोषः स्यात्तस्मात्कार्यो न व्यत्ययः ॥

(पंचतंत्र)

भक्ष्याभक्ष्य विचार—(स्वास्थ्य दृष्टि से) जिसका जो स्वाहार होता है वह उसको विकारप्रद नहीं होता; (इसके विपरीत) अन्याहार सेवन में बहुत विकार हो सकते हैं, इसलिए स्वपर आहार में विपर्यय न करें।

(धर्मदृष्टि से)—जिसका जो धर्मविहित आहार होता है वह उसको पापप्रद नहीं होता; (इसके विपरीत) धर्मनिषिद्ध आहार सेवन में बहुत पाप होता है; इसलिए भक्ष्याभक्ष्य का विपर्यय न करें।

वक्तव्य—विहित—(१) धर्मशास्त्र विहित, धर्मशास्त्र के आधार-पर जिसका सेवन किया जा सकता है, नित्य सेवन से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं है। (२) उचित अभ्यस्त ओकसात्म्य, नित्यसेवन किया जानेवाला दैनिक आहार। पंचतन्त्र में श्येन यही कहता है–तत्स्वाहार-कांक्षिणं मां किं दूषयसि। दोष (१) पाप। (२) विकार या रोग। अभक्ष्य—'नास्ति अभक्ष्यं क्षुधितस्य' इस वचन का वक्तव्य देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३०) मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् । (चाणक्यसूत्र)

सब के लिए मांसाहार उपयुक्त नहीं होता।

(३१) न शास्त्रमस्तीत्येतावत् प्रयोगे कारणं भवेत् ।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगानेकदेशिकान् ॥

(३२) रसवीर्य विपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके ।
कीर्तिता इति तत् किं स्याद् भक्षणीयं विचक्षणैः ॥

(कामसूत्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये विविधाशीतपीतविज्ञानीयो नाम
द्वादशोध्यायः समाप्तः ।



शास्त्र (में वर्णित) है इतनी बात किसी (द्रव्य या सिद्धान्त) का प्रयोग करने के लिए कारण नहीं हो सकती, क्योंकि शास्त्रार्थ सर्वव्यापी होते हैं और प्रयोग एकदेशी (अर्थात् व्यक्ति विशेष या काल विशेष के लिए उपयुक्त) होते हैं। (उदाहरणार्थ) कुत्ते के मांस के रसवीर्य विपाक (आदि गुणधर्म तथा अन्य उपयोग) वैद्यकशास्त्र में वर्णित मिले तो क्या इसलिए विचारी मनुष्यों को वह भक्षणयोग्य होता है ॥

वक्तव्य—शास्त्र—कामशास्त्र। वात्स्यायन ने अपने कामशास्त्र में औपरिष्टक नामक रतिकर्म का वर्णन किया और अन्त में 'तदेतत् तु न कार्यम्' ऐसा भी लिख दिया। इस पर जब औपरिष्टक को करना नहीं है तब उसका वर्णन किं किया ऐसी शंका प्रत्येक के मन में उठती है उसके समाधानार्थ यह वचन इन्होंने लिखा है। श्वमांस—कुत्ते का मांस। कुत्ता पंचनखी प्राणी है। पंचनखी प्राणियों में पाँच छोड़कर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बाकी सब प्राणी अभक्ष्य याने नित्य भोजन में निषिद्ध माने गये हैं। रामबाण से आहत होने पर मृत्युपूर्व वाली रामचन्द्रजी से कहता है कि मेरा मांस अभक्ष्य है, तू ने व्यर्थ में मेरी हत्या की—पञ्चपञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव। शल्यकः श्वाविधो गोधः शशः कूर्मश्च पंचमः (रामायण) वैद्यक की दृष्टि में कोई द्रव्य अनौषधि नहीं होता। 'नानौषधिभूतं' वचन देखिए। अतः उसमें रसायन से लेकर सर्पविष तक सब द्रव्यों के, यहाँ तक की प्राणियों के मलमूत्रादि अपवित्र द्रव्यों के भी, गुणधर्म वर्णित हैं। इसलिए क्या विचारी मनुष्य इन अपवित्र द्रव्यों का सेवन अन्न के तौर पर भोजन में करेगा ?

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां विविधाशीतपीतविज्ञानीयोनाम-
द्वादशोऽध्यायः समाप्तः



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो भोजनविधिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ (चरक)

युक्तायुक्त भोजन का फल—अन्न प्राणियों के प्राण हैं, अयुक्ति से वह प्राणहर विष बनकर प्राणों का नाश करता है और युक्ति से सेवन करने पर वह रसायन होता है ।

वक्तव्य—रसायन—'रसायनं च तज्ज्ञेयं' श्लोक देखिए । युक्तियुक्त-यथाविधि, जैसे आगे वर्णित है ।

(२) विना गोरसं को रसो भोजनानां
विना गोरसं को रसो भूपतीनाम ।
विना गोरसं को रसो कामिनीनां
विना गोरसं को रसो पण्डितानाम् ॥

भोजन में गो दुग्ध—गोरसों (के विविध खाद्य द्रव्यों) के विना मनुष्यों को भोजन में क्या रुचि है ? भूमि के शस्य के बिना राजाओं को (राज्य से) क्या दिलचस्पी है ? नेत्रों के विना (पुरुषों को) स्त्रियों की क्या मजा है ? वाणी के पदलालित्यादि के विना पण्डितों को (भाषा में) क्या आनंद मिलनेवाला है ?

वक्तव्य—गो-(१) गाय प्रथम श्लोक पाद में; (२) भूमि, द्वितीय पाद में, (३) नेत्र, ज्ञानेन्द्रिय, तृतीय पाद में, (४) वाणी, भाषा, चतुर्थपाद में-स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले । लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः । (अमरकोश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं क्षीरभोजनम् ।
अमृतं राजसंमानममृतं प्रियदर्शनम् ॥ (पंचतंत्र)

जाड़ों में अग्नि, भोजन में दुग्धादि से युक्त खाद्य द्रव्य; समाज में राजद्वारा किया गया संमान; और (रुग्णावस्थादि आपत्तियों में) प्रिय मनुष्य का दर्शन अमृत के समान पुनर्जीवन देनेवाला होता है।

वक्तव्य—प्रियदर्शनम्—'व्याधितस्यार्थहीनस्य' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए। क्षीरभोजनम्—पृष्ठ ५५ पर ८ वाँ श्लोक देखें।

(४) वस्त्रहीनस्त्वलंकारो, घृतहीनं च भोजनम् ।
स्तनहीना च या नारी, विद्याहीनं च जीवितम् ॥
(चाणक्यशतक)

भोजन में घृत—उत्तम वस्त्रों के विना (सुवर्णमुक्तादि के) अलंकार (शोभा नहीं देते); घी के विना भोजन (रूक्ष होता है); (पुष्ट) स्तनों के विना नारी (आकर्षक नहीं होती); और विद्यार्जन के विना जीवन (निरर्थक होता है)।

(५) भोजनं देहि राजेन्द्र घृतसूपसमन्वितम् ।
माहिषं च शरच्चन्द्रचन्द्रिकाधवलं दधि ॥ (भोजप्रबंध)

भोजन में दधिसर—हे राजेन्द्र मुझे घी, सूप तथा शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी के समान शुभ्र (और खूब जमा हुआ) भैंस का दही (सर) इनसे युक्त भोजन दो।

वक्तव्य—सूप—सुखेन पीयते इति सूपः। विदलं माषमुद्गादि पक्वं सूपाभिधानकम्। (राजनिघंटु) शाकदालें इनका रस। माहिषंदधि—दूध तपाने पर जैसे ऊपर मलाई की तह जम जाती है वैसे वह दूध जमाने पर भी ऊपर की तह में मलाई रहती है। जमाये हुए दूध के ऊपर मलाई की जो तह होती है 'सर' कहते हैं— दध्नस्तूपरि यो भागो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

घनः स्नेह समन्वितः। स लोके सर इत्युक्तो (भावप्रकाश) यह सर मलाई के कारण नीचे के दही की अपेक्षा बहुत ही स्निग्ध, स्वादु और पौष्टिक होता है—दध्नः सरो गुरुर्वृष्यः कफशुक्रविवर्धनः। (सुश्रुत) गाय के दूध की अपेक्षा भैंस के दूध में स्नेह अधिक होने के कारण उसका सर अधिक स्निग्ध, स्वादु तथा पौष्टिक होता है। यहाँ पर शरच्चन्द्रचन्द्रिका की उपमा तथा शब्दप्रयोग से दधिशब्द दधिसर के लिए प्रयुक्त हुआ है यह चरक के निम्न वचन से स्पष्ट होगा—दध्नः सरं शरच्चन्द्रसंनिभं दोषवर्जितम् ॥

(६) न तद्भुक्तं, न तत्पीतं, न तत्सुप्तं, न तद्गतम्।
यन्मांसमाहिषक्षीरललनावाजिवर्जितम् ॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

भोजन में मांस, माहिषक्षीर का महत्व—मांस के विना (अन्य खाद्य द्रव्यों का सेवन करके किया हुआ भोजन वस्तुतः) भोजन ही नहीं है; भैंस के दूध के विना (अन्य पेयों का पान वस्तुतः) पान ही नहीं है; पत्नी के विना (किया हुआ शयन वस्तुतः) शयन नहीं है और घोड़े के विना (अन्य वाहनों पर किया हुआ भ्रमण वस्तुतः) भ्रमण नहीं है।

(७) आढ्यानां मांसपरमं, मध्यानां गोरसोत्तमम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥ (महाभारत)

हे भरतश्रेष्ठ ! धनाढ्यों का भोजन मांसभूयिष्ठ, मध्यमों का दूधभूयिष्ठ और दरिद्रों का तैलभूयिष्ठ होता है।

वक्तव्य—इस वचन में समाज के तीन स्तरों की आर्थिक स्थिति का विचार करके शक्ति और पुष्टि की दृष्टि से भोजन में किस द्रव्य को प्राधान्य दिया जाय इसका निर्देश किया है। मांस और दूध का महत्व सब जानते हैं तथा उनका प्रचार भी बहुत होता है, परन्तु तैल का महत्व कोई नहीं जानता। फिर भी शक्तिदायकता की दृष्टि से तैल एक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्रेष्ठ द्रव्य है और दरिद्रों को कष्ट करने की आवश्यकता होने के कारण उसके समान सस्ता और शक्तिदायक दूसरा द्रव्य नहीं (पृष्ठ ६६) है। चरक में तैल का पौराणिक इतिहास दिया है—तैलप्रयोगादजरा निर्विकारा जितश्रमाः। आसन्नातिबलाः संख्ये दैत्याधिपतयः पुरा ॥

(८) भोजनान्ते च किं पेयं, जयन्तः कस्य वै सुतः।
कथं विष्णुपदं प्रोक्तं, तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥

तक्र—भोजन के अन्त में क्या पिया जाय ? (तक्रम्); जयन्त किसका पुत्र है ? (शक्रस्य); विष्णुपद कैसा है ? (दुर्लभ), इन्द्र को तक्र दुर्लभ है ॥

वक्तव्य—अन्तरालाप का यह श्लोक है। इस श्लोक के प्रथम तीन पादों में तीन प्रश्न हैं और चतुर्थ पाद में उनका क्रमशः उत्तर है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ पाद का अपना स्वतन्त्र अर्थ भी है।

(९) न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं, नातिसौहित्यमाचरेत्।
नातिप्रगे नातिसायं, न सायं प्रातराशितः ॥ (मनु)

स्नेहविरहित भोजन न करें, अतिमात्रा में भोजन न करें, प्रातः-संध्याकाल और सायंसंध्याकाल में भोजन न करें, तथा दोपहर का भोजन (गरिष्ठ या बहुत) अधिक होने पर रात को भोजन न करें।

वक्तव्य—उद्धृतस्नेहम्—जिसमें किसी भी रूप में स्नेह न हो, रूक्ष। भोजन में स्नेह निम्न प्रकारों से हो सकता है—(१) मलाई, मक्खन, घी इत्यादि के शुद्ध रूप में। (२) इनसे बनायी हुई मिठाई के रूप में। (३) तेल घी इत्यादि में बनायी हुई पूरी, कचौड़ी इत्यादि के रूप में। (४) तेल घी इत्यादि में छौंककर तलकर बनायी हुई शाक, तरकारी, सूप, यूष इत्यादि के रूप में। इनमें प्रथम प्रकार सर्वोत्तम और अन्तिम प्रकार सबसे निकृष्ट होता है। रूक्ष भोजन राजसी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और स्निग्ध भोजन सात्विक होता है। 'श्रेयः पुष्पफलं वृक्षात्' श्लोक (पृष्ठ ६५) और उसकी टिप्पणी भी देखिए।

सौहित्यम्—सुहितस्य भावः सौहित्यम्। सौहित्यं तर्पणं तृप्तिः॥ अमर॥ मात्राऽव्यतिक्रमेण तृप्तिः। मात्रा का अतिक्रमण न करते हुए तृप्ति। अतिसौहित्यम्—मात्राऽतिक्रमेण तृप्तिः। मात्रा का अतिक्रमण करने पर प्राप्त हुई तृप्ति, अर्थात् अतिभोजन।

(१०) नोच्छिष्टं कस्यचिद्द्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नोच्छिष्टः कस्यचिद् व्रजेत्॥ (मनु)

अपना जूठा किसी को भी न दे, (दो भोजनों के) बीच में (तीसरी बार) भोजन न करें, मात्रा से अधिक भोजन न करें तथा भोजन के उपरान्त (हाथ मुँह) जूठे रखकर (अर्थात् हाथ मुँह धोये बिना) कहीं भी न जाँय॥

(११) एकरसाभ्यासो दौर्बल्यकराणां (श्रेष्ठः)॥ (चरक)

रससेवनविधि—एक रस का (निरन्तर) सेवन शरीर दुर्बल करने वालों में श्रेष्ठ होता है।

(१२) सर्वरसाभ्यासो बलकराणां (श्रेष्ठः)॥ (चरक)

सर्व रसों का (निरन्तर) सेवन शरीर-बलवर्धकों में श्रेष्ठ होता है।

(१३) नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ॥ (अ० हृदय)

सदा सर्वदा (सर्वरस युक्त खाद्य द्रव्य सेवन) का अभ्यास रक्खें और प्रत्येक ऋतु का जो-जो विशेष रस होना है उसका सेवन अधिक करें।

वक्तव्य—रस—उपर्युक्त वचनों में रस शब्द आहार के विविध रसयुक्त खाद्य द्रव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है—रसायत्त आहार इति, तस्मिंश्चप्राणाः। सुश्रुत॥ सर्वरस—षड्रस–रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कषायकाः ॥ अष्टांगहृदय ॥ ऋतावृतौ—शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत्। स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान् ॥ अष्टांगहृदय ॥

(१४) कुभोज्येन दिनं नष्टं, कुकलत्रेण शर्वरी।
कुपुत्रेण कुलं नष्टं, तन्नष्टं यन्न दीयते ॥ (शार्ङ्गधर पद्धति)

कुभोजन—कुभोजन से दिन, कुपत्नी से रात और कुपुत्र से कुल नष्ट होते हैं तथा जो नहीं दिया जाता वह धन भी नष्ट होता है ॥

(१५) कुग्रामवासः, कुलहीनसेवा,
कुभोजनं, क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो, विधवा च कन्या
विनाऽग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥
(पद्य संग्रह)

कुग्राम में निवास, कुलशीलहीन की सेवा, कुभोजन, क्रोधमुखी पत्नी, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या ये छः बातें अग्नि के बिना शरीर को जलाती हैं।

वक्तव्य—कुभोजनम्—ठण्ढा, बासी, अधपका, अधजला, रुचिहीन, लवण कटु तिक्त रसों की अधिकतायुक्त, घृणा उत्पन्न करनेवाला इत्यादि दोषों से युक्त, जिसके सेवन से मन में अप्रसन्नता और पेट में अजीर्ण उत्पन्न हो जाय।

(१६) दरिद्रता धीरतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते।
कुभोजनं चोष्णतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ॥ (वृद्धचाणक्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दारिद्र्य धैर्य होने से कष्टदायक नहीं होता, कुरूप शीलादि गुणों से (लोगों की आँखों में) खटकता नहीं, कुभोजन गरम-गरम होने से रुचिकर मालूम होता है और खराब वस्त्र स्वच्छ निर्मल रखने से अच्छा लगता है।

(१७) क्लिष्टं वृथा यत्तपसा न तीर्थे,
दत्तं वृथा यत् क्षुधिते न पात्रे।
भुक्तं वृथा नो रुचिरं न पथ्यं,
मृत्युर्वृथा यन्न रणे न तीर्थे ॥ (चाणक्यराजनीति)

जो कष्ट न तप के लिये किया गया न गुरु के लिए वह व्यर्थ है, जो दान न क्षुधित को दिया गया न सत्पात्र को वह व्यर्थ है; जो भोजन न रुचिकर रहा न पथ्यकर वह भोजन व्यर्थ है और जो मरण न रण में हुआ न तीर्थस्थान में वह भी व्यर्थ हैं।

(१८) यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं, ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत्तदात्तं भूतिमिच्छता ॥ (महाभारत)

जो खाया जा सकता है, खाने पर सुख से परिपाचित हुआ करता है, परिपाचित होने पर (शरीर के लिए) हितकर होता है उसी को ही अपने हित की इच्छा करनेवाले को खाना चाहिए।

(१९) आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥
(गीता)

सात्त्विक आहार—आयुष्य, मनोबल, शरीरबल, स्वास्थ्य, सुख तथा प्रेम को बढ़ाने वाले रसीले, (घृतादि) स्निग्ध (द्रव्ययुक्त), सारवत्तर मनके लिए प्रिय आहार सात्त्विक प्रकृति मनुष्यों के लिए प्रिय होते हैं।

(२०) कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ (गीता)

राजस आहार—कटु, अम्ल, लवण रसके, अतिगरम, चरपरे, रूखे, सूखे (स्निग्ध द्रव्य हीन), भीतर जलन पैदा करने वाले, दुःख-शोक और रोग उत्पादन करने वाले आहार राजस प्रकृति के लोगों को प्रिय होते हैं ॥

वक्तव्य—विदाही—विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम्। हृदि दाहं च जनयेत् पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ आमय—'रोगः पाप्मा' श्लोक देखिए। रोग को आमय इसलिए कहते हैं कि अधिकांश रोग आम से उत्पन्न होते हैं—प्रायेणामसमुत्थत्वेनामय उच्यते ॥ चक्रपाणि ॥

(२१) यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ (गीता)

तामस आहार—पकने के बाद घण्टों तक पड़े हुए, उसीके कारण जिन का रस सूख गया है ऐसे, सड़े गले, (रात भर के) बासी, दूसरे के जूठे और गन्दे आहार तामस प्रकृति के लोगों को प्रिय होते हैं।

(२२) मिताः स्युः सात्त्विकाहारा राजसा पूर्णभोजनाः।
तामसास्त्वधिकाहाराह्याहारास्त्रिविधाःस्मृताः ॥

आहारमात्रा—सात्विक मितभोजी, राजस पूर्णभोजी और तामस अतिभोजी होते हैं। इस प्रकार त्रिविध आहार होता है।

(२३) यथा भारेण नमते लघुनोन्नमते तुला।
समातिष्ठति युक्तेन भोज्येनेयं तथा तनुः ॥ (सौन्दरनन्द)

(२४) तस्मादभ्यवहर्तव्यं स्वशक्तिमनुपश्यता।
नातिमात्रं च नात्यल्पं मेयं मानवशादपि ॥ (सौन्दरनन्द)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२५) अत्यन्तमपि संहारो नाहारस्य प्रशस्यते ।
अत्याक्रान्तो हि कायाग्निर्गुरुणान्नेन शाम्यति ॥ (सौन्दरनन्द)

(२६) अवच्छिन्न इवाल्पोऽग्निः सहसा महतेन्धसा ।
अनाहारो हि निर्वाति निरिन्धन इवानलः ॥ (सौन्दरनन्द)

जैसे अधिक भार से तुला बैठ जाती है, अल्प भार से ऊपर उठती है और उचित भार से ठीक सम रहती है वैसे आहार से शरीर ॥ इसलिए अपनी शक्ति को देखकर न अधिक, न अल्प आहार सेवन करना चाहिए, किन्तु ठीक मात्रानुसार सेवन करना चाहिए ॥ आहार का अत्यधिक योग ठीक नहीं होता; बहुत अधिक आहार से आक्रान्त जठराग्नि शान्त हो जाती है-जैसे बहुत अधिक इन्धन से अग्नि दब कर शान्त हो जाती है; वैसे ही इन्धन न डालने पर जैसे अग्नि शान्त हो जाती है वैसे आहार सेवन न करने पर भी जठराग्नि शान्त हो जाती है ॥

(२७) स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसीदयेत् ।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ॥

(रामायण)

(जटायु रावण को कहता है)—हे सौम्य ! जैसे जो बोझ मनुष्य को (उठाने पर और ढोने पर) अवसन्न नहीं करता वही बोझ उठाना चाहिए, वैसे ही जो अन्न (सेवन करने पर) विकार उत्पन्न न करके पच जाय वही अन्न सेवन करना चाहिए ।

(२८) जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलेन च ।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ (विष्णुपुराण)

मिताहार—ठोस अन्न से जठर का आधा और जल (तथा पेयों)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

से चौथाई भाग भर दिया जाय और वायु रूप द्रव्यों के संचरण के लिए चौथाई भाग खाली रक्खा जाय।

वक्तव्य—वायु संचरण—(१) जठर में पाचन का कार्य प्रारंभ होता है। पाचन के समय वायु रूप पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यदि जठर खाद्य पेयों से खचाखच भर दिया गया हो तो इन वायुरूप पदार्थों से पेट में तनाव उत्पन्न होता है और इस तने हुए जठर का हृदय पर दबाव पड़कर हृच्छूलसम (Angina like) पीडा या हृदयकार्य में बाधा उत्पन्न हो सकती है। जठर कुछ रिक्त रहने से ये वायुरूप पदार्थ उसमें इकट्ठा होते हैं और हार्दिक द्वार जब खुलता है तब डकार के रूप में निकलते हैं। (२) वायु 'तन्त्रयन्त्रधर' (पृष्ठ ४७) होने से उसके संचरण से संपूर्ण शरीर के तन्त्रयन्त्र गतिमान् होते है। भोजन के पूर्व क्षुधा के समय अन्न की आवश्यकता दिखलाने के लिए और भोजन के पश्चात् पाचन के समय भोजन और पाचक रसों का अच्छा मिश्रण बनने के लिए वायु के संचरण से जठर में गतियाँ हुआ करती हैं। जब जठर पूरा भरा रहता है तब गतियाँ ठीक हो नहीं पातीं जिससे पाचक रस और भोजन का ठीक मिश्रण न होकर पाचन ठीक नहीं होता। इसके विपरीत जठर कुछ खाली रहने से मिश्रण का कार्य ठीक होकर पाचन ठीक होता है। इसलिए सदैव पेट कुछ खाली रखकर भोजन करना चाहिए।

पेट कितना खाली रक्खा जाय इसके संबंध में वैद्यक में दो मत हैं। वाग्भट चतुर्थांश मत का है—आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत्॥ चरक तृतीयांश मत का है—एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकाराणामेकं द्रवाणामेकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम्॥ ये दो मत जरूर हैं परन्तु इसको मतभेद नहीं कह सकते। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुसार न्यूनाधिक भोजन जरूर करे, किन्तु भोजन के अन्त में पेट में कुछ खाली स्थान जरूर रक्खे।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२९) सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः ।
भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

जीव तथा शिव (आत्मा) की तृप्ति के लिए जठर का चतुर्थांश छोड़कर मधुर स्निग्ध जितना आहार सेवन किया जाता है उसे मिताहार कहते हैं।

(३०) यद्वा आत्मसंमितमन्नं तदवति । तन्न हिनस्ति ॥
यद् भूयो हिनस्ति तद् । यत्कनीयो न तदवति ॥
(शतपथ ब्राह्मण)

जो अन्न मात्रा में आत्मोचित होता है वह संतोष करता है (तृप्ति देता है, रक्षण करता है) वह हानि नहीं करता। अधिक अन्न हानि करता है। मात्रा से कम संतोष नहीं करता।

वक्तव्य—अव—रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगम······वृद्धिषु। इस वचन में अन्न की न्यूनाधिक और सम तीन मात्राएँ बतलायी हैं। सममात्रा का विवरण नीचे देखिए।

(३१) मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ (चाणक्यसूत्र)

उचित मात्रा में सेवन किया हुआ भोजन स्वास्थ्यप्रद होता है।

वक्तव्य—मितभोजनम्—भोजन की मात्रा भोज्य द्रव्यों की गुरुता लघुता तथा भोजन करने वाले व्यक्ति की अग्नि की स्थिति इन दो बातों पर निर्भर होती है—मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते मात्रा चाग्निमपेक्षते ॥ चरक॥ इन दोनों के अनुसार मात्रा का मार्गदर्शन वाग्भट के इस श्लोक से बहुत अच्छी तरह होता (पृष्ठ ११२) है—गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते। मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यते ॥ अष्टांगहृदय ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३२) हितमितमेध्याशनं तपः ॥ (श्रीभाष्य)

हितकर, मात्रानुरूप और मेध्य (भोज्य द्रव्यों का) भोजन (एक प्रकार का) तप है।

वक्तव्य—मेध्य—मेधाय यज्ञाय हितं मेध्यम्–पूतं पवित्रं मेध्यम्। अमर ॥ दूध-घृत इत्यादि पवित्र द्रव्य।

(३३) गुणाश्चषण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यूनमिति क्षिपन्ति ॥
(महाभारत)

उचित मात्रा में भोजन करनेवाले को—आरोग्य, दीर्घायुष्य, बल, सुख प्राप्त होते हैं, उसकी प्रजा निरोग होती है और उसको लोग भुक्खड़ कह के अधिक्षेप नहीं करते—ये छः गुण प्राप्त होते हैं।

वक्तव्य—अनाविल—नीरोग, स्वस्थ–रोगोपसर्गाद्यैरनाकुलम् ॥ मन्वर्थमुक्तावलि ॥ आद्यून–अत्यन्त बुभुक्षापीडित–आद्यूनः स्यादौदरिको विजिगीषाविवर्जिते ॥ अमरकोश ॥

(३४) नाभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नातिभोजनात्।
यथा निरिन्धनो वह्निरल्पोवाऽतीन्धनावृतः ॥ (चरक)

जैसे इन्धन के विना, अल्प इन्धन से तथा अति इन्धन से अग्नि प्रदीप्त नहीं होती तथा भोजन के बिना एवं अति भोजन से जठराग्नि प्रदीप्त नहीं होती।

(३५) सायं प्रातर्मनुष्याणां भोजनं वेदनिर्मितम्।
नान्तराभोजनं कुर्यादुपवासी तथा भवेत् ॥ (महाभारत)

भोजनकाल—मनुष्यों के लिए प्रातः और सायं (केवल दोबार का) भोजन वेदसंमत है। इनके बीच में भोजन न करें, इससे उपवासी (का फल प्राप्त) होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३६) एककालं भवेद्देयं दुर्बलाग्निविवृद्धये ।
समाग्नये तथाऽऽहारो देयः कालमथोभयम् ॥

दुर्बल अग्नि को बढ़ाने के लिये एकबार और ठीक जठराग्नि होनेवाले को दो बार भोजन देना चाहिए ।

(३७) कालभोजनमारोग्यकराणां श्रेष्ठम् ॥ (चरक)

उचित काल पर किया जानेवाला भोजन आरोग्य प्रदान करनेवालों में श्रेष्ठ होता है ।

वक्तव्य—कालभोजन—भोजन करने का प्रत्येक व्यक्ति का काल उसका व्यवसाय परिस्थिति इत्यादि के अनुसार भिन्न हो सकता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति जिस समय प्रतिदिन भोजन करता है उस समय उसको भोजन करना चाहिए। वही उसका भोजन का काल है। काल भोजन के महत्व को ध्यान में रखकर ही 'शतं विहाय भोक्तव्यं' कहा है। इस श्लोक को देखिये।

(३८) नाहारवेलातिक्रमणीया ॥ (कादंबरी)

(३९) उचितवेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति ॥

(मालविकाग्निमित्र)

नैत्यिक भोजनकाल का अतिक्रमण न करना चाहिए। उचित वेला का अतिक्रमण करने में दोष है ऐसा चिकित्सक कहते हैं।

वक्तव्य—दोष—रोगोत्पत्ति-दोषा अपि रोगशब्दं लभन्ते ॥ चरक ॥

(४०) हिताशी स्यान् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः ।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात् ॥

(चरक)

विषमाशन से अनेक कष्टदायक रोग होते हैं उसको देखकर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बुद्धिमान् मनुष्य को जितेन्द्रिय होकर पथ्यकर, मात्रानुसार और समय पर भोजन करना चाहिए।

वक्तव्य—विषमाशन—बहु स्तोकमकाले वा विज्ञेयं विषमाशनम् ॥ चरक ॥

(४१) उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्ट-
सर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना
भुञ्जीतात्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक् ॥ (चरक)

भोजनविधि—उष्ण, स्निग्ध (द्रव्ययुक्त), मात्रानुसार, पूर्व भोजन पच जाने पर, वीर्याविरुद्ध (द्रव्य युक्त), प्रशस्त स्थान में, प्रशस्त साधन सामग्री युक्त, न बहुत शीघ्रता से, न बहुत धीरे-धीरे, न बहुत बातचीत करते हुए, न हँसते हुए, भोजन की ओर ध्यान देकर तथा अपना पूर्ण विचार करके भोजन करें।

वक्तव्य—वीर्याविरुद्ध—मधुर और अम्ल तथा मधुर और कटु रस के द्रव्य ये वीर्यविरुद्ध माने गये हैं। अतः भोजन में इनको साथ-साथ सेवन न करें। इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणम्—भोजन के समय मन प्रसन्न रहना चाहिए अन्यथा न भोजन ठीक सेवन किया जाता है न सेवन किया हुआ भोजन ठीक पचता है। अतः स्थान, पात्र, परोसिए ऐसे हों कि मन प्रसन्न रहे। अजल्पन्—भोजन के समय अधिक बातचीत करते रहने से भोजन अधिक सेवन किया जाता है। आत्मानमभिस-मीक्ष्य-भोजन के समय विविध भोज्य द्रव्यों की ओर ध्यान देकर उनकी हिताहितता, पथ्यापथ्यता, प्रकृतिकी दृष्टि से उनकी अनुकूलप्रतिकूलता का विचार करके। स्निग्धम्—स्निग्ध द्रव्य सात्त्विक होते हैं। आयुःसत्त्वबलारोग्य' श्लोक (पृष्ठ ११४) तथा 'श्रेयः पुष्पफलंवृक्षात्' श्लोक (पृष्ठ ६५) का वक्तव्य देखिए।

(४२) भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ (योगरत्नाकर)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भोजनोत्तर सेव्यासेव्य—भोजनोत्तर बैठे रहने में आलस्य, लेटने से पुष्टि, चहलकदमी करने से दीर्घायु प्राप्त होते हैं और दौड़ने वाले के पीछे मृत्यु दौड़कर आती है।

(४३) व्यायामं च व्यवायं च धावनं पानमेव च ।
युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवाँस्त्यजेत् ॥ (आत्रेय)

भोजन करने पर एक मुहूर्तभर (४८ मिनट) व्यायाम, मैथुन, दौड़ना, जलपान, मल्लयुद्ध, गाना और पढ़ना ये कर्म वर्ज्य करें।

वक्तव्य—भोजन करने पर शरीर का अधिकांश रक्त अन्नपाचन के लिए पचनसंस्थान की ओर चला जाता है, जिससे मस्तिष्कादि ऊर्ध्वांगों में रक्त की कमी होकर आलस्य तन्द्रा इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि भोजन के उपरान्त व्यायामादि कार्य किये जाँय तो रक्त उनकी ओर जाकर पचनसंस्थान की ओर कम पड़ जायगा और पाचन ठीक नहीं होगा। भोजन के उपरान्त हृदय तेजी से कार्य करने लगता है और जठर उसके पास होने से जठर का उसपर कुछ दबाव भी पड़ता है। व्यायामादि से हृदय का कार्य और भी तेज होनेसे भरे जठर से उसके संकोच विस्फार के कार्य में बाधा उत्पन्न होकर धड़कन (palpitation) जैसे हृत्कार्य के (Functional) विकार उत्पन्न होते हैं और यदि हृदय पहले से विकृत रहा तो हृत्पातसे (Cardiac failure) मृत्यु भी हो सकती है।

(४४) पितुरन्तःपुरं दद्यान् मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात्, स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥ (महाभारत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये भोजनविधिविज्ञानीयो नाम
त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(कुटुम्बकर्ता को) अन्तःपुर की देखरेख पिता को, रसोईघर की देखरेख माता को, गोधन की अपने भाइयों को सुपुर्द करनी चाहिए और स्वयं खेती में (लग) जाना चाहिए।

वक्तव्य—इस श्लोक में कुटुम्बसंस्था के विविध विभाग कुटुम्बस्वास्थ्यरक्षा की दृष्टिसे किस के जिम्मे रखना श्रेयस्कर है इसको बताया है। मातुर्दद्यात्—शुद्ध और उत्तम भोजन मिलने की दृष्टि से रसोईघर किसी अत्यन्त विश्वसनीय तथा सर्व परिवारपर एकसा प्रेम करनेवाले व्यक्ति के हाथ में होना श्रेयस्कर है—महानसं सुसंमृष्टं विश्वास्यजनसेवितम् ॥ सुश्रुत ॥ कुटुम्ब में माता के समान विश्वसनीय तथा प्रेमी दूसरा व्यक्ति नहीं होता—मातासमं नास्ति शरीरपोषणम्। पत्नीके गुणों में भोजन की दृष्टि से उसे मातासम ही कहा गया है—भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा। अतः यदि माता या मातासम कोई विश्वास्य स्त्री न हो तो रसोईघर पत्नी के जिम्मे होना चाहिए।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां भोजनविधिविज्ञानीयो नामत्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो जीर्णाजीर्णविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) जीर्णमन्नं प्रशसन्ति, भार्यां च गतयौवनाम् ।
रणात्प्रत्यागतं वीरं, शस्यं च गृहमागतम् ॥ (महाभारत)

जीर्ण अन्न का महत्व—ठीक पचने पर अन्नकी, वृद्ध होनेपर पत्नी की, (पराक्रम करके) रणाङ्गण से घर लौटने पर वीर की और घर पहुँचने पर फसल की प्रशंसा की जाय ।

वक्तव्य—जीर्णमन्नम्-रासायनिक संघटन की दृष्टिसे अन्न कितना भी संतुलित क्यों न हो, पाचनप्रचूषणसात्म्यीकरण की दृष्टि से जब तक वह अनुकूल नहीं होता तव तक उसको योग्य नहीं कह सकते । इसी व्यावहारिक सिद्धान्त के आधार पर ही निम्न वचन में शुद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है—अव्याहत बलाङ्गायुररोगो वर्धते सुखम् । शिशु-धात्रोरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम् ॥ काश्यपसंहिता ॥

(२) सुजीर्णमन्नं, सुविचक्षणः सुतः
सुशासिता स्त्री, नृपतिः सुसेवितः ।
सुचिन्त्य चोक्तं, सुविचार्य यत्कृतं
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम् ॥ (हितोपदेश)

भलीभाँति पचाहुआ अन्न, बहुत चतुर पुत्र, भलीभाँति अनुशासित पत्नी, अच्छी सेवा किया हुआ राजा, बहुत चिन्तन करके किया हुआ भाषण, बहुत विचार करके किया हुआ कर्म दीर्घकाल व्यतीत होने पर भी अपायकर नहीं होते ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ (चाणक्यसूत्र)

प्रथम किया हुआ भोजन ठीक पच जाने पर दूसरा भोजन करने वाले के पास व्याधि फटकती नहीं है।

(४) विद्याघातो ह्यनभ्यासः, स्त्रीणां घातः कुचैलता ।
व्याधीनां भोजनं जीर्णं, शत्रोर्घातः प्रपञ्चता ॥
(बृहस्पति)

अनभ्यास विद्यार्जन के लिए, मलीन वस्त्र स्त्रीरूप के लिए, भोजन का भली भाँति पच जाना रोगोत्पत्ति के लिए और अपनी शक्ति का प्रदर्शन शत्रु के लिए घातक होता है।

वक्तव्य—प्रतिदिन सेवन किया हुआ भोजन ठीक पचता है या नहीं इस पर यदि मनुष्य ध्यान दे और तदनुसार आवश्यक हो तो आहार सेवन में परिवर्तन करके अजीर्ण न होने दे तो मनुष्य प्रायः रोगपीडित नहीं हो सकता, क्योंकि अजीर्ण ही बहुसंख्य रोगों की जड़ होती है। 'प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्ण' श्लोक (पृष्ठ १२६) देखिए। इसलिए प्रातःकाल उठनेपर परमेश्वर के स्मरण के साथ पूर्व दिन के भोजन का जीर्णाजीर्ण-विषयक विचार करने के लिए कहा है—ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत जीर्णाजीर्णं निरूपयन् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥

(५) दोषभीतेरनारम्भस्तत्कापुरुषलक्षणम् ।
कैरजीर्णभयाद्भ्रातर्भोजनं परिहीयते ॥ (हितोपदेश)

दोष (होने की संभावना) के डर से कार्य का प्रारम्भ न करना मूर्ख का लक्षण होता है। भोजन से अजीर्ण होगा इस डरसे हे बन्धो ! क्या किसी के द्वारा भोजन का परित्याग किया जाता है।

वक्तव्य—अजीर्ण भोजन से ही होता है अन्यथा नहीं, परन्तु अजीर्ण न होने के लिए भोजन न करना यह बुद्धिमानी नहीं, मूर्खता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बुद्धिमानी अजीर्ण हेतुओं का परित्याग करके भोजन करने में है। नीचे देखिए।

(६) अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ (सुश्रुत)

अजीर्णहेतु—जो इन्द्रियलोलुप लोग पशु के समान मात्रा से बहुत अधिक भोजन किया करते हैं वे रोगसमूह के मूल अजीर्ण को प्राप्त होते हैं।

(७) प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्।
तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ (अ. संग्रह)

साधारणतया आहारवैषम्य से मनुष्यों को अजीर्ण होता है; रोग-समूह अजीर्णमूलक होता है; उसके नाश से रोगसमूह नष्ट होता है।

वक्तव्य—आहारवैषम्य–विषमाशनः–अति, अल्प और अकाल भोजन।

(८) मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः ॥ (चरक)

चिंता, शोक, भय, क्रोध, दुःख, दिवानिद्रा, रात्रिजागर इन कारणों से मात्रानुसार तथा पथ्यकर अन्न भी ठीक पाचित नहीं होता।

(९) दुरधीता विषं विद्या, अजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं गोष्ठी दरिद्रस्य, वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥
(चाणक्यशतक)

अजीर्णचिकित्सा—ठीक न पढ़ी हुई विद्या, अजीर्ण होने पर सेवन किया हुआ भोजन, दरिद्र के लिए गपशप (करने में समय नष्ट) करना, और वृद्ध के लिए तरुण पत्नी (का होना) विषसम (हानिकर) होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१०) पथ्यमप्यपथ्याजीर्णे नाश्नीयात् ॥ (चाणक्यसूत्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभा-
षितसाहित्ये जीर्णाजीर्णविज्ञानीयो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ।



अपथ्यसेवन से उत्पन्न हुए अजीर्ण में पथ्यकर भोजन भी न करना चाहिए।

वक्तव्य—पूर्ण अनशन और केवल जलसेवन ये अजीर्ण के सर्वोत्तम उपचार हैं। 'अजीर्णे भेषजं वारि' श्लोक (पृष्ठ ८४) देखिए।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां जीर्णाजीर्णविज्ञानीयोनाम
चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातः पिपासाक्षुधाविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) पिपासितस्येव भवेद्यथा पय-
स्तथा त्वया वाक्यमिदं समीरितम् ।
विना पुनः सत्यवतोस्य जीवितं
वरं वृणीष्वेह शुभे यदीच्छसि ॥ (महाभारत)

तृषा में जल की पथ्यतमता—तृषित के लिए जैसे जल (अत्यन्त प्रसन्नतोत्पादक) होता है वैसे मेरे लिए तुमसे कहा गया यह वाक्य हुआ है। अतः सत्यवान् के जीवित को छोड़कर, हे सावित्री ! तुम जो चाहती हो फिर से वर मांग लो ।

(२) गिरः श्रुता एव तव श्रवःसुधाः
श्लथा भवन्नाम्नि तु न श्रुतिस्पृहा ।
पिपासिता शान्तिमुपैति वारिणा
न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि ॥ (नैषध)

अमृतसम कर्णमधुर तुम्हारा भाषण मैंने सुना, फिर भी तुम्हारा नाम सुनने की मेरी इच्छा शान्त न हुई। प्यास पानी से ही शान्त होती है; दूध, मधु या उससे भी अधिक मधुर द्रव्य क्यों न हो, उससे कदापि नहीं ॥

वक्तव्य—पिपासिता—तृषा। मनुष्य शरीर के परमाणु अर्थात् कोशिकाएँ जलवासी (Aquatic) हैं। ये अपना सब कार्य जल के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विना नहीं कर सकतीं। अन्न के पाचनप्रचूषणसात्म्यीकरण के लिए, रक्त संचरण के लिए, मलोत्सर्जन के लिए जल की आवश्यकता होती है। प्रतिदिन मलमूत्र, स्वेद, श्लेष्मा, उच्छ्वास (Exhalation) इत्यादि के द्वारा बहुत जल शरीर के बाहर निकल जाता है। उसकी पूर्ति के लिए जल की आवश्यकता होती है, जो तृषा से प्रदर्शित की जाती है। पानी की कमी होने पर रक्त की क्षारता (Alkalinity) घटती है जिसके कारण प्यास के साथ शरीर में कुछ गरमी मालूम होती है। अतः प्यास लगने पर केवल जल, विशेषतया ठण्डा जल पीने से ही शान्ति होती है। अतः उसी को ही पीना चाहिए, अनाप-शनाप पेयों को नहीं। पृष्ठ ७४ भी देखें।

(३) पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे ॥

तृषा—लक्षण—चातक पक्षी ने प्यास से सूख गये कण्ठ द्वारा (मेघों से) पानी की याचना की और नव मेघों द्वारा उसके मुख में वर्षा की धारा गिरी।

(४) अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अलमप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अंधकारतामुपयाति चक्षुः। (कादंबरी)

अत्यन्त प्रबल पिपासा लक्षण—अत्यन्त प्रबल पिपासा से दुर्बल हुए मेरे अंग जरा भी चलने के लिए समर्थ नहीं हैं। अतः अब मैं अपना प्रभु नहीं हूँ। मेरा दिल बैठ रहा है। आँखों के सामने अँधेरा आ जाता है।

वक्तव्य—कण्ठ की शुष्कता तृषा का प्राकृतिक तथा प्रारम्भिक लक्षण होता है और जब देर तक पिपासानिग्रह किया जाता है तब

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उपर्युक्त वैकारिक लक्षण उत्पन्न होते हैं—कण्ठास्यशोषो बाधिर्यं श्रमः सादो हृदि व्यथा। पिपासानिग्रहात्॥ चरक॥

(५) बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
न च्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय, निष्फला गुणाः॥
(औचित्यविचारचर्चा)

क्षुधातृषापूर्ति का श्रेष्ठतमत्व—भूखों द्वारा न व्याकरण खाया जाता है, न प्यासों द्वारा काव्यरस पिया जाता है, वैसे ही वेदाध्ययन द्वारा किसी के कुल का उद्धार नहीं होता है। (तात्पर्य) धनार्जन करना चाहिये, और पाण्डित्य व्यर्थ है।

(६) वीणा वंशश्चन्दनं चन्द्रभास-
श्चन्द्राभासा यौवनस्थास्तरुण्यः।
नैतद्रम्यं क्षुत्पिपासातुराणां
सर्वारम्भास्तण्डुला प्रस्थमूलाः॥ (चाणक्यराजनीतिशास्त्र)

वीणा और मुरली (का वादन), चन्दन (आदि सुगन्धी द्रव्यों की सुगन्ध), चांदनी, चन्द्रमासम सुंदर तरुण स्त्रियाँ, ये सब क्षुधा-तृषापीडितों को रमणीय नहीं होते हैं, क्योंकि उपर्युक्त सब कार्यों के प्रारम्भ प्रस्थभर चावल खाने पर ही हो सकते हैं।

वक्तव्य—मनुष्यों की अनन्त आवश्यकताएँ होती हैं। इनके मुख्य तीन विभाग कर सकते हैं। प्रथम विद्यार्जनादि मानसिक विभाग, दूसरा कामोपभोगादि ऐन्द्रियक विभाग और तीसरा जीवनयात्रार्थ देहधारक विभाग। इनमें तीसरा विभाग अत्यावश्यक तथा सर्वश्रेष्ठ है। जब तक इस विभाग की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तब

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तक मनुष्यों के सामने अन्य विभाग के विषय केवल विडम्बन मात्र होते हैं–जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनम् ।। वैराग्यशतक ।। क्षुधापूर्ति के लिए की गयी चोरी भी क्षम्य तथा अदण्डय मानी गयी है— द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके । आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ।। मनु ।।

(७) मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः, क्षुधार्ते भोजनं तथा ।
दरिद्रे दीयते दानं सफलं पाण्डुनन्दन ।।

(हितोपदेश)

हे पाण्डुनन्दन ! मरुस्थल में जैसे वृष्टि वैसे क्षुधापीडित में भोजन और दरिद्र में (धनधान्यादिका) दान सफल होता है ।

वक्तव्य—मरु—म्रियते पिपासया यस्मिन्, निर्जलस्थान, राजस्थान ।

(८) तपःसीमा मुक्तिः, सकलगुणसीमा वितरणं
कलासीमा काव्यं, जननसुखसीमा सुवदना ।
भियः सीमा मृत्युः, सुकृतकुलसीमाऽऽश्रितभृतिः
क्षुधासीमाऽन्नान्ता, श्रुतिमुखरसीमा हरिकथा ।।

(प्रसंगाभरण)

तप की सीमा मोक्ष है, समस्त गुणों की सीमा दान है, कलासीमा काव्यरचना है, जननेन्द्रिय सुख की सीमा स्त्री (सहवास प्राप्ति) है, भय की सीमा मृत्यु है, श्रेष्ठकुल की सीमा आश्रितों का भरण है, क्षुधा की सीमा भोजनप्राप्ति है और विद्वत्ताप्रचुर भाषण की सीमा हरिकथानिरूपण है ।

वक्तव्य—सीमा–जिससे अधिक श्रेष्ठ उस विषय में और कोई नहीं होता अर्थात् अन्तिम प्राप्तव्य । जैसे क्षुधार्त के लिए भोजन ही सर्वश्रेष्ठ है और सब व्यर्थ है । ऊपर 'वीणावंशश्चन्दनं' श्लोक देखिए ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) हृदि लज्जोदरे वह्निः स्वभावादग्निरुच्छिखः ।
तेन मे दग्धलज्जस्य पुनरागमनं नृप ॥

क्षुधापूर्ति न होने के फल—हृदय में (ऊपर) लज्जा और जठर में (नीचे) अग्नि होती है, अग्नि स्वभाव से उच्छिख होती है । उस उच्छिख अग्नि द्वारा मेरी हृदयस्थ लज्जा जलकर नष्ट हो जाने से हे राजन् ! मैं तेरे पास फिरसे आ गया हूँ ।

वक्तव्य—इस श्लोक में काव्यमय भाषा में शारीरदृष्ट्या (Anatomically) जठर और हृदय का आपस में कैसा सम्बन्ध होता है वह तथा निरन्तर क्षुधा-पीडित रहने की अवस्था में मनुष्य में मानसिकदृष्ट्या स्वाभिमानशून्यता, निर्लज्जता, याचकवृत्ति इत्यादि हीन मनोवृत्तियाँ कैसी उत्पन्न होती है इसको अच्छी तरह प्रदर्शित किया है। नीचे के १०, ११, १२ वचन भी देखें।

हृदि लज्जा—अपने शास्त्रों में हृदय चेतना, सुख दुःख, चित्त, आत्मा इत्यादि का स्थान माना गया है—हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् ।। सुश्रुत ।। हृदयं चेतनास्थानं तज्ज्ञातृ सुखदुःखयोः । तत्संकोचविकासाभ्यां जीवितज्ञा प्रकम्पते ।। नाडीज्ञानतरंगिणी ।। सत्त्वादिधाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम् ।। अष्टांगहृदय । हृदये चित्तसंवित ।। योगसूत्र ।। इसलिए हृदय में लज्जा का निर्देश किया गया है। अंग्रेजी में भी एक समय में हृदय के सम्बन्ध में यही कल्पना रही जिससे Heartlessness, Heartsickness, Heartrending इत्यादि स्वरूप के शब्द प्रयोग रूढ हो गये। उच्छिखः—उद्गता शिखा ज्वाला यस्य—घृणिज्वाले अपि शिखे। अमरकोश। अग्नि की उच्छिखता प्रसिद्ध है। अग्नि उलटा सीधा चाहे जैसा करिए उसकी ज्वालाएँ सदैव ऊपर ही उठेंगी—अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ।। नीतिशतक ।। हृदय और जठर कोष्ठांग हैं—स्थानान्यामाभिपक्कानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्य-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भिधीयते ॥ सुश्रुत ॥ यह कोष्ठ मध्यच्छदिका (Diaphragm) पेशी द्वारा वक्षगुहा और उदरगुहा में विभक्त हुआ है। हृदय वक्षगुहा में बाईं ओर मध्यच्छदिका पेशीपर स्थित है और जठर उदरगुहा में हृदय के नीचे अन्ननलिका (Oesophagus) द्वारा लटका हुआ है। तात्पर्य विभक्त होते हुए भी दोनों अत्यन्त निकट हैं। इनकी निकटता का ज्ञान इनसे सम्बन्धित कुछ पारिभाषिक संज्ञाओं का ठीक अर्थ समझने की दृष्टि से, कुछ रोगों के प्रतिबन्धन की दृष्टि से तथा कुछ रोगों की ठीक निदान-चिकित्सा करने की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा अनर्थ हुए बिना नहीं रह सकता। पाश्चात्य वैद्यक में Cardiac orifice करके एक संज्ञा है। इसका अर्थ हृदयद्वार नहीं, जठरागमी द्वार है; वैसे ही आयुर्वेद में 'आमाशयद्वार' करके एक संज्ञा है और अर्थ जठरद्वार नहीं, हृदय है—स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्यामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं नाम ॥ सुश्रुत ॥ कुछ लोगों को भोजन के उपरान्त छाती में तकलीफ मालूम होती है। अतिमात्रा में भोजन करने का यह परिणाम होता है, क्योंकि भरे पेट का हृदय पर दबाव पड़कर उसके कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। यदि यह आदत बराबर बनी रही और भोजनोत्तर तेजचलना या अन्य परिश्रम करने की जरूरत रही तो एकाधबार मृत्यु भी हो सकती है। 'भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा' श्लोक देखिए। मात्रा में भोजन करने से हृदय पर दबाव नहीं पड़ता और हृत्कार्य में बाधा नहीं होती—अन्नेन हृदयाबाधो जठरस्य त्वगौरवम् ॥ अतः हृदय विकार की आशंका होने पर प्रथम जठर की ओर ध्यान देना चाहिए और यदि उसका कोई विकार हो तो प्रथम उसको दूर करना चाहिए।

(१०) अशनाया वै पाप्मामतिः। (ऐतरेय ब्राह्मण)

क्षुधा पापबुद्धि होती है।

वक्तव्य—अशनाया—अशनाया बुभुक्षाक्षुत् ॥ अमरकोश ॥ पाप्मा-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मतिः—क्षुधित धर्माधर्म का विचार करने की स्थिति में नहीं होता। इसलिए सब प्रकार के पाप कर सकता है 'मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः' श्लोक तथा पृष्ठ १३७ का वक्तव्य भी देखिए।

(११) त्यजेत् क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रं
खादेत्क्षुधार्ता भुजगी स्वमण्डम्।
बुभुक्षितः किं न करोति पापं
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति॥

(हितोपदेश)

क्षुधापीडित माता अपने पुत्र का त्याग करती है और साँपिन अपने ही अण्डे को खा जाती है। इस प्रकार क्षुधार्त निर्दय बनते हैं, अतः वे कौन सा पाप नहीं कर सकते।

वक्तव्य—निष्करुणाः—निर्दय, इसके लिए शुनःशेप का प्राचीन उदाहरण प्रसिद्ध है—अजीगर्तः सुतं (शुनःशेपं) हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः॥ मनु॥

(१२) अर्थातुराणां न गुरुर्न बंधुः
कामातुराणां न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा
क्षुधातुराणां न बलं न तेजः॥

(चाणक्यराजनीतिशास्त्र)

दरिद्र को न कोई गुरु होता है न भाई; कामार्त को न भीति होती है न लज्जा; चिन्तातुर को न सुख मिलता है न नींद और क्षुधार्त को न बल होता है न तेज।

वक्तव्य—न बलं न तेजः—'बलवानपि निस्तेजः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१३) विशेषेण पानभोजनं त्वरय। दृढं विपणिकन्दुरिव म
उदराभ्यन्तरं दह्यते ॥ (मालविकाग्निमित्र)

(विदूषक कहता है) विशेष करके मेरे खान पान का प्रबंध कर (क्योंकि क्षुधा के कारण) दुकान के भट्ठे के समान उदर का भीतरी भाग तेजी से जल रहा है।

(१४) नास्ति क्षुधासमं दुःखं; नास्ति रोगो क्षुधासमः।
नास्त्याहारसमं सौख्यं; नास्ति क्रोधसमो रिपुः ॥
(शिवपुराण)

क्षुधा के समान दुःख नहीं, क्षुधा के समान रोग नहीं, (क्षुधा-पीडित होनेपर) आहार के समान सौख्य नहीं और क्रोध के समान शत्रु नहीं।

वक्तव्य——क्षुधा—शरीर को जब अन्न की, विशेषतया शक्त्युत्पादक अन्न की, आवश्यकता होती है तब क्षुधा उत्पन्न होती है। इसलिए शरीर की अन्नावश्यकता की वह निदर्शक होती है, जैसे तृषा जलावश्यकता की निदर्शक होती है। दुःखम्—क्षुधा के समय जठर में अम्ल-युक्त पाचकरस उत्सर्गित होने लगते हैं और जठर में मन्थन कार्य भी प्रारम्भ होता है। क्षुधा का दुःख इन कारणों से होता है। क्षुधा के सामान्य दुःख से प्रत्येक व्यक्ति परिचित रहता है। परन्तु उसकी अद्वितीयता, विचित्रता तथा असह्यता केवल दीर्घकाल अनशन करने-वाले, अन्नसत्याग्रही तथा अकाल पीडित दरिद्री लोग ही समझ सकते हैं। नास्ति रोगो क्षुधासमः—शरीर में जब धातुवैषम्य उत्पन्न होता है तब उसको रोग कहते हैं। इसलिए एकाध रोज क्षुधापीडित होने की स्थिति को रोग नहीं कह सकते। जब दीर्घकाल तक क्षुधा पीडित रहकर शरीर में धातु वैषम्य उत्पन्न होता हैं तब वह क्षुधा रोग (Starvation) होता है। दीर्घ काल तक प्रतिदिन चौबीस घण्टे क्षुधा की

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

असह्य पीडा से दुःखित रहना और क्षय के समान धीरे धीरे क्षीण होकर मरना इन दो कारणों से क्षुधासम रोग नहीं ऐसा कहा है। क्षुधारोग से मरने का कारण यह है कि पाचकाग्नि पाचन के लिए अन्न न मिलने पर शरीर के धातुओं (Tissues) का पाचन करके शरीर को उष्णता और शक्ति प्रदान करती है जिससे दिन प्रतिदिन शरीर के धातु क्षीण होते जाते हैं और उनकी क्षीणता जब सीमातीत हो जाती है तब देहान्त हो जाता है—आहारमग्निः पचति दोषानाहारवर्जितः। धातून् क्षीणेषु दोषेषु न जीवेद् धातुसंक्षये ॥ शिवदास ॥ यही शिवदास का कथन आधुनिक विज्ञान शब्दान्तरों से कहता है—If for any reason a person keeps up his fast, then the body has no recourse but to fall back upon its own organs as sources of energy. First of all fat and carbohydrate deposits are drawn up. Then basal metabolism rate is reduced, fatigue ensues, muscular effort falls off. The process ends with rapidly increasing and possibly fatal protein disintegration.

Dr. Werner Kayser.

(१५) नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ (चाणक्यसूत्र)

क्षुधार्त के लिए (भक्षण करने की दृष्टि से कोई भी द्रव्य) अभक्ष्य नहीं होता है।

वक्तव्य—अभक्ष्य—किसी कारण से भी भक्षण करने के लिए निषिद्ध। आहार सेवन करना मनुष्य का शरीरधर्म है ('आहारनिद्राभयमैथुनं च' श्लोक देखें) तथा जीवित रहना उसका सर्वश्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि जीवित रहने से ही ऐहिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त होकर नरजन्म सार्थक होता है—जीवन्तो हि भद्राणि पश्यन्ति ॥ संकल्पसूर्योदय ॥ जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन्धर्ममवाप्नुयात्। महाभारत ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इसलिए क्षुधा-तृषासे अत्यन्त पीडित हो जाने पर यदि उचित खाद्य या पेय न मिल सके तो अभक्ष्य भक्षण तथा अपेय पान करके आत्मरक्षा करना उसका प्रथम कर्तव्य होता है—यथा यथैव जीवेद्धि तत्कर्तव्य महेलया ॥ महाभारत ॥ निम्न दृष्टियों से खाद्यपेय तथा सृष्ट द्रव्यों में अभक्ष्यता या अपेयता आ जाती है।

(१) धार्मिक दृष्टि से—वर्णाश्रमादि के अनुसार अभक्ष्यता भिन्न भिन्न हो जाने के कारण प्रत्येक व्यक्ति में उसका स्वरूप भिन्न होता है। अभक्ष्यभक्षण सामान्य स्थिति में अधर्म्य और पापप्रद होता है, परन्तु आपत्काल में धर्मशास्त्र उसको अधर्म्य या पापप्रद नहीं मानता, बल्कि उसको उचित ही समझता है—जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः। आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ मनु ॥ सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ॥ ब्रह्मसूत्र ॥ निषिद्धमप्याचरणीयमापदि क्रिया सती नावति यत्र सर्वदा। घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले कचित् बुधैरप्यपथेन गम्यते ॥ नैषध ॥ अविरुद्धैव सा युक्तिर्ययाऽऽपदि हि जीव्यते ॥ योगवासिष्ठ ॥ वैदिक काल में विश्वामित्र वामदेव कुत्ते का मांस खा कर और उषस्ति चाक्रायण (छांदोग्योपनिषद्) इभ्य राजा के उच्छिष्ट कुल्माष खाकर आपत्काल में जीवित रहे, परन्तु धर्मशास्त्र की दृष्टि से वे निष्पाप ही रहे हैं—विश्वामित्रः श्वमांसं श्वपच इव पुरा भक्षयद् यन्निमित्तम् ॥ नागानंद ॥ श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः। प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ मनु ॥ 'न शास्त्रमस्ति' इस वचन का वक्तव्य (पृष्ठ १०५, १०६) देखें।

महाकवि बाणभट्ट के सुपुत्र ने कादम्बरी के अपने उत्तरार्ध में क्षुधार्त शुक के निमित्त चाण्डाल कन्या के मुख से इस विषय का बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है जो यहाँ पर दिया जाता है—

क्षुत्पिपासार्दितानां हि पशुपक्षिणां निर्विचारचित्तवृत्तीनामुपनतेष्वाहारेष्वनुपयोगो न संभवत्येव। तद्यद्येवंविधस्त्वं कोपि भोज्याभोज्यविवेक-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कारी पूर्वजातिस्मरोऽस्मदीयमाहारं परिहरसि, तथापि तावद्भक्ष्याभक्ष्य-विवेकरहितायां तिर्यग्जातौ वर्तमानस्य ते किं वाऽक्ष्यम्, यन्न भक्षयसि। येन चोत्कृष्टतमां जातिं प्राप्यात्मनैवेदृशं कर्म कृतं येन तिर्यग्योनौ पतितः स किमपरं विचारयसि। प्रथमेवात्मा न विवेके स्थापितः। अधुना स्वकर्मोपात्तजातिसदृशमाचरतस्ते नास्त्येव दोषः। येषां च भक्ष्या-भक्ष्यनियमोऽस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां संधारणमभक्ष्योपयोगेना-पि तावद्विहितम्। किंपुनस्त्वादृशस्य। न चेदृशं किञ्चिदपि मयोपनीतं यादृशेन चाण्डालाशनशङ्का समुत्पद्यते। फलानि तु ततोऽपि प्रतिगृ-ह्यन्त एव। पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुविपतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति। तत्किमर्थमात्मानं क्षुधापिपासया वा पातयसि॥ कादंबरी॥

(२) वैद्यकीय दृष्टि से—अपथ्यकर, अहितकर, असात्म्य, विरुद्ध तथा 'यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। 'उच्छिष्टमपि चामेध्यं' (गीता) ये द्रव्य अस्वास्थ्यकर होने से वैद्यशास्त्र की दृष्टि से अभक्ष्य होते हैं। परन्तु जैसे जीवित रक्षा के लिए सज्जन के द्वारा किया हुआ अभक्ष्यभक्षण पापप्रद नहीं माना जाता है वैसे बलवान् के द्वारा क्षुधाशान्त्यर्थ किया हुआ अपथ्य सेवन भी पापप्रद (अर्थात रोगप्रद— 'रोगः पाप्मा' तथा 'पाप्मा पापं' होने से) नहीं होता है—'सर्वं बलवतां पथ्यं' श्लोक देखिए। दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च, विरुद्धं वितथं भवेत्। चरक॥

(३) अप्रियता की दृष्टि से—प्रत्येक मनुष्य को कुछ द्रव्य प्रिय और कुछ उनके रूपरसगन्धादि के कारण अप्रिय अर्थात् अभक्ष्य होते हैं जिनको वह जबतक प्रिय द्रव्य मिलते हैं तब तक साधारणतया सेवन नहीं करता। परन्तु, क्षुधार्त होने पर तथा प्रिय द्रव्य न मिलने पर वह उन अभक्ष्य द्रव्यों को सेवन करता है। इसके आधारपर यह कह सकते हैं और जो सत्य है कि जिनकी क्षुधा और जठराग्नि तेज

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होती है उनको कोई खाद्यपेय अरुचिकर अप्रिय अत एव अभक्ष्य होता ही नहीं। 'संपन्नतरमेवन्नम्' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें।

(४) निसर्ग की दृष्टि से—घास फूस तृण, जंगली वनस्पतियों की पत्तियाँ पशुओं के लिए भक्ष्य होने पर भी मनुष्यों के लिए अभक्ष्य होते हैं—तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् (नीतिशतक) पशुरेवबुधैर्निगद्यते यवसग्रासनिवृत्तमानसः (जानकी हरण) यह सब कुछ जानते हुए भी जंगली आदिवासी लोग अकाल पीडित होनेपर पेट की आग किसी प्रकार से शान्त करने के लिए इस प्रकार का अभक्ष्यभक्षण किया करते हैं यह सत्य है।

(५) जीवित का नाश करने की दृष्टि से—अनेक विषद्रव्य प्राण-घातक होने से सदैव अभक्ष्य होते हैं। परन्तु दारिद्र्य के कारण जब मनुष्य नित्यप्रति क्षुधापीडित रहता है तब वह इस अभक्ष्य का खुशी से सेवन करता है।

उपर्युक्त पञ्चविध स्वरूप को अभक्ष्यताओं में से अन्तिम दो आत्यन्तिक और तीसरी वैयक्तिक होने से उनकी ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। शेष दो अत्यन्त महत्व की हैं। इनमें प्रथम धार्मिक है। परन्तु इसको कोई त्याज्य न समझें, क्योंकि शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं होने से आहाराचार के धार्मिक निबंध वैद्यकीय स्वस्थ-वृत्त पर अधिष्ठित हैं। इसलिए यद्यपि विशिष्ट प्रसंगपर अभक्ष्यभक्षण कर सकते हैं तथापि वह आपद्धर्म है। अन्य प्रसंगों पर उसका सेवन विहित तथा हितप्रद नहीं होता है। ऊपर (पृष्ठ १३७) महर्षि बादरायण का सूत्र दिया है। उसके भाष्य में भगवान् शंकराचार्यजी ने उपस्ति चाक्रायण के उच्छिष्ट कुल्माष का उल्लेख करके यही कहा है—तदेतदुच्छिष्टोच्छिष्टपर्युषितभक्षणं दर्शयन्त्याः श्रुतेराशयातिशयो लक्ष्यते, प्राणात्यय-प्रसंगे प्राणसंधारणाय अभक्ष्यमपि भक्षयितव्यमिति। स्वस्थावस्थायां तु तन्न कर्तव्यं विद्यावतापीत्यनुपानप्रत्याख्यानाद्गम्यते (शारीरभाष्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१६) सर्वरोगहरि क्षुधा ।

क्षुधा (अच्छी होने पर वह) सब रोगों का हरण करने वाली होती है।

वक्तव्य—क्षुधा जठराग्नि की स्थिति की निदर्शक होती है। मन्दक्षुधा मदाग्नि की निदर्शक होती है और मन्दाग्नि रोगोत्पादक होता है—रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ। इसके विपरीत अच्छी क्षुधा प्रखर अग्नि की निदर्शक होती है और प्रखर अग्नि रोगहारक और बलोत्पादक होता है—अग्निमूलं बलं पुँसाम्। क्यों कि अच्छी क्षुधा होने से अन्न में रुचि रहती है, उचित मात्रा में अन्न सेवन किया जाता है, अन्न का ठीक पाचन होता है और उससे शरीर में प्रशस्त रसरक्तादि धातु तथा बल उत्पन्न होते हैं। रुग्णावस्था में क्षुधा मन्द हो जाती है और जब तक वह मन्द रहती है तब तक रोग का बल कम हुआ ऐसा नहीं समझ सकते। जब क्षुधा बढने लगती है तब रोगबल घटने लगा ऐसा समझ सकते हैं और जब अच्छी भूख लगने लगती है तब रोग-हरण पूर्ण हो गया है, केवल शरीर यथापूर्व बलवान् होना बाकी है ऐसा समझ सकते हैं।

इसका पूर्वपाद 'अर्धरोगहरी निद्रा' निद्रामें देखिए।

(१७) भोज्यं भोजनशक्तिश्च, रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥

(गरुडपुराण)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये पिपासाक्षुधाविज्ञानीयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भोजन के लिए अच्छे अच्छे भोज्य द्रव्यों का मिलना और उनके मिलने पर भोजन के लिए अच्छी क्षुधाशक्ति का होना, सुन्दर पत्नी का मिलना और मिलने पर उसके उपभोग के लिए अच्छी कामशक्ति का होना, धन का मिलना और उसके साथ दानधर्म करने की इच्छा का होना ऐसे योग अल्प तपस्या के फल नहीं होते।

वक्तव्य—नाल्पस्य तपसः फलम्—उपर्युक्त स्वरूप के समसंयोग बनाने की प्रजापति को कभी आदत रही ही नहीं, विषम संयोग बनाना ही उसका धंधा रहा है। इसलिए 'भोज्यं भोजनशक्तिश्च' तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध में सर्वत्र निम्न स्वरूप की स्थिति दिखाई देती है—जब चने थे तब दाँत न थे, जब दाँत भये तो चने नहीं॥ यः सुन्दर-स्तद्वनिता कुरूपा या सुन्दरी सा पतिरूपहीना। यत्रोभयं तत्र दरिद्रता च विधेर्विचित्राणि विचेष्टितानि॥ इस प्रकार की विचित्र स्थिति को देखकर बाणने प्रजापति का धिक्कार किया—धिग्विधातारमसदृश संयोगकारिणम् (कांदबरी) और कालिदास ने दुष्यन्त-शकुन्तला के तुल्यगुण वधूवरत्व को देखकर प्रजापति दीर्घकाल के पश्चात् निन्दा-स्पद नहीं हुए ऐसा लिखा है—त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसिनः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया। समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः (शाकुन्तल) तात्पर्य, जब कभी तुल्यगुण संयोग होता है तब वह व्यक्ति के अपने पूर्व जन्म या इस जन्म की बड़ी तपस्या का ही फल समझना युक्तियुक्त होता है, क्यों कि प्रजा-पति से ऐसे संयोग की आशा नहीं की जा सकती। 'संपन्नतरमेवान्न' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां पिपासाक्षुधाविज्ञानीयोनाम
पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

षोडशोऽध्यायः ।

अथातो भोज्यद्रव्याणां स्वाद्वस्वादुताविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः । इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) भुक्त्वाऽपि यत्प्रार्थयते भूयस्तत्स्वादु भोजनम् ॥ (सुश्रुत)

स्वादुता-व्याख्या—भोजन करने पर भी जिसको फिर से सेवन करने की इच्छा होती है, वह भोजन स्वादु होता है ।

वक्तव्य—भूयः—बार-बार या दूसरी बार। स्वादु-मधुर या मनःप्रिय-स्वादुर्मनोज्ञे मिष्टे च (मेदिनी) स्वादुता की सुश्रुत की इस परिभाषा को पढ़कर संस्कृत के साहित्यिकों को महाकवि माघ के रमणीयता के निम्न वचन का स्मरण हुए बिना नहीं रहेगा—क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥ शिशुपालवध ॥ भोज्यद्रव्य स्वादु मालूम होने से भोजन में मन लगता है, उचितमात्रा में उनका सेवन होता है, सेवन किया हुआ भोजन ठीक पचता है तथा शरीरपोषक होता है। इसके विपरीत भोज्यद्रव्य अस्वादु मालूम होने से भोजन में मन नहीं लगता, उचित मात्रामें उनका सेवन नहीं होता न उनका ठीक पचन होता है। इसलिए भोज्य द्रव्य जरूर स्वादु मालूम होने चाहिएँ, फिर वे चाहे जिस हेतु से हों। स्वादुता के निम्न हेतु होते हैं—

(२) प्रक्षालयेदद्भिरास्यं भुञ्जानस्य मुहुर्मुहुः ।
विशुद्धरसने तस्मै रोचतेऽन्नमपूर्ववत् ॥ (सुश्रुत)

(१) जिह्वाशुद्धता—भोजन करने वाले को (बीच-बीच में अनेक बार पानी के घूँट लेकर उन) से मुख (और जिह्वा) को साफ करना चाहिए। इस प्रकार जिह्वा साफ होने पर उससे सेवन किया जाने वाला वही अन्न पूर्ण नवीन अन्न के समान रुचिकर प्रतीत होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—रसना—जिह्वा—रसज्ञा रसना जिह्वा ।। अमरकोश ।। रसनं स्वदने ध्वनौ जिह्वायां तु ।। मेदिनी ।। भोज्यद्रव्यों के मधुरादि षड्रसों का ग्रहण करनेवाला अंग या इन्द्रिय, रसनेन्द्रिय। जिह्वा में रसज्ञान होने के लिए छोटे छोटे उभार होते हैं जिन्हें स्वादकलिकाएँ (Taste buds) कहते हैं। विशुद्धरसने-भोजन में विविध भोज्यद्रव्य चर्वण से महीन बनते हैं जिससे ये कलिकाएँ लिप्त हो जाती हैं और रसग्रहण का अपना कार्य अतिसूक्ष्मता से कर नहीं सकतीं। इससे किसी भोज्यद्रव्य का रस प्रारम्भ मे जैसा अनुभूत होता है वैसा पश्चात् नहीं अनुभूत होता। इस रसग्रहणमान्द्य को दूर करने के लिए बीच-बीच में घूँट-घूँट पानी पीकर जिव्हा साफ करने के लिए कहा है। इससे वही द्रव्य अपूर्ववत् याने पहले सेवन नहीं किया गया इस प्रकार नवीन प्रतीत होता है—स्वादुना तस्य रसनं प्रथमेनातितर्पितम् । न तथा स्वादयेदन्यत् तस्मात्प्रक्षाल्यमन्तरा ।। सुश्रुत ।। एकरस द्रव्य के सेवन के समय बीच-बीच में थोड़ासा जल सेवन करके जिह्वा साफ करने पर जैसे उसका रसास्वाद अपूर्ववत् प्रतीत होता है वैसे अन्य रसद्रव्य के सेवन से पूर्व जल प्राशन करके जिह्वा साफ रखने से उस द्रव्य के रस का भी शुद्ध स्वाद प्रतीत होगा। रुचिवर्धन के अतिरिक्त बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा जल सेवन करने से अन्ननलिका में लिप्त या फँसा हुआ अन्नांश नीचे जठर में उतरने में सहायता होती है, जठर में अन्न भलीभाँति फैलकर बैठ जाता है, अन्ननलिका साफ होने से जठर में उत्पन्न हुई वायु डकार के रूप में ऊपर निकल कर बीच-बीच में जठर हलका होने में सहायता होती है। 'अजीर्णे भेषजं वारि' (पृष्ठ ८४) तथा 'अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ' श्लोक तथा उनके वक्तव्योंको देखें।

(३) धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ।
वन्द्यैव माधुरीयं पण्डितराजस्य कवितायाः ॥

(जगन्नाथपंडित)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२) मधुररस—द्राक्षा, दूध, गन्ना, मधु इत्यादि द्रव्यों की मधुरता (अपनी-अपनी दृष्टि से) सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी पण्डितराज (जगन्नाथ) की कविता की माधुरी इनसे भी कुछ श्रेष्ठ होती है।

वक्तव्य—धुर्यः–धुरमर्हति, अग्रे स्थापनयोग्यः, श्रेष्ठ। माधुर्यम्–खाद्यद्रव्यों की दृष्टि से मीठापन। (२) काव्य की दृष्टि से पदलालित्य, शृंगारादि रस, विविध अलंकार तथा अर्थगौरव—चित्तद्रवीभावमयऽऽह्लादो माधुर्यमुच्यते ॥ साहित्यदर्पण ॥ काव्यमाधुर्य इस प्रकार त्रिविधांगी होने से और जगन्नाथपण्डित के काव्य में ये सब अंग विद्यमान रहने से केवल मधुर रसाधिष्ठित अतएव एकांगी खाद्यद्रव्यों की मधुरता से रसिकों को पण्डित के काव्य की मधुरता अधिक प्रिय होती है। द्राक्षादि द्रव्यों की स्वादुता तद्‌गत मधुर रसों पर और मधुर रसों की स्वादुता तद्गत विविधशर्कराओंपर अधिष्ठित होती है। जैसे, दूध में दुग्धशर्करा (milksugar) अथवा दुग्धौज (Lactose), द्राक्षा में द्राक्षाशर्करा (Grape sugar) या द्राक्षौज (Glucose), मधुमें परिवर्तित द्राक्षाशर्करा या मध्वौज (Dextrose) और गन्ने में इक्षुशर्करा (Cane sugar) या इक्ष्वौज (Sucrose) है।

(४) त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता नहि वक्तुमीश सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ॥
(बृहत्स्तोत्ररत्नाकर)

(३) शर्करा—दूध स्वभाव से मधुर होनेपर भी शुभ्रशर्करा मिलाने पर वह कुछ और मधुर हो जाता है, वैसे हे भगवन्! केवल तुम्हारा स्मरण पावन है और स्तुतिस्तोत्रों के साथ करने पर वह अनिर्वचनीय पावन हो जाता है।

वक्तव्य—सितशर्करान्वित–गन्ने की शुभ्र निर्मल शर्करा से युक्त। ऊपर जो विविध शर्कराएँ निर्दिष्ट की गयी हैं उनमें दुग्धशर्करा केवल

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दूध में होने से तथा स्वाद में फीकी रहने से खाद्यद्रव्यों को स्वादु बनाने में उसका उपयोग नहीं किया जाता है। वह केवल होमिओपाथी की गोलियों के लिए और शूस्लर की जीवरसायन (Biochemic) औषधियों के लिए प्रयुक्त की जाती है। मधुशर्करा या द्राक्षौज (Glucose) भी महंगा होने से खाद्य द्रव्यों को मीठा बनाने लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। इसका उपयोग मुख्यतया हृदय की खाद्यौषधि करके सिराद्वारा अथवा मुखद्वारा किया जाता है। रही इक्षुशर्करा। वह सब शर्कराओं से अधिक स्वादिष्ठ, अधिक सस्ती तथा अत्यधिक राशि में उत्पन्न होने से खाद्य के लिए तथा खाद्यद्रव्यों को स्वादु बनाने के लिए प्रयुक्त होती है। हमारे सब मिष्टान्न और पक्वान्न इसी से बनते हैं। तात्पर्य अपने जीवन में मधुरता उत्पन्न करने का एक हेतु वा द्रव्य इक्षुशर्करा है। 'संचित्य संचित्य' (पृष्ठ १००) श्लोक देखिए।

(५) व्यसनानन्तरं सौख्यं स्वल्पमप्यधिकं भवेत्।
कषायरसमासाद्य स्वादुतीवाम्बु विद्यते ॥ (दृष्टान्तशतक)

(४) *कषाय रस*—विपत्ति के पश्चात् मिला हुआ स्वल्प सुख भी बहुत अधिक प्रतीत होता है, जैसे कषाय रस का स्वाद लेने पर जल (नीरस होने पर भी) बहुत स्वादु लगता है।

वक्तव्य—व्यसन—विपत्ति। 'केवलं व्यसनस्योक्तं' श्लोक का वक्तव्य देखें। स्वल्पमप्यधिकम्—'तृषाशुष्यत्यास्ये श्लोक' का वक्तव्य देखें। कषायरस-कषायो जडयेज्जिह्वाम्। अष्टांगहृदय। कषाय रस से जिह्वा की रससंवेदना मन्द होने से जल मधुर मालुम होता है। आँवला खाने के पश्चात् जल का मीठापन इसका सर्वपरिचित उदाहरण है।

(६) अभ्यासेन कटुद्रव्यं भवत्यभिमतं मुने।
अन्यस्मै रोचते निम्बमन्यस्मै मधु रोचते ॥ (योगवासिष्ठ)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) *अभ्यास*—(विद्याधरी वसिष्ठजी को कहती है) हे मुने ! अभ्यास से कटु द्रव्य भी प्रिय होता है। जैसे, एक को मधु वैसे (अभ्यास से) दूसरे को नीम भी रोचक लगता है।

(७) कवलयति नरकनिकरं परिहरति मृणालिकां ध्वाङ्क्षः।
यदतोऽस्तु मा स्मयस्ते, स्वभ्यस्तं सर्वदा स्वदते ॥
(योगवासिष्ठ)

कौआ कमलतन्तुओं का त्याग करता है और नरक (तथा नरक-सम अन्य गलीज मैले द्रव्यों) के ढेर को भक्षण करता है। परन्तु इसमें तुम्हें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि जिसके सेवन का अभ्यास हुआ है वह द्रव्य (दुर्गन्धित, घृणित, अस्वादु होने पर भी) स्वादु ही मालूम होता है।

(८) न स्वादु नौषधमिदं न च वा सुगन्धि
नाक्षिप्रियं किमपि शुष्कतमाखुचूर्णम्।
किं चाक्षिरोगजनकं च तदस्य भोगे
बीजं नृणां नहि नहि व्यसनं विनाऽन्यत् ॥
(सुभाषित रत्नभाण्डागार)

(९) *व्यसन*—तमाखु की सूखी बुकनी स्वादु नहीं, औषधि नहीं, सुगन्धी नहीं, नेत्रों के लिए आकर्षक नहीं, प्रत्युत नेत्रों को कष्ट देने वाली है, फिर उसके सेवन में व्यसन के विना अन्य कोई मूल नहीं हो सकता।

वक्तव्य—अभ्यास और व्यसन– अभ्यास प्रायः हितकर बातों का होता है, सोचसमझकर किया जाता है, उसमें आसक्ति नहीं होती, अतएव उससे पतन की सम्भावना नहीं रहती; जैसे नीम सेवन, गोमूत्र सेवन, व्यायाम सेवन का अभ्यास। इसके विपरीत व्यसन प्रायः अहितकर बातों का होता है, अनजाने अन्धानुकरण से, परप्रत्ययनेय-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बुद्धि से होता है, उसमें आसक्ति रहती है अतएव प्रायः पतन होनेकी सम्भावना होती है; जैसे, मद्यपान, तमाखु, सिगार इत्यादि के व्यसन। दोनों के अधिक विवरण के लिए अभ्यास और व्यसन के अध्याय देखें।

(९) दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधाऽपि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्यः मनो यत्र संलग्नम्॥
(सुभाषित रत्न भाण्डागार)

(७) *मनःप्रियता*—किसी को दही मधुर लगता है, किसी को मधु मधुर लगता है किसी को द्राक्षा मधुर लगती है तो किसी को सुधा मधुर लगती है; तात्पर्य, मनुष्य का मन जिस भोज्यद्रव्य पर बैठता है वही द्रव्य उसको मधुर लगता है (अन्य नहीं)।

वक्तव्य—मनःप्रियता-विविध इन्द्रियार्थों का ग्रहण तत्तद्विशिष्ट इन्द्रियों द्वारा होता है और गृहीत इन्द्रियार्थ का ज्ञान जीव को कराना मन का प्राकृतिक कर्म है। इस दृष्टि से मन शरीररूपी यन्त्र के एक कलपुर्जे के समान अथवा जीव के एक सेवक के समान होता है। परन्तु मनःप्रियता में मन का स्थान स्वामी के समान होता है, क्यों कि किसी द्रव्य की स्वाद्वस्वादुता या प्रियाप्रियता केवल मन की मर्जी पर निर्भर होती है, न कि किसी युक्ति या तर्क पर। वैसे ही मन अत्यन्त चञ्चल तथा स्वैराचारी होने के कारण किसी द्रव्य के सम्बन्ध की मन की प्रियता या स्वादुता शाश्वत नहीं हो सकती तथा प्रत्येक मनुष्य का मन भिन्न होने के कारण प्रत्येक की प्रिय या स्वादु वस्तु भी भिन्न होती है। जब किसी की ओर मनुष्य का मन आसक्त या लोलुप होता है तब वह द्रव्य या मनुष्य उसको अन्य द्रव्यों या मनुष्यों की अपेक्षा अधिक प्रिय होता है फिर वह द्रव्य या मनुष्य अन्यों को प्रिय हो या न हो। इसका उत्तम उदाहरण गर्भवती का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दोहद है। साधारणतया स्त्री स्वप्न में भी जिस वस्तु को सेवन करने की इच्छा नहीं करती अपने दोहद में उस वस्तुको बहुत प्रेम से सेवन किया करती हैं। मनःप्रियता के अन्य उदाहरण निम्न सुभाषितों में देखिए—गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम्। यथा सुधायां मरुतां च सत्यां स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः॥ वृद्धचाणक्य॥ किमप्यस्ति स्वभावेन सुन्दरं वाप्यसुंदरम्। यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुन्दरम्॥ हितोपदेश॥ तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥ उत्तररामचरित॥ यः प्रियः प्रिय एव सः॥ महाभारत॥

(१०) संपन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढयेषु सुदुर्लभा॥

(महाभारत)

(८) *क्षुधा*—निर्धन लोक सर्वदा अधिक स्वादु अन्न का सेवन करते हैं, क्योंकि उनमें होनेवाली क्षुधा अन्न में स्वादुता उत्पन्न करती है जो (क्षुधा या स्वादुता) धनाढ्यों में दुर्लभ हुआ करती है।

वक्तव्य—संपन्नतरम्—(१) भोज्य द्रव्यों की अपनी रुचि होती है, परन्तु जैसे सामान्य मनुष्य की अपेक्षा रत्नपारखी रत्नों की परख अधिक अच्छी करता है, वैसे सामान्य अक्षुधित मनुष्य की अपेक्षा क्षुधित मनुष्य सामने आये हुए भोज्य द्रव्यों की रुचि अधिक अच्छी तरह समझ सकता है। क्योंकि वह भोज्य द्रव्यों की ओर ध्यान देकर उनका सेवन करता है। दूसरी तरह से भी इसका स्पष्टीकरण हो सकता है। अनेक बार क्षुधित मनुष्य का मन भोज्य द्रव्यों की रुचि की ओर होता ही नहीं, क्योंकि वह तीव्र जठराग्नि की ज्वालाओं से दग्ध (पृष्ठ १३२ पर 'हृदि लज्जोदरे वह्निः' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें), अथवा क्षुधारूपी दुःख से उद्विग्न अथवा क्षुधारूपी रोग से आर्त (पृष्ठ १३५

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पर 'नास्ति क्षुधासमं दुःखं' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें) रहता है, वह केवल भोजन की सोचता है (पृष्ठ १३१ पर 'तपः सीमा मुक्तिः' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए) जिससे उसके लिए रुचिकर और स्वादिष्ट तथा रुचिहीन दोनों एक से होते हैं। यही अनुभव "क्षुधातुराणां न रुचिर्नपक्वं" इस वचन में है। तात्पर्य, क्षुधा से भोज्य द्रव्यों की रुचि बढती है ऐसी बात नहीं, किन्तु भोज्य द्रव्यों की रुचि का प्रश्न गौण हो जाता है। पक्वम्—भलीभाँति पकाये गये भोज्य-द्रव्य अधिक रुचिकर होते हैं और आसानी से पाचित होते हैं। क्षुधार्त मनुष्य के सामने रुचि गौण होने से खाद्य द्रव्य ठीक पका है या नहीं इसका प्रश्न खडा ही होता नहीं और क्षुधा के साथ जठराग्नि तेज होने से अधपका द्रव्य भी पाचित हो जाता है। तात्पर्य, क्षुधार्त के सामने रुचि के समान खाद्य द्रव्यों की पकापकता भी गौण हुआ करती है। 'क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला' ऐसा भी एक पाठ है। न वेला—प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन भोजन सेवन करने का एक नियत समय होता है। उस समय को छोडकर अन्य समय पर किया हुआ भोजन अनारोग्य कर होता है। पृष्ठ   पर 'नाहारवेलातिक्रमणीया' वचन देखिए। परन्तु किसी कारण से यदि अकाल में भूख लग जाय तो उस समय जरूर भोजन करना चाहिए। भूख लगने पर अकाल में किया हुआ भोजन अनारोग्य कर नहीं होता-अर्धरात्रेऽपि भुञ्जानः परमार्थं बुभुक्षितः। क्षुधी वैद्यपरित्यागी व्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ वृन्द-माधव ॥

(२) शरीर के सब धातुओं को संपन्न करने वाला अर्थात् पुष्टि-प्रद, बलप्रद, सारप्रद। भोज्य द्रव्यों की संपन्नता जैसे उनके स्निग्धादि द्रव्यों के संघटन (Composition) पर निर्भर होती है वैसे सेवन करने वाले की पाचन, अवशोषण (Absorption) और सात्म्यी-करण (Assimilation) की शक्ति पर भी निर्भर होती है। धनियों में क्षुधा तथा पाचनादि की शक्ति दुर्बल होने के कारण जो संपन्न

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्न वे सेवन करते हैं उसका न्यूनाधिक अंश ठीक ठीक पाचित और अवशोषित न होने से मल के साथ निकल जाता है और संपन्न अन्न भी असंपन्न हो जाता है। इसके विपरीत दरिद्रों की पाचनादि शक्ति प्रबल होने से ('शक्ति करोति संचारे' श्लोक देखें) वे जो भी अन्न सेवन करते हैं पूर्णतया पाचित और सात्म्य हो जाने से 'संपन्नतर' बन जाता है।

(११) आत्माधीनशरीराणां स्वपतां निद्रया स्वया।
कदन्नमपि मर्त्यानाममृतत्वाय कल्पते॥

(शार्ङ्गधर पद्धति)

(९) *जितेन्द्रियत्व*—समय पर नींद ले (आ) ने वाले जितेन्द्रिय मनुष्य के लिए कदन्न भी अमृत सम (रूचिकर और शरीरपुष्टिकर) बनता है।

वक्तव्य—कदन्न—पौष्टिकता और स्वादुता की दृष्टि से, निकृष्ट या हीन अन्न अर्थात् कुभोजन। आत्माधीन शरीर—जितेन्द्रिय। 'तावज्जितेन्द्रियो न स्यात्, श्लोक देखिए। सामान्य मनुष्य में कुभोजन से दिन भले ही नष्ट हो जाय ('कुभोज्येन दिनं नष्टं' श्लोक देखिए) जितेन्द्रिय में यह नहीं होता। अमृतत्वाय—(१) जिह्वालौल्य न होने से जितेन्द्रिय को प्रत्येक खाद्य द्रव्य अमृतसम बहुत रुचिकर मालूम होता है और इसलिए वह प्रत्येक द्रव्य बहुत प्रेम से सेवन किया करता है। (२) खाद्यद्रव्यों की पौष्टिकता उनके रासायनिक संघटन पर तथा सेवन करने वालों की पाचन-प्रचूषण-सात्म्यीकरण शक्ति पर निर्भर होता है। जब यह शक्ति अर्थात् कायाग्नि दुर्बल होती है तब खाद्य द्रव्य उत्कृष्ट होने पर भी वे शरीर के लिए पुष्टिप्रद नहीं हो सकते, परन्तु यह शक्ति सबल होने पर, खाद्यद्रव्य कदन्न भी क्यों न हो, उनका सब सत्वांश और सारांश शरीर के द्वारा ग्रहण होने के कारण वे शरीर के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लिए अमृतसम पुष्टिप्रद और बलप्रद हुआ करते हैं, जैसे चिन्तन, मनन, निदिध्यासन न करने से बहुतेरे ग्रन्थों का पठन पाठक के लिए ज्ञानप्रद नहीं होता, किन्तु थोड़े ग्रन्थों का पठन बहुत चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करने से बहुत ज्ञानप्रद होता है—एक शब्दः सम्यग्ज्ञातः सम्यक् प्रयुक्तश्च स्वर्गे लोके काम धुक् भवतीति वैयाकरणानां मतम् ॥ यथा खरश्चदनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य। एवं हि शास्त्राणि बहून्याधीत्य चार्थेपु मूढाः खरवद्वहन्ति॥ सुश्रुत॥ स्वपतां निद्रया स्वया-निद्रा नीरोगता की निदर्शक होती है। इसलिए उचित समय पर अच्छी नींद लेनेवाला अर्थात् नीरोग स्वस्थ॥ संक्षेप में इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि स्वस्थ और मनोनिग्रही मनुष्य के लिए खाद्य द्रव्य निकृष्ट होने पर भी अमृत सम लाभप्रद हुआ करते हैं; इसके विपरीत अस्वस्थ इन्द्रियरत मनुष्य के लिए अच्छे पौष्टिक खाद्यद्रव्य भी विषसम शरीरहानिकर हुआ करते हैं।

अब तक भोज्य द्रव्य स्वादु मालूम होने के कारणों का विवरण किया गया। अब अस्वादु मालुम होने के कारणों का विचार किया जाता है।

(१२) यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलापो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना॥ (शंकुतल)

(१०) *विपर्यय*—जैसे पिण्डखर्जूर से ऊबने पर किसी को इमली (खाने) में अभिलापा उत्पन्न हुआ करती है, वैसे स्त्रीरत्नों का (सतत) उपभोग लेने वाले तुम्हारी यह अभिलापा है।

वक्तव्य—पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य—पिण्डैः पिण्डात्मकैः खर्जूरैः खर्जूरफलैरुद्वेजितस्य। मध्यमपदलोपीसमास। पिण्डखर्जूर खर्जूर वृक्ष का एक भेद है। इसके फल बहुत मीठे होते हैं, इसलिए इसका मधु-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्रवा भी नाम है—दीप्या च पिण्डखर्जूरी स्थलपिण्डा मधुस्रवा ॥ धन्वं-निघंटु ॥ अभ्यर्थना—विदूषक कहता है—भो वयस्य ! ते तापसकन्य-काभ्यर्थनीया दृश्यते ।

इस वचन में भोज्य द्रव्यों की स्वादुता तथा अस्वादुता दोनों के हेतु बतलाये हैं । इसली कोई ऐसा भोज्य द्रव्य नहीं है कि जिसके लिए किसी में कोई अभिलाषा उत्पन्न हो, वह केवल एक विपर्यय (Mere change) के स्वरूप की है, जैसे नगरवासियों में उत्पन्न हुई ग्रामीण जीवन की अभिलाषा। परन्तु ऐसी अभिलाषा उत्पन्न होती है और वह अल्पकाल के लिए प्रिय होती है यह वस्तुस्थिति है ।

अस्वादुता के हेतु (१) उद्वेग—किसी का एक समय में अति उपभोग अथवा दीर्घकाल तक सतत उपभोग ये दो कारण उद्वेग या ऊब उत्पन्न होने में होते हैं । इस वचन में दूसरा कारण अभिप्रेत है । तात्पर्य, मनुष्यों का आहार-विहार कितना भी मनःप्रिय क्यों न हो, निरन्तर सेवन के कारण उससे ऊब जाना और उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन, फिर वह कुछ घटिया भी क्यों न हो, करना यह जो मनुष्य स्वभाव है इसका बहुत सुंदर, सोदाहरण, सूत्ररूप चित्रण इस वचन में कालिदास ने किया है ।

(१३) परिच्छिन्नः स्वादोऽमृतगुडमधुक्षौद्रपयसां
कदाचिदभ्यासाद्व्रजति ननु वैरस्यमधिकम् ।
प्रियाबिम्बोष्ठे वा रुचिरकविकाव्येऽप्यनवधि-
नवानन्दः कोऽपि स्फुरति तु, रसोऽसौ निरुपमः ॥

(भोजप्रबंध)

(२) अतिपरिचय—अमृत, गुड, मधु, द्राक्षा, दूध इनका स्वाद निश्चित होते हुए भी निरन्तर सेवन से कभी वह बहुत ही फीका मालूम होने लगता हैं; किन्तु, प्रिय पत्नी के बिम्बफलसदृश होठों में और

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सुन्दर कविकाव्यों में (निरन्तर सेवन करते हुए भी) सदैव कुछ नया नया आनंद (स्वाद) प्रकट हुआ करता है; (इस में कोई संदेह नहीं है कि प्रियाबिम्बौष्ठरस और काव्यामृतरस) ये कुछ और रस होते हैं।

वक्तव्य—परिच्छिन्नः-निश्चित, जिसकी स्वादुता प्रायः एकसी बनी रहती है। अभ्यास-निरन्तर सेवन तथा अतिपरिचय। इसके तीन परिणाम होते हैं: (१) अप्रिय या अस्वादु का प्रिय या स्वादु प्रतीत होना। 'अभ्यासेन कटुद्रव्यं' श्लोक देखिए। (२) प्रिय का अधिक प्रिय मालूम होना। इसका उल्लेख इस श्लोक के द्वितीयार्ध में किया है। महाभारत के इस बचन का भी यही तात्पर्य है—यथा यथा हि पुरुषो नित्यं शास्त्रमवेक्षते। तथा तथा विजानाति विज्ञानमथ रोचते ॥ (३) प्रिय में अप्रियत्व उत्पन्न होना। इस का उल्लेख प्रथम श्लोकार्ध में है।

(१४) शुद्धान्तसंभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम्।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा॥
(नैषध)

(३) तृप्ति या अनावश्यकता—अन्तःपुर की स्त्रियों के संभोग से तृप्त नल को मेरा यह कार्य न कहिए; क्योंकि जल पीकर तृप्त (तृषाहीन) को स्वादु, सुगन्धी, शीतल जल भी स्वादु नहीं मालूम होता है।

वक्तव्य—क्षुधामें अन्न की और तृषा में जल की आवश्यकता होती है। जब अन्न की आवश्यकता (क्षुधा) होती है तब जैसे कदन्न भी प्रिय होता है और क्षुधा न होने पर स्वादु अन्न भी अस्वादु होता है, वैसे जल की आवश्यकता होने पर सामान्य जल भी प्रिय होता है और आवश्यकता न होने पर शीतल सुगन्धी जल भी प्रिय नहीं होता। अनावश्यकताजन्य अस्वादुता की विशेषता यह होती है कि वह अल्पकालिक, तात्कालिक या क्षणैक होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१५) इन्दुं निन्दति चक्रवाकयुगलं भासां निधिं कौशिकः ।
स्वादुक्षीरमरोचकी, सुकृतिनं पापी, जडः पण्डितम् ॥
त्यक्तं सर्वजनैः खलः कटुवचा ग्राम्यः पुमान्नागरं
कः पैतामहगोलकेऽत्र निखिलैः संमानितो वर्तते ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

(४) रोग—चक्रवाक का जोड़ा चन्द्र को, उल्लू सूर्य को, अरोचकी मीठे दूध को, पापी पुण्यवान् को, मूढ पण्डित को, दुर्जन सर्वजनों से त्यक्त (सज्जन) को, देहाती कटुवचन से नागरी को बदनाम करता है। तात्पर्य, ब्रह्माजी के इस ब्रह्माण्डगोल में सबके द्वारा संमानित ऐसा कौन है ?।

वक्तव्य—स्वादुक्षीरमरोचकी-भोजन के समय खाद्यद्रव्यों में रुचि या स्वाद मालूम न होना इस विकार कों अरोचक कहते (Anorexea) हैं-प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहुः। अरोचकः स विज्ञेयः ॥ वृद्धभोज ॥ अरोचक एक रोग है तथा लक्षण है जो अनेक शारीरिक तथा मानसिक विकारों में पाया जाता है। इससे पीडित को 'अरोचकी' कहते हैं।

(१६) न दुर्जनानामिह कोऽपि दोष-
स्तेषां स्वभावो हि गुणासहिष्णुः ।
द्वेष्यैव केषामपि चन्द्रखण्ड-
विपाण्डुरापुण्ड्रकशर्कराऽपि ॥ (विक्रमांकदेवचरित)

(५) स्वभाव—दूसरों के गुणों को सह न सकना यह दुर्जनों का स्वभाव है। इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। जैसे, पुण्ड्रक गन्ने की चन्द्रखण्डसम शुभ्र शर्करा भी कुछ लोगों के लिए अप्रिय (द्वेष्य) हुआ करती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—सर्वसाधारणतया सब मनुष्यों के लिए स्वादु या प्रिय होनेवाले अनेक द्रव्य कुछ मनुष्यों के लिए स्वभाव के कारण अप्रिय या अस्वादु मालूम होते हैं। स्वभाव के अनुसार ये द्रव्य भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं, परन्तु स्वभाव या प्रकृति अपरिवर्तनीय होने के कारण (स्वभाव अध्याय देखें) उनका अप्रियत्व यावज्जीव हुआ करता है; आवश्यकता, अनावश्यकता के अनुसार परिवर्तनीय नहीं होता। स्वाभाविक अप्रियता के शारीरिक और मानसिक करके दो प्रकार हुआ करते हैं। मानसिक प्रकार में मन की असहिष्णुता यह मुख्य कारण होता है, कोई युक्तियुक्त, तर्क्य या मीमांस्य (Rational) कारण नहीं होता। इस श्लोकगत शुभ्र शर्करा का उदाहरण इस प्रकार का है। शारीरिक प्रकार में रुचि या मन की असहिष्णुता कारण नहीं होता, किन्तु सेवनोत्तर उत्पन्न शारीरिक दुष्परिणाम कारण होता है। दूध, अण्डा, मछली, सुगन्धी द्रव्य इसके उदाहरण हैं। इसको खाद्य प्रत्यात्मप्रकृति (Food idiosyncrasy) कहते हैं। इस प्रकृति में कुलज प्रवृत्ति (Heridatory tendency) होती है। मानसिक प्रकार खाद्य द्रव्य सेवन करते समय प्रकट होता है, पश्चात् नहीं; इसके विपरीत शारीरिक प्रकार सेवन करने के पश्चात् तत्काल या कुछ काल के पश्चात् प्रकट होता है।

(१७) तवामृतस्यन्दिनि पादपङ्कजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरसं समीक्षते ॥ (आलम्बदारस्तोत्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये भोज्यद्रव्याणां स्वाद्वस्वादुताविज्ञानीयो नाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६) *तुलना*—हे भगवान् ? अमृतस्रावी तेरे पदपङ्कज में जिस की आत्मा स्थिर हो गयी है वह अन्य वस्तु की इच्छा क्योंकर करेगा ? मधु से भरा कमल सामने उपस्थित होने पर मधुसेवन जिसका व्रत है वह भृङ्ग इक्षुरस की ओर देखता नहीं ॥

वक्तव्य—इसमें तुलनात्मक, वास्तविक नहीं, अस्वादुता वर्णित है। बहुत स्वादु पदार्थ सेवन करने पर साधारण स्वादुपदार्थ बहुत फीका मालूम पडता है। इसलिए जब चाय और मिठाई साथ साथ सेवन करने का प्रसंग होता है तब चाय प्रेमी लोग उसकी लज्जत न बिगडे इसलिए प्रथम चाय लेकर पश्चात् मिठाई सेवन करते हैं। इस श्लोक के उत्तर श्लोकार्ध का आशय शंकराचार्यजी के इस श्लोकार्ध से अधिक स्पष्ट तथा हृदयंगम होगा—चन्द्रे महाह्लादिनि दीप्यमाने चित्रेन्दुमालोकयितुं क इच्छेत् ॥

इति श्री भास्करशर्मणागोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां भोज्यद्रव्याणां स्वाद्वस्वादुताविज्ञानीयो
नाम षोडशोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातो मद्यगुणदोषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्तं रोगाय, युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ (चरक)

परन्तु मद्य स्वभावतः (शरीर की दृष्टी से) अन्न के समान होता है; अयुक्ति से सेवन करने पर वह रोगोत्पादक और युक्ति से सेवन करने पर अमृतसम हितकर है ॥

वक्तव्य—यथैवान्नम्—प्राणाः प्राणभृतामन्नं-श्लोक देखिये । स्वभावेन रासायनिक संघटन की दृष्टि से चावल, चीनी (Carbohydrates) जो कार्य करते हैं वही शक्ति प्रदान करने का कार्य मद्य करता है ।

(२) विनयन्तेस्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजीनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघुवंश)

उत्तमोत्तम हरिणाजिन फैलाई हुई द्राक्षालता मण्डपों के नीचे की भूमि पर बैठकर रघू के योद्धा मद्य सेवन से विजयजन्य थकावट का परिहार करते भये ।

वक्तव्य—मद्य में भय, शोक, चिन्ता, श्रान्ति इत्यादि को दूर करने का बड़ा भारी गुण है—प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ चरक ॥ इसके कारण श्रमजीवो तथा चिन्ताशोकभयश्रमार्त मद्य का सेवन किया करते हैं ।

(३) प्रमदा मदिरा लक्ष्मी विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
दृष्ट्वैवोन्मादयत्येका पीता चान्यातिसंचयात् ॥

(सुभाषित रत्नभाण्डागार)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्त्री, मद्य और लक्ष्मी इस प्रकार मद्य के तीन रूप हैं। एक दर्शन से, दूसरा पीने से और तीसरा संचय से मद उत्पन्न करता है ।

वक्तव्य—प्रमदादि तीनों एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न स्वरूप के होते हुए भी तीनों में उन्माद उत्पन्न करने का समान अवगुण है। इसलिए, विचारवान् पाणिनी ने कामुकता का अवगुण समान होने के कारण जैसे कुत्ता, जवान और इन्द्र इन तीनों को एक सूत्र में ग्रथित किया, वैसे विचारी सुभाषितकार ने प्रमदा, मदिरा और लक्ष्मी को एक सूत्र में ग्रथित किया है। 'काचंमणिं काञ्चनं' श्लोक देखिए। अब तीनों सुराओं का मद देखिए।

(१) प्रमदामद—रागोपलिप्तदृष्टिः प्रलपति मुह्यति विघूर्णति स्खलति। युवति मदिरामदान्धो युक्तायुक्तं न जानाति ॥ संकल्पसूर्योदय *(२) मदिरामद*—'वैकल्यं धरणीपातं' श्लोक देखें। *(३) लक्ष्मीमद*—अहो कनक माहात्म्यं वस्तुं केनापि शक्यते। नामसाम्यादहो चित्रं धत्तूरोऽपि मदप्रदः ॥

प्रलपति घूर्णति स्खलति मुह्यति हुंकुरुते न च पदक्रोमवैति न च धाम न च त्रपते। विकृतिशतप्रसूतिविषमाशयदोषभुवा धनमदिराम-देन धमतीव धरावलयम् ॥ संकल्पसूर्योदय ॥

(४) न पश्यति जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ।

न पश्यति मदोन्मत्तो ह्यर्थी दोषान्न पश्यति ॥ (वृद्धचाणक्य)

जन्मान्ध (चर्मचक्षु न होने से जड़सृष्टि को) नहीं देखता (परन्तु गुणदोषों को देखता है); परन्तु कामान्ध, मद्यमत्त और धनलोभी (बुद्धि नष्ट होने से) दोषों को नहीं देखते।

(६) कवयः किं न पश्यन्ति, किं न भक्षन्ति वायसाः ।

मद्यपाः किं न जल्पन्ति, किं न कुर्वन्ति योषितः ॥

(वृद्धचाणक्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कवि क्या नहीं देखते ? कौए क्या नहीं खाते ? शराबी क्या नहीं बकते ? और स्त्रियाँ क्या नहीं करतीं ?

वक्तव्य—कवयः किं न पश्यन्ति–'जहाँ न पहुँचे रवि तहाँ पहुँचे कवि'। ऐसी दिव्य दृष्टि होते हुए भी 'एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जन्तीन्दोः' किरणेष्विवांकः (कुमारसंभव) इस वचन को लिखते समय कालिदास कवि ने क्या खाक देखा ? कुछ भी नहीं ऐसा एक सुभाषितकार इस सोल्लुण्ठनोक्ति से कहता है—एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतींदोरिति यो बभाषे। नूनं न दृष्टं कविना समस्तं दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारी ॥ किं न भक्षंति वायसाः—'कवलयति नरकनिकरं' (पृष्ठ १४६) श्लोक देखें।

(६) नास्ति सत्यं द्यूतकारे, न शौचं वृषलीपतौ।
मद्यपे सौहृदं नास्ति, धूर्तेषु त्रितयं न हि ॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार)

जुआरी में सत्य नहीं, शूद्री के पति में स्वच्छता नहीं, शराबी में मित्रता नहीं और धूर्तों में तीनों नहीं।

वक्तव्य—वृषलीपतौ–शूद्र जैसी क्षुद्र जातियों में—शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः ॥ अमरकोश ॥

(७) काके शौचं, धूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्ति, स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं, मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
भूपे सख्यं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ (पंचतन्त्र)

कौए में पवित्रता, जुआरी में सत्य, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में कामशान्ति, भीरु में धैर्य, शराबी में तत्वचिंतन और राजा में मित्रता ये किसने सुने या देखे हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—सर्पक्षान्तिः–'रक्षोवधान्तः' श्लोक देखें। सत्य—यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम्। तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययः ।। क्लीब—भीरु, अविक्रमी–क्लीबं नपुंसकं षण्ढे वाच्यलिंगमविक्रमे ।। अमरकोश ।। भूपे सख्यम्–'राजा जोगी किसके मीत'। स्त्रीषु कामोपशान्तिः–स्त्री-पुरुषों की कामशान्ति की प्रक्रिया भिन्न है। मानसिक दृष्ट्या पुरुषों की कामशान्ति जीवन के अन्ततक नहीं होती यह सत्य निम्न वचन में बहुत युक्ति से वर्णन किया है–दन्तावलिर्विगलिता गलितं शरीरं केशाश्च फेनधवला न हि मे विषादः। एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य तातेति भाषणपरा शतकुन्तघातः ।। परन्तु मैथुन के समय वीर्यस्खलन होने पर उस समय के लिए उनकी कामशान्ति जरूर हो जाती है, केवल यही नहीं, वैराग्यतक उत्पन्न होता है जिसको 'मैथुनवैराग्य' भी कहते हैं। 'पुराणान्ते श्मशानान्ते' श्लोक देखें। इसलिए पुरुष वीर्यस्खलन के पश्चात् शारीरिक तथा मानसिकदृष्ट्या स्त्रीसेवन करने में असमर्थ होता है। पुरुषों के समान स्त्रियों में मैथुन के समय कामशान्ति होने के लिए कोई नैसर्गिक स्वाभाविक क्रिया न होने से वारयोषित् एक के पश्चात् एक अनेक पुरुषों की कामशान्ति कर सकती है। शारीरिक-दृष्ट्या इसलिए स्त्री पुरुषों से बहुत अधिक कामुक होती है ऐसा कहते हैं–स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा। षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ।। गरुडपुराण ।। शारीरिक दृष्ट्या स्त्रियों की कामशान्ति गर्भधारण से होती है जिसका एक लक्षण 'तृप्ति' है–तृप्तिः प्राप्तगर्भापेक्षया रतानभिलाषिता शरीरप्रीणनं वा। शशिलेखा। इसलिए गर्भिणी स्त्री के साथ मैथुन न करें। 'षण्मासान् कामयेत्' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(८) मद्यपस्य कुतः सत्यं, दया मांसाशिनः कुतः ।
कामिनश्च कुतो विद्या, निर्धनस्य कुतः सुखम् ।।

(जिनधर्मविवेक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शराबी में सत्य, मांसाहारी में दया, कामार्त में विद्या और निर्धन में सुख कहाँ ?

वक्तव्य—दया-निष्क्रिय और सक्रिय करके दया दो प्रकार की होती है। निष्क्रिय में मनुष्य दुःख और सहानुभूति प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता—दया सर्वसुखैषित्वम् ॥ महाभारत ॥ एक प्रकार से यह दुर्बलों की दुर्बल दया है। व्यावहारिक दृष्ट्या यह निरुपयोगी होती है। अधिकसंख्य दयावान् इस प्रकार के होते हैं। सक्रिय दयावान् अपनी ओर से दया करने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न करते हैं—यत्नादपि परक्लेशं हर्तुं या हृदि जायते। इच्छा भूमिसुरश्रेष्ठ सा दया परिकीर्तिता ॥ इसके भी फिर अहिंसक और हिंसक दो प्रकार होते हैं। अहिंसक में मनुष्य खाद्यपेयधन द्वारा दया करते हैं। इसमें उच्चकोटि के अपनी जान तक देने को तयार होते हैं। इसका उत्तम उदाहरण जीमूतवाहन का है जिसने सर्प और उसकी माता पर दया करने के लिए गरुड को अपना शरीर दिया और ऊपर से कहा—सिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति। तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ॥ नागानन्द ॥ हिंसक प्रकार में दयावान् मनुष्य क्षात्रवृत्ति से दया करता है। इसका उत्तम उदाहरण दिलीप राजा का है जिसने सिंहाक्रान्त नन्दिनी को देखकर तुरन्त सिंह पर बाण छोड़ने का प्रयत्न किया—ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः। जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारिः ॥ रघुवंश ॥ मांसाशिनः—शाकाहारियों में दया भाव बहुत अधिक, परन्तु वह अधिकतर निष्क्रिय और अहिंसक स्वरूप का होता है। जहाँ पर वीरोचित पराक्रम की आवश्यकता होती है वहाँ पर वे बेकार होते हैं। इसके विपरीत जीवों की हत्या करने की आदत होने के कारण मांसाहारियों में दया भाव बहुत कम होता है; परन्तु जब उत्पन्न होता है तब वे वीरोचित कर्म करने की आवश्यकता होने पर उसको भी कर सकते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तःश्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
(१०) त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

(महाभारत)

हे धृतराष्ट्र ! दस धर्म (अधर्म) को जानते नहीं उनको समझ लो; मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, श्रान्त, क्षुधित, जल्दबाज, शिकारी, भयभीत और कामुक ये वे दस हैं । अतः सज्जन इनके साथ सम्बन्ध न रक्खें ।

वक्तव्य—क्रुद्धः कामी—विषयविज्ञानीय अध्याय तथा 'ध्यायतो विषयान्' श्लोक देखें। बुभुक्षित—'नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य' वचन का वक्तव्य देखें।

(११) अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा ।
मद्यं त्रिवर्गधीधैर्यलज्जादेरपि नाशनम् ॥

(अष्टांगहृदय)

अयुक्ति से सेवन किया हुआ अन्न रोगोत्पादक अथवा प्राणघातक होता है, (परन्तु अयुक्तियुक्त) मद्य त्रिवर्ग, बुद्धि, लज्जा इत्यादि (अनेक सद्गुणों) का नाशक होता है ।

वक्तव्य—त्रिवर्ग—त्रिवर्गो धर्मकामार्थैश्चतुर्वर्गः समोक्षकैः ॥ अमरकोश ॥ अयुक्तियुक्तमन्नम्—पृष्ठ १०८ पर 'प्राणाः प्राणभृतामन्नं' श्लोक देखें ।

(१२) एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः ॥

(जिनधर्मविवेक)

एक ओर (तुला में छोटे मोटे) सब पाप (यदि रक्खे जाँय तो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसका तौल) दूसरी ओर (तुला में केवल एक) मद्यपान (रखने से हो जाता है)।

वक्तव्य—एकतः, एकतः—तोल में समानता दिखलाने के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। इसका पूर्वार्ध 'एकतश्चतुरो वेदाः' देखिए। इस वचन का तात्पर्य यह है कि यदि आप सब प्रकार के पाप करना चाहते हैं तो उनके पीछे न पड़िए, अकेला मद्यपान करिए, सब पाप आपसे आप हो जायँगे। मद्यपान से पापचर्या में अधोगति कैसे हुआ करती है उसका क्रम नीचे दिया जाता है।

(१३) चित्ते भ्रान्तिर्जायते मद्यपानाद्
भ्रान्ते चित्ते पापचर्यामुपैति।
पापं कृत्वा दुर्गतिं यान्ति मूढा-
स्तस्मान्मद्यं नैव पेयं न पेयम्॥

(जिनधर्मविवेक)

मद्य से अधोगतिक्रम—मद्य पीने से चित्त में भ्रम होता है, भ्रम से मनुष्य पापाचारी बनता है, पाप करने से मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होता है, इसलिए मद्यपान न करना चाहिए, नहीं करना चाहिए।

(१४) न स्वप्नेन जयेन्निद्रां,
न कामेन जयेत् स्त्रियम्।
नेन्धनेन जयेदग्निं,
न पानेन जयेत् सुराम्॥

(महाभारत)

मद्यनिषेध—निद्रा को निद्रा सेवन कर, स्त्री को काम सेवन कर, अग्नि को इन्धन डालकर और मद्य (की आसक्ति) को मद्यपान कर जीतने का प्रयत्न न करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—निद्रा—यह स्वाभाविक निद्रा नहीं, वैकारिक निद्रा है। निद्रा अनेक प्रकार की होती है—तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनः-शरीरश्रमसंभवा च। आगंतुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा ॥ चरक ॥ इनमें रात्रि की निद्रा स्वाभाविक अतः उसको लेना चाहिए, शेष वैकारिक, अतः उनको न लेना चाहिए। लेने से वह कम नहीं होगी बढ़ेगी। न कामेन जयेत् स्त्रियम्—पुरुष केवल कामोपभोग देकर स्त्री को जीत नहीं सकता न उसको संतुष्ट रख सकता है। पीछे छपे 'काके शौचं' श्लोक का वक्तव्य देखें। यदि वह इसी मार्ग से उसको जीतने के पीछे पड़ेगा तो स्त्री न संतुष्ट होगी न जीती जायगी, पुरुष मात्र अतिव्यवायजन्य रोगों से पीडित होगा। 'तं प्रमत्तमपि' श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखें। महाभारत में जहाँ पर यह श्लोक आया है उसके पश्चात् दूसरे ही श्लोक में स्त्री को जीतने का उपाय बतलाया है—यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः। अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥ मनुस्मृति में भी यही मार्ग अधिक स्पष्ट बतलाया है—तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः। भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ इसके साथ यदि आवश्यक मालूम हो तो ताडन का भी उपाय बतलाया है—लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च। ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ शंखस्मृति ॥ परन्तु यह ताडन लाक्षणिक अर्थात् जहाँ तक हो सके वाणी या इशारे के स्वरूप का रहे—'अक्लमन्द को इशारा काफी है।' अक्लमंद को इशारा मूर्ख को तमाचा। तात्पर्य, विधिविहित कामसेवन और भूषणाच्छादनाशन ये स्त्री को जीतने के दो उपाय हैं, केवल कामसेवन नहीं। 'तासामाद्याश्चतस्रस्तु', 'इक्षुदण्डास्तिलाः' और 'उद्योगः कलहः कण्डुः' ये श्लोक और इनका वक्तव्य देखें।

(१५) इयं खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता।

(मालविकाग्निमित्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ओहो यह तो मद्यपान से अस्वस्थ के लिए सचमुच शर्करा मिल गयी।

वक्तव्य—सीधु—गन्ने के पक्व या अपक्व रस से बनायी गयी मदिरा। यहाँ पर इसका अर्थ केवल मदिरा है। मत्स्यण्डिका—आयुर्वेद में बनाने की विधि और निर्मलता के अनुसार शर्करा के धौतगुड, मत्स्यण्डिका, खण्ड और सिता करके चार प्रकार किये गये हैं और ये उत्तरोत्तर अधिकाधिक निर्मल होते हैं। मत्स्यण्डिका भूरापन लिए लाल या पीले रंग की दानेदार शर्करा है और इसका दाना मछलियों के अण्डे के समान होने से इसको मत्स्यण्डिका कहा है—वालुकेव भृशं सूक्ष्मा सुस्निग्धा सितपिंगला। मत्स्याण्डाकृतिसादृश्ययोगान्मत्स्याण्डिका स्मृता। परन्तु यहाँ पर मत्स्यण्डिका केवल शर्करा के अर्थ में है। जैसे अन्यत्र अम्लिका के स्थान में तिन्तिणी शब्द का प्रयोग भाषालंकार की दृष्टि से किया गया है। वैसे यहाँ पर भी शर्करा के स्थान में मत्स्यण्डिका शब्द प्रयुक्त किया गया है। शर्करा एक सुलभ और अनपायी मदिरामदघ्नोगद (Antidote against intoxication by liquor) है। मद्यपान के ऊपर इसका तत्काल सेवन करने से मद उत्पन्न नहीं होता—मदयति न हि मद्यं जातुचित्पीतमद्यं पिबति घृतसमेतां शर्करामेव सद्यः॥ अजीर्णामृतमंजरी॥

अग्निमित्र राजा रानी की दासी मालविका पर मुग्ध हो गया था। एक दिन विदूषक के साथ वह प्रमदवन गया। वहाँ पर मालविका भी आ गयी थी। उसको देखकर राजा का परिहास करने के लिए विदूषक ने यह वचन कहा है। ठीक इसी स्वरूप का 'यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य' यह वचन है। एक दिन दुष्यन्त राजा मृगया करते-करते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने शकुन्तला को देखा और उस पर मुग्ध हो गये। पश्चात् राजा विदूषक से उसके अद्वितीय सौन्दर्य की बातें करने लगे। तब उसका परिहास करने के लिए विदूषक ने यह वचन कहा।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१६) निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत ।
विकारैः स्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः ॥

(अष्टांगहृदय)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये मद्यगुणदोषविज्ञानीयो नाम
सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ॥



पहले से ही पूर्ण विचार करके जो जितेन्द्रिय मनुष्य मद्यपान से निवृत्त रहता है वह कदापि आधि-व्याधियों से पीडित नहीं होता।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां मद्यगुणदोषविज्ञानीयो नाम
सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातो नैष्ठिकब्रह्मचर्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥ वसिष्ठसंहिता ।

ब्रह्मचर्यव्याख्या—शरीर, मन और वाणी इन तीनों से सर्व अवस्थाओं में सदा सर्वदा तथा सर्वत्र मैथुनत्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

वक्तव्य—व्यवहार में लोग मैथुन से केवल स्त्री-पुरुष संभोग समझते हैं, परन्तु मैथुन का यह एकदेशीय या संकुचित अर्थ है । उसका व्यापक अर्थ और उसके आधार पर ब्रह्मचर्य का स्पष्टीकरण नीचे के वचनों में किया गया है ।

(२) स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥

(३) एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ (दक्षस्मृति)

अष्टाङ्गब्रह्मचर्य—विचारी पुरुष (स्त्रियों के द्वारा पुरुषों का तथा पुरुषों के द्वारा स्त्रियों का) स्मरण, गुणगान, उनके साथ क्रीडा करना; उनकी ओर कामुक दृष्टि से देखना, एकान्त में भाषण, मैथुन के लिए सङ्कल्प करना, तदर्थ प्रयत्न और प्रत्यक्षसंभोग· इन आठ अङ्गोंको मैथुन और इनके विपरीत आठ अङ्गों को ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

वक्तव्य—अष्टलक्षणम्—मैथुन के विपरीत ब्रह्मचर्य होनेसे मैथुन के समान ब्रह्मचर्य भी अष्टाङ्ग होता है—शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु ·यः सङ्ग-व्युदासः श्रोत्राद्युपरति असङ्कल्पश्च मनस उपरतिः स अष्टाङ्गं ब्रह्मचर्यम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

माठरभाष्य ।। ब्रह्मचर्यम्—शास्त्रीय व लौकिकदृष्ट्या ब्रह्मचर्य के अनेक अर्थ होते हैं । (१) ब्रह्म परमात्मानमभिमुखं चरति, ब्रह्मणे चर्यं वा । ब्रह्मोपासना—यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।। गीता ।। (२) ब्रह्म वेदं वा गुरुणा प्रदत्तं चरति, वेदार्थं चर्यं वा । वेदाध्ययन—प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ।। याज्ञवल्क्य-स्मृति ।। (३) ब्रह्म बीजं रेतस्तच्चरति, तं न मुञ्चति । नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, जिसका विवरण इस अध्याय में किया है । संक्षेप में शाश्वत अस्खलित-रेतस्त्वम् ।। (४) शास्त्रोक्त युक्तियुक्त मैथुनसेवन, वैवाहिक ब्रह्मचर्य—आहारशयनब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः । शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव-धारणैः ।। अष्टाङ्गहृदय ।। 'ऋतावृतौ सदारेषु' श्लोक देखिए । (५) कायिक मैथुन विन्मुखता, इसमें केवल कायिक ब्रह्मचर्य पर बल दिया जाता है, इसलिए शारीरिक तप में इसका समावेश होता है—देवद्विज-गुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।। गीता ।। (६) लाचारी से अविवाहित स्थिति या काँरापन यह ब्रह्मचर्य का लौकिक या बोलचाल की भाषा में या सर्वजनपरिचित अर्थ होता है—ब्रह्मचारी च निर्धनः । वृद्धचाणक्य ।। (७) गुरु के घर में रहकर वेदाध्ययनादि कर्म किये जाते हैं और उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए गुरुकृपा की अत्यन्त आवश्यकता होती है जो गुरुकी उत्तम सेवा किये बिना प्राप्त नहीं हो सकती है । इसलिए गुरुसेवा को भी ब्रह्मचर्य कहते हैं— शुश्रूषा च गुरोर्नित्यं ब्रह्मचर्यमितीरितम् ।। वसिष्ठसंहिता ।।

(४) सन्तु विलोकनभाषणविलासपरिहासकेलिपरिरम्भाः ।
स्मरणमपि कामिनीनामलमिह मनसो विकाराय ।।

(प्रबोधचन्द्रोदय)

स्त्रीवर्जन का महत्व—विलोकन, भाषण, विलास, हँसीमजाक, क्रीडा और आलिङ्गन इनको रहने दीजिये । स्त्रियोंका केवल स्मरण मनोविकार उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होता है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) स्त्रीरत्नध्यानमात्रं तु ब्रह्मणोऽपि मनो हरेत् ।
किं पुनश्चेतरेषां तु विषयेच्छानुवर्तिनाम् ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

स्त्रीरत्न का केवल ध्यान ब्रह्मा के भी मन को आकर्षित करता है, फिर विषयसेवन के पीछे पड़े हुए अन्योंकी क्या कथा है ?

(६) स्त्रीरत्नं मोहनं सृष्टं दृष्टमाशीविषोपमम् ।
यदिच्छेदात्मनः श्रेयो मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ मनोहारी स्त्रीरत्न देखने पर सर्पविष के समान होता है । अतः अपना हित चाहनेवाले को मनसे भी उसका चिन्तन न करना चाहिए ।

(७) पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा यौषितयौवनम् ।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव कस्य नोच्चलते मनः ॥

(रामचन्द्रजी लक्ष्मण से पूछते हैं । हे लक्ष्मण !) सुन्दर पुष्प, फल और स्त्रियों का यौवन इन तीन रत्नों को देखकर किसका मन विचलित नहीं होता ?

(८) नैष्ठिकव्रतवन्तो ये वर्णिनो मदुपाश्रयाः ।
तैः स्पृश्या न स्त्रियो भाष्या न न वीक्ष्याश्च वा धिया ॥

(९) तासां वार्ता न कर्तव्या न श्रव्याश्च कदाचन ।
तत्पादचारस्थानेषु न च स्नानादिकाः क्रियाः ॥

(१०) न स्त्रीप्रतिकृतिः कार्या न स्पृश्यं योषितोंऽशुकम् ।
न वीक्ष्यं मैथुनपरं प्राणिमात्रं च तैर्धिया ॥

(शिक्षापत्री)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मेरे आश्रय में रहनेवाले वर्णाश्रमधर्मी नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्त्रियों को स्पर्श न करें, उनसे भाषण न करें, उनकी ओर न देखें, उनकी बातें न करें, न सुनें, उनके आने-जानेके मार्ग पर स्नानादि न करें, स्त्री की मूर्ति न बनावें, स्त्रीके वस्त्रों को स्पर्श न करें और मैथुनासक्त प्राणी को अपनी इच्छा से न देखें।

(११) न संभाषेत् स्त्रियं कांश्चित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येद्दारवीमपि ॥

स्त्रियोंके साथ (अकारण या अधिक) भाषण न करें, पहले देखी हुई स्त्रियों का स्मरण न करें, उनके संबंधमें चर्चा न करें, (केवल यही नहीं) काष्ठमय (या चित्रमय) स्त्रीको भी न देखें।

(१२) स्त्रीदर्शनादिभिः शुक्रं कदाचिच्चलितं भवेत् ।
ग्राम्यधर्मकृतान् दोषान् सोऽसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात् ॥

(सुश्रुत)

स्त्रीके दर्शनादि से भी कभी-कभी शुक्र का क्षरण होता है, जिससे स्त्रीके साथ समागम न करने पर भी (वीर्यस्खलन होनेके कारण) स्त्रीसमागम के दुष्परिणाम मनुष्य को प्राप्त हुआ करते हैं।

(१३) मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

(मनु)

माता, बहन अथवा कन्या के साथ भी एकान्त में (कदापि) न रहें; क्योंकि बलवान् इन्द्रियाँ विद्वान् को भी अपनी ओर खींच (कर पाप करवा) ती हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१४) वर्जयेदिन्द्रियजयैर्निर्जने जननीमपि ।
पुत्रीकृतोऽपि प्रद्युम्नः कामितः शंबरस्त्रिया ॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

जितेन्द्रियों को निर्जन स्थान में माता को भी वर्जन करना चाहिए। शंबर (राक्षस) की पत्नी (मायावती) पुत्र के समान पाले हुए प्रद्युम्न के साथ मोहित हुई।

वक्तव्य—निर्जन, विविक्तासन—एकान्त। 'ज्ञानं सतां मानमदाधिकारणं' श्लोक देखिए। पुत्रीकृतः—पुत्र के समान पाला हुआ, गोद में लिया हुआ—अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौवृषभध्वजेन ॥ रघुवंश ॥ प्रद्युम्न—श्रीकृष्ण का रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ पुत्र। पूर्वजन्म में यह मदन था, इसलिए यह मदन का ही नाम है—मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ॥ अमरकोश ॥ शंकरजी ने जब मदन को भस्म कर दिया तब वह यादव कुल में प्रद्युम्न के नाम से उत्पन्न हुआ। शंबरस्त्रिया—शंबर राक्षस था, मायावती उसकी पत्नी थी। शंबर को पुत्र नहीं था। अतः उसने प्रद्युम्न को जन्म के सातवें दिन सूतिकागार से हरण करके लाया और मायावती को पुत्र करके दिया—दिवसे सप्तमे बालो जातमात्रोपवाहितः। सूतिकागारमध्यात्त्वं शिशुरुत्तानशायितः ॥ विष्णुपर्व ॥ मायावती काम की रति थी जो शंबर की पत्नी होकर आयी थी। कामितः—यद्यपि प्रद्युम्न को पुत्र करके संभाला था, तथापि उसके रूपलावण्य को देखकर मायावती उसको अपना पति मदन ही समझती रही और इसलिए उसको रसायन खिलाकर उसने जल्दी बड़ा किया—रसायनप्रयोगैश्च शीघ्रमेव व्यवर्धयत् ॥ विष्णुपर्व ॥ जब वह जवान बना तब मायावती ने अकेले में उसको अपनी कामुक चेष्टाओं से काममोहित करना प्रारम्भ किया—स यदा यौवनस्थस्तु प्रद्युम्नः कामदर्शनः। तं सा मायावती कान्तं कामयामास

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कामिनी ॥ इंगितैश्चापि वीक्षन्ती प्रालोभयत सस्मिता ॥ प्रद्युम्नने इस पर मायावती से प्रश्न किया—मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा ॥ विष्णुपर्व ॥

(१५) प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंभवस्तावत् ।
निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम् ॥
(प्रबोधचन्द्रोदय)

विद्वानों में शास्त्रोक्त विवेक तब तक मन पर प्रभावी होता है जब तक स्त्रियों के सूक्ष्म दृष्टिशर प्रहार नहीं करते हैं।

(१६) विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरे ॥
(श्रृंगारशतक)

वायु, जल, पत्ती सेवन करने वाले विश्वामित्र पराशर प्रभृति ऋषि भी स्त्रियों का सुन्दर मुखकमल देखकर मोहित हुए। फिर चावल, घी, दूध, दही इनसे युक्त भोजन सेवन करने वाले मनुष्यों का (स्त्रियों को देखकर) यदि इन्द्रियनिग्रह हो तो विन्ध्यपर्वत के समुद्र में तैर (नेके समान एक आश्चर्य हो) जायगा ॥

(१७) अग्निकुण्डसमा नारी घृतकुम्भसमो नरः ।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ (अवधूतगीता)

स्त्री (जलते हुए) अग्निकुण्डसम और पुरुष जमे हुए घी के घड़े के समान हैं। संसर्ग से पुरुष का वीर्य (रूप घी) पिघल जाता है; इसलिए स्त्री वर्जन करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—इस आशय का दूसरा भी एक श्लोक है जिसमें उपमान और उपमेय में विपर्यय पाया जाता है–घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्। तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकत्र स्थापयेद् बुधः ॥ पद्मपुराण ॥ वस्तुस्थितिनिदर्शन की दृष्टि से इस विपर्यय की अपेक्षा ऊपर का पाठ अधिक यथार्थ है।

(१८) चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

शुक्र—शुक्र का स्थैर्य मन के अधीन और जीवित (स्थैर्य) शुक्र के अधीन होता है। इसलिए प्रयत्न (पराकाष्ठा) करके शुक्र और मन इन दोनों का रक्षण करना चाहिए

(१९) अतिसारो यथा नृणां सर्वतेजोपहारकः।
रेतस्ते निर्गमस्तद्वद् बलवीर्यापहारकः ॥

(२०) यथेक्षुदण्डो निःसारः पीडितस्तद्वदेव हि।
पुमान् भवति निःसारो रेतसो हि विनिर्गमात् ॥

(शंकरानन्द)

अतिसार (Dysentery) जैसे बलापहारक होता है, वैसे रेतस्खलन बल और ओज इनका हरण करने वाला होता है। जैसे गन्ना, (दाँतों से या कोल्हू से) पीडित होने पर निःसार हो जाता है वैसे रेतःस्खलन होने पर मनुष्य निःसार होता है।

(२१) मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे तावत्कालभयं कुतः ॥

(हठयोगप्रदीपिका)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शुक्र के स्खलन से मृत्यु और उसके धारण से जीवन होता है। अतः जब तक शरीर में वीर्य स्थिर है तब तक मृत्यु का डर कहाँ ?

(२२) तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥
(कठोपनिषद्)

वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते हैं, सब लोक उसी के आश्रय में हैं, उसके बाहर कोई नहीं जा सकता ।

(२३) यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम् ।
परं तत्सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परां गतिम् ॥ (महाभारत)

ब्रह्म का जो यह रूप है वही ब्रह्मचर्य है। यह ब्रह्मचर्य सब धर्मों से पर है और उसी से सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त होती है

वक्तव्य—ब्रह्मप्राप्ति में शुक्र का महत्व ध्यान में रखकर उपनिषदों में अमृतस्वरूप ब्रह्म को ही शुक्र कहा है। कठोपनिषद में आगे फिर उसको दोहराया है—तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतम् ॥ परा-गति—मोक्ष ॥

(२४) सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा ।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥ (मुण्डकोपनिषद्)

सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और (इनके साथ नैष्ठिक) ब्रह्मचर्य इनसे आत्मा की प्राप्ति होती है।

(२५) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभवत् ॥ (अथर्ववेद)

ब्रह्मचर्य और तप से देवताओं ने मृत्यु का नाश किया। इन्द्रने भी ब्रह्मचर्य से ही देवताओं में श्रेष्ठत्व प्राप्त किया।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मृत्युमपाघ्नत–शतपथ ब्राह्मण में यह लिखा है कि ब्रह्माजी ने अपनी सर्व प्रजा मृत्यु के अधीन कर दी, परन्तु ब्रह्मचारी को उसके अधीन नहीं किया–ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत, तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत् ॥ शतपथब्राह्मण ॥

(२६) धनं लभेत दानेन, मौनेनाज्ञां विशांपते ।
उपभोगांश्च तपसा, ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ (महाभारत)

हे राजन् ! दान से धन मिलता है, मौन से अनुज्ञा मिलती है, तप से विविध उपभोग प्राप्त होते हैं और ब्रह्मचर्य से दीर्घजीवित का लाभ होता है

वक्तव्य—जीवित–दीर्घायुष्य–ब्रह्मचर्य आयुष्यकराणाम् । चरक ॥

(२७) ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ (योगसूत्र)

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होनेपर ब्रह्मचारी को वीर्य का लाभ होता है ।

वक्तव्य—वीर्य–ओज, विशेष विवरण के लिए आगे के श्लोकों की टिप्पणी देखें ।

(२८) अस्यात्रस्थानतो पुंसामोजो नामाष्टमी दशा ।
भवत्ययं यया जन्तुस्तेजस्वी सन् हि जीवति ॥

(२९) अस्य संस्थापने नृणां जरा वैरूप्यकारिणी ।
मृत्युश्च न भवेच्छीघ्रं बलं चेह न नश्यति ॥

(शंकरानन्द)

ओज—इस प्रकार के ब्रह्मचर्य के अवस्थान से मनुष्यों में ओज नामक आठवीं दशा उत्पन्न होती है, जिससे वह जीवन भर तेजस्वी होकर रहता है । उसमें शरीर विरूप करने वाली जरा उत्पन्न नहीं होती, मृत्यु जल्दी (अकाल में) आक्रमण नहीं करती और शरीर की शक्ति भी अकाल में समाप्त नहीं होती ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—आयुर्वेद के अनुसार शरीरके धातुओं के परिवर्तन में शुक्र की दशा सातवीं होती है—रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते। मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः ॥ शार्ङ्गधर ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से शुक्र आगे की दशा में परिवर्तित होता है। इसलिए आठवीं दशा कहा है। इस अवस्था में शुक्र का जो परिवर्तित रूप है उसको ओज कहा है। ऊपर योगसूत्र में ब्रह्मचर्य पालन से वीर्यलाभ होता है ऐसा कहा है वहाँ पर वीर्य का अर्थ ओज ही है—ओजो बलं वीर्यं वा। ओजः शरीरस्थितिकारणमष्टमो धातुः ॥ ओजः शरीरबलहेतुरष्टमो धातुः ॥ सायण ॥ आयुर्वेद में ओज का गुण वर्णन इस प्रकार का है—ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ॥ अष्टांगहृदय ॥ ओजोवृद्धौ हि देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः। हृदयस्थमपि व्यापि तत्परं जीवितास्पदम् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ संदर्भ के अनुसार ओज के अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु योग में और आयुर्वेद के ऊपर के उद्धरणों में उसका उत्पादन, स्वरूप और गुण-धर्म का जो वर्णन मिलता है उसको दृष्टि में रखते हुए आधुनिक प्रत्यक्ष शारीर क्रिया विज्ञान के अनुसार ओज से व्यावहारिक दृष्ट्या वृषण ग्रन्थि का अन्तः स्राव (Internal secretion) का ग्रहण करना ही उचित मालूम होता है और इसका दिग्दर्शन भी नीचे किया जाता है।

पुरुषों की वृषण ग्रन्थियों में दो स्राव उत्पन्न होते हैं; एक बहिःस्राव और दूसरा अन्तःस्राव। शुक्र बहिःस्राव है। वह उत्पन्न होने पर शुक्रवाहिनी द्वारा वृषण ग्रन्थियों से अपनी ओर के शुक्राशयों में इकट्ठा होता रहता है और योनिमैथुन, हस्तमैथुन, स्वप्नदोष के समय शिश्नमार्ग से शरीर के बाहर उत्सर्गित होता है। इसका मुख्य द्रव्य शुक्राणु या शुक्रकीटाणु (Spermatozoa) है। यही पुरुषों का बीज है जो स्त्रीयोनि में गिरने पर स्त्रीबीज के साथ मिल कर संतान उत्पन्न करता है। अन्तःस्राव न कहीं इकट्ठा होता है न शरीर के बाहर उत्सर्गित

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होता है। वह उत्पन्न होने पर बराबर रक्त में मिलकर संपूर्ण शरीर में फैलता रहता है। इसका मुख्य द्रव्य 'टेस्टोस्टेरोन' (Testosteron) है और वह पुरुषों में यौवनावस्था प्रारम्भ होने के समय पुंस्त्व-दर्शक बाह्य चिह्न और लक्षण विकसित करता है और शरीर में बलवीर्य-पौरुषपराक्रम उत्पन्न करता है। तात्पर्य, बाल्यावस्था समाप्त होने पर शरीर में यौवनावस्था उत्पन्न करने की, उत्पन्न यौवनावस्था के धारण करने की और अधिक वय होने पर शरीर को पुनर्यौवन प्रदान करने की इसमें शक्ति होती है।

वृषण ग्रन्थियों में बहिःस्राव और अन्तःस्राव उत्पन्न करने की कोशिकाएँ (Cells) भिन्न भिन्न होती हैं, फिर भी उनका आपस में संबंध इस प्रकार का होता है कि यदि शुक्रोत्पादक कोशिकाएँ अधिक वर्धित और विकसित हो जायँ तो अन्तःस्राव की कोशिकाएँ क्षीण और व्यपजनित (Degenerated) हो जायँगी और यदि शुक्रोत्पादक कोशिकाएँ क्षीण हो जाँय तो अन्तःस्रावोत्पादक कोशिकाएँ अधिक बढ़ेंगी और विकसित होंगी। अधिक काम कराने से कोशिकाएँ बढ़ती हैं (Overuse hypertrophy) और काम न कराने से (Disuse atrophy) वे क्षीण हो जाती हैं। मैथुन के द्वारा शुक्रोत्पादक कोशिकाओं पर मनुष्य का प्रत्यक्ष अधिकार होता है और उपर्युक्त संबंध के आधार पर वह अन्तःस्रावोत्पादक कोशिकाओं पर अप्रत्यक्षतया अधिकार कर सकता है। अधिक मैथुन करने से शुक्रोत्पादक कोशिकाओं का काम बढ़ जाता है और यदि मनुष्य दीर्घकाल तक अधिक मैथुन करता रहा तो अधिक काम के कारण शुक्रोत्पादक कोशिकाएँ बढ़ेंगी और उसके कारण अन्तःस्रावोत्पादक कोशिकाएँ क्षीण होकर अन्तःस्राव घटेगा। इस प्रकार अधिक मैथुन करते रहने से शुक्र का नाश अधिक होगा और शरीर को अन्तःस्राव कम मिलेगा। तात्पर्य शरीर की दोनों प्रकार से हानि होगी। इसके विपरीत ब्रह्मचर्य के पालन से शुक्रोत्पादक कोशिकाओं का काम कम होगा और यदि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

का पालन दीर्घ काल तक या जीवन भर रहा तो शुक्रोत्पादक कोशिकाएँ क्षीण होकर अन्तःस्रावोत्पादक कोशिकाएँ उनके स्थान में बढ़ेंगी और शरीर को अन्तःस्राव अधिक मात्रा में बराबर मिलता रहेगा। तात्पर्य, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में शुक्रनाश न होने से तथा शरीर को अन्तःस्राव अधिक मिलने से शरीर को दोनों ओर से लाभ होगा। और इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में मनुष्य को वीर्य, चिरयौवन, बल इत्यादि की प्राप्ति होगी।

It has been suggested by Steinach that by tying of spermatic cord might promote rejuvination by causing the acinal cells to degenerate and thus allowing the cells of internal secretion more room to grow.

Halliburtons Physiology.

(३०) एकतश्चतुरोवेदा ब्रह्मचर्यं तथैकतः। (जिनधर्मविवेक)

एक ओर चारों वेद और एक ओर ब्रह्मचर्य।

वक्तव्य—एक नैष्ठिकं ब्रह्मचर्य के पालन से वह श्रेय प्राप्त होता है जो चारों वेदों के पठन से मिलता है। इस श्लोकार्ध का उत्तरार्ध 'एकतः सर्व पापानि मद्यपानं तथैकतः' है।

(३१) एकमेव व्रतं श्लाघ्यं ब्रह्मचर्यं जगत्त्रये।
यद्विशुद्धिं समापन्नाः पूज्यन्ते पूजितैरपि ॥ (ज्ञानार्णव)

तीनों लोकों में ब्रह्मचर्य ही एकमेव श्लाघ्य व्रत है, क्यों कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य साध्य हुए ब्रह्मचारी पूज्य पुरुषोंद्वारा भी पूजित होते हैं।

(३२) धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ (अष्टांगहृदय)

नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धर्मप्रद, यशोवर्धक, दीर्घायुप्रद, इहलोक परलोक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

में रसायन (के समान फलप्रद), और शरीरमन की निर्मलता करने वालों में सर्वश्रेष्ठ होता है, इसलिए हम (हृदय से) उसका समर्थन करते हैं।

(३३) नाल्पसत्वैर्न निःशीलैर्न दीनैर्नाक्षनिर्जितैः ।
स्वप्नेऽपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरैः ॥

(ज्ञानार्णव)

दुर्बल मन के, शीलरहित, पापी, और इन्द्रियों से जीते गये लोगों से इस (नैष्ठिक) ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण स्वप्न में भी नहीं हो सकता।

(३४) कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रतः ।
ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः ॥

(महाभारत)

ब्रह्मचारी-कामचारी—कामचारी वह है जो सदैव (विषयोगभोग की इच्छा से) इन्द्रियसुख में रत रहता है, और ब्रह्मचारी वह है जो सदैव इन्द्रियजय में रत रहता है।

(३५) को ब्रह्मचर्यवान् स्यात् यश्चास्खलितोर्ध्वरेतस्कः ॥

(शंकराचार्य)

ऊर्ध्वरेता—ब्रह्मचारी कौन है ? जो अस्खलित ऊर्ध्वरेत होता है वही (वास्तव में ब्रह्मचारी है)।

वक्तव्य—कंजूस जैसे घर में धन को इकट्ठा करता है वैसे शुक्रको शुक्राशय में इकट्ठा करना ब्रह्मचर्य का उद्देश्य नहीं है, न हो सकता है, क्योंकि शुक्राशय में इकट्ठा हुआ शुक्र इच्छा से या अनिच्छा से, स्खलित हुए बिना नहीं रह सकता। यह शरीरधर्म है। शरीर में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उत्पन्न होने वाले शुक्र को शुक्राशय में इकट्ठा होने से पहले ओज नामक ऊर्ध्वं या आठवी स्थिति में रूपान्तरिक करना ब्रह्मचर्य का उद्देश्य है और इसमें जो सफल हुआ वह अस्खलितोर्ध्व रेतस्क ब्रह्मचारी होता है। पृष्ठ १७५ पर 'अस्यावस्थानतो' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(३६) न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं परं तपः।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानवः ॥

जिसको लोक तप समझते हैं वह वास्तव में तप नहीं, वास्तविक तप ब्रह्मचर्य ही है और जो ऊर्ध्व रेता है वह मनुष्य नहीं, देवता ही है।

वक्तव्य—ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्मोपासना, वेदाध्यन, गुरुसेवा इत्यादि अन्य अनेक विषय होते हुए भी सब से महत्व का विषय निर्विषय होकर शुक्ररक्षण करने का है और उसी के आधार पर ब्रह्मचारी के दो मुख्य प्रकार कर सकते हैं—(१) ऊर्ध्व रेता—यह श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है और इस लिए उसको देवता कहा है। उसके मन से स्त्री-पुरुष-भेद और उनके सम्बन्ध की कामुक वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। हनुमानजी और शुकदेव इसके आदर्श उदाहरण हैं। 'मनो हि हेतुः सर्वेषाम्' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें (२) अस्खलितरेता—इस प्रकार के ब्रह्मचारियों के मन में कामुक-वासनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं और हो भी जाती हैं, परन्तु मनपर पूर्ण अधिकार होने से वे उनको दबा देते हैं और शुक्र स्खलन हो नहीं पाता। योगी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी इस प्रकार में आते हैं। एक बार कुछ स्त्रियाँ एक सरोवर में नग्न अर्धनग्न-स्थिति में स्नान कर रही थीं। जब शुकदेवजी उस रास्ते से जाने लगे तब उन्होंने उन की कुछ भी परवा नहीं की, परन्तु उनके पश्चात् थोड़ी देर में जब व्यासजी जाने लगे तब उन्होंने तुरन्त अपने वस्त्र ठीक करने का सोचा। इस कथा से दोनों का अन्तर स्पष्ट होगा।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३७) आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः ।
पुण्यं च मत्प्रियत्वं च प्राप्यते ब्रह्मचर्यया ॥

(वृद्धगौतमस्मृति)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये नैष्ठिक-ब्रह्मचर्यविज्ञानीयो नाम
अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥



ब्रह्मचर्य से दीर्घायुष्य, तेज, बल, वीर्य, प्रज्ञा, लक्ष्मी, महायश, पुण्य और मेरा प्रियत्व प्राप्त होता है ।

वक्तव्य—प्रज्ञा—(१) बुद्धि—धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ॥ अमरकोश ॥ (२) प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता ॥ रुद्रटाचार्य ॥ (३) 'व्यंजनादिगुभाविद्या श्लोक का वक्तव्य देखें ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां नैष्ठिक ब्रह्मचर्यविज्ञानीयो नाम
अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ऊनविंशोऽध्यायः ।

अथातो वैवाहिक-ब्रह्मचर्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहारमैथुननिद्रासंज्ञा-
मात्रवेदिनो भवन्ति ॥ (कादम्बरी)

मैथुन शरीर-धर्म—प्रायः पशुपक्षि केवल भय, आहार, मैथुन और निद्रा इन कर्मों को ही जाननेवाले होते हैं ।

वक्तव्य—संज्ञामात्रवेदिनः—व्यवहार में जिन कर्मों को आहारादि संज्ञाएँ दी जाती हैं उन कर्मों को उचितरीति से करने तक ही जिन का ज्ञान मर्यादित होता, उससे अधिक नहीं । आगे का श्लोक देखिए ।

(२) आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥
(वृद्धचाणक्य)

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये मनुष्यों के कर्म पशुओं के समान होते हैं; ज्ञान (या धर्म) मनुष्यों का विशेष है, उसके विना वे पशु-सम होते हैं ।

वक्तव्य—आहारादि की दृष्टि से मनुष्य और अन्य जीव इन में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि शरीररक्षा और जातिरक्षा के ये शरीर-धर्म होने के कारण सब में समानरूपेण रक्खे गये हैं । परन्तु सेवन में समानता होते हुए भी पूर्व विधि में, विशेषतया मैथुन की, दोनों में महदन्तर होता है । पशुओं में विना पूर्वविधि या विवाह के, मैथुन-सेवन किया जाता है और मनुष्यों में उसकी आवश्यकता हुआ करती है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद्यज्जायां न विन्दते नैतावत् प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति । अथ यदैव जायां विन्दतेप्रजायते तर्हि सर्वो भवति ॥

(वाजसनेय ब्राह्मण)

प्रजा के लिए विवाह—जाया आत्मा का अर्धांश है। इसलिए जब तक वह भार्यावान् प्रजावान् नहीं होता है तब तक वह अपूर्ण है। जब वह भार्यावान् प्रजावान् होता है तब वह पूर्ण होता है।

वक्तव्य—संसार की दृष्टि से पुरुष या स्त्री पूर्ण नहीं है। दोनों मिल कर ही संसार होता है। शंकर जी के अर्धनारीनटेश्वर के रूप में इस कल्पना का चित्रण है और शंकराचार्य जैसे अजिक्य वाद-विवादपटु की स्त्रीविषयक प्रश्न में हुई हार इस कल्पना की साक्षी है। इसलिए पुरुष को विवाह करना विहित है।

(४) जायापत्योर्न विभागो जायते । (आपस्तम्ब धर्मसूत्र)

पति पत्नी का विभाजन नहीं होता है।

वक्तव्य—इसका तात्पर्य यह है कि विवाहबद्ध स्त्री पुरुष इस प्रकार आपस में घुल-मिल जाय कि मृत्यु को छोड़कर अन्य कोई उनका वियोग न कर सके।

(५) उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मतम् ।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि ॥ (नैषध)

स्त्री और पुरुष कामोपभोग में सज्ज रहें यह (चार्वाक) मुनि का तथा 'अपवर्गे तृतीया' कहने वाले पाणिनि का भी मत है।

वक्तव्य—उभयी प्रकृति—प्रथम प्रकृति स्त्री द्वितीय प्रकृति पुरुष ये दोनों। तृतीया—(१) तृतीया प्रकृति, षण्ढ—तृतीया प्रकृतिः षण्ढः ॥ अमरकोश ॥ (२) तृतीया विभक्ति ॥ अपवर्ग—(१) फलप्राप्ति।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२) मोक्ष, मोक्षोऽपवर्गः । अमरकोश ।। 'अपवर्गे तृतीया' यह पाणिनि सूत्र है । इसका अर्थ 'फलप्राप्तौ तृतीया विभक्तिः' है । परन्तु यहाँ पर कवि ने 'मोक्षे तृतीया प्रकृति' ऐसा किया है । और इसके आधार पर एवं अपि शब्द के प्रयोग से यह बतलाया है कि काम-सेवनसम्बन्धी चार्वाक का जो मत है वैसा ही मत इस सूत्र से अप्रत्यक्षतया पाणिनि ने भी प्रदर्शित किया है ।

उपर्युक्त वचनों से यह स्पष्ट होगा कि काम-सेवन स्त्री पुरुषों का शरीर-धर्म है, अतः विवाहित होकर उसका सेवन करना श्रेयस्कर है । परन्तु श्रेयस्कर होते हुए भी विवाहबद्ध होने पर पुरुष को ब्रह्मचर्य का पूर्ण परित्याग करना इष्ट नहीं होता है, क्योंकि वैवाहिक जीवन की श्रेयस्करता ब्रह्मचर्यजीवन की श्रेयस्करता से पूर्णतया भिन्न होते हुए भी ब्रह्मचर्य की श्रेयस्करता वैवाहिक जीवन काल के लिए मर्यादित स्वरूप में उपयुक्त ही होती है । अतः वैवाहिक जीवन में मनुष्य उससे वंचित न हो इसलिए वैद्यक शास्त्र तथा धर्मशास्त्र ने ब्रह्मचर्य तथा वैवाहिक जीवन दोनों को अंशतः मर्यादित करके मध्यम मार्ग निकाला है जिस में ब्रह्मचर्य का लाभ और वैवाहिक जीवन का फल प्राप्त होता है । इसको 'वैवाहिक ब्रह्मचर्य' कहते हैं ।

(६) पञ्चविंशतिपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं समभ्यसेत् ।
बलवान् शक्तिसंपन्नः शतायुश्च भविष्यति ।।

विवाहवय—पच्चीस वर्ष के वय तक ब्रह्मचर्य का पालन करें । इससे मनुष्य बलवान् और शक्तिसंपन्न होकर शतजीवी बनता है ।

वक्तव्य—पञ्चविंशति—जीवन भर ब्रह्मचारी रहने वाले लोग विरला, सब लोग विवाह करके घर-गृहस्थी करते हैं । उन्हें पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह करना चाहिए । वैद्यक में भी पत्नीसमागम के लिए यही काल बतलाया है—पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पंचविंशेन संगता ।। अ० हृदय ।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बलवान्—जैसे पूर्वायुष्य में धन-संचय करके रखने से उत्तर आयु आर्थिकदृष्ट्या सुखकर होती है वैसे पूर्वायु में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के द्वारा ओज-संग्रह करने से उत्तर आयु ओजसंपन्न और दीर्घजीवी होती है। ब्रह्मचर्य—नैष्ठिक अष्टलक्षणी ब्रह्मचर्य।

(७) ब्रह्मचर्यं समाप्याथ गृहधर्मं समाचरेत् ।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं धर्मेणोत्पादयेत्प्रजाम् ॥

विवाहोद्देश्य—ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त होनेपर गृहस्थाश्रम का स्वीकार करे और ऋणत्रयसे मुक्त होनेके लिए विध्यनुसार प्रजोत्पादन करें।

वक्तव्य—ऋणत्रयविमुक्त्यर्थम् यह गृहस्थाश्रम सेवन करनेका उद्देश्य है। जायमानो ह वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणवाञ्जायते, यज्ञेन देवेभ्यो ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यः । स वैतर्हि अनृणो भवति यदा यज्वा ब्रह्मचारी प्रजावानिति ॥ शारीरभाष्य ॥ ऋषिदेवगणस्वधाभुजां श्रुतयागप्रसवैः स पार्थिवः । अनृणत्वमुपेयिवान्बभौ परिधेर्मुक्त इवोष्णदीधितिः ॥ रघुवंश ॥

(८) तस्मात् कन्यामभिजनोपेतां, त्रिवर्षात् प्रभृति न्यूनवयसं श्लाघ्याचारे कुले प्रसूतां, रूपशीललक्षणसंपन्नामन्यूनाधिकाविनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षिस्तनीमरोगिप्रकृतिशरीरां तथाविधा एव श्रुतवान् शीलयेत । (कामसूत्र)

योग्य वधूवर—इसलिए कुलवान्, तीन वर्ष से अधिक छोटी, उत्तम कुलाचार युक्त कुल में उत्पन्न हुई, रूपशीललक्षणसम्पन्न, जिसके दन्त-नख-कर्ण-केश तथा नेत्र-स्तन (इत्यादि अंग) न्यूनाधिक विनष्ट न हों, जिसकी शरीर-प्रकृति नीरोग हो ऐसी कन्या को एवं गुणविशिष्ट विद्यासम्पन्न वर (विवाह में वरण करनेका) विचार करें।

वक्तव्य—त्रिवर्षात् प्रभृति—जो वरसे वयमें एक-दो नहीं तीनसे भी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अधिक वर्ष से छोटी हो और केवल वयमें ही नहीं शरीरप्रमाण में भी वह छोटी हो यह भी अप्रत्यक्षतया इस वचन से बतलाया जाता है। यवीयसीं वयसा प्रमाणतश्च न्यूनामुद्वहेत् ॥ मिताक्षरा ॥ विशेषविवरणार्थ निम्नश्लोक देखें। अन्यूनाधिकाविलष्ट-जिसके नखादि अंग संख्यामें तथा आयाम-विस्तारादि में न अधिक हों न न्यून हों तथा न अविद्यमान् हों न विकलांग हों। अरोगिप्रकृतिशरीराम्—, स्वभावसे ही जिसका शरीर नीरोग हो—स्वभावतो न रोगवच्छरीरंयस्याः। जयमङ्गलटीका। (२) प्रकृतिः शरीरं च न रोगवद्यस्याः ॥ जिसका शरीर नीरोग है तथा नीरोग कुल में उत्पन्न होनेसे जिसकी प्रकृति भी रोगवत नहीं है। 'हीनक्रियं निष्पुरुषं' श्लोकका वक्तव्य (पृष्ठ १८६) देखें। तथाविध एव-कुलशीलरूप स्वास्थ्यादि में ठीक कन्याके समान। वधू-वरमें फिर भी तीन बातों में अन्तर होता है—(१) वय, इसका विवरण नीचे के श्लोक में देखिये (२) गोत्रप्रवरपिण्ड—इसका विवरण 'असपिण्डा च या मातुः' श्लोक (पृष्ठ १९१) में देखिए। (३) पुँस्त्व—इसका विवरण 'एतैरेव गुणैर्युक्तः' श्लोक में देखें।

(९) चतुर्थादष्टमं यावत् कनिष्ठा वत्सरे वरात्।
कन्यां परिणयेच्छस्तां, नेतरातिवयाश्च या ॥

(जयमङ्गलटीका)

कन्या-वर-वय में अन्तर—वय में चार से आठ वर्ष से छोटी तथा प्रशस्त गुणों की कन्या के साथ विवाह करें, न कि (इससे अधिक अन्तर होनेवाली अल्पवय की अथवा कम अन्तर होनेवाली अर्थात् लगभग समवय की) इतर तथा अधिक वय की अन्य कन्याओं के साथ।

वक्तव्य—चतुर्थादष्टमं यावत्—इससे वधू और वर में कितने वर्षों का अन्तर होना चाहिए इसकी अल्पतम तथा अधिकतम मर्यादाएँ बतायी हैं। वैद्यकोक्त मर्यादाएँ भी इसी प्रकार की हैं—पूर्णषोडशवर्षा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता ॥ अष्टांगहृदय ॥ अथ खलु पुमानेकविंशतिवर्षः कन्यां ···द्वादशवर्षदेशीयां विधिनोद्वहेत् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ धर्मशास्त्र में यद्यपि इस प्रकार मर्यादाएँ नहीं निर्दिष्ट की गयी हैं तथापि वधू छोटी (यवीयसी) होनी चाहिए यह निःसंदिग्धतया बताया है—अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥ याज्ञवल्यस्मृति ॥ इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री छोटी हो इस विषय में सब शास्त्रों का मतैक्य है। परन्तु कामसूत्रोक्त वधू की न्यूनवयस्कता अन्य शास्त्रों के समान अमर्यादित स्वरूप की नहीं है यह उसकी विशेषता है जो सूत्र में 'स्वनुजां च वर्जयेत्' इस वचन से और उसकी टीका में उद्धृत उपर्युक्त वचन से बतलायी गयी है। इसका तात्पर्य यह है वधू वर से छोटी जरूर हो, परन्तु वधू-वर में सात वर्षों से अधिक अन्तर कदापि न हो। इस मर्यादा की उपयुक्तता नीचे के विवरण से स्पष्ट होगी।

वैज्ञानिकदृष्ट्या वैवाहिक जीवन का अभ्यास किये हुए कुछ आधुनिक विद्वानों का कहना है कि स्त्रियों की कामवासना रजोनिवृत्ति तक बनी रहती है, परन्तु अधिक वयस्कपतियों से उनकी कामवासना की शान्ति आखिर तक हो नहीं पाती। अतः प्राचीन प्रथा के अनुसार स्त्रियों को छोटी रखने के बदले पतियों को छोटा रखने की नवीन प्रथा प्रारम्भ करना अधिक युक्तियुक्त है।

पति-पत्नियों की कामशान्ति के संबंध में किया हुआ उपर्युक्त कथन कुछ पति-पत्नियों में यथार्थ होगा परन्तु सब पति-पत्नियों के लिए यर्थात् होना असंभव है, क्योंकि मनुष्यों में सबके लिए लागू हो सके ऐसा कोई नियम हो ही नहीं सकता। 'नहि सर्वहितः कश्चित्' श्लोक देखे।

वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक स्त्रियों को यह अनुभव होता है, जो वे मौका मिलनेपर अप्रत्यक्षतया प्रकट किया करती हैं, कि संतानोत्पादन का पुरुषों के स्वास्थ्यपर कोई असर नहीं होता है,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परन्तु प्रत्येक संतान का स्त्रियों के स्वास्थ्यपर कुछ न कुछ असर होता है या असर होने की संभावना बराबर बनी रहती है। 'ललितान्तानि गीतानि' तथा 'प्राप्ते प्रसवकाले च' ये श्लोक देखें। इससे कुछ संतान होने के पश्चात् स्त्रियाँ न अपने पति की कामवासना की शान्ति करने के लिए मन से उत्साही रहती हैं, न शरीर से क्षम होती है। ऐसी अवस्था में स्त्रियों की दृष्टि से पति का वय में छोटा होना हितकर नहीं हो सकता है।

भारतवर्ष में भोगविलास विवाह का उद्देश न. होते हुए (विवाहो न विलासार्थः श्लोक देखें) भी भारतीय महर्षियों की उचित भोगविलास की ओर उपेक्षावृत्ति न रही यह वस्तु-स्थिति संस्कृतसाहित्य की ओर ध्यान देने से स्पष्ट होता है। कामशास्त्र तो केवल पति-पत्नी को समुचित कामसुख प्राप्त हो इस दृष्टि से लिखा गया है। ऐसी अवस्था में प्राचीन प्रथा को तोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल पति-पत्नी में न्यूनतम अन्तर रखने से प्राचीन अनुभवों का और अर्वाचीन संशोधन का सब श्रेय प्राप्त हो सकता है।

(१०) महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जत्॥

(११) हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥ (मनुस्मृति)

वर्ज्यकुल—गौ, बकरी, धन-धान्य इत्यादि से अत्यन्त समृद्ध होते हुए भी कन्यावरण में निम्न दश कुलों का परित्याग करें॥ (१) संस्कार-रहित, (२) पुरुष-संतानहीन, (३) विद्याभ्यास-शून्य, (४) दीर्घकेशान्वित, (५) अर्शयुक्त, (६) राजयक्ष्मी, (७) रोगपीड़ित, (८) अपस्मारी, (९) श्वित्री, (१०) कुष्ठी।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—आमयावी—पाणिनि के 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' इस सूत्र के अनुसार आमय को विन् प्रत्यय लगकर उससे यह विशेषण बना है तथा आम या आमाशय से आमय शब्द बना है—प्रायेणाम समुत्थत्वेन (आमाशय-समुत्थत्वेन वा आमय इत्युच्यते ।। चक्रपाणि ।। आम—जठराग्नि की मन्दता के कारण अपाचित या अर्धपाचित अन्नरस—जठरानलदौर्बल्याद‌विपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपणः ।। आतङ्कदर्पण ।। इसके आधार पर आम अग्नि-मान्द्य अपचन का निदर्शक होने के कारण उसका एक अर्थ मंदानल अपचन ऐसा किया जाता है जैसा कि यहाँ पर कुल्लूक भट्ट ने किया है; तथा वह सर्व रोगों का हेतु होने के कारण इसका दूसरा अर्थ सामान्य रोग किया जाता है जो वैद्यक तथा साहित्य में सर्वत्र दिखाई देता है—'रोगः पाप्मा ज्वरः' तथा 'तं प्रमत्तमपि' श्लोक देखें। आमय के इन दो अर्थों के अनुसार 'आमयावी' के भी दो अर्थ—मन्दानली तथा रोगी—होते हैं। इनमें दूसरा ही अर्थ सर्वत्र ग्रहण किया जाता है—आमयावी विकृतो व्याधितोऽपटुः। अमरकोश ।। रुग्णश्चामया-व्यपटुश्च सः ।। धन्वतरि निघण्टु ।।

यहाँ पर जो दस कुल निर्दिष्ट किये हैं उनमें अन्तिम छः रोगों से सम्बन्धित होने के कारण वैद्यकीय-दृष्ट्या महत्त्व के हैं। रोग दो प्रकार के होते हैं। प्रथम प्रकार व्यक्ति तक मर्यादित होने वाले रोगों का, जैसे, अपचन, प्रवाहिका (Diarrhoea), सन्निपात ज्वर, आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) कन्या या वर के वरण में कुल देखने की दृष्टि से इनका कोई महत्त्व नहीं होता। दूसरा प्रकार माता-पिता से संतान में संचरण करने वाले रोगों का, जैसे, कुष्ठ, क्षय इत्यादि। इनके सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये रोग रोगरूप में संतान में संचार नहीं किया करते, किन्तु रोगप्रकृति (Diathesis) के रूप में संचार करते हैं और जन्म के पश्चात् अनुकूल हेतु तथा परिस्थिति प्राप्त होने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पर रोगरूप में विकसित होते हैं। वधू-वर परीक्षण में कुल की दृष्टि से ये ही रोग महत्त्व के होते हैं। अतः ऐसे ही रोगों का यहाँ पर निर्देश किया गया है। इस प्रकार कुल में संचार करने वाले रोगों को संचारी, कुलज, आदिबलप्रवृत्त या आनुवंशिक (Hereditary) रोग कहते हैं—संचारिणो रोगाःश्वित्रकुष्ठापस्मारप्रभृतयः-शुक्रशोणितद्वारेणानु प्रविशन्तो दोषाः। मिताक्षरा॥ तत्र आदिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयः॥ सुश्रुत॥

आमयावीकुल—मन्वर्थमुक्तावलि में इसका अर्थ मन्दानलयुक्त ऐसा किया है, परन्तु यह अर्थ उचित नहीं है। इसकी अपेक्षा 'जो कुल किसी न किसी रोग से, फिर वह रोग प्रतिश्याय जैसा मामूली भी क्यों न हो, बराबर पीडित रहा है तथा पीडित रहा करता है ऐसा रोगी कुल' इसका अर्थ करना उचित है। क्योंकि मन्दानल ऐसा रोग नहीं है कि जिसके होने से कुल का वर्जन किया जाय।

रोगी कुल अर्थात् माता-पिता के अपत्य 'यथा भूमिस्तथा तोयं,' 'यथा बीजं तथाऽङ्कुरः' (पृष्ठ ७७) इस न्याय से रोगी-प्रकृति के होते हैं, उनमें रोगप्रतिकारकता (Resistance) नहीं होती, जिससे अन्न, जल, ऋतु इत्यादि में जरा सा परिवर्तन होने पर वे ज्वरांश, प्रतिश्याय, खाँसी इत्यादि से पीडित हुआ करते हैं। इसलिए केवल क्षय-कुष्ठादि महारोगों से पीडित कुलों को ही नहीं, सर्व सामान्य रोगों से बराबर पीडित रहने वाले कुलों को भी वर्ज्य करना चाहिए। अर्श—कर्णनासादि अंगों में मांसांकुर, चर्मकीलक, अधिमांस (Polypus, warts) इत्यादि की उत्पत्ति। इनमें गुदार्श (Piles, hemorrhoids) सबसे महत्त्व के हैं। अर्श की निरुक्ति गुदार्शों पर अधिष्ठित है—अर्शांसीत्यधिमांसविकाराः। चरक॥ अरिवत् प्राणिनो मांसकीलका विशसन्ति यत्। अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः॥ अ० हृदय॥ अपस्मार, क्षय, कुष्ठ और श्वित्र के लिए व्याधिविज्ञानीय अध्याय देखिए। क्षयादि निर्दिष्ट रोगों के अतिरिक्त मधुमेह (Diabetes me-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

llitus), रंगान्धता (Colourblindness) मोतियाबिंद (Cataract), तृणपुष्पाख्य ज्वर (Hay fever) दमा (Asthama) छाजन (Eczema), उन्माद के कई प्रकार इत्यादि अनेक रोग संचारी स्वरूप के होते हैं। परन्तु सबों का निर्देश करना ग्रन्थ का उद्देश्य न होने से इस श्लोक में समाज की दृष्टि से विशेष महत्त्व के, अधिक परिचित तथा अधिक दिखाई देने वाले कुछ रोगों का ही निर्देश किया है। परन्तु सबों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होने से अन्यत्र केवल संचारी रोग से इनका निर्देश किया है—असंचारिरोग कुलप्रसूतां, अरोगप्रकृतिमुद्वहेत् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ स्फीतादपि न संचारि-रोग-दोष-समन्वितात् ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति ॥

(१२) असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ (मनु)

माता के सपिण्ड और पिता के सगोत्र वधू द्विजों के विवाह तथा मैथुन कर्म के लिए प्रशस्त नहीं होती है।

वक्तव्य—मनुष्यों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दोष (रोग, विकार) दिखाई देते हैं। इनमें कुछ उनके अपने होते हैं और कुछ उन्हें पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकार के रोगों का शुक्र-शोणित पर कोई असर न होने से वे सन्तान में संचरण नहीं करते हैं, परन्तु दूसरे प्रकार के रोग अपने दोष-दूष्य के अनुसार शुक्रशोणित के भागावयवों को दूषित करके वहाँ पर अपना बीज बनाते हैं जिससे वे प्रथम प्रकार के रोगों के समान व्यक्तिमर्यादित न रहकर संतान में संचरण किया करते हैं। शुक्रशोणित अर्थात् मनुष्य-बीज की रचना तथा तत्स्थित रोग-बीज की सम्प्राप्ति इस प्रकार की है—मनुष्यबीजं हि प्रत्यंगबीजभागसमुदायात्मकं स्वसदृश-प्रत्यंगसमुदायरूपपुरुषजनकम् ॥ चक्रपाणि ॥ यस्य यस्य ह्यंगावय-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वस्य बीजे बीजभाग उपतप्तो भवति, तस्य तस्यांगावयवस्य विकृति-रुपजायते, नोपजायते चानुपतापात् ॥ चरक ॥ शुक्रशोणित द्वारा फैलने वाले इन रोगों को ही कुलज कहते हैं।

कुलज रोग उत्पत्ति की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) जन्म के समय प्रकट। ये रोग गर्भावस्था में ही विकसित होते हैं-जैसे, खण्डौष्ठ (Harelip), युक्तांगुलिता (Syndactylism) बह्वङ्गुलिता (Polydactylsm) रंगान्धता (Colourblindness) इत्यादि। ये जन्म से ही विद्यमान होने से इनका पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती। (२) जन्मोत्तर उत्पन्न होनेवाले। जैसे, अर्श, अपस्मार मधुमेह इत्यादि। इनकी उत्पत्ति की सम्प्राप्ति इस प्रकार होती है—देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित्। शरदि प्रति-रोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ॥ सुश्रुत ॥ वधूवर में ये रोग भले ही न दिखाई दे कुल के अन्य लोगों का संशोधन करने से इनका पता लगने में कठिनाई नहीं होती। (३) जन्मोत्तर प्रकट न होने वाले। ये रोग कुल में होते हैं, मनुष्य शरीर में अत एव बीजरूपेण रहते हैं, परन्तु कदापि प्रकट नहीं होते। अतः वधूवर संशोधन में इनका पता नहीं चलता और पता न लगने से इनका गांभीर्य समझने में नहीं आता। इस प्रकार के रोगों या दोषों को प्रसुप्त (Dorment) या अप्रभावी (Recessive) कहते हैं। जब एक कुल के लोग आपस में विवाह करते हैं तब उनके अपत्यों में ये प्रकट या प्रभावी (Dominant) बनते हैं और दिखाई देते हैं। एक परिवार के स्त्री पुरुषों के विवाह को सगोत्र या सपिण्ड (Consanguinous) विवाह और उस विवाह से होने वाले प्रजोत्पादन को अन्तःप्रजनन (Inbreeding) कहते हैं।

परिवार का परीक्षण करने पर प्रथम दो प्रकार के कुलज रोगों से पीडित कुलों का पता लग जाने से वधूवर संशोधन में उन कुलों का वर्जन कर सकते हैं, परन्तु इस प्रकार प्रसुप्त दोष पीडित कुल का पता न लगने से उस कुल का परिवर्जन नहीं कर सकते हैं। सपिण्डगोत्र

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कुल में विवाह न करना यही उन से बचने का एकमेव मार्ग है। अतः धर्मशास्त्र में सपिण्ड सगोत्र विवाह का निषेध किया गया है—'अथ खलु पुमान् कन्यामतुल्यगोत्रां विधिनोद्वहेत्' अष्टांगसंग्रह ॥ भोग-विलास में इससे कोई बाधा नहीं उत्पन्न होती, इसलिए कदाचित् कामसूत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया होगा, परन्तु 'शास्त्रतोऽधिगतायां' इस वचन में इस निषेध का अप्रत्यक्षतया समावेश है ऐसा समझें।

हिन्दू समाज अत्यन्त प्राचीन काल से वर्णव्यवस्थाबद्ध होने के कारण द्विजों की कुलपरम्परा गोत्र के रूप में सहस्रावधि वर्षों से आज तक ज्यों का त्यों बनी रही है। अतः कन्या या वर असगोत्र के होने से सहस्रावधि वर्षों के कुलदोष क्षीण होने में सहायता होती है। परन्तु उसके लिए इतनी दूर तक देखने की आवश्यकता नहीं होती, गोत्र के कुल में किसी की मृत्यु होने से दस दिन तक शावाशौच या मरणाशौच पालन करने की विधि होती है। यदि संपूर्ण गोत्र में होने वाले मरणों के लिए अशौच पालन किया जाय तो वर्षभर में बिना अशौच का एक दिन भी मिलना मुश्किल होगा। इस कठिनाई का विचार करके धर्मशास्त्र ने अशौच-पालन के लिए सात पुरुष तक गोत्र के विस्तार के अन्तर्भूत मृत्यु का विचार करने के लिए कहा है—दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥ सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ मनु ॥ इसका दूसरा अर्थ यह है कि सात पुरुष से परे गोत्र एक होते हुए भी तद्गत मृत्यु के लिए अशौच पालने की आवश्यकता नहीं है। अशौच के समान विवाह-संबंधी सगोत्रता या सपिण्डता के लिए ऐसी ही पाँच-सात पुरुषों की मर्यादा रक्खी है और उससे परे वह नष्ट होती है ऐसा समझा जाता है—'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति ॥ 'मातृतो मातुः संताने पञ्चमादूर्ध्वं पितृतः पितुः संताने सप्तमादूर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्तते' ॥ मिताक्षरा ॥ आधुनिक संशोधन से भी यह ज्ञात हुआ है कि पाँच-चार पीढियों के पश्चात् कुलज रोगों की प्रभविष्णुता बहुत घट जाती है। इसलिए यदि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गोत्र की परवा न करनी हो तो कम से कम बधू या वर के कुल की पाँच-चार पीढियों का जरूर परीक्षण करें और यदि उसमें कोई दोष न ज्ञात हो तो विवाह करें। परन्तु ज्ञाताज्ञात सर्व प्रकार के कुलज दोषों से बचने का सर्वोत्तम मार्ग असगोत्रपिण्ड विवाह है।

(१३) एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः।
यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः॥
(याज्ञ० स्मृति)

वरके गुण—वर भी इन्हीं गुणों से युक्त कन्या के वर्ण का, विद्या संपन्न, पुंस्त्व की दृष्टि से प्रयत्नपूर्वक परीक्षित, जवान, बुद्धिमान् और लोकप्रिय होना चाहिए।

वक्तव्य—एतैरेव गुणैर्युक्तः—पृष्ठ १८५ पर 'तस्मात्कन्यामभिजनोपेतां' वचन और उसका वक्तव्य देखिए। संक्षेप में सब बातों में समान—'ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम। तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः'॥ पंचतन्त्र॥ 'समस्याद्याः सहक्रीडा विवाहाः संगतानि च। समानैरेव कार्याणि नोत्तमैर्नापि नाधमैः॥ कामसूत्र॥ श्रोत्रियः—'जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्याभ्यासाद्भवेद्विप्रः श्रोत्रियस्त्रिभिरेव हि'॥ पद्मपुराण॥ 'ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते। इष्टाय पूर्ताय च कर्मणोऽर्थान्दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः'॥ मालती माधव॥ सवर्णः—चातुर्वर्ण्यमेंसे अपना जो वर्ण हो उस वर्ण का। 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' इस वचन के अनुसार अपने समान गुण-कर्म का अर्थात् खान-पान रीति-रिवाज, व्यवसाय, संस्कृति, इत्यादिमें अपने समान ऐसा भी इसका अर्थ कर सकते हैं। परीक्षितः पुँस्त्वे—स्पर्शसुख और अपत्य ये विवाह के दो उद्देश्य होते हैं। प्रथम के लिए स्त्री-पुरुषों में मैथुन की और द्वितीय के लिए दोनों में बीजोत्सर्ग की आवश्यकता होती

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है। अतः उद्देश्य-सिद्धि तथा फल-प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुष दोनों में मैथुन एवं बीजोत्सर्ग करने की योग्यता होनी चाहिए। इन दो गुणों पर स्त्री का स्त्रीत्व और पुरुष का पुंस्त्व अधिष्ठित होता है। अतः वधू में स्त्रीत्व का और पुरुष में पुंस्त्व का परीक्षण होना उचित होता है।

परन्तु मैथुन कर्म में स्त्री को शारीरिक या मानसिक-दृष्ट्या कोई विशेष क्रिया या सिद्धता नहीं करनी पड़ती। स्त्री चाहे तो उत्तम, न चाहे तो भी पुरुष सब कुछ कर लेता है। तात्पर्य, निसर्गतः पुरुष कर्ता और स्त्री कर लेने वाली होती है—'उपायवैलक्षण्यं तु सर्गात्। कर्ता हि पुरुषोऽधिकरणं युवतिः। अभियोक्ताहमिति पुरुषोऽनुरज्यते। अभियुक्ताहमनेन इति युवतिः'॥ कामसूत्र॥ बीजोत्सर्ग में भी स्त्री को कोई कर्म नहीं करना पड़ता, वह नैसर्गिक शरीर-क्रिया है जो प्रतिमास नियत समय पर बराबर हुआ करती है। परन्तु बीज का उत्सर्ग उदर-गुहान्तर्गत अत एव अदृश्य तथा अनभिगम्य होने से उसका परीक्षण अशक्य होता है। तात्पर्य वधू में स्त्रीत्व के दोनों गुण होने की आवश्यकता रहने पर पर भी प्रथम परीक्षण अनावश्यक तथा अवैध होने से और द्वितीय परीक्षण अशक्य होने से वधू-गुण में इनकी परीक्षा करने के लिए नहीं कहा है।

पुरुषों में मैथुन के लिए मेढ्रोन्माद या शिस्नोत्थान की और अपत्य के लिए शुक्र की आवश्यकता होती है। दोनों न होने वाले को पण्ढ या क्लीब कहते हैं—'क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते'॥ भावप्रकाश॥ 'मेढ्रोन्मादशुक्राभ्यां हीनं क्लीबः स उच्यते,॥ कात्यायन॥ दोनों का परीक्षण किया जा सकता है। शुक्र का परीक्षण वर्तमान काल में सूक्ष्म-दर्शक से करते हैं और जिसमें फुर्तीले शुक्राणु (Spermatozoa) होते हैं वह गर्भाधान योग्य होता है। प्राचीन काल में शुक्र के रूपादि तथा जल-प्लवन से परीक्षण किया जाता था—'तत्र स्निग्धं शुक्लं मधुगन्धि मधुरं पिच्छिलं घृततैलक्षौद्रान्यतमवर्णं च शुक्रं गर्भाधानयोग्यं भवति' ॥ अष्टांग संग्रह॥ 'यस्याप्सु प्लवते

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बीजं, पुमान् स्यात् ॥' मिताक्षरागत नारद-वचन ॥ अयोग्य शुक्र के लक्षणों में चरक में 'अवसादी' एक लक्षण बतलाया है। उसका अर्थ है 'पानी में डूबने वाला'।

(१४) मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ॥
(अष्टांगहृदय)

रजःकालावधि—द्वादश वर्ष के पश्चात् प्रतिमास स्त्रियों का रसजन्य रज तीन दिन स्रवता है और पचास वर्ष का वय होने पर वह क्षय को प्राप्त होता है।

वक्तव्य—रजस्—स्याद्रजः पुष्पमार्तवम् । अमरकोश ॥ (Menses, menstruation)। रजःक्षय—रजोनिवृत्ति (Menopause)। आर्तव या रज का दूसरा अर्थ अन्तः पुष्प या स्त्रीबीज (Ovum) भी होता है।

(१५) ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥ मनु ॥

ऋतु काल—प्रथम चार और शिष्ट निन्दित अन्य दिनों को मिलाकर स्त्रियोंका ऋतुकाल सोलह रात्रियों का होता है।

(१६) तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च, शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ मनु ॥

इन सोलह रात्रियों में प्रथम चार, ग्यारहवीं और तेरहवीं ये रात्रियाँ निन्द्य होती हैं और शेष दस रात्रियाँ (समागम के लिए) प्रशस्त रहती हैं।

(१७) ऋतुर्नाम शोणितदर्शनोपलक्षितो गर्भधारणयोग्यः
स्त्रीणामवस्थाविशेषः ॥ मन्वर्थमुक्तावली ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ऋतु व्याख्या—रजःस्रावलक्षणयुक्त गर्भग्रहणयोग्य स्त्रियों की विशेष अवस्था को ऋतु कहते हैं।

वक्तव्य—गर्भ—अवस्थानुसार इसके तीन अर्थ होते हैं (१) गर्भाशयस्थ चतुर्थ मास के ऊपरका जीव (Foetus) आयुर्वेद की सुश्रुतसंहितामें इसीको 'शरीर' कहा है। (२) गर्भाशयस्थ प्रारम्भिक अङ्ग-प्रत्यंग स्पष्ट होनेसे पहले का जीव या भ्रूण (Embryo)। (३) शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसंमूर्च्छितं 'गर्भ' इत्युच्यते (सुश्रुत) यह इस अवस्थाका स्वरूप है। इसमें 'शुक्र-शोणित' भौतिक और 'आत्म-प्रकृतिविकार' दार्शनिक भाग है। पाश्चात्य वैद्यक की दृष्टि से महत्त्व का नहीं है। भौतिक भाग का अर्थ है गर्भाशय में आया हुआ शुक्रसंमूर्च्छित आर्तव या स्त्रीबीज (Fertilized ovum)। ग्रहण—केवल शुक्रसंमूर्च्छित आर्तव गर्भाशय में भूमि के समान अंकुरित हो सकता है, केवल शुक्र (पुंबीज) या केवल आर्तव (स्त्रीबीज) गर्भाशय में अंकुरित नहीं होते हैं। यहाँ पर तीसरा अर्थ अभिप्रेत है।

(१८) ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥ (मनु)

स्त्रीसमागमकाल—पुरुष (विवाह के पश्चात्) प्रतिमास पर्वों को छोड़ कर ऋतुकाल में (पुत्रेच्छा से) और अनृतु काल में संभोग की इच्छा से स्वपत्नीरत रहें।

वक्तव्य—ऋतुकालाभिगामी स्यात्—अपत्य विशेषतः पुत्र होने के पहले प्रतिमास स्त्री-समागम करना चाहिए। पुत्रोत्पादन के पश्चात् प्रतिमास ऋतुकालाभिगामी होने की आवश्यकता नहीं। ऋतुकालाभिगमन न करने से भ्रूणहत्या होने का जो दोष पाराशरस्मृति में—ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पतते नात्र संशयः—बतलाया है वह अनुत्पन्नपुत्र पुरुष के लिए है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सदा—पुत्र उत्पन्न होने तक प्रतिमास। पर्ववर्ज्यम्—अमावास्या, पौर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी इन को छोड़कर। यह पर्व-वर्जन ऋतुकाल और अनृतुकाल दोनों के लिए लागू है। पर्व-वर्जन से अतिव्यवाय-वर्जन, जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, आप से आप हो जाता है यह इसका व्यावहारिक लाभ है। वैद्यकशास्त्र में यही कार्य ऋतु-कालानुसार कितने दिन छोड़कर मैथुन सेवन किया जाय इससे बतलाया गया है—त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्वा समीयात् प्रमदां नरः। सर्वेष्वृतुषु, घर्मेषु पक्षात् पक्षाद् व्रजेद् बुधः॥ सुश्रुत॥ रतिकाम्यया—अपत्यकाम्या या पुत्रकाम्या और रतिकाम्या करके स्त्री-सेवन के दो उद्देश्य होते हैं। अपत्यकामी को ऋतुकाल में स्त्री-समागम करना चाहिए। 'संतानार्थं च मैथुनं', 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' इन वचनों में ऋतुकालसमागम अभिप्रेत है। जो केवल स्त्री-सुख चाहता है, अपत्य नहीं चाहता, उसको ऋतुकाल समाप्त होने के पश्चात् समागम करना चाहिए। इस काल में गर्भधारण होने की संभावना बहुत कम होती है। आजकल इसको 'सुरक्षितकाल' (Safe period) कहते हैं।

(१९) स्त्रीणां च प्रेक्षणात्स्पर्शाद्धास्यशृंगारभाषणात्।
स्पन्दते ब्रह्मचर्यं च, न दारेष्वृतुसंगमात्॥

(आचारमयूख)

वैवाहिक ब्रह्मचर्य—(अन्य) स्त्रियों के प्रेक्षण, स्पर्शन, हासपरिहास तथा शृंगारी भाषण से ब्रह्मचर्य कंपित होता है, परन्तु स्वपत्नी के साथ ऋतुकाल में समागम करने से नहीं कंपित होता है।

(२०) ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिश्च विधानतः।
ब्रह्मचर्यं च तत्प्रोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥ (वसिष्ठसंहिता)

शास्त्रादेश के अनुसार प्रत्येक ऋतुकाल में स्वपत्नी के साथ किया हुआ समागम गृहस्थाश्रमवासियों का ब्रह्मचर्य कहलाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते, ब्रह्म-
चर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते (प्रश्नोपनिषद्)

जो दिन में भार्यागमन करते हैं वे प्राणों की हानि करते हैं और जो रात्रि में करते हैं वह ब्रह्मचर्य है।

(२२) निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ (मनु)

निंद्य (छः) और अन्य (आठ) रात्रियों में स्त्री-समागम वर्ज्य करने वाला जिस किसी आश्रम में हो ब्रह्मचारी ही होता है।

वक्तव्य—निन्द्यासु-पृष्ठ १६६ पर 'तासामाद्यचतस्रस्तु' श्लोक देखें। ब्रह्मचार्येव भवति—जो पुरुष ऋतुकाल की दस प्रशस्त रात्रियों में से पर्व वर्जित केवल दो रात्रियों में स्त्रीसमागम करता है वह ही ब्रह्मचारी होता है। यत्र तत्राश्रमे वसन्—यह वचन मुख्यतया गृहस्थाश्रम के लिए है, परन्तु यदि किसी को गृहस्थाश्रम में पुत्र नहीं हुआ और 'वनं पञ्चाशतो व्रजेत्' इस शास्त्रादेश के अनुसार उसने वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया और उसमें पत्नी ऋतुमती होती रही तो उसके लिए भी यह वचन लागू है। उपर्युक्त चार वचनों में वैवाहिक ब्रह्मचर्यका विवरण किया है। उस के आधार पर (१) जो अन्य स्त्रियों के साथ हँसी मजाक विनोद नहीं करता (२) स्वपत्नीनिरत रहता है (३) ऋतुकालाभि-गामी होता है, (४) दिन में स्त्रीसहवास नहीं करता, (५) केवल रात में करता है और (६) मास भर में केवल दो ही रात सहवास करता है वही वैवाहिक ब्रह्मचारी होता है।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी के भी दो प्रकार कर सकते हैं। (१) पुत्रकामी या अपत्यकामी—इसमें पुरुष केवल अपत्यार्थ स्त्री-सहवास करता है। रघुवंश के 'प्रजायै गृहमेधिनां' राजालोक इस प्रकार के थे। 'तृप्त्यर्थं भोजनं येषां' (पृष्ठ २०२) श्लोक, का वक्तव्य देखें। (२) ऋतुकालाभि-गामी-इसमें पुरुष शास्त्रवचनानुसार प्रतिमास स्त्री समागम किया करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२३) षण्मासान् कामयेन्मर्त्यं गुर्विणीमिव वै स्त्रियम् ।
आदन्तजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥

(अत्रिस्मृति)

गर्भिणीप्रसूतासमागम—गर्भिणी होने पर (प्रथम) छः मासतक और प्रसूता होनेपर बच्चे को दाँत निकल आनेपर पुरुष पत्नी के साथ समागम की इच्छा करें (और तदनुसार समागम करें) तो इसमें अधर्म नहीं होता है ।

वक्तव्य—गर्भिणी के साथ समागम न करना सर्वोत्तम पक्ष है, गर्भिणीं नोपेयात् प्रमदां नरः । सुश्रुत ॥ परन्तु यदि पत्नी का स्वास्थ्य अच्छा हो, उसकी इच्छा हो, उसे कष्ट न होते हों तो बीचबीच में थोडा सा समागम करें, उसमें अतियोग न करें-अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु । त्यजेत् । ऐसा वाग्भटाचार्यका मत है । कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ऐसे समागम के समय योनि में जो वीर्य गिरता है वह शोषित होकर गर्भिणी और गर्भ दोनों के लिए हितकर होता है । परन्तु, इस लाभ के लालच में फँसकर स्त्री-समागम करना हितकर नहीं है । यह कार्य गर्भिणीको दूध तथा पौष्टिक आहार देने से होजाता है । इसके अतिरिक्त, मर्यादातिक्रम तथा अतियोग में हानि होने की संभावना होती है इसको जानते हुए भी मैथुन एक ऐसा कर्म है कि जिसमें दोनों उत्तेजित होकर मर्यादातिक्रम किये बिना रह नहीं सकते-शास्त्राणां विषयस्तावद् यावन्मन्दरसा जनाः । प्रवृत्ते रतिचक्रे तु नैव शास्त्रं न च क्रमः ॥ कामसूत्र ॥ इससे गर्भ में पीडा, मूढगर्भता, गर्भ-पात इत्यादि उपद्रव उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है—गर्भिण्यां गर्भपीडा स्यात् । ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमन''प्रभृतिभिर्विशेषैर्बन्ध-नान्मुच्यते गर्भः, फलमिव वृन्तबन्धनादभिघातविशेषैः ॥ सुश्रुत ॥ तात्पर्य, गर्भिणी पत्नी के साथ समागम उसकी इच्छा, प्रकृति, पूर्वानु-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भूति इत्यादि अनुकूल हो तो करें, केवल अपनी इच्छा पर और बलात न करें There is no harm in sexual relations during gestation, provided the special condition of the female partner is respected. Violence and overindulgence is a menace to mother and foetus. In some undeveloped individuals abortion may follow intercourse in early pregnancy. Riddle of Sex. आदन्तजननादूर्ध्वम्–दूसरे शब्दों में बच्चे का स्तनापनयन (Weaning) होने के पश्चात्। माता के दूध पीने के काल में उसका गर्भवती होना बच्चे के लिए विकारकारी होता है। इसलिए इसकाल में व्यवाय-निषेध किया है। ५९ पृष्ठ पर 'काके शौचं' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(२४) अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम्।
रजस्वलामकामां च न कामेत बलात्पुमन्॥ (स्कंदपुराण)

मैथुनायोग्यपत्नी—अप्रसन्न, रोगी, गर्भिणी, व्रत करनेवाली, रजस्वला और मैथुनेच्छा न होने वाली पत्नी के साथ पुरुष जबर दस्ती समागम न करें।

(२५) नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह॥ (मनु)

कामार्त होने पर भी रजस्वला पत्नी के साथ समागम न करें, (केवल यही नहीं) उसके साथ एक शय्या पर शयन भी न करें।

वक्तव्य—प्रायः पति-पत्नी की शय्या एक होती है और वह भिन्न न हो ऐसा शास्त्रादेश भी है—पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते॥ परन्तु रजस्वलाभिगमन अहितकर होने से धर्मशास्त्र ने उसको अस्पर्श मानने का आदेश दिया है। इससे शय्या भिन्न हो जाती है और समागम भी टलता है। यह अस्पर्शता पति के लिए

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चौथे दिन और धर्म-कर्म के लिए पाँचवें दिन समाप्त होती है—शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्धयति।

(२६) तृप्त्यर्थं भोजनं येषां, संतानार्थं च मैथुनम्।
वाक्सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ (हितोपदेश)

मैथुनोद्देश—जिनका भोजन क्षुधाशान्ति के लिए (न जिह्वा शान्ति के लिए), जिनका मैथुन संतानोत्पत्ति के लिए (न कामशान्ति के लिए) तथा जिनकी वाणी सत्य वचन के लिए (न बकने के लिए) वे आपत्तियों को पार कर जाते हैं।

वक्तव्य—कुछ पूर्व वचनों में मैथुन के विधि-निषेध अर्थात् वह कब और किसके साथ सेवन किया जाय तथा कब और किसके साथ सेवन न किया जाय इसके आदर्श नियम बताये हैं और इस वचन में उसका आदर्श उद्देश्य बताया है। काम सुख और अपत्योत्पादन इसके दो उद्देश्य (पृष्ठ १६७ पर 'ऋतुकालाभिगामी' श्लोक का वक्तव्य देखें) होते हैं। प्रायः मनुष्य कामसुख के लिए मैथुन का सेवन करता है, अपत्य अनजाने उत्पन्न होता है या वह उसका उपोत्पादन (By product) हुआ करता है। परन्तु उससे कामसुख की तृप्ति नहीं होती, न हो सकती है, (न जातु कामः कामानां श्लोक देखें) जो कुछ अनुभव होता है वह केवल काम-शान्ति का विपर्यास रहता है ('तृषा शुष्यत्यास्ये' श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखें)। इस विपर्यास के कारण मैथुनासक्ति बढती है, उसका अतियोग होता है, दोनों का स्वास्थ्य खराब होने की, जल्दी जल्दी बच्चे होने की, उनका पालन-पोषण ठीक न होने की तथा उनका स्वास्थ्य भी ठीक न रहने की संभावना बनी रहती है। इसके विपरीत अच्छी संतान उत्पन्न होने की दृष्टि से किये जाने वाले मैथुन में काम-सुख तो मिलता ही है, परन्तु इससे अधिक लाभ इष्ट संतानोत्पत्ति की संभावना में होता है, मैथुन का अतियोग

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नहीं होता जिससे दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है, गर्भधारणा का ज्ञान होने पर मैथुन बंद हो जाने से गर्भ को पीडा होने का डर नहीं रहता और बालक बडा होने पर मैथुन सेवन किया जाता है जिससे प्रथम बालक की देख भाल अच्छी तरह होती है। तात्पर्य, कामशान्ति मैथुन का जघन्य और संतानोत्पत्ति श्रेष्ठ उद्देश्य है।

परिवार-नियोजन—वर्तमान काल में अन्नधान्य की समस्या भयानक स्वरूप धारण करने के कारण जन-संख्या की तेजी से बढती हुई गति को मर्यादित करने के लिए परिवार-नियोजन (Family planning) पर बहुत बल दिया जा रहा है और उसके लिए अन्धाधुन्ध व्यय किया जा रहा है। प्राचीन काल में अन्नधान्य की कमी न होने से प्रजावृद्धि रोकने का प्रश्न ही मनीषियों के सामने नहीं था। फिर भी उन्होंने उस समय अमर्याद प्रजा उत्पन्न करने के लिए लोगों को प्रोत्साहन नहीं दिया; संख्या में एक भले ही हो, किन्तु गुणवान् वीर्यवान्, स्वस्थ, साधु, कुटुम्ब और राष्ट्र को अनृणी करने वाला पुत्र उत्पन्न करने का आदर्श लोगों के सामने रक्खा। यदि लोक इससे विपरीत व्यवहार करें तो कौन क्या करेगा ? इस अध्याय के अन्त में पृष्ठ २०८ पर 'प्रजननं वै प्रतिष्ठा' वचन का वक्तव्य देखें। संतानों की इयत्ता की कल्पना देना हो तो भारत वर्ष में कहीं कहीं विवाह के समय कन्या को पहनने के लिए दिये जाने वाले वस्त्र के 'अष्टपुत्री' नाम से तथा विवाहोत्तर गुरुजनों द्वारा दिये जाने वाले 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती पुत्रवती भव' इस शुभाशीर्वाद से वह आठ तक थी ऐसा कह सकते हैं। पुत्र का सर्वपरिचित अर्थ सूनु (Son) है, जो 'पुत्रवती भव' में, अभिप्रेत है परन्तु केवल अपत्य यह भी उसका अर्थ है जो 'अष्टपुत्री' और 'अष्टपुत्रा' में अभिप्रेत है। अष्टांगहृदय के 'इच्छेतां यादृशं पुत्रं' इस श्लोक की टीका में 'पुत्रशब्दोऽपत्यमात्रोपलक्षणार्थोऽत्र' ऐसा अरुण दत्त ने पुत्र का अर्थ दिया है। उपर्युक्त आशीर्वाद का अर्थ यह है कि तुम्हें आठ अपत्य हों और उनमें पुत्र भी हो। प्राचीन काल में जब

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जन संख्या की समस्या नहीं थी कन्या-पुत्र मिलकर आठ अपत्य अधिक नहीं कह सकते। वर्तमान काल में जन-संख्या की समस्या ध्यान में रखकर तथा अपने हित के लिए यदि पति-पत्नी 'संतानार्थं च मैथुनं' इस महामन्त्र पर ध्यान देकर अपना वैवाहिक संबंध रक्खेंगे तो आठ के बदले दो से चार तक वे अपने अपत्यों की संख्या मर्यादित कर सकेंगे और उन्हें कृत्रिम, अस्वाभाविक, अतिव्ययी तथा अनेक बार स्त्रियों में विकारोत्पादक तथा घर में बाल बच्चों के सामने परिवार-नियोजन का प्रदर्शन करने वाले उपकरण तथा भेषज उपयोग में लाने की आवश्यकता न होगी।

राष्ट्रीय नियोजन—परिवार-नियोजन, चाहे प्राचीन ढंग से हो चाहे अर्वाचीन ढंग से, वैयक्तिक इच्छा पर अधिष्ठित होता है, जिससे प्रजावृद्धि की राष्ट्रीय समस्या को हल करने के लिए वह अकेला पर्याप्त नहीं है। अतः उसकी पूर्ति व्यापकदृष्टि के राष्ट्रीय प्रजा-नियोजन से होना आवश्यक है। यह नियोजन शासन संस्था के द्वारा किये गये विधिनिर्बंधों पर अधिष्ठित होना चाहिए। इसमें व्यक्ति की इच्छा को कोई स्थान न होकर इसके विधिनिर्बन्ध भारत के सर्व यथार्थ (Bona fide) निवासियों पर धर्मजातिपंथ निरपेक्ष लागू होने चाहिएँ। इसके स्वरूप की रूपरेखा नीचे दी जाता है—

(१) सोलह वय पश्चात् स्त्रियों का विवाह हो इस निर्बंधपर ध्यान दिया जाय।

(२) एक पत्नी-निर्बंध संपूर्ण भारतवासियों के लिए लागू हो। स्त्रियों की उन्नति और प्रजोत्पत्ति में घट ये इस निर्बंध के दो उद्देश्य हो सकते हैं। जिस जमातपर यह निर्बंध लागू नहीं किया गया है उस जमात की स्त्रियों की अधिक दुःस्थिति होने के कारण प्रथम उद्देश्य निष्फल हुआ है और इस निर्बंध के कारण एक जमात में प्रजोत्पादन में घट होनेपर भी निर्बंध न होने वाली जमात में प्रजावृद्धि होने से 'बाप मरा घर बेटा हुआ, इसका टोटा उसमें गया' इस

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कहावत के अनुसार दूसरा उद्देश्य भी सिद्ध नहीं हो रहा है। तात्पर्य, यह आंशिक निर्बंध उपयुक्ति युक्त और अन्याय्य है।

(३) भारत में घुसनेवालों की पूर्ण रोकथाम होनी चाहिए। जो घुसकर आये हुए हैं उनको पूर्णतया निकाल देना चाहिए। जो एक बार भारत छोड़कर पडोसी देश में चले गये उनको किसी भी बहाने पर फिर भारत में न आने देना चाहिए। जो लोक निश्चित काल की अनुज्ञा लेकर भारत में आते हैं उनके ऊपर निगरानी रखकर काल समाप्त होने पर उनको वापिस जाने के लिए बाध्य करना चाहिए।

(४) भारत में भिखारियों की संख्या करोडों में हो सकती है। इनमें कुछ हट्टे-कट्टे और कुछ कुष्ठादि रोगों से व्याधित होते हैं। इन भिखारियों में कोई भी गर्भ धारण करने योग्य वय की भिखारिन छोटे छोटे बच्चों के विना नहीं दिखाई देती है और इस प्रकार भिखारियों की प्रजावृद्धि होती रहती है। अतः प्रजोत्पादन-क्षम सब अनधिकृत भिखारी स्त्री-पुरुषों का निर्बीजीकरण (Sterilization) किया जाय जिससे भारत में भिखारियों की जरा भी प्रजावृद्धि न होने पावे। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि अच्छी प्रजा उत्पन्न करने वालों का प्रजातन्तु, उनकी इच्छा से भी क्यों न हो, विच्छिन्न किया जा रहा है और भिखारी प्रजा उत्पन्न करने वालों का प्रजातन्तु अविरोध पूर्णतया फलने-फूलने दिया जा रहा है।

(५) आत्महत्या वैध होनी चाहिए। 'नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्' (कादम्बरी) ऐसा मनुष्य स्वभाव होते हुए भी जब कुछ लोग व्याधि, दारिद्र्य, प्रतिष्ठा में कलंक इत्यादि कारणों से अधिक जीवित रहना नहीं चाहते तब उन्हें अपनी इच्छानुसार आत्महत्या करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(६) देशद्रोही, देशभेदी, लोहमार्ग पर तथा विमानादि अन्य यानों पर घात-पात करने वाले, खाद्य द्रव्यों में मिलावट करके जनता के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड करने वाले, पर-स्त्री पर बलात्कार करके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसके जीवन का सत्यानाश करने वाले, लोगों को मार काट करके उनके धन का अपहरण करने वाले, अन्य कारणों से दूसरों की हत्या करने वाले तथा इस प्रकार के समाज-कंटकों को फाँसी की सजा देनी चाहिए।

आज कल फाँसी की सजा के विरुद्ध जनमत हो रहा है और अनेक देशों में वधदण्ड बंद कर दिया है। इसका एक कारण मनोविज्ञान की प्रगति है। 'सर्वो दण्डजितो लोकः' श्लोक का वक्तव्य देखें। दूसरा कारण 'एकाध बार अपराधी छूट जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु निरपराधी को दण्ड न होना चाहिए' यह न्यायदान का मूल भूत सिद्धान्त हैं। फाँसी दी जाने के पश्चात् यदि किसी मनुष्य का निरपराधित्व प्रमाणित हो जाय तो उसकी निष्कृति नहीं हो सकती, इसलिए न्यायदान फाँसी के विरुद्ध हो रहा है। मृत को जलाने से कभी कभी न्यायदान के आवश्यक कुछ प्रमाण नष्ट हो जाते हैं।' परन्तु इसके लिए जैसे मृत का दहन बंद करना इष्ट नहीं, बल्कि मृतों का उपसर्ग अन्यों को न हो तथा समाज-स्वास्थ्य बना रहे, इसलिए यह प्रथा सब मृतों के लिए लागू करना इष्ट है। वैसे शतावधि फाँसी दिये गये लोगों में एकाध निरपराध फाँसी जायगा इस सबब पर फाँसी की सजा बंद करना इष्ट नहीं है, प्रत्युत शासन की धाक जनता पर बनी रहे और उससे जनता के नैतिक स्वास्थ्य का तथा धनधान्य का रक्षण हो इस दृष्टि से ऐसे समाज-कण्टकों को फाँसी की सजा ही देना इष्ट है। अन्नधान्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो जहाँ सज्जनों को अन्न मिलना मुश्किल हो गया है वहाँ ऐसे समाज कण्टकों को फाँसी न देकर दस दस बीस बीस साल कारावास की सजा देकर उनके ठीक खाने-पीने का प्रबंध करना कहाँ तक उचित है यह भी दूसरी दृष्टि से विचारणीय प्रश्न है।

आज कल तेजी से बढती हुई जन-संख्या को रोकने के लिए गर्भहत्या वैध करने की ओर कुछ लोक झुक रहे हैं और कुछ देशों में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वह वैध की गयी है। परन्तु, गर्भावस्था में होने वाले जीवों में से ९९% जीव भविष्य में देश के अच्छे नागरिक होते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी हत्या करना और उसके साथ साथ माताओं को कष्ट देना मानवता तथा न्यायदान के उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर कहाँ तक युक्तियुक्त है यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से खूनी को फाँसी न देना और गर्भ की हत्या करना पाप हैं। परन्तु वध्य समाजकंटकों की ओर से बोलने वाले एक से एक बढकर अधिवक्ता (Advocate) मिल जाने के कारण वे प्रायः फाँसी से बच जाया करते हैं। इसके विपरीत, बिचारे, सज्जन, मूक और दुर्बल गर्भों की ओर से बोलने वाला कोई न होने से यदि उन की हत्या वैध होने की नौबद आ जाय तो उनके बचने की विशेष उम्मीद नहीं दिखाई देती—अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च। अजापुत्रं बलिं दद्या-द्देवो दुर्बलघातकः॥ 'सर्वो दण्डजितो लोकः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(२७) विवाहो न विलासार्थः प्रजार्थमेव केवलः।
तेजोबुद्धिबलध्वंसो विलासात्प्रभवेत् खलु॥

विवाहोद्देश—विवाह कामोपभोग के लिए नहीं है, केवल (अच्छे) प्रजोत्पादन के लिए है। कामोपभोग से तेज, बुद्धि और बल इनका नाश निश्चित नाश होता है।

(२८) प्रजननं वै प्रतिष्ठा। लोके साधु प्रजायास्तन्तुं तन्वानः
पितॄणामनृणो भवति तदेव तस्यानृणं, तस्मात् प्रजननं
परमं वदन्ति॥ (तैत्तिरीयसंहिता)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभा-
षितसाहित्ये वैवाहिकब्रह्मचर्यविज्ञानीयो नाम
ऊनविंशोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उत्तम प्रजोत्पादन करना प्रतिज्ञा है। इह लोक में उत्तम प्रजा के तन्तु को अखण्डित रखने वाला पितृऋण से मुक्त होता है। वही (उत्तम प्रजोत्पादन) उसके लिए आनृण्य है। इसलिए उत्तम प्रजोत्पादन परम श्रेष्ठ होता है।

वक्तव्य—प्रजननम्—प्रकृष्टं जननम्, उत्तम प्रजा का जनन। साधुप्रजायाः—बहुत अधिक अपत्य निर्माण करने की अपेक्षा एकाध उत्तम अपत्य निर्माण करना अधिक श्रेयस्कर है यही प्राचीन ऋषि मुनियों का भारतीयों के सामने आदर्श रहा है—वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि। एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च॥ एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्। सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति रासभी।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां वैवाहिकब्रह्मचर्यविज्ञानीयो नाम
ऊनविंशोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विंशोऽध्यायः ।

अथातो विषयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ॥

(१) श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ॥ (कामसूत्र)

विषय-व्याख्या—आत्मा से संयुक्त और मन से अधिष्ठित कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासा (इन पाँच इन्द्रियों) की अपने अपने अर्थों की ओर जो सुखोत्पादक प्रवृत्ति होती है वह काम है ।

वक्तव्य—आनुकूल्यतः सुखोत्पादकं—सर्वेषामनुकूलतया वेदनीयं सुखम् । तर्कसंग्रह ॥ विषयेषु—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये इन्द्रियार्थ—'विषयो यस्य यो ज्ञातस्तत्र शब्दादिकेष्वपि' ॥ अमरकोश ॥ मनुष्य को जो विशिष्ट इन्द्रियार्थ सुखावह मालूम होते हैं, जैसे, स्त्री-रूप स्त्री-स्पर्श, मधुररस, मधुर गंध, मधुर शब्द, उनमें वह आसक्त हो जाता है । इस आसक्ति के कारण सुखकर इन्द्रियार्थों को विषय कहते हैं—विशेषेण सिनोति बध्नातीति विषयः । विशब्दो हि विशेषार्थः सिनोति बन्धनार्थकः ॥ कामः—विषय के अर्थ में यह शब्द यहाँ प्रयुक्त हुआ है । विशेष अर्थ के लिए 'स्त्रीषु जातो' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ २१५) देखें ।

(२) शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः ॥ (कामसूत्र)

विषय शरीराधार—(आहार के समान) शरीरधारक होने से विषय आहारसमधर्मी होते हैं ।

वक्तव्य—आहार-समधर्मी होने से विषयों के सेवन में आहार-सेवन के सब गुणावगुण उपस्थित रहते हैं । पृष्ठ ८६ पर 'अद्यते विधिवद्भुक्तं' तथा पृष्ठ १०८ पर 'प्राणाः प्राणभृतामन्नं' श्लोक देखिए । परन्तु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्तर यह है कि अन्न सेवन में जहाँ केवल एक इन्द्रिय वहाँ विषय सेवन में पाँचों इन्द्रियाँ होने से उसकी विषालुता अन्न से पाँच गुना अधिक होने की संभावना बराबर बनी रहती है। इसलिए विषयवर्णन में उसके इस हानिकर स्वरूप की ओर अधिक ध्यान आकर्षित किया जाता है।

(३) विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता, दुःखी सदा को विषयानुरागी।
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी, कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः॥

(शंकराचार्य)

विषय-विषालुता—विषसे अधिक विषालु कौन है? सर्व विषय; सदा दुःखी कौन है? विषयासक्त; धन्य कौन है? परोपकारी; पूजनीय कौन है? शिवतत्त्व (परमात्मा) में निष्ठ॥

(४) विषस्य विषयाणां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
उपभुक्तं विषं हन्ति, विषयाः स्मरणादपि॥

(चन्द्रगोमी)

विष और विषयों में बहुत अधिक अन्तर है; विष सेवन से और विषय केवल स्मरण करने से भी घातक होते हैं (इन्द्रियों द्वारा उनका सेवन करने की आवश्यकता नहीं होती)।

वक्तव्य—स्मरणादपि हन्ति—'ध्यायतो विषयान् पुंसः' श्लोक (पृष्ठ २२०) देखिए।

(५) विषं विषयवैषम्यं, न विषं विषमुच्यते।
जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम्॥

(योगवासिष्ठ)

विष को नहीं विषयातियोग को विष कहते हैं। विष केवल एक जन्म के देह को किन्तु विषय जन्म-जन्मान्तरों के देहों को घातक होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६) हालाहलो नैव विषं विषं रमा
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्यते ॥
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः
स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः ॥ (कुवलयानन्द)

हालाहल विष नहीं, रमा (स्त्री) विष है, परन्तु लोग उलटा समझते हैं। शंकर हालाहल पीकर सुख से जागृत रहे हैं और विष्णु रमा के स्पर्श से निद्रासे मोहित हुए हैं।

(७) कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥
(गरुडपुराण)

विषयों की घातकता—हरिण, हाथी, पतंग, भृंग और मछली (ये पाँच जीव शब्द, स्पर्श, रूप, गंध और रस इन) पाँचों के द्वारा क्रमशः नष्ट होते हैं। फिर पञ्चेन्द्रियों द्वारा पञ्चेन्द्रियार्थों का एक साथ सेवन करने वाला अकेला पागल मनुष्य उनसे कैसे नष्ट नहीं हो सकता ?

(८) कुरङ्गालिपतङ्गेभमीनास्त्वेकैकशो हताः ।
सर्वैर्युक्तैरनर्थैस्तु व्याप्तस्याज्ञ कुतः सुखम् ॥
(योगवासिष्ठ)

हे अज्ञ चित्त ! हरिण, भृङ्ग, पतङ्ग, हाथी और मत्स्य ये एक विषय से नष्ट होते हैं; फिर सब अनर्थकर इन्द्रियों से युक्त और उनके अर्थों से व्याप्त मनुष्य को सुख कहाँ से प्राप्त होगा।

वक्तव्य—कुतः सुखम्—इन्द्रियाधीन दुर्बल मनुष्य के सुख की हानि और जीवन की दुर्दशा कैसे होती है उसका बहुत सुंदर चित्रण बहु-पत्नीक मनुष्य के दृष्टान्त से निम्न श्लोक में किया गया है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्पा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥

(भागवत)

जैसे बहुपत्नीक गृहस्वामी को उसकी पत्नियाँ अपनी-अपनी ओर खसोटती रहती हैं वैसे (इन्द्रियाधीन) मनुष्य को जिह्वा, मन, शिश्न, श्रवण, उदर, घ्राण (इत्यादि ज्ञानेन्द्रियाँ) और कर्मेन्द्रियाँ अपनी अपनी ओर खसोटती रहती हैं।

(१०) लोक एष विषयानुरञ्जनो दुःखगर्भमपि मन्यते सुखम् ।
आमिषं बडिशगर्भमप्यहो मोहतो ग्रसति यद्वदण्डजः ॥

जिस प्रकार मछली काँटी भीतर होने वाले आमिष को लालच में फँस कर खा (कर उसीसे आगे मर) जाती है, वैसे विषय जिसका मनोरंजन है ऐसा मनुष्य विषय दुःखगर्भ होने पर भी उनको सुख समझ (कर उन्हीं से मर) जाता है।

(११) नाशीविषेभ्यो हि तथा बिभेमि
नैवाशनिभ्यो गगनाच्च्युतेभ्यः ।
न पावकेभ्योऽनिल-संहतेभ्यो
यथा भयं मे विषयेभ्य एव ॥ (बुद्धचरित)

विषयों से मैं जितना डरता हूँ उतना न सर्पविष से, न आकाश से गिरनेवाले वज्र से तथा न झंझावात द्वारा तेजी से जलनेवाले दावानल से।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१२) न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (मनु)

विषयों की अतृप्तिकारता—कामेच्छा कामोपभोग से शान्त नहीं होती, प्रत्युत घीसे जैसी अग्नि वैसे अधिक बढती है।

(१३) यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य च ॥
(भागवत)

चावल, जौ, सुवर्ण, पशु, स्त्रियाँ इत्यादि पृथिवी के ऊपर के द्रव्य काम वासना से ग्रस्त मनुष्य के मन को संतोष देने के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं।

(१४) श्रोत्रं न तृप्तं बहुगीतनादै-
श्चक्षुर्न तृप्तं बहुरूपदृष्ट्या ।
घ्राणं न तृप्तं बहुपुष्पवासै-
र्जिह्वा न तृप्ता षड्रसभोजनेन ॥

बहुत गायन-वादन सुनने पर भी कानों की तृप्ति न हुई; बहुत (सुन्दर-सुन्दर) रूप देखने पर भी नेत्रों की तृप्ति न हुई; बहुत (सुगन्धित द्रव्यों के) सुगंधों को सूँघने पर भी नाक की तृप्ति न हुई और षड्रसों का उत्तम भोजन सेवन करने पर भी जिह्वा तृप्त नहीं हुई।

(१५) अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वाऽपि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥
(वैराग्यशतक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विषयवर्जन में सुख—अतिदीर्घकाल तक (उपभोग के लिए) मिलने पर भी विषय (एकबार) अवश्य (मनुष्य को छोड़कर) जाने-वाले हैं ; फिर मनुष्य ने उन्हें न भी छोडा तो वियोग में क्या भेद हुआ ? (वियोग में भेद यह है कि) जब ये विषय अपनी ओर से जाते हैं (और वियोग होता है) तब वह वियोग मन को अत्यन्त परिता-पदायक होता है और जब मनुष्य स्वयं अपनी ओर से उन्हें छोड़ देता है तब (जो वियोग होता है) वह मनको अत्यन्त सुख-शान्ति प्रदान करता है।

(१६) स्पर्शविशेषविषये त्वाभिमानिकसुखानुविद्धा फलवती अर्थप्रतीतिः प्राधान्यात् कामः ॥ (कामसूत्र)

काम-व्याख्या—स्पर्शविशेष से संबंधित (मनुष्यों की अर्थात् स्त्री-पुरुषों की) प्रेमसुख से परिप्लुत और फलदायक जो इन्द्रियार्थ-प्रतीति होती है वह मुख्यतया काम है।

वक्तव्य—स्पर्शविशेष–मुख-गुह्यांगादि कामकटिबंध जैसे विशिष्ट अंगों के बाह्याभ्यन्तर स्पर्श। फलवती–अपत्योत्पादक। पृष्ठ २१६ पर 'प्रसवः खलु' वचन देखिए।

(१७) कामस्तु विषयातिसक्तचेतसः स्त्रीपुंसयोर्निरतिशय सुख-स्पर्शविशेषः ॥ (दशकुमारचरित)

अत्यन्त विषयासक्त स्त्रीपुरुषों का अत्यधिक विशिष्ट स्वरूप का जो सुखदायक स्पर्श होता है वह काम है।

**(१८) स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते ॥**

(शार्ङ्गधरदीपिका)

पुरुषों का स्त्रियों पर तथा स्त्रियों का पुरुषों पर जो पारस्परिक स्नेह होता है वह काम कहलाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—इन वचनों में काम का सर्वपरिचित रूढ अर्थ दिया है और प्रायः इसी अर्थ में काम शब्द का प्रयोग अधिक होता है। कामार्तः, कामातुरः, कामी, कामरसिकः कामवृत्तिः, कामान्धः, कामचारी, कामाग्निः, कामफलं, कामारिः इत्यादि शब्दों में काम का केवल यही अर्थ होता है। परन्तु काम का व्यापक अर्थ भी होता है और इस अर्थ में इसका पर्याय 'विषय' है। इस अध्याय के प्रारम्भिक दो वचनों में तथा पृष्ठ २१३ पर 'न जातुकामः कामानाम्' इस वचन में इसी व्यापक अर्थ में काम शब्द का प्रयोग किया गया है और आदिकवि के निम्न आदिश्लोक में काम रूढ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम-मोहितम् ॥

(१९) एकं वस्तु द्विधा कर्तुं वहवः सन्ति धन्विनः।
धन्वी स मार एवैको द्वयोरैक्यं करोति यः॥

कामगुण—एक वस्तु को दो बनाने वाले बहुतेरे धनुर्धारी हैं, परन्तु जो दो को एक बनाता है ऐसा धनुर्धारी केवल एक काम ही है।

वक्तव्य—मारः-कामः-'मदनो मन्मथो मारः, कामः पञ्चशरः स्मृतः'। अमरकोश। यद्यपि यहाँ मार शब्द कामदेव के लिए प्रयुक्त हुआ है तथापि व्यावहारिक दृष्ट्या वह काम ही है। नीचे का श्लोक देखिए।

(२०) एतत्कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरेव संगमः॥ (शृंगारशतक)

दो (पूर्णतया विभिन्न और दूरस्थ स्त्रीपुरुषों) में (विवाहोत्तर) एकचित्तता होना यह इहलोक में काम का ही परिणाम है। एकचित्त न होकर किया हुआ कामसेवन (दो जीवों का संगम नहीं, किन्तु) दो शवों का संगम है।

वक्तव्य—एकचित्तता-विवाहपूर्व स्त्रीपुरुष भिन्न जीव होते हुए भी विवाहोत्तर अल्पकाल में वे एकचित्त, एकचेतस् या एकजीव प्रायः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हो जाते हैं उसके पीछे मुख्य कामशक्ति ही हुआ करती है। 'स्त्रीणां हि साहचर्यात्' श्लोक देखिए।

(२१) प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्य-
संश्लेषणं पित्रोः। (उत्तररामचरित)

अपत्य वास्तव में (पतिपत्नी के पारस्परिक) स्नेह के प्रकर्ष की पराकाष्ठा है, (केवल यही नहीं) इससे भी अधिक वह पति-पत्नी दोनों का पारस्परिक चित्तानुबन्धन है॥

वक्तव्य—स्नेह—पतिपत्नी का परस्परकृत स्नेह अर्थात् काम। ऊपर 'स्त्रीषु जातो' श्लोक देखिए। प्रसव—अपत्य—प्रसवो गर्भमोचने। उत्पादे-स्यादपत्येऽपि फले च कुसुमेऽपि च॥' मेदिनी। पतिपत्नी की एक-चित्तता और अपत्योत्पादन ये काम के अपने विशेष गुण होते हैं। परन्तु उसमें दोष भी अनेक होते हैं जिसके कारण वह मनुष्य का रिपु और नरक का द्वार माना गया है और जहाँ तक होसके उससे निवृत्त रहने के लिये कहा गया है—त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ गीता॥ 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा' श्लोक देखें॥ अतः उन दोषों का स्वरूप नीचे दिया जाता है।

(२२) नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति क्रोधसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥

(वृद्धचाणक्य)

काम दोष—कामसम व्याधि नहीं, मोहसम शत्रु नहीं, क्रोधसम अग्नि नहीं और आत्मज्ञानसम सुख नहीं॥

(२३) अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

(मृच्छकटिक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जिसका इन्धन प्रेम है और जिसकी ज्वालाएँ व्यवाय हैं ऐसा यह कामाग्नि है जिसमें मनुष्यों के यौवन और धन दोनों की आहुतियाँ पड़ती हैं ॥

वक्तव्य—इस श्लोक में शूद्रक ने कामाग्नि का काव्यमय वर्णन किया है और नीचे के श्लोक में भर्तृहरि ने उसका व्यावहारिक वर्णन करके किस प्रकार के मनुष्य अपने यौवनधन की आहुति देते हैं उनका निर्देश किया है।

(२४) वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ (श्रृंगारशतक)

लावण्यरूप इन्धन से जलने वाली वेश्या ही कामाग्नि है जिसमें कामार्त मनुष्य अपने यौवन और धन की आहुति दे (कर भस्म हो)ते हैं ॥

(२५) दिवा पश्यति नोलूकः, काको नक्तं न पश्यति ।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो दिवानक्तं न पश्यति ॥

कामीमनोवृत्ति—उल्लू दिन में नहीं देखता, कौवा रात में नहीं देखता है ; परन्तु कामान्ध ऐसा विचित्र जीव है कि वह न दिन में देख सकता है, न रात में ॥

(२६) अलं विवादेन यथाश्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः ।
ममात्र भावैकरसं मनःस्थितं, न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥
(कुमारसंभव)

(पार्वती ब्रह्मचारीरूप शंकरजी को कहती है) वादविवाद बस हो गया, उसके संबंध में तुमने जिस प्रकार सुना उस प्रकार का वह भले ही हो, मेरा मन उसमें केवल प्रेमभाव से स्थिर हो गया है; कामवृत्ति मनुष्य जन-निन्दा की परवा नहीं करता है ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२७) धूमज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ (मेघदूत)

धूम, बिजली, पानी और वायु इनके संयोग से बना हुआ (अचेतन) मेघ कहाँ ? और कुशल बुद्धीन्द्रिययुक्त (अर्थात् चेतन) जीवों द्वारा भेजने योग्य संदेश कहाँ ? परन्तु उत्साहातिरेक में उसका विचार न करके यक्ष ने संदेश पहुँचाने के लिए (अचेतन) मेघ के पास याचना की। (ठीक ही है) कामातुर मनुष्य चेतन-अचेतन का भेद करने में स्वभाव से ही असमर्थ हुआ करते हैं।

वक्तव्य—चेतनाचेतनेषु—कामातुर अन्धे (ऊपर 'दिवा पश्यति नोलूकः' श्लोक देखिए) तथा बुद्धिभ्रष्ट ('ध्यायतो विषयान्' श्लोक ३३ देखिए) होने से चेतना-चेतन, पथ्यापथ्य, हिताहित, सारासार, गुणावगुण इत्यादि का विचार करने के लिए आवश्यक मनःस्थिति में होते ही नहीं।

(२८) काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे
मुग्धा निबध्नन्ति किमत्र चित्रम् ।
विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे
श्वानं युवानं मघवानमाह ॥

स्त्रियाँ काच, मणि (रत्न) और सुवर्ण इनको (माला के रूप में) एक सूत्र में सूत्रित करती हैं इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विचारवान् पाणिनि ने तो एक सूत्र में कुत्ता, जवान मनुष्य और इन्द्र को सूत्रित किया है।

वक्तव्य—'श्वयुवमघोनामतद्धिते' यह पाणिनीय सूत्र है। श्वा, युवा,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मघवा इन तीनों को एक सूत्र में सूत्रित करने के पीछे विविध विभक्ति-प्रत्ययों की समानता यह प्रकट कारण जरूर रहा है, परन्तु इनको एक सूत्र में सूत्रित करने के पीछे विचारवान् पाणिनि के मन में एक प्रच्छन्न कारण भी रहा होगा जिसकी ओर संकेत करने के लिए कवि ने यह सुभाषित रचा है। कुत्ते की कामातुरता सर्वप्रसिद्ध और सर्वपरिचित है जिसको भर्तृहरिने निम्न श्लोक में बहुत सुन्दरता से वर्णित किया है—कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो, व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः। क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरक-कपालार्पितगलः, शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः॥ शृङ्गार-शतक॥ इस प्रकार की कामातुरता युवा और मघवा इन में भी पायी जाती है, इसलिए भी तीनों को एक सूत्र में सूत्रित किया है और इसका प्रच्छन्न कारण यही हैं।

(२९) ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥ (वैराग्यशतक)

सज्जनों का ज्ञान मान-मदादि (मनोविकार) नाशक होता है, (इसके विपरीत) कुछ लोगों का ज्ञान मद-मानादि उत्पन्न करने का कारण होता है। जितेन्द्रियों को एकान्तस्थान मुक्ति के लिए और कामातुरों को कामवर्धन के लिए कारण होता है।

(३०) सुखतः क्रियते रामाभोगः
पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं
तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ॥ (शंकराचार्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(स्वैर) स्त्री-सेवन सुख से किया जाता है, परन्तु खेद इस बात का है कि पश्चात् शरीर में (क्षय-उपदंशादि) रोग उत्पन्न होता है। और यद्यपि (इसके कारण) इहलोक में (अकाल) मृत्यु की शरण लेनी पडती है तथापि लोक (स्वैराचार के) पापाचरण को छोड़ते नहीं है।

(३१) विप्रहस्ते धनं दद्यात् स्वभार्यासु च यौवनम्।
स्वामिकार्येषु च प्राणं विदद्यान्मम माधव ॥
(महाभारत)

हे माधव ! ब्राह्मणों को धन, पत्नी को यौवन, स्वामिकार्य में प्राण दिये जावें।

(३२) कामः सर्वात्मना हेयः स चेद्धातुं न शक्यते।
स्वभार्यां प्रति कर्तव्यः सैव तस्य हि भेषजम् ॥
(मार्कण्डेयपुराण)

यों तो काम सर्व प्रकार से त्याज्य है, परन्तु यदि उसको त्यागना अशक्य हो तो उसको अपनी पत्नी के प्रति लगाना चाहिए, क्योंकि वही उसकी औषधि है।

(३३) ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ (गीता)

विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्य के मन में उनकी ओर आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम उत्पन्न होता है, काम (की प्राप्ति न होने) से क्रोध उत्पन्न होता है, ॥

(३४) क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥
(गीता)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क्रोध से संमोह, संमोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से अन्त में सर्वनाश हो जाता है।

वक्तव्य—कामात्क्रोधः—कामात्कुतश्चित् प्रतिहतात् क्रोधोऽभिजायते ॥ गीता शांकरभाष्य ॥ काम सिद्धि न होने की प्रतिक्रिया में—

(३५) **बोद्धव्यं तु दोषेष्विव। न हि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते। न हि मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्त इति वात्स्यायनः ॥** (कामसूत्र)

काम में दोष होते हैं तो जानना चाहिए। वात्स्यायन कहते हैं कि, भिक्षुक होते हैं इस भय से यह नहीं हो सकता कि भोजन की थालियाँ न पकायी जाँय तथा मृग (खेत में चरते) हैं इस भय से यह नहीं हो सकता कि खेत में जौ न बोए जाँय।

वक्तव्य—दोषेषु—काम से उत्पन्न होने वाले अनेक दोषों का उल्लेख ऊपर के वचनों में किया गया है। इनके अतिरिक्त ये भी दोष होते हैं—अनर्थजनसंसर्गमसद्व्यवसायमशौचमनायतिं चैतेपुरुषस्य जनयन्ति। तथा प्रमादंलाघवमप्रत्ययमग्राह्यतां च ॥ कामसूत्र ॥ बोद्धव्यम्—वात्स्यायन कहते हैं दोष होते हैं इस लिए काम का वर्जन करने का जो उपदेश किया जाता है वह ठीक नहीं है। उन दोषों को जानकर, उनको टालने का प्रयत्न कर, कुछ दोष फिर भी उत्पन्न हो जाँय तो उसको सहन कर और उसका प्रतिकार कर काम-सेवन करना चाहिए। इस के पुष्ट्यर्थ भिक्षुक और मृग के दो सांसारिक दृष्टांत दिये गये हैं। साहित्यिक दृष्टान्त भी दे सकते हैं—भ्रमरसंपातो भविष्यतीति वसन्तावतारसर्वस्वं किं न चूतप्रसवोऽवतंसितव्यः ॥ मालविकाग्निमित्र ॥ अन्न से भी दोष उत्पन्न होते हैं। परन्तु कोई अन्न का वर्जन नहीं करता, दोषों को दूर करके उसका सेवन किया करता है। काम अन्नसम शरीरोपस्तम्भ (पृष्ठ १६८) है। इसलिए उसका भी सेवन वैसा ही करना चाहिए। 'पृष्ठ १२५ पर 'दोषभीतेरनारम्भः' श्लोक भी देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३६) आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

(चाणक्यशतक)

इन्द्रियों का असंयम (अनावर काम) (व्याध्यादि असंख्य) आपत्तियों (को प्राप्त करने) का राजमार्ग है और इन्द्रियों का जय (स्वास्थ्यादि असंख्य) सुख प्राप्त करने का राजमार्ग है। जो तुम्हें पसंद हो उससे तुम अपना मार्ग तय करो।

(३७) यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

(गीता)

जो शास्त्रोक्त (आहार-विहार, आचार-विचार इत्यादि की) विधियों को छोड़कर काम-वासना के अनुसार व्यवहार करता है वह (किसी भी विषय में) न सिद्धि प्राप्त कर सकता है, न सुख (स्वास्थ्य), न मोक्ष।

(३८) इन्द्रियोत्तमरोगाणां भोगाशावर्जनादृते ।
नौषधानि च तीर्थानि न च मन्त्राश्च शान्तये ॥

(योगवासिष्ठ)

विषयव्याधि का उपाय—इन्द्रियों से उत्पन्न हुए (भोग-लालसादि) रोगों के लिए उपभोग वर्जन को छोड़कर और कोई औषधि, तीर्थ, मन्त्र नहीं होता जो इनको शान्त कर सके।

(३९) बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ (गीता)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे अर्जुन ! बलवानों का काम-वासना-विरहित बल और मनुष्यों का धर्म से अविरुद्ध काम मैं हूँ ।

वक्तव्य—इसका तात्पर्य यह है कि विषय-सेवन पाप भी होता है और निष्पाप भी होता है। यदि स्वपत्नी या स्वपति के साथ हो तो शास्त्र विहित होने से निष्पाप और यदि पर-पत्नी या पर-पुरुष के साथ हो तो शास्त्र विहित न होने से पाप होता है। जो निष्पाप विषय-सेवन है वही अन्न के समान हितकर माना गया है।

(४०) मोक्षो विषयवैरस्यं बन्धो वैषयिको रसः ।
एतावदेव विज्ञानं, यथेच्छसि तथा कुरु ॥

(अष्टावक्रगीता)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये विषयविज्ञानीयो नाम
विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



विषयों के प्रति अभिरुचि नष्ट होना मोक्ष और अभिरुचि बनाये रहना बन्ध है। संक्षेप में, यही विज्ञान (का सार) है, जैसी इच्छा हो वैसे कर।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां विषयविज्ञानीयो नाम
विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातो निद्रास्वप्नविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) अभावप्रत्ययावलम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ (योगसूत्र)

निद्राव्याख्या—पदार्थ मात्र के अभाव का अनुभव जिसका आधार है ऐसी जो चित्त की वृत्ति वह निद्रा है ।

वक्तव्य—अभाव—प्रत्यक्ष सृष्टि के तथा मनोनिर्मित स्वप्न-सृष्टि के अस्तित्व का पूर्ण अभाव । मनुष्य जब गाढी नींद लेता है तब न बाह्य सृष्टि, जिसमें वह रहता है, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष होती है, न स्वप्न सृष्टि, जिसमें उसका मन अनेक बार रममाण होता रहता है, मनः-प्रत्यक्ष होती है, दोनों का पूर्ण अनस्तित्व हुआ करता है । परन्तु उस अवस्था में भी उसका चित्त अनुभव-क्षम होने के कारण वह इन दोनों के अनस्तित्व का अनुभव स्मरण करता है और नींद खुलने पर 'मुझे बहुत अच्छी नींद आ गयी, कब लग गयी, इतना दीर्घ काल खिन भर में कैसे चला गया कुछ भी पता न चला' इत्यादि निद्राकालीन अपने अनुभव को मनुष्य बहुत खुशी खुशी कहता हैं । निद्रा-निस्वप्न या गाढी निद्रा । वृत्ति—चित्त की एक अवस्था । योगशास्त्र में चित्त की पाँच वृत्तियाँ बतलायी हैं—प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।

(२) इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी
ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।
अदृश्यरूपा चपला जरेव या
मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्धते ॥ (चारुदत्त)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निद्रागमन—नयनावलम्बिनी यह निद्रा माथे पर से मेरी (आँखों की) ओर सरक रही है। यह निद्रा दिखाई नहीं देती, चपला है, जरा के समान होती है और मनुष्यों के मन को पराभूत करके बढती है।

वक्तव्य—नयनावलम्बिनी—नेत्र जिसका आधार है ऐसी। नेत्र ही निद्रा की निशानी होती है। जब नींद आने लगती है तब आँखें छोटी होने लगती हैं, पलक झपकने लगते हैं और निद्रितावस्था में आँखें पूर्णतया बंद हो जाती हैं। निद्रा के ये स्वप्रत्यय (Subjective) तथा परप्रत्यय (Objective) लक्षण होते हैं। ललाट देशात्—निद्रा आते समय का यह अनुभव अर्थात् केवल स्वप्रत्यय लक्षण है। जरेव या—वृद्धावस्था के समान शरीर को निर्बल, अकार्यक्षम बनाने वाली। मनुष्यसत्त्वं परिभूय—इस अन्तिम श्लोक-पाद में निद्रा की संप्राप्ति (Genesis) वर्णित है। गाढ निद्रा में मन अभिभूत रहता है इसमें संदेह नहीं और मन इन्द्रियों का राजा ('चित्तमिन्द्रियसेनायाः' श्लोक देखें) होने से इन्द्रियाँ भी अभिभूत होकर समनस्क शरीर पूर्ण विश्राम करता है। परन्तु निद्रा मन के अभिभव का हेतु है या परिणाम, यह वास्तविक प्रश्न है। यहाँ के भाषाप्रयोग के अनुसार मनोऽभिभव का हेतु निद्रा होता है। परन्तु यह ठीक नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने पर भी बोल-चाल में हम सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है ऐसा भाषाप्रयोग करते हैं उसी प्रकार निद्रा मनोऽभिभव का परिणाम होते हुए भी उसका हेतु है ऐसा भाषा-प्रयोग किया है। वास्तविकतया मनोऽभिभव का हेतु निद्रा न होकर तम है और प्रतिदिन ठीक समय पर निद्रा आने का अर्थात् तमोबाहुल्य होने का हेतु स्वभाव है—निद्राहेतुस्तमः, सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते। स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥ सुश्रुत ॥

(३) निद्रा हि नाम प्राणिनां प्रथममिदं शरीरधारणनिमित्तम् ॥

(चण्डकौशिक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निद्रा गुण—प्राणियों के शरीरों का धारण करने में निद्रा प्रथम हेतु है।

वक्तव्य—शरीरधारणम्—निद्रा भौतिक शरीर के तीन उपस्तम्भों में से एक है—त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।। चरक।। 'स्मरणं कीर्तनं केलिः' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ १६८) भी देखें। 'देहवृत्तौ यथाऽऽहारस्तथा स्वप्नः सुखो मतः'।। चरक।।

(४) सम्यक् स्वापो वपुषः परमारोग्याय ।। (काव्यमीमांसा)

अच्छी गाढी नींद शरीर के लिए परम आरोग्यप्रद होती है।

वक्तव्य—सम्यक स्वापः—उचित काल पर उचित काल तक की निःस्वप्न गाढी नींद। तात्पर्य-युक्तियुक्त निद्रा-सेवन। परमारोग्याय-रोगी में आरोग्यप्रद और नीरोग में आरोग्य -रक्षक। पृष्ठ २२७ पर 'अर्ध-रोगहरी निद्रा' श्लोक देखें।

(५) चित्तं प्रसादयति लाघवमाददाति
प्रत्यङ्गमुज्ज्वलयति प्रतिभाविशेषम्।
दोषानुदस्यति करोति च धातुसाम्य-
मानन्दमर्पयति योगविशेषगम्यम्।। (चण्डकौशिक)

निद्रा चित्त में प्रसन्नता, शरीर में लाघव, अंग-प्रत्यंगों में उमंग, बुद्धि में विशेष प्रकार की प्रतिभा उत्पन्न करती है, दोषों का नाश करती है, धातुसाम्य (आरोग्य) प्रस्थापित करती है और योगविशेष से प्राप्त होने वाला आनन्द भी प्रदान करती है।

वक्तव्य—धातुसाम्य—स्वास्थ्य या आरोग्य-धातुसाम्यमरोगता। योगविशेषगम्यम्—योग से चित्त का मल दूर होता है तथा योग का अर्थ समाधि भी है—'समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः। संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः'।। वसिष्ठसंहिता।। तात्पर्य,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अच्छी गाढी नींद बुद्धि के दोषों को दूर करके मनुष्य को समाधि के समान आनन्द देती है।

योगी को समाधि से जो आनंद प्राप्त होता है वैसा आनंद सामान्य संसारी मनुष्य को अच्छी गाढी नींद से मिलता है। परन्तु दोनों में यह अन्तर है। निद्रा तमोबाहुल्य से उत्पन्न होती है और समाधि के लिए सत्वबाहुल्य की आवश्यकता रहती है। निद्रा एक चित्तवृत्ति है (पृष्ठ २२४), परन्तु समाधि अवृत्तिक अवस्था है। इसलिए निद्राका सुख सामान्य मनुष्य वर्णन कर सकता है परन्तु 'समाधि' का सुख अनिर्वचनीय होता है—समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा यदेतदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

(६) अर्धरोगहरी निद्रा।

निद्रा रोग हरण करने का आधा काम करती है।

वक्तव्य—रुग्णावस्था में रोगी को गाढी नींद नहीं आती तथा उचित काल तक नहीं आती। रोग का बल कम होने लगता है तब नींद आने लगती है। अतः नींद न आने वाले रोगी में नींद आने लगे तो समझना चाहिए कि रोगी के रोग का आधा बल नष्ट हो गया है। वैसे ही नीरोग में जब तक अच्छी गाढी नींद आया करती है तब तक रोग उत्पन्न होने की यदा कदाचित् आशंका उत्पन्न होनेकी आधी भी संभावना नहीं है ऐसा विश्वास कर सकते हैं। तात्पर्य, निद्रा का आना व्याधिहरण और स्वास्थ्यरक्षण का सूचक होता है।

इस वचन का उत्तरार्ध 'सर्वरोगहरी क्षुधा' है उसको तथा उसके वक्तव्य को पृष्ठ १४० पर देखें।

(७) अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ (मनु)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निद्राकाल—सूर्य मनुष्य देवताओं के अहोरात्र को (दो भागों में) विभक्त करता है। उसमें रात्रि प्राणियों की निद्रा के लिए और दिन कर्म करने के लिए होता है।

(८) प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत्।
प्रहरद्वयं शयानो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ (दक्षस्मृति)

(सूर्यास्त के पश्चात् का) प्रदोष प्रहर और (सूर्योदय के पहले का) पश्चिम प्रहर विद्याभ्यास से व्यतीत करें। (इनके बीच में जो दो प्रहर रहते हैं उन) दो प्रहरों में सोनेवाला मोक्ष के प्रति प्राप्त होता है।

(९) क्वचिद् द्वौ प्रथमौ यामौ रात्रेः सुप्त्वा विशांपते।
संचिन्तयसि धर्मार्थौ याम उत्थाय पश्चिमे ॥
(महाभारत)

हे राजन्! रात्रि के प्रथम दो प्रहरों में निद्रा सेवन करके अन्तिम प्रहर में जगकर तुम धर्म तथा अर्थ का चिन्तन करते हो ?।

वक्तव्य—पश्चिम याम—ब्राह्ममुहूर्त—रात्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ॥ रत्नावलि ॥ धर्मार्थौ—ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ॥ मनु ॥ द्वौ प्रथमौ यामौ—रात्रि को 'त्रियामा' कहते हैं। इसमें सूर्यास्तोत्तरयाम छोड़ दिया जाता है। इसलिये दो प्रथम याम से वही समय होता है जो प्रथम श्लोक में प्रहरद्वय से प्रदर्शित किया गया है, अर्थात् साधारणतया रातके १० बजे से बड़े तड़के ४ बजेतक का। रात्रि का यह काल रात्रिनिद्रा के लिए सर्वोत्तम तथा सर्वाधिक हितकारी होता है। इस कालको 'महानिशा' कहते हैं—महानिशाऽत्र विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥ देवल ॥ इन दो श्लोकों में रात्रिनिद्रा का स्वास्थ्यप्रद काल बताया है। अतः अकारण इस काल में जागरण न करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१०) रात्रिस्वभावप्रभवा मता या
तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ (चरक)

रात्रिस्वभाव के कारण उत्पन्न होने वाली जो (रात्रि की) निद्रा होती है उसको विशेषज्ञ भूतधात्री कहते हैं।

वक्तव्य—रात्रिनिद्रा से सर्वाधिक लाभ होनेसे उसको भूतधात्री कहा है। भूतधात्री—भूतानि प्राणिनो दधाति पुष्णाति इति भूतधात्री। चक्रपाणि। अथवा भूतानां धात्री। धात्री जिस प्रकार बालकों का पालन-पोषण करती है उस प्रकार प्राणियोंका पोषण करने वाली।

(११) ये स्वपन्ति सुखं रात्रौ तेषां कायाग्निरिध्यते।
आहारं प्रतिगृह्णाति ततः पुष्टिकरं परम् ॥
(स्कन्दपुराण)

रात्रिनिद्रालाभ—जो रातमें सुख से गाढ़ी नींद लेते हैं उनकी कायाग्नि प्रदीप्त होती है और वह (उचित मात्रा में) आहार को ग्रहण कर (उसको पचा) ती है जिससे वह आहार शरीर के लिए परमपुष्टि-कर होता है।

वक्तव्य—कायाग्नि—आहार का पाचन और सात्म्यीकरण करने वाले द्रव्य। ये द्रव्य दो स्थानों में होते हैं। प्रथम स्थान महास्रोत में होता है और इस स्थान के द्रव्यों को जठराग्नि (Exoenzymes or digestive ferments) कहते हैं और इसका मुख्य कार्य अन्नपाचन का होता है। दूसरा स्थान धातुकोशिकाओं में (Tissue cells) होता है और इस स्थान के द्रव्यों को धात्वग्नि (Endoenzymes) कहते हैं। पाचित अन्नद्रव्यों का सात्म्यीकरण इनका मुख्य कार्य होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१२) सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः ।
सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न संगतः ॥
(गरुडपुराण)

निद्राहेतु—जो कर्जदार नहीं है, व्याधियों में पीड़ित नहीं है, सावकाश भोजन करता है और पत्नी से जिसका संबंध नहीं है ऐसा मनुष्य सुख से नींद लेता है ।

वक्तव्य—सावकाशस्तु यो भुंक्ते—जिसको शान्ति से भोजन करने के लिए अवकाश नहीं मिलता इस प्रकार जिसका धनहीन, कष्टमय तथा चिन्तायुक्त जीवन नहीं है। दारैर्न संगतः (१) कुकलत्र से जिसका संबंध नहीं आया है—कुकलत्रेण शर्वरी। (२) जिसने दारपरिग्रह किया नहीं अर्थात् ब्रह्मचारी, अविवाहित या प्रपञ्चहीन।

(१३) ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः ।
निद्रासंतोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते ॥ (चरक)

विद्याध्ययन में रत, विषयोपभोग में निस्पृह तथा संतोषतृप्त मनुष्य की निद्रा अपने उचित काल का अतिक्रमण नहीं करती है ।

वक्तव्य—ब्रह्मचर्य—वेदाध्ययन तथा विद्याध्ययन—'स्मरणं कीर्तनं' श्लोक का १६८ पृष्ठ पर वक्तव्य देखें। स्वं कालम्—समय पर नींद का आना और समय पर नींद का खुलना नीचे देखिए।

(१४) सुखेन दान्तः स्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते ॥ (पद्मपुराण)

जितेन्द्रिय मनुष्य (समय पर) सुख से सोता है और सुख से (समय पर) जागृत होता है ।

(१५) कुतो निद्रा दरिद्रस्य, परप्रेष्यवरस्य च ।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ॥ (गरुडपुराण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निद्रानाशहेतु—दारिद्र्यपीडित, परसेवक, परनारीप्रसक्त और परद्रव्यापहारी चोर इनको (सुख की) निद्रा कहाँ ?

(१६) आशापाशैः परीताङ्गा ये भवन्ति नरोऽर्दिताः ।
ते रात्रौ शेरते नैव तदप्राप्तिविचिन्तया ॥

(स्कन्दपुराण)

जो मनुष्य असंख्य आशाआकाङ्क्षाओं से व्याप्त तथा पीडित रहते हैं वे उनकी फलप्राप्ति न होने की चिन्ता से रात में नींद नहीं ले सकते हैं ।

(१७) न रात्रौ विन्दते निद्रां कामाग्निपरिवेदितः ।
दिवाऽपि च कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ॥

(शिवपुराण)

कामाग्निपरिपीडित मनुष्य को रात में नींद नहीं मिलती और दिन में द्रव्योपार्जन की चिन्ता से उसे सुख भी कहाँ होता है ?

(१८) नैवाग्निर्दीप्यते तेषां जठरश्च ततः परम् ।
आहारं वाञ्छते नैव तन्न तेजोऽभिवर्धनम् ॥

(स्कन्दपुराण)

निद्रानाश का फल—इससे उनकी जठराग्नि प्रदीप्त नहीं होती, जिससे पेट अन्न सेवन करने की इच्छा नहीं करता और अन्न सेवन न करने से तेज (बल) वर्धन नहीं होता ।

(१९) एवं ज्ञात्वा महाभागाः पुरुषेण विजानता ।
दिवा तत्कर्म कुर्वीत येन रात्रौ सुखं स्वपेत् ॥

(स्कंदपुराण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे महाभागो! इस प्रकार (रात्रिनिद्रा की उपयुक्तता का) ज्ञान प्राप्त कर विचारी मनुष्य को दिन में वह कर्म करना चाहिए जिससे वह रात में सुख से सो सके।

(२०) अनाक्रान्तेन्द्रियच्छिद्रो यतः क्षुब्धोऽन्तरेव सः।
संविदाऽनुभवत्याशु स स्वप्न इति कथ्यते ॥
(योगवासिष्ठ)

स्वप्न की संप्राप्ति—जिसके ज्ञानेन्द्रिय (इन्द्रियार्थों से) अनाक्रान्त रहते हैं परन्तु जिसका मन भीतर से क्षुब्ध रहता है वह (निद्रितावस्था में अपने) चित्त द्वारा जल्दी-जल्दी जो अनेक अनुभव लेता है वह स्वप्न कहलाता है।

(२१) इन्द्रियाणामुपरमे मनोऽनुपरतं यदि।
सेवते विषयानेव तद्विद्यात्स्वप्नदर्शनम् ॥ (शंकराचार्य)

ज्ञानेन्द्रिय (विषयों से) निवृत्त होने पर भी जब मन उनसे निवृत्त नहीं होता तब स्वप्नदर्शन होता है।

वक्तव्य—स्वप्न—निद्रा का यह पर्याय है—स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि ॥ अमरकोश ॥ इसी अर्थ में 'रात्रिः स्वप्नाय भूतानां' इस वचन में स्वप्न शब्द प्रयुक्त हुआ है। परन्तु 'निद्रितावस्था में दिखाई देने वाली मनःसृष्टि' (Dreams) यह इसका अपना विशेष अर्थ है जो सब से अधिक रूढ तथा परिचित है तथा जिस अर्थ में इसके लिए कोई दूसरा पर्याय शब्द नहीं है। इसलिए निद्रा के लिए प्रत्येक स्थान में स्वप्न शब्द का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु स्वप्न के लिए प्रत्येक स्थान में निद्रा शब्द का प्रयोग कर नहीं सकते हैं; जैसे—स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ॥ शाकुन्तल ॥ उपर्युक्त वचनों में स्वप्नदर्शन की बतलायी हुई सम्प्राप्ति पूर्णतया आयुर्वेदोक्त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है—सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा। विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नान रूपं प्रपश्यति ॥ अष्टांगहृदय ॥

(२२) नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलानपि।
इन्द्रियेशेन मनसा पश्यति स्वप्नाननेकधा ॥ (चरक)

स्वप्नफल—गाढी नींद न आनेवाला मनुष्य इन्द्रियों का स्वामी मन के द्वारा सफल तथा निष्फल अनेकविध स्वप्न देखता है।

वक्तव्य—नींद में स्वप्न देखने से न शरीर को पूर्ण आराम मिलता है न मन को और कभी कभी भयानक, बीभत्स स्वप्न के शरीर और मन पर स्थायी दुष्परिणाम हुआ करते हैं। गाढ निद्रा और संतुष्ट, तृप्त, निश्चिन्त मन स्वप्नदर्शन न होने के और अनवगाढ निद्रा और असंतुष्ट, अतृप्त क्षुब्ध मन स्वप्नदर्शन के हेतु होते हैं। अतः मनुष्य को प्रतिदिन ऐसे व्यवहार करने चाहिएँ कि जिससे रात में उसका मन संतुष्ट और निश्चिन्त रहे और इतने शारीरिक कष्ट करने चाहिए कि बिस्तरे पर लेटने की देरी कि निद्रा देवी हाथ जोड़ कर सेवा में तत्पर रहे। आरामतलब मनुष्यों को भी अच्छी नींद नहीं आती है; अतः गाढी नींद आने के लिए शारीरिक कष्टों की भी आवश्यकता हुआ करती है।

(२३) जाग्रत्स्वप्नदशाभेदो न स्थिरास्थिरते विना।
(योगवासिष्ठ)

स्वप्न और जाग्रत दशा में भेद—स्थिरता और अस्थिरता को छोड़कर जाग्रत और स्वप्न की दशा में कोई भेद नहीं है।

(२४) स्वप्नोऽपि स्वप्नसमये स्थैर्याज्जाग्रत्त्वमृच्छति ॥
(योगवासिष्ठ)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वप्न भी स्वप्न के अनुभव के समय स्थिर प्रतीत होने के कारण जाग्रत के समान ही अनुभूत होता है।

(२५) भुङ्क्ते च बाह्यकरणैस्तत्तु जाग्रद्दशा भवेत्।
स्वप्नेऽपि बाह्यशून्यस्य भोक्तुर्भुक्तिः प्रकीर्तिता॥

(वसिष्ठसंहिता)

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जब (विषयों का) उपभोग लिया जाता है तब जाग्रत और उनके बिना जब लिया जाता है तब स्वप्न की दशा होती है।

(२६) अवितथफलाश्च प्रायो निशावसानसमयदृष्टा भवन्ति स्वप्नाः। (कादम्बरी)

सफल स्वप्न—साधारणतया रात्रि के अन्त के समय देखे हुए स्वप्न ठीक-ठीक भविष्य दिखाने वाले हुआ करते हैं।

(२७) व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।
कामार्तेनाथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः॥

(पंचतन्त्र)

निरर्थकस्वप्न—रोगग्रस्त, शोकग्रस्त, चिन्ताग्रस्त, कामार्त और (मद्य, भाँग इत्यादि मादक द्रव्य सेवन से) उन्मत्त, इनसे देखे हुए स्वप्न निरर्थक होते हैं।

वक्तव्य—आयुर्वेद में सप्तविध स्वप्न बतलाये हैं। उनमें से पञ्चविध स्वप्न व्यर्थ बतलाये हैं। तात्पर्य, अधिकसंख्य स्वप्न निष्फल होते हैं—दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा। भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥ तत्र पञ्चविधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत्॥ चरक॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२८) पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ।
शतसंख्या पुनरियं सानुजं स्पृशतीव माम् ॥
(वेणीसंहार)

स्वप्नफल की अनिश्चिति—शुभ तथा अशुभ (फल देने वाले) स्वप्न कभी कभी दिखाई देते हैं (सदैव नहीं, इसमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु इस स्वप्न की) शत संख्या मेरे तथा मेरे भाइयों की ओर अंगुलिनिर्देश कर रही है ।

वक्तव्य—शतसंख्या—नकुल (नेवला) के द्वारा सौ साँप मारे गये ऐसा दुर्योधन ने स्वप्न देखा । नकुल पाण्डवों का प्रतिनिधि होने से पाण्डवों के द्वारा मेरे सौ भाई मारे जाने वाले हैं ऐसा वह इस स्वप्न का फल समझ रहा है—नकुलेन पन्नगशतवधो नियतमनिष्टोदर्कं तर्कयामि ॥ वेणीसंहार ॥ और उसी को वह इस वचन से प्रदर्शित कर रहा है ।

(२९) ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तौत्पातिकं तथा ।
फलन्ति काकतालीयं, तेभ्यो प्राज्ञा न बिभ्यति ॥
(वेणीसंहार)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये निद्रास्वप्नविज्ञानीयो नाम
एकविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



ग्रहों की गति, स्वप्न, अनिमित्त हुए उत्पात ये कालतालीय न्याय से सफल होते हैं; अतः विचारी मनुष्य उनसे चिन्तित नहीं होते हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—औत्पातिकं तथा—इसके बदले 'उपयाचितम्' ऐसा भी पाठ है। अर्थसिद्धि के लिए भगवान की गयी प्रार्थना तथा तत्प्रीत्यर्थ किया जाने वाला दान—यद्दीयते तु देवेभ्यो मनोराज्यस्य सिद्धये। उपायाचितकं दिव्यं दोहदं तद्विदुर्बुधाः ॥ हारावलि ॥ काकतालीयम्—काकगमनमिव तालपतनमिव काकतालम्। काकतालमिव काकतालीयम् ॥ महाभाष्य ॥ 'यदपथ्यवतामायु' श्लोक का वक्तव्य देखें।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां निद्रास्वप्नविज्ञानीयो नाम
एकविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातश्चिन्ताविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ॥

(१) को वा ज्वरः प्राणभृतां, हि चिन्ता
मूर्खस्तु को, यस्तु विवेकहीनः ।
कार्या प्रिया का, शिवविष्णुभक्तिः
किं जीवनं, दोषविवर्जितं यत् ॥ (शंकराचार्य)

चिताज्वर—प्राणियों के लिए ज्वर कौनसा है? चिन्ता; मूर्ख कौन है? अविवेकी; प्रिय कार्य कौन सा है? शिवविष्णुभक्ति, (यथार्थ) जीवन कौनसा है? जो निर्दोष है।

वक्तव्य—ज्वरः-ज्वरयति इति ज्वरः (Fever)-ज्वरप्रत्यात्मिकं लिङ्गं संतापो देहमानसः ॥ चरक ॥ ज्वर का दूसरा अर्थ सामान्य रोग भी हैं 'रोगः पाप्मा ज्वरो' श्लोक देखें। वह अर्थ भी यहाँ ठीक है।

(२) चिन्ता ज्वरो मनुष्याणां, वस्त्राणामातपो ज्वरः ।
असौभाग्यं ज्वरः स्त्रीणामश्वानां मैथुनं ज्वरः ॥
(चाणक्यशतक)

मनुष्यों के लिए चिन्ता, वस्त्रों के लिए धूप, स्त्रियों के लिए वैधव्य और घोड़ों के लिए मैथुन ज्वर (रोग) है।

वक्तव्य—ज्वरः-इसके स्थानमें 'जरा' ऐसा भी पाठ है। चिंतासे शरीर विशेषतया मन सदैव तप्त तथा क्षुब्ध रहता है, इसलिए चिन्ता ज्वरसम एक प्रकार का रोग है यह 'ज्वर' पाठ होने पर अर्थ होता है

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और चिन्ता से जल्दी शरीर जीर्ण वृद्ध होता है यह 'जरा' पाठ का अर्थ है। 'चिन्ता जरा' श्लोक देखें।

(३) चिन्ताज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्।
रूपमुत्साहबुद्धिं श्रीं जीवितं च न संशयः॥

(स्कन्दपुराण)

चिन्ताज्वर मनुष्यों की क्षुधा, निद्रा, शक्ति, सुन्दरता, उत्साह, वृत्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, और आयु इन सबों का नाश करता है इसमें संदेह नहीं है।

(४) ज्वरो व्यतीते षडहे जीर्णज्वर इहोच्यते।
असौ चिन्ताज्वरस्तीव्रः प्रत्यहं नवतां व्रजेत्॥

(स्कन्दपुराण)

छः दिन समाप्त होने पर ज्वर जीर्णज्वर कहलाता है। परन्तु यह तीव्र चिन्ताज्वर प्रतिदिन नवीनावस्था में ही रहता है।

वक्तव्य—जीर्णज्वर—प्रथम सप्ताह के ज्वर को नवीन या तरुण कहते है। चिंताज्वर सदैव तरुण होता है। एक सप्ताह, दो सप्ताह या तीन सप्ताह व्यतीत हुए ज्वर को जीर्ण कहते हैं। चिन्ताज्वर काल की दृष्टि से जीर्ण या पुराना होनेपर भी तीव्रता की दृष्टि से जीर्ण नहीं होता–आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम्॥ पुष्कलावत॥ यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्ध्वं दोषत्रयस्तद् द्विगुणेभ्य ऊर्ध्वम्। नृणां तनौ तिष्ठति मन्दवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एष जीर्णः॥ भावप्रकाश॥ त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः। प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥ मधुकोशमें उद्धृत॥

आधुनिक वैद्यकशास्त्र में भी ज्वर के तीव्र (Acute) और जीर्ण या चिरकारी करके दो वर्ग किये जाते हैं। प्रथम वर्ग लक्षणों की तीव्रता पर अधिष्ठित है। फिर इसकी कालावधि तीन सप्ताहों से भी अधिक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क्यों न हो। ऐसे ज्वर को संतत (Continuous) ज्वर कहते हैं और इसका उत्तम उदाहरण तन्द्राभ (Typhoid) ज्वर है। 'वैकल्यं धरणीपातं' श्लोक का वक्तव्य देखें। प्राचीन और अर्वाचीन दृष्ट्या जीर्ण-ज्वर में वैसा कोई अन्तर नहीं है। इसका उत्तम उदाहरण जीर्ण विषम-ज्वर या जूडीबुखार (Chronic malarial fever) है और अप्रत्यक्ष-तया इसी का ही निर्देश 'प्लीहाग्निसादं कुरुते' इस वचन से किया गया है।

(५) क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना,
चिन्तासमा नास्ति शरीरशोषणा।
विद्यासमा नास्ति शरीरभूषणा,
वृत्त्या समा नास्ति शरीरपोषणा ॥ (सुभाषितावलि)

क्षुधा के समान शरीरवेदनादायक, चिन्ता के समान शरीरक्षयकर, विद्या के समान शरीर विभूषक और जीविका के समान शरीरपुष्टिकर और कोई नहीं होता है।

वक्तव्य—क्षुधासमा—'नास्ति क्षुधासमं दुःखं' श्लोक (पृष्ठ १३५) देखिए। शरीरशोषणा–चिन्ता शरीरक्षयकर और अचिन्ता शरीरपुष्टिकर होती है—व्यायामोऽशनं चिन्ता ज्ञातव्या क्षयहेतवः। अचिन्तनाच्च कार्याणां वराह इव पुष्यति ॥ चरक ॥ वृत्ति–जीविका (Means of livelihood)–आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने। अमरकोश ॥

(६) चिता चिन्तासमा प्रोक्ता बिन्दुमात्रं विशेषतः।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता ॥

चिता चिन्ता तुलना—चिता और चिन्ता (दोनों लेखन की दृष्टिसे) समान हैं, केवल एक बिन्दु का अन्तर है। (परन्तु कार्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो) चिन्ता सजीव को और चिता निर्जीव को जलाती है (यह दोनों में महदन्तर है)।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(७) चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता ह्येव गरीयसी ।
चिता दहति निर्जीवं, चिन्ता चैव सजीवकम् ॥

चिता और चिन्ता दोनों में चिन्ता ही गम्भीर है; क्योंकि चिता मृत को किन्तु चिन्ता सजीव शरीर को जलाती है।

वक्तव्य—चिता मृतशरीर को जलाती है जिसको ज्वलन के कष्ट अनुभूत नहीं होते हैं और यदि होते भी हों तो केवल घण्टे आधे घण्टे के लिए, क्योंकि इतने समय में चिता शरीर की चुटकी भर राख बना देती है। इसके विपरीत चिन्ता सजीव शरीर को जलाती है जिसको ज्वलन के कष्ट प्रतीत होते हैं। यदि चिता के समान ये कष्ट अल्पकालिक होते तो कोई परवा नहीं थी, परन्तु चिन्ता में ये कष्ट मासों बरसों तक भी जीवित शरीर को सताते रहते हैं। इसलिए यह चितासे सहस्रगुण गरीयसी है।

(८) धन्यो धन्वन्तरिर्नात्र, चरकश्चरतीह न ।
नासत्यावपि नासत्यावत्र चिन्ताज्वरे किल ॥

(स्कन्दपुराण)

चिन्ता की दुश्चिकित्स्यता—चिन्तारोग में न धन्वन्तरि धन्य होते हैं, न चरकाचार्य की कुछ चलती है, न अश्विनीकुमार सत्य सिद्ध होते हैं

वक्तव्य—नासत्यौ—(१) अश्विनीकुमार–स्वर्वैद्यावश्विनीसुतौ। नासत्यावश्विनौ दस्रावाश्विनेयौ च तावुभौ ॥ अमरकोश ॥ न + असत्यौ–ये अपने व्यवसाय में कदापि असत्य, व्यर्थ नहीं हुए इसलिए इन्हें नासत्यौ नाम दिया गया। ये यमल होने से द्विवचन में होते हैं। १७ पृष्ठ पर 'अश्विनौ देवभिषजौ' श्लोक देखें। (२) ना + सत्यौ—सत्य नहीं, वृथा। जो अन्यत्र कदापि असत्य नहीं होते हैं वे भी चिन्ता चिकित्सा में व्यर्थ होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) युक्तमुक्तं पुराविद्भिश्चिन्तामूर्तिः सुदारुणा ।
न भेषजैर्लङ्घनैर्वा न चान्यैरुपशाम्यति ॥ (स्कन्दपुराण)

पुरातत्वविदों ने ठीक ही कहा है कि चिंतादेवी बहुत भयानक है; वह औषधि, उपवास या अन्य उपायों से प्रसन्न नहीं होती।

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों का तात्पर्य यह है कि चिन्तारोग बाह्योपचार से, परप्रयत्न से ठीक होने वाला रोग नहीं है। यदि वह ठीक हो सकता है तो आत्मप्रयत्न से तथा आत्मविचार से ही ठीक होता है। वह कैसे यह नीचे बताया है।

(१०) अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ॥ (महाभारत)

चिन्ताप्रतिषेध—यदि वीरवृत्ति हो तो शोक न करके (दुःख या चिन्ता के कारणों के) प्रतीकार का प्रयत्न करें; यही दुःख (या चिन्ता) की औषधि है; (यदि यह न हो सके तो) उसका चिन्तन करना छोड़ दें।

(११) दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते ।
यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तं नानुचिन्तयेत् ॥ (महाभारत)

शारीरिक या मानसिक दुःखाघात (की चिन्ता) उपस्थित होने पर यदि प्रयत्न (से उनका प्रतीकार) अशक्य हो तो फिर उनका चिन्तन न करें।

(१२) चिन्तनेनैधते चिन्ता त्विन्धनेनेव पावकः ।
नश्यत्यचिन्तनेनैव विनेन्धनमिवानलः ॥ (योगवासिष्ठ)

इन्धन से जैसे अग्नि वैसे चिन्तन से चिन्ता (या दुःख) प्रज्वलित होता है; और इन्धन न डालने से जैसे अग्नि वैसे चिन्तन न करनेसे चिन्ता शांत होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—चिन्तनेनैधते—स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ॥ स्वप्नवासवदत्ता ॥

(१३) चिन्ता व्याधिप्रकाशाय नरकाय प्रकल्पते ।
तस्माच्चिन्तां परित्यज्य अनुवर्तस्व शोभने ॥ (पद्मपुराण)

चिन्ता रोग (की उत्पत्ति के लिए तथा पहले से उत्पन्न हुए रोग) को प्रकट करने के लिए कारणभूत होती है । अतः शोभने ! चिन्ता छोड़कर व्यवहार कर ।

(१४) अकाण्डपातजातानां गात्राणां मर्मभेदिनाम् ।
गाढशोकप्रहाराणामचिन्त्यैव महौषधी: ॥
(प्रबोधचन्द्रोदय)

अकस्मात् उत्पन्न हुए मर्मांगभेदी गाढ दुःखों के आघातों के लिए उनका चिन्तन न करना यही सर्वश्रेष्ठ औषधि है ।

(१५) भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ (महाभारत)

चिन्तन न करना यही दुःख (या चिन्ता) की औषधि है। क्योंकि चिन्तन से वह नष्ट नहीं होती, किन्तु और बढ़ती है ।

(१६) यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥ (हितोपदेश)

जो होनहार नहीं वह होगा नहीं और जो होनहार है वह हुए बिना रहेगा नहीं यह (विचाररूप) चिन्ताविषनाशक औषधि क्यों नहीं सेवन की जाती है ? ।

(१७) किमद्य मम संपन्नं, प्रातर्वा भविता पुनः ।
इति चिन्ताज्वरो नास्ति तेन जीवाम्यनामयः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

आज मुझे क्या प्राप्त हुआ है, कल क्या होने वाला है इस प्रकार का चिन्ताज्वर (मुझे सताता) नहीं है। इसलिए मैं नीरोग जीवन बिताता हूँ।

(१८) द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ।
यो विदग्धो जडो बालो, यो गुणेभ्यः परं गतः ॥

(भागवत)

इति श्री भास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये चिन्ताविज्ञानीयो नाम
द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



चिन्तामुक्त जीव—परमानन्द में निमग्न दो ही जीव चिन्ता से मुक्त रहते हैं; एक मन्दबुद्धि मूर्ख और दूसरा त्रिगुणातीत हुआ सिद्ध पुरुष।

वक्तव्य—इस वचन में चिन्ता जिनको छूती नहीं ऐसे मनुष्यों के दो वर्ग बताये हैं। चिन्ता के कारण शरीर और मन दोनों अस्वस्थ रहते हैं। ये ही दो वर्ग निश्चिन्त होने के कारण सदैवी सुखी और स्वस्थ भी रहते हैं—यश्च मूढतमो लोके, यश्च बुद्धेः परं गतः। तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ भागवत ॥ साधु-सन्तों का परमानन्द सब समझ सकते हैं परन्तु मूर्खों का परमानन्द कैसे ? इसका उत्तर मूर्खों के निम्न गुणों में है—मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते, मूर्खस्य चाष्टौ गुणा निश्चिन्तो बहुभोजकोऽतिमुखरो रात्रिन्दिवं स्वप्नभाक्। कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो, मानापमाने समः प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥ Ignorance is bliss.

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां चिन्ताविज्ञानीयो नाम
द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातोऽभ्यासविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) भावाभ्यसनमभ्यासः शीलनं सततक्रिया । (चरक)

सामान्य व्याख्या—किसी भाव का सतत सेवन अभ्यास है, शीलन और सतत क्रिया वही है ।

(२) पौनःपुन्येन करणमभ्यास इति कथ्यते ।
पुरुषार्थः स एवेह तेनास्ति न विना गतिः ॥
(योगवासिष्ठ)

कार्मिक व्याख्या—बारबार किसी काम को करना अभ्यास कहलाता है । वही पुरुषार्थ (साधन का मार्ग) है, उसके विना गति नहीं ।

(३) तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् ।
एतदेकपरत्वं च तदभ्यासं विदुर्बुधाः ॥ (योगवासिष्ठ)

बौद्धिक व्याख्या—किसी बात का निरन्तर चिन्तन करना, दूसरे को उसे कहना, एक दूसरे को उसके संबंध में जानकारी करना, तदाकार वृत्ति रखना इसको विद्वान् अभ्यास कहते हैं ।

(४) जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम् ।
कर्कशानां मृदुस्पर्शं, किमभ्यासान्न साध्यते ॥

अभ्यास फल—पानी सतत (प्रवाह की) क्रिया से पहाड़ों को क्षीण करता है तथा कठिन खरखरे पत्थरों को चिकना बनाता है, तात्पर्य अभ्यास से क्या नहीं साध्य होता है ?

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) दुःसाध्याः सिद्धिमायान्ति रिपवो यान्ति मित्रताम् ।
विषाण्यमृततां यान्ति संतताभ्यासयोगतः ॥

(योगवासिष्ठ)

निरन्तर अभ्यास से दुःसाध्य साध्य होता है, शत्रु मित्र बनते हैं और विष अमृत (नीचे ६ वें श्लोक का वक्तव्य देखिए) बन जाते हैं।

(६) अज्ञोऽपि तज्ज्ञतामेति, शनैः शैलोऽपि चूर्ण्यते ।
बाणोऽप्येति महालक्ष्यं पश्याभ्यासविजृम्भितम् ॥

(योगवासिष्ठ)

अभ्यास का चमत्कार देखो; इससे अज्ञानी ज्ञानी हो जाता है, पहाड़ धीरे धीरे चूर्ण हो जाता है और बाण भी अपने अत्यन्त सूक्ष्म लक्ष्य को वेध कर सकता है।

(७) अभ्यासः कर्मणां सम्यगुत्पादयति कौशलम् ।
विधिना तावदभ्यस्तं यावत्सृष्टा मृगेक्षणा ॥

(सुभाषितावलि)

ब्रह्माजी सृष्ट्युत्पत्ति का ठीक अभ्यास करते रहे जिससे सुन्दर स्त्री की सृष्टि हुई; (ठीक ही है) किसी कर्म का ठीक अभ्यास करने से उसमें कौशल उत्पन्न होता है।

वक्तव्य—मृगेक्षणा—निर्माणकौशलं धातुः सेयमिन्दीवरेक्षणा ॥ साहित्यदर्पण ॥

(८) अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥

(अष्टांगहृदय)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अभ्यास से कर्म में सिद्धि प्राप्त करने की प्रकाशक दृष्टि प्राप्त होती है। सुवर्ण रत्नादि की शुद्धाशुद्धता का ज्ञान शास्त्र पढ़ने से नहीं प्राप्त होता (कर्माभ्यास से ही होता है)।

वक्तव्य—अभ्यास से होने वाले अन्य फलों के लिये 'अभ्यासेन कटु द्रव्यं' पृष्ठ १४५, 'कवलयति नरकनिकरं पृष्ठ १४६ तथा' 'असंशयं महाबाहो' ये श्लोक भी देखिए।

(९) उपशेते यदौचित्यादोकसात्म्यं तदुच्यते ॥ (चरक)

अभ्याससात्म्य—अभ्यास से जो सुखकर होता है उसे ओकसात्म्य कहते हैं।

वक्तव्य—औचित्य—अभ्यास। उपशय—सुखानुबंध। ओकसात्म्य-अभ्यास सात्म्य। सहजसात्म्य की यह विपरीत अवस्था है, जिसमें स्वभाव से प्रतिकूल, अप्रिय, हानिकर, अपथ्यकर द्रव्य अनुकूल, प्रिय, लाभदायक तथा पथ्यकर हो जाता है। जैसे, कड़ी सर्दी गरमी, अफीम, संखिया, सर्पविष ये सहज सात्म्य नहीं हैं, परन्तु मनुष्य अभ्यास से इन सबों को सात्म्य कर लेता है। ये ओकसात्म्य के उदाहरण हैं।

(१०) शतेषु जायते शूरः, सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु, दाता भवति वा न वा ॥

अभ्यास से असाध्य—सैकड़ों में एकाध शूरवीर, हजारों में एकाध पण्डित, दस हजारों में एकाध वक्ता जन्मता है, दाता जन्मता है अथवा नहीं भी जन्मता।

वक्तव्य—जायते—इस श्लोकगत पाण्डित्यादिगुणयुक्त पुरुष जन्मते हैं (A genius is born) अभ्यास से उत्पन्न नहीं किये जा सकते यह इस श्लोक का आशय है।

(११) दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्येयुश्चत्वारः सहजा गुणाः ॥ (वृद्धचाणक्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दातृत्व, उत्कृष्ट वक्तृत्व, शूरत्व और पाण्डित्य ये चार गुण (केवल) अभ्यास से प्राप्त होने वाले नहीं हैं, सहज होते हैं।

वक्तव्य—सतत अभ्यास से मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त कर सकता है यह सत्य प्रारम्भिक वचनों में बतलाया गया है। इससे अगर कोई यह समझे कि सतत अभ्यास से सब कुछ प्राप्त हो सकता है तो उसका यह भ्रम है। उपर्युक्त दो श्लोकों में यह बताया है कि मनुष्यों में कुछ गुण ऐसे हैं कि जिनको साध्य करने के लिए केवल सतत अभ्यास पर्याप्त नहीं होता, उसके साथ सहज गुणवत्ता (Inherent quality) भी मनुष्य में होने की आवश्यकता होती है। श्लोकोक्त शूरत्वादि लौकिक गुणों के अतिरिक्त परमेश्वर प्राप्त कर लेने का आध्यात्मिक गुण भी ऐसा ही है। उसके संबंध में भगवान् श्रीकृष्ण जी ने जो कहा है उसको देखकर उपर्युक्त वचनों की सत्यता अधिक स्पष्ट होगी—मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ गीता ॥

(१२) उद्योगः कलहः कण्डू द्यूतं मद्यं परस्त्रियः।
आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ॥

(प्रसंगरत्नावलि)

उद्योग, कलह, कण्डू, द्यूत, मद्य, परदारोपसेवन, आहार, मैथुन और निद्रा ये सेवन से बढ़ते हैं।

वक्तव्य—अभ्यास से जिनके सेवन की प्रवृत्ति, अभिलाषा, मात्रा, वारंवारता, कालावधि उत्तरोत्तर बढ़ती है ऐसे कुछ विषयों का निर्देश इस श्लोक में किया है। इनमें मद्य, आहार, मैथुन और निद्रा ये विषय स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्व के हैं। अतः इनके सेवन के समय इस बात का ध्यान रक्खें। पृष्ठ १६३ पर 'न स्वप्नेन जयेन्निद्रां' श्लोक तथा आहारादि के पाठ देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१३) युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा ।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥

(हठयोगप्र०)

युवा, वृद्ध, अतिवृद्ध, रोगी तथा दुर्बल भी आलस छोड़ने पर सर्व योगों में अभ्यास से सिद्धि प्राप्त करता है ।

वक्तव्य—सर्वयोगेषु—योगांगों में, कर्मकौशल में, वपुःस्थैर्य में, व्याधिहरण में, अपूर्वार्थप्राप्ति में तथा अन्य सब प्रकार के प्रयोगप्रयत्न में—यमनियमासन-प्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। योगसूत्र ॥ योगः कर्मसु कौशलम् ॥ गीता । योगोऽपूर्वार्थसंप्राप्तौ संगति-ध्यानयुक्तिषु । वपुःस्थैर्ये प्रयोगे च विष्कम्भादिषु भेषजे ॥ मेदिनी ॥

(१४) सर्वेषां तु पदार्थानामभ्यासः कारणं परम् ।
अनभ्यासेन मर्त्यस्य प्राप्तो योगोऽपि नश्यति ॥

(योगरसायन)

अनभ्यास से हानि—सब पदार्थों की प्राप्ति में अभ्यास मुख्य कारण है । अभ्यास छोड़ देनेसे प्राप्त योग भी मनुष्यों के नष्ट होते हैं ।

वक्तव्य—अभ्यास सर्वसिद्धिदायक होता है परन्तु केवल उसका नामजप करने से सिद्धि नहीं होती, जो सिद्धि चाहते हैं उसका अनुष्ठान निरन्तर श्रद्धा, आदर से करना जरूरी होता है यह तत्व नीचे के वचनों में बतलाया गया है ।

(१५) स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥

(योगसूत्र)

वह अभ्यास दीर्घकाल, अखण्डित, श्रद्धाविश्वास के साथ सेवन करने पर दृढमूल हो जाता है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१६) क्रियायुक्तस्य सिद्धिः स्यादक्रियस्य कथं भवेद् ।
न शास्त्रपाठमात्रेण योगसिद्धिः प्रजायते ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

अभ्यास का फल अनुष्ठान से—क्रियाशील को ही सिद्धि मिलती है, अक्रियाशील को कैसे प्राप्त होगी ? क्योंकि केवल शास्त्र पाठ करने से योगसिद्धि प्राप्त नहीं होती ॥

(१७) न वेषधारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ।
क्रिया हि कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः ॥
(हठयोगप्रदीपिका)

सिद्धि का कारण कोई (विशेष) वेष नहीं होता न उसकी कथा। केवल अनुष्ठान ही सिद्धि का कारण होता है यह निःसन्देह सत्य है।

(१८) फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादनम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसादति ॥ (मनु)

निर्मली का बीज यद्यपि जल को निर्मल बनाने वाला है तथापि उसके केवल नाम लेने से पानी निर्मल नहीं होता।

वक्तव्य—अम्बुप्रसादनम्-पृष्ठ ८२ पर 'मन्दोऽप्यमन्दतामेति' श्लोक का वक्तव्य देखिए ॥

(१९) न नामज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः ।
औषधीनां परां प्राप्तिं कश्चिद् वेदितुमर्हति ॥ (चरक)

न औषधियों के केवल नाम जानने से अथवा न उनके स्वरूप की जानकारी होने से कोई भी औषधियों के (प्रयोग के) सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

(२०) न हि घृतवचनेन पित्तं शाम्यति । (अविमारक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

घी का नाम लेने से पित्त का शमन नहीं होता है।

वक्तव्य—पित्तम्–घी पित्तशामक है–पित्तस्य सर्पिषः पानम्॥ वाग्भट॥

(२१) यथा देहोपयुक्तं हि करोत्यारोग्यमौषधम्।
तथेन्द्रियजयेऽभ्यस्ते विवेकः फलितो भवेत्॥ (योगवासिष्ठ)

जैसे औषधि शरीर में प्रयुक्त करने पर ही (शरीर को) नीरोग बनाती है, वैसे इन्द्रियजय का अभ्यास करने पर ही (आत्मानात्म) विवेक फलप्रद होता है।

(२२) किं मन्त्रेणाननुष्ठानाच्छास्त्रवित्पृथिवीपतेः।
न ह्यौषधपरिज्ञानाद्व्याधेः शान्तिः क्वचिद्भवेत्॥
(हितोपदेश)

राजनीतिज्ञ राजा को (मन्त्री की) मन्त्रणा का अनुष्ठान न करने से क्या लाभ होने वाला है? (व्याधि के लिए उपयुक्त) औषधि के केवल परिज्ञान से (या नाम लेने से) व्याधि की शान्ति नहीं होती है।

(२३) शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितञ्चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥ (हितोपदेश)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्येऽभ्यासविज्ञानीयो नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी (उसका अनुष्ठान न करने से मनुष्य) मूर्ख होते हैं, जो पुरुष (तदनुसार) क्रिया करता है वही विद्वान् है। खूब चिन्तन करके रोगियों के लिए निश्चित की गयी औषधि केवल नाम मात्र से उनको नीरोग नहीं करती।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायामभ्यासविज्ञानीयो नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चतुर्विंशोऽध्यायः।

अथातो व्यसनविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) यस्मात्तद् व्यसति श्रेयस्तस्माद्व्यसनमुच्यते।
व्यसत्यधो वा व्रजति तस्मात्तत् परिवर्जयेत्॥
(कामंदकीयनीतिसार)

व्याख्या—श्रेय का नाश करता है, (कर्तव्य से अथवा नीति-धर्मों से) नीचे गिराता है; इसलिए व्यसन कहते हैं; अतः उसका परित्याग करें।

(२) मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः, परिवादः, स्त्रियो, मदः।
तौर्यत्रिकं, वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ (मनु)

कामजव्यसन—शिकार, द्यूत, दिन में निद्रा, परदोषकथन, स्त्रीसेवन, मद्यपान, तौर्यत्रिक, वृथापर्यटन इन दस व्यसनों का कामज गण होता है।

वक्तव्य—तौर्यत्रिकम्-तूर्यं मृदंगादि तत्र भवं तौर्यं, तौर्योपलक्षितं त्रिकं तौर्यत्रिकम्। तौर्यत्रिकम् नृत्यगीतवाद्यम्॥ अमरकोश॥ कामज—सुखेच्छाप्रभवः। मन्वर्थमुक्तावली। संक्षेप में ऐच्छिक व्यसन (Voluntary addictions), आगे 'हुताशनो जलं व्याधिः' श्लोक (पृष्ठ २५४) को देखें। मदः-मद या नशा उत्पन्न करनेवाले द्रव्यों का सेवन, जैसे मद्यपान, तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, भांग, गांजा, चरस इत्यादि का सेवन।

(३) पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ (मनु)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कष्टतम व्यसन—मद्यपान, द्यूत, स्त्रीसेवन, शिकार ये क्रम से बताये हुए चार व्यसन ऐच्छिक व्यसनों में अत्यन्त दुःखदायक होते हैं।

(४) पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया गीतवादिते।
एतानि युक्त्या सेवेत, प्रसङ्गो ह्यत्र दोषवान्॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

मद्यपान, द्यूत (रेस तथा अन्य जुआरी व्यवसाय) स्त्रीसेवन, शिकार और गायनवादन इनका सेवन युक्ति से किया जाय, इनमें आसक्ति दोषावह होती है।

वक्तव्य—प्रसंग—(१) व्यसन, आसक्ति। 'केवलं व्यसनस्योक्तं' श्लोक (२५५ पृष्ठ) का वक्तव्य देखें। (२) अभ्यास, पुनः पुनः करण अर्थात् अतियोग।

(५) प्रहारितोऽपि मार्जारस्तमाखुं नैव मुञ्चति।
बहुधा बोधितो मूर्खस्तमाखुं नैव मुञ्चति॥

लगुडप्रहार करने पर भी जैसे बिलाव (पकड़े हुए) चूहे को नहीं छोडता, वैसे बहुत कुछ उपदेश करने पर भी मूर्ख तमाखू (के व्यसन) को नहीं छोड़ता है।

वक्तव्य—बहुधा बोधितः—वर्तमान काल में धूम्रपान के रूप में तमाखु सेवन का व्यसन बहुत बढ़ रहा है। इससे श्वसनांगों में कर्क (Cancer) या कर्कटार्बुद (Carcinoma) जैसा घातक अर्बुद (Tumour) का रोग बढ़ रहा है यह बात अन्वेषण से सिद्ध हुई है और इसके संबन्ध में बहुत कुछ प्रचार और विज्ञापन भी हो रहा है। फिर भी व्यसनी इसको छोड़ नहीं रहे हैं। केवल यहीं नहीं अधिकाधिक लोग व्यसनी बन रहे हैं। तमाखू—यह एक उपलक्षण है। जो स्थिति तमाखू की वही स्थिति मद्यपानादि अन्य व्यसनों की है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६) व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ (मनु)

व्यसन और मृत्यु इनमें व्यसन (मृत्यु से अधिक) कष्टदायक होता है ; (क्योंकि) व्यसनी (अपने ही जीवन में दिनों दिन अधिकाधिक) अधोगति को प्राप्त होता है (और मृत होने पर नरक को ; इसके विपरीत) निर्व्यसनी (अपने जीवित में सुखसंपत्ति को और) मृत होने पर स्वर्ग को प्राप्त होता है ।

(७) हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकस्तथा ।
इति पञ्चविधं दैवं ; व्यसनं मानुषं परम् ॥

(कामन्दकीयनीतिसार)

व्यसन की मनुष्याधीनता—आग लगना, अतिवृष्टि, व्याधिसे पीडित होना, अकाल पड़ना, मरक का उत्पन्न होना ये पाँच प्रकार (की घटनायें) दैवकृत हैं, किन्तु व्यसन (रूपी आपत्ति में फँसना) पूर्णतया मानवीय कर्म है !

वक्तव्य—मरक—जनपदोद्ध्वंसक रोगः । हेमाद्रि ॥ महामारी जानपदिक (Epidemic) रोग । मानुष–मनुष्य को उसकी मूर्खता से प्राप्त, मनुष्यकृत ।

(८) अनभ्यासेन विद्यानामसंसर्गेण धीमताम् ।
अनिग्रहेण चाक्षाणां जायते व्यसनं नृणाम् ॥

(काव्यालंकार)

व्यसन के हेतु—विद्याभ्यास न करने से, विद्यावन्तों के संसर्ग में न आने से, और इन्द्रियों को वश में न रखने से मनुष्य में व्यसन उत्पन्न होते हैं ।

वक्तव्य—अक्षम्—अश्नुते व्याप्नोति विषयान् स्ववृत्त्या संयोगेन वा । इन्द्रियाँ विशेषतः ज्ञानेन्द्रियाँ ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) केवलं व्यसनस्योक्तं भेषजं नयपण्डितैः ।
तस्योच्छेदसमारम्भो विषादपरिवर्जनम् ॥ (पञ्चतन्त्र)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये व्यसनविज्ञानीयो नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



व्यसन की औषधि—नयविदों का कहना है कि व्यसन के उन्मूलन के पीछे पड़ना और (उसके छोड़ने से शरीर और मन में उत्पन्न) विषाद का वर्जन करना यही उसकी एक मात्र औषधि है।

वक्तव्य—व्यसन—मद्यादि में आसक्ति और विपत्ति ये दोनों अर्थ यहाँ पर हो सकते हैं—व्यसनं त्वशुभे सक्तौ पानस्त्रीमृगयादिषु। दैवानिष्टफले पापे विपत्तौ निष्फलोद्यमे । मेदिनी । विषाद—मद्यादि के सेवन से मनुष्यों को स्फूर्ति, ऊर्जा, उत्साह मालूम होता है। पृष्ठ १५७ पर 'विनयन्ते स्म तद्योधा' श्लोक का वक्तव्य देखें। अतः उसके असेवन से विषण्णता, मन्दता, आलस्य इत्यादि का अनुभव होता है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां व्यसनविज्ञानीयो नामः ।
चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातः स्वभावविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति हस्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह)

जडसृष्टि में स्वभाव—अग्नि उष्ण, जल ठण्ढा और वायु समशीतोष्ण (दोनों) यह विचित्रता किसने की ? इसलिए स्वभाव से ही (विचित्रता की) स्थिति होती है ।

(२) कः कण्टकस्य प्रकरोति तैक्ष्ण्यं चित्रं विचित्रं मृगपक्षिणां च ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामकारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥
(बुद्धचरित)

जीवसृष्टि में स्वभाव—कण्टक में नोकीलापन और पशुपक्षियों में चित्रविचित्रता कौन निर्माण करता है ? ये सब कार्य स्वभाव से हुआ करते हैं, वहाँ पर कहीं भी किसी की इच्छा का प्रश्न (प्रयत्न) नहीं है ।

(३) स्वभावाल्लघवो मुद्गास्तथा लावकपिञ्जलाः ।
स्वभावाद्गुरवो माषा वराहमहिषादयः ॥ (चरक)

भोज्य द्रव्यों में स्वभाव—मूँग तथा लावकपिञ्जल (का मांस) स्वभाव से लघु (सुपाच्य) होते हैं, और उड़द तथा सूअर और भैंस (का मांस) स्वभाव से गुरु (दुष्पाच्य) होते हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४) अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥ (सुश्रुत)

(५) सन्निवेशः शरीराणां दन्तानां पतनोद्भवौ ।
तलेष्वसंभवो यश्च रोम्णामेतत् स्वभावतः ॥ (सुश्रुत)

शरीर स्वभाव—शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों की यथास्थान उत्पत्ति स्वभाव से ही हुआ करती है। शरीर की बाह्याभ्यन्तर रचना, दाँतों का समय पर गिरना और उत्पन्न होना, हाथ पैरों के तलुओं पर बालों का न उत्पन्न होना यह सब स्वभाव से होता है।

वक्तव्य—स्वभाव—स्वस्य तत्तत्पदार्थस्य भावोऽसाधारणकार्यकारित्वम्, यथाऽग्नेर्दाहकारित्वम्। शंकरानन्द॥ प्रकृतिः शरीरस्वरूपम्। अरुणदत्त। प्रकृतिमिति स्वभावम्॥ चक्रपाणि॥ स्वभाव प्रकृति पर्याय हैं—संसिद्धिप्रकृती त्विमे। स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ। अमरकोश। मनुष्यों में स्वभाव या प्रकृति की उत्पत्ति के संबंध में सुश्रुताचार्य लिखते हैं—शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन। इसका तात्पर्य यह है कि गर्भ की उत्पत्ति के साथ स्वभाव की नींव पड़ती है। भौतिक शास्त्रों के अनुसार स्वभाव पूर्णतया पूर्वजों से और अध्यात्मशास्त्रके अनुसार पूर्वजों के साथ-साथ पूर्वजन्म के कर्मों से भी बनता है। पृष्ठ ७८ पर 'यथा भूमिस्तथा तोयं' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(६) यदीन्द्रियाणां नियतः प्रचारः प्रियाप्रियत्वं विषयेषु चैव।
संयुज्यते यज्जरयाऽऽर्तिभिश्च कस्तत्र यत्नो ननु सः स्वभावः ॥
(बुद्धचरित)

इन्द्रियों का ठीक अपने-अपने अर्थों की ओर प्रचार और उनके संबन्ध में प्रियाप्रियत्वं तथा (वृद्धावस्थामें शरीर का) जरा से और

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(विविध) आपत्तियों से पीडित होना, इसमें प्रयत्न कहाँ है, यह वास्तविक स्वभाव ही है।

(७) एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीले यथा बदरिकण्टकाः ॥

(वृद्धचाणक्य)

स्वभाव का व्यक्तिवैशिष्ट्य—जैसे एक ही बेर से उत्पन्न हुए सब कण्टक एक दूसरे के समान नहीं होते, वैसे एक ही माता (पिता) से उत्पन्न हुए तथा एक ही नक्षत्र पर जन्मे हुए सब लोग स्वभाव में समान नहीं होते।

वक्तव्य—न समाः—सब बातों में विषमता होती है ऐसा नहीं, कुछ बातों में विषमता होती है और उसी को यहाँ पर प्राधान्य दिया है। वैद्यकीय परिभाषा में स्वभाव के इस वैषम्य को प्रकृतिप्रत्यात्मता (Idiosyncrasy) कहते हैं। पृष्ठ १५५ पर 'न दुर्जनानामिह कोऽपि दोषः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(८) स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा ।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम् ॥ (पंचतन्त्र)

स्वभाव की दुरतिक्रमता—उपदेश से स्वभाव स्थायीरूप से परिवर्तित नहीं हो सकता। अच्छी तरह तपाया हुआ जल फिर से ठण्डा हो जाता है।

वक्तव्य—उपदेशेन–पृष्ठ २६६ पर पुराणान्ते श्लोक का वक्तव्य देखें।

(९) स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत् ।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥

(रघुवंश)

प्रणत हुए मुझसे प्रार्थना की जाने पर वह मातंग मुनि (कोप

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

छोड़कर) प्रसन्न हुआ। अग्नि और सूर्य के ताप से जल में उष्णता आती है, परन्तु शैत्य उसकी प्रकृति है।

(१०) मधुना सिञ्चयेन्निम्बं निम्बः किं मधुरायते।
जातिस्वभावदोषोऽयं कटुकत्वं न मुञ्चति ॥

मधु से निम्ब का सिञ्चन भले ही कीजिये, निम्ब मधुर होने वाला नहीं है। कटुता उसका जातिस्वभाव दोष है, इसलिए वह उसको छोड़ता नहीं है।

(११) यश्च निम्बं परशुना, यश्चैनं मधुसर्पिषा।
यश्चैनं गन्धमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः ॥

(अरुणदत्त टीका)

जो परशु से नीम को (काटता है), मधु और घृत से उसको (सिंचना करता है), तथा जो गंधमालादि से (उसकी पूजा करता है) उन सबों के लिए वह कडवा ही होता है।

वक्तव्य—अत्र वृश्चति (छिनत्ति), सिञ्चत्यर्चति इत्यध्याहारेण वाक्यानि पूरणीयानि। कुवलयानन्द ॥

(१२) आम्रं छित्त्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु यः।
यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास्य मधुरं भवेत् ॥

(रामायण)

आम को कुल्हाड़ी से काटकर जो नीम की सेवा करता है तथा उसको दूध से सिञ्चन करता है उसके लिए वह मधुर नहीं बनता।

(१३) द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित्।
एष मे सहजो दोषः; स्वभावो दुरतिक्रमः ॥

(रामायण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(रावण कहता है)—मैं दो टुकड़ों में हो जाऊँगा, परन्तु किसी के सामने झुकूँगा नहीं, यह मेरा स्वभावदोष है और स्वभाव अपरिवर्तनीय हुआ करता है।

(१४) शस्यलंपटबलीवर्दो न शक्यो वारयितुं
अन्यकलत्रप्रसक्तो न शक्यो वारयितुम्।
द्यूतप्रसक्तमनुष्यो न शक्यो वारयितुं
योऽपि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम्॥
(मृच्छकटिक)

हरे खेत में चरने के आदी बैल को उस आदत से छुड़ाना अशक्य है; परदारोपसेवन में आसक्त मनुष्य को उस आदत से छुड़ाना अशक्य है; द्यूत में आसक्त मनुष्य को उस आदत से छुड़ाना अशक्य है, तात्पर्य स्वाभाविक दोष का निवारण अशक्य होता है।

(१५) न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथाऽतिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः॥ (हितोपदेश)

धर्मशास्त्र न पढ़ना अथवा वेदाध्ययन न करना यह दुर्जन के दौरात्म्य का कारण नहीं होता; अपितु, जैसे गौ का दूध स्वभाव से ही मधुर होता है वैसे दुर्जन के दौरात्म्य में स्वभाव ही बलवान् होता है।

वक्तव्य—इस वचन में समान परिस्थिति होते हुए भी (जैसे गौ में कुतृणसेवन और दुर्जन में कुसंगति सेवन) स्वभाव के कारण प्रत्यक्ष फल में कैसे परस्पर विरोधी महदन्तर (जैसे गौ में मधुर दूध

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और दुर्जन में कटु व्यवहार) होता है इसका सुन्दर दिग्दर्शन किया गया है।

(१६) काकः पद्मवने रतिं न कुरुते, हंसो न कूपोदके
मूर्खः पण्डितसंगमे न रमते, दासो न सिंहासने।
कुस्त्री सज्जनसंगमे न रमते, नीचं जनं सेवते
या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यज्यते॥

कौआ कमलवन में, हंस कूप के जल में, मूर्ख पण्डित-संगति में और सेवक राजसिंहासन में रममाण नहीं होता; वैसे ही कुलटा स्त्री सत्पति के समागम में रममाण नहीं होती, नीच पुरुष की सेवा करती है; तात्पर्य, जिसकी जो स्वभाव से प्रकृति होती है वह किसी से त्यक्त नहीं होती।

(१७) न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं भवेत्।
प्रकृतेरन्यथाभावो न कथंचिद् भविष्यति॥

न मर्त्य अमर होता है, न अमर मर्त्य; तात्पर्य स्वभाव में व्यतिक्रम कदापि नहीं होता।

(१८) दुष्करं विषमौषधीकर्तुम्॥ (मृच्छकटिक)

विषको औषधि बनाना अत्यन्त कठिन कर्म है।

वक्तव्य—राजश्यालक शकार का आचरण देखकर मनुष्य स्वभाव की दुरतिक्रमता प्रदर्शित करने के लिए उसके परिचर विट का यह स्वगत वचन है। स्वभाव की दृष्टि से इस वचन का तात्पर्य यह है कि स्वभाव विष के समान दुष्परिवर्तनीय है और औषधि की दृष्टि से इसका तात्पर्य यह है कि विषद्रव्यों से बनायी गयी औषधियाँ, कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय, पूर्णतया निर्विष या अविकारी नहीं हो सकती, जो गुण औषधि के लिए वैद्यक में श्रेयस्कर माना गया है—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्यये । सुश्रुत ॥ रसशास्त्र में तथा आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में अनेक विषद्रव्य औषधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं। रसशास्त्र में शोधन, भावना, संस्कार के द्वारा और आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में द्रव्यों के रासायनिक संघटन में परिवर्तन करके उनको यावच्छक्य अधिक से अधिक निर्विष करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु वे पूर्णतया निर्विष नहीं होतीं। इसलिए उनका प्रयोग करने से पूर्व पूर्ण विचार करना चाहिए और प्रयोग करने के पश्चात् परिणाम की ओर ध्यान रखना चाहिए।

(१९) यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः ।
श्वा यदि क्रियते राजा स किं नाश्नात्युपनाहम् ॥
(हितोपदेश)

जिसका जो स्वभाव होता है वह सदैव अपरिवर्तनीय रहता है। कुत्ता यदि राजा किया जाय तो क्या वह जूते खाने की अपनी आदत छोड़ने वाला होता है ?

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों में स्वभाव की दुरतिक्रमता का विवरण विविध उदाहरणों से किया गया है। परन्तु इससे कोई यह न समझे कि उसकी दुरतिक्रमता सदैव अक्षुण्ण रहती है। नीचे के वचनों में स्वभाव परिवर्तन के विविध स्वरूप कारणों के साथ बतलाये गये हैं।

(२०) नलिकागतमपि कुटिलं न भवति सरलं शुनः पुच्छम् ।
तद्वत् खलजनहृदयं बोधितमपि नैव याति माधुर्यम् ॥

(१) *पीडन*—जैसे कुत्ते की टेढी पूँछ नलिका में डाल (कर सरल रख) ने पर भी सरल नहीं होती है, वैसे दुर्जनों का हृदय उपदेश करने पर भी मधुर नहीं होता।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) दुर्जनो नार्जवं याति सेव्यमानोऽपि नित्यशः ।
स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः श्वपुच्छमिव नामितम् ॥

(हितोपदेश)

जैसे स्वेदन, अभ्यंजन, (पीडन) आदि उपायों से कुत्ते की दबाकर सीधी की हुई पूँछ सीधी नहीं बनती, वैसे नित्य सेवा करने पर भी दुर्जन सरल नहीं होता ॥

(२२) स्वेदितो मर्दितश्चैव रज्जुभिः परिवेष्टितः ।
मुक्तो द्वादशभिर्वर्षैः श्वपुच्छः प्रकृतिं गतः ॥

(हितोपदेश)

स्वेदन, मर्दन और रज्जुबन्धन से सरल करके बारह वर्ष रखने के पश्चात् मुक्त की हुई कुत्ते की पूँछ फिर अपने स्वभावानुसार टेढी हो गयी ।

वक्तव्य—इन वचनों में श्वपुच्छ का उदाहरण देकर यह बतलाया है कि दबाव या पीडन स्वभाव-परिवर्तन का एक कारण होता है। परन्तु जैसे, 'यावत्तैलं तावदाख्यानं' होता है वैसे 'यावत्पीडनं तावत्परिवर्तनं' रहता है, अर्थात् जब तक दबाव बना रहता है तबतक स्वभाव परिवर्तित सा रहता है, उसके निकल जाने पर स्वभाव ज्यों का त्यों हुआ करता है ।

(२३) श्मशानमापदं दैन्यं दृष्ट्वा को न विरज्यते ।
तद्वैराग्यं परं श्रेयः स्वतो यदभिजायते ॥

(योगवासिष्ठ)

(२) *आपत्ति*—श्मशान, आपत्ति और दैन्य देखकर किसको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, (परन्तु यह वास्तविक शाश्वत वैराग्य नहीं है)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वयंस्फूर्ति से जो वैराग्य उत्पन्न होता है वही परम श्रेयस्कर होता है।

वक्तव्य—श्मशान–मृत्यु का तथा मरणोत्तर शरीरों का अग्नि में जलकर भस्म होना। आपद्–रोगग्रस्तता तथा विविधस्वरूप की दुर्घटनाओं की आपत्तियाँ। इस वचन में यह बतलाया है कि विविध स्वरूप की आपत्तियाँ भी स्वभाव-परिवर्तन का एक कारण होती हैं। इस प्रकार से होने वाला परिवर्तन प्रायः सन्मार्ग की ओर तथा क्षणिक होता है। इस प्रकार के क्षणिक परन्तु सन्मार्ग पर स्वभाव परिवर्तन को 'श्मशानवैराग्य' ही कहते हैं। आपत्तिजन्य स्वभाव-परिवर्तन क्षणिक होने के कारण उसको स्थायी बनाने के लिए कुन्ती ने श्रीकृष्ण-जी के पास 'विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो' (भागवत) ऐसा वर मांगा था। 'धर्माख्याने श्मशाने च' तथा 'आर्ता देवान्नमस्यन्ति' श्लोक देखें।

(२४) स्त्रीणां हि साहचर्याद्भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि।
मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली॥

(वेणीसंहार)

(३) *साहचर्य*—(पति के निरन्तर) साहचर्य से स्त्रियों के स्वभाव पतिस्वभाव-सदृश हो जाते हैं। मधुर लता भी विषवृक्ष का निरन्तर आश्रय करने से मूर्च्छोत्पादक होती है।

वक्तव्य—साहचर्य–स्त्रियों के स्वभाव-परिवर्तन में पति का निरन्तर अन्तर्बाह्य साहचर्य प्रमुख कारण जरूर है, परन्तु उसके साथ पति का दबाव या प्रभाव और स्त्री की विचारवत्ता ये दो सहायक कारण जरूर होते हैं इसको भी ध्यान में रखना चाहिए। विषविटपिसमाश्रिता वल्ली–साहचर्य का प्रभाव दिखाने के लिए वनस्पति सृष्टि का यह उदाहरण है। दूसरा परन्तु विपरीत परिणाम दिखाने वाला उदाहरण मलयाश्रित सामान्य वृक्षों का है—मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोलनिम्बकुटजान्यपि चन्दनाः स्युः॥ नीतिशतक॥ तीसरा उदाहरण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मूल स्वभाववर्धन का है जो 'एक तो करेला कडवा और दूसरा नीम-चढ़ा' इस कहावत में पाया जाता है। इन लोकोक्तियों से यह स्पष्ट होगा कि मनुष्यों में ही नहीं, वनस्पतियों में भी साहचर्य से मूल स्वभाव में न्यूनाधिक परिवर्तन हुआ करता है। वैद्यकशास्त्र में औषधार्थ प्रयुक्त की जाने वाली वनस्पतियों की ग्राह्याग्राह्यता का विचार करते समय इस बातपर ध्यान दिया जाता है और इसका उत्तम उदाहरण गुडूची या गिलोय है। स्नुही (थूहर) जैसे वृक्ष पर चढ़ी हुई गिलोय अग्राह्य, सर्वसाधारण वृक्ष पर चढ़ी ग्राह्य और अमृतसम गुणकारी नीम वृक्ष पर चढ़ी अधिक ग्राह्य मानी जाती है। वनस्पतियों में होनेवाले इस प्रकार के परिवर्तनों को कोई माने या न माने, विवाहित स्त्री में होनेवाला स्वभाव-परिवर्तन सर्वपरिचित होने से विश्वासार्ह है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ पर आधाराधेय या आश्रयाश्रयि भाव स्थायी रूप से होता है वहाँ पर प्रायः एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और उनमें जो अधिक बलवान् होता है वही प्रभावी बनता है, दुर्बल नहीं—सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां न हि खलसंगमात् खलत्वम्। आमोदं कुसुमभवं मृदैव धत्ते, मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति ॥ वृद्धचाणक्य ॥

(२५) सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः
दण्डस्य हि भयाद्भीतो भोगायैव प्रवर्तते ॥ (महाभारत)

(४) दण्ड—सर्वलोक दण्ड से जित हैं, पवित्र मनुष्य दुर्लभ होता है, दण्डभय से डरकर ही मनुष्य (धार्मिक, सामाजिक, शासकीय) नियमों के पालन में प्रवृत्त हुआ करता है।

वक्तव्य—दण्ड-यस्माददान्तान् दमयत्यशिष्टान् दण्डयत्यपि। दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥ महाभारत ॥ दण्डजितः—विविध धार्मिक पातकों और सामाजिक दुष्कृत्यों के लिए धर्मशास्त्र में और राजकीय दण्डविधान में जो दण्ड बतलाये गये हैं उनसे डरकर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जिन्होंने अपनी कुप्रवृत्तियों को तथा अपने दुष्ट स्वभाव को दबा के रक्खा है–राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते। यमदण्डभयादेके परलोकभयादपि ।। महाभारत ।। अतएव जो बाहर से सज्जन मालूम पड़ते हैं परन्तु जो वास्तव में नहीं हैं। भोगाय–धार्मिक, सामाजिक विधि-निषेधों तथा नियम-निबंधों के पालन के लिए–पालनाय मर्यादायाः ।। नीलकण्ठी टीका, महाभारत ।।

इस वचन का आशय यह है कि दण्ड स्वभावपरिवर्तन करने का एक बहुत ही महत्व का कारण है। यह कारण वैयक्तिक दृष्ट्या जैसे फलदायक होता है वैसे समाज की दृष्टि से भी, फिर वह समाज कितना भी बड़ा क्यों न हो, फलदायक होता है, यह इसकी विशेषता है। फलदायक होने के लिए दण्ड भयावह कठोर होना चाहिए। इससे डरकर सर्व प्रकार के पापी पापों से परावृत्त हो जाते हैं–दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः ।। येऽपि संभिन्नमर्यादा नास्तिका वेदनिन्दकाः। तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः ।। महाभारत ।। दण्ड सौम्य रहने से पापी उसकी परवाह न करके चौर्यादि पापकर्म बराबर किया करते हैं और प्रत्येक समय दण्ड भोगते-भोगते उसके लिए अभ्यस्त होने से और यावज्जीव समाजकंटक बनकर समाज को पीड़ा देते रहते हैं, जैसे घातक मात्रा से न्यून अर्थात् सौम्य मात्रा में औषधियों का, विशेषतः प्रतिजीवी औषधियों का (Antibiotics) अवचरण (Administration) करने से रोगाणु उनकी परवाह न करके विरोधी (Resistant) बनकर यावज्जीव शरीरकंटक बने रहते हैं और समाज में भी दुश्चिकित्स्य रोग उत्पन्न करके पीड़ा देते रहते हैं। धर्मशास्त्र में चोरी के लिए करच्छेद, बलात्कार के लिए लिंगच्छेद, वध के लिए शिरच्छेद इस प्रकार के भयावह दण्ड दिये हैं और राजा लोग उसके अनुसार दण्ड देते रहे, अन्यथा उनकी अधोगति होती है ऐसा स्पष्ट कहा है–येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते। तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्या-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देशाय पार्थिवः ।। उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् । चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ।। अदण्ड्यान् दण्डयन्राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ।। मनु ।। रामराज्य में चौर्यकर्म नहीं होता था ऐसा आदर्श समाज चित्र बतलाया गया है—न तस्करभयं तत्र । रामायण ।। श्रुतौ तस्करता स्थिता । रघुवंश ।। इसका अर्थ रामराज्य में चोर ही नहीं थे ऐसा करने का कोई कारण नहीं है, कुछ इने गिने चौर्यवृत्तिजन जरूर होंगे; परन्तु रामचन्द्र जी 'यथापराधदण्डानां', 'स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्' (रघुवंश), 'हन्त्येष नियमाद् वध्यान्' (रामायण) इस प्रकार का दण्डावचरण करने वाले होने से चोरी करने की उनकी हिम्मत नहीं होती थी इस प्रकार का अर्थ करना मनुष्य समाज और मनुष्य स्वभाव की दृष्टि से अधिक उचित होता है—न तत्र कूटं पापं वा वञ्चना वाऽपि दृश्यते । यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः ।। महाभारत ।। इसी के आधार पर प्राचीन परम्परा में शिष्य और पुत्र को सन्मार्गी बनाने के लिए लाड-प्यार करने की अपेक्षा ताडन करने के लिए कहा है—लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः । तस्माच्छिष्यं च पुत्रं च ताडयेन्न तु लालयेत् ।। गरुडपुराण ।।

वर्तमानकाल में मनोविज्ञान, मनोविकृति विज्ञान, मनोविक्षिप्ति-विज्ञान में नये-नये संशोधन हो रहे हैं । उनके आधार पर अपराधियों के साथ सहानुभूति का व्यवहार करने की ओर तथा उनको सौम्य दण्ड करके उपदेश द्वारा सुधारने की ओर वैज्ञानिक झुक रहे हैं और दण्डविधान से ताडन-मारण के दण्ड बहिष्कृत करने की कोशिश हो रही है । बहुत ही मामूली अपराध के लिए इस प्रकार का उपचार भले ही उचित हो, परन्तु 'एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते' इस कहावत के अनुसार जिसने अपने क्षणिक मनोवेग के कारण दूसरे को इस संसार से सदा के लिए नष्ट कर दिया तथा परस्त्री पर बलात्कार करके उसके जीव का भले ही न हो, परन्तु उसके जीवन का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सदा के लिए सत्यानाश कर दिया उसको फाँसी देने के बदले उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार करना तथा जिसको न्यायालय से फाँसी की सजा हुई है उसके ऊपर दया करके उसको फाँसी से मुक्त करना न्याय की शुद्ध विडंबना है। संक्षेप में आधुनिक काल में उपर्युक्त मानसिक शास्त्रों में मन के संबन्ध में जो आविष्कार हुए हैं वे निरपराधी व्यक्ति के मनोदोष दूर करने की दृष्टि से हितावह हैं, परन्तु समाज का घोर अपराध किये हुए मनोविक्षिप्तों को घोर दण्ड से बचाने के लिए उनका उपयोग करना समाज की दृष्टि से अत्यन्त अनर्थावह है। अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ! त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥ पृष्ठ २०५ पर 'तृप्त्यर्थं भोजनं' श्लोक का भी वक्तव्य देखें।

(२६) दत्वा ते करदीकृताखिलनृपां यन्मेदिनीं लज्जसे
द्यूते यच्च पणीकृतोऽपि हि मया न क्रुध्यसि प्रीयसे।
स्थित्यर्थं मम मत्स्यराजभवने प्राप्तोऽसियत्सूदतां
वत्सैतानि विनश्वरस्य सहसा दृष्टानि चिह्नानि मे॥

(वेणीसंहार)

(५) *गतायुपता*—सर्व सामन्त राजाओं के साथ संपूर्ण पृथ्वी तुम्हें देने पर तुम्हारा लज्जायुक्त होना, द्यूत में तुम्हें लगाने पर क्रुद्ध न होकर प्रसन्न रहना, विराटराज के घर में मैं अच्छी तरह रहूँ इसलिए तुम्हारा सूद का काम करना ये जो चिह्न मैंने देखे, हे वत्स भीम ! तुम्हारे जल्दी मरने के ही दर्शक थे।

वक्तव्य—भीम के मारे जाने की वार्ता सुनने पर दुःखावेग में युधिष्ठिर ने यह बचन कहा है। करद–सार्वभौम को कर देने वाला सामन्त राजा। विनश्वरस्य–कोपी, अभिमानी, उद्दण्ड, अपमान सहन न करने वाला इस प्रकार का भीम का स्वभाव होने के कारण उपर्युक्त स्वरूप का व्यवहार उसके स्वभाव के अनुरूप नहीं रहा। भीम मारे

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जाने की वार्ता सुनने पर उसके स्वभाव के विपरीत उपर्युक्त आचरण युधिष्ठिर की आँखों के सामने खड़े हुए और उसके आधार पर भीम के मारे जाने की वार्ता सही होगी ऐसा उसने अनुमान निकाला। इसका कारण यह है कि जीवन भर मनुष्य का स्वभाव भले ही दुरतिक्रम रहे, परन्तु मृत्यु समीप आने पर उसमें प्रायः परिवर्तन हुआ करता है यह अनुभव अनेकों का है। वैद्यक में भी रोगी तथा स्वस्थ दोनों के लिए यह बतलाया है—प्रकोपो ह्यन्यथाभावो क्षयो वा नोपजायते प्रकृतीनां स्वभावेन, जायते तु गतायुषः ॥ सुश्रुत ॥

(२७) पुराणान्ते श्मशानान्ते मैथुनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा चेत्स्यात्को न मुच्येत बन्धनात् ॥

(६) उपदेश—पुराण श्रवण समाप्त होने पर, श्मशान से लौटने पर और मैथुन समाप्त होने पर जो मनोवृत्ति बनती है वह यदि सदा-सर्वदा बनी रहे तो संसार से कौन मोक्ष नहीं पा सकता है?

वक्तव्य—पुराणान्ते—पुराणों का उपदेश सुनकर। उपदेश स्वभावपरिवर्तन का सात्विक कारण है और इसलिए श्रेष्ठ है, परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में वह व्यर्थ होता है यह व्यासजी के निम्न वचन से स्पष्ट होगा—ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ महाभारत ॥ अतः शासन क्षेत्र में उसके लिए कोई स्थान नहीं है तथा न होना चाहिए। वहाँ पर दण्डविधान ही उचित होता है और नागरिक तथा सैनिक जीवन में दिखाई देने वाले अनुशासन का तुलनात्मक अवलोकन और अध्ययन करने से उपदेश की निष्फलता और दण्डविधान की सफलता स्पष्ट हो जाती है। श्मशानान्ते—पृष्ठ २६३ पर 'श्मशानमापदं दृष्ट्वा' श्लोक देखें। मैथुनान्ते—पृष्ठ १६० पर 'काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं' श्लोक का वक्तव्य देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२८) सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः ।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥

(हितोपदेश)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषितसाहित्ये स्वभावविज्ञानीयो नाम पंचविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



स्वभावपरीक्षण का महत्व—अन्य गुणों को पार करके स्वभाव सिर पर आरूढ रहता है। इसलिए सब के इतर गुणों का नहीं, स्वभाव का ही परीक्षण किया जाता है।

वक्तव्य—इस वचन का तात्पर्य यह है कि स्वभाव भी एक गुण ही है, परन्तु वह सर्वातिशायी होने से अन्य गुणों की अपेक्षा सर्वप्रथम उसका परीक्षण तथा ज्ञानप्राप्ति कर लेना केवल हितावह ही नहीं, आवश्यक भी है। जैसे, खाद्यद्रव्यों में उनकी दुष्पाच्यता-सुपाच्यता इत्यादि, औषधियों में उनकी उष्णवीर्यता, शीतवीर्यता, विषालुता (Toxicity) इत्यादि, रोगियों में उनकी वातलता (Nervous Temparament), पित्तलता (Sanguine T.), श्लेष्मलता (Lymphatic T.), सात्विकता, राजसता, तामसता, प्रकृतिप्रत्यात्मता (पृष्ठ पर २५८ 'एकोदरसमुद्भूता' तथा पृष्ठ १५५ पर 'न दुर्जनानां' श्लोकों का वक्तव्य देखें) इत्यादि। यदि इस प्रकार स्वभाव परीक्षण न करके अनागत तथा आगत व्याधिचिकित्सा की जाय तो रोगी को हानि और चिकित्सक को अपयश प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां स्वभावविज्ञानीयो नाम पंचविंशोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

षड्विंशोऽध्यायः

अथातस्तेजोविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते ॥ (पंचतन्त्र)

बालरवि के किरण (उदय होते ही) पर्वतों के (माथे के) ऊपर गिरते हैं। (ठीक ही है) जो जन्म से ही तेजस्वी है उसमें वय की गणना कहाँ ?

(२) कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥
(रघुवंश)

विश्वामित्र ने (अयोध्या में) आकर राजा (दशरथ) से यज्ञ-विध्वंस का उपशम हो इसलिए काकपक्षधारी राम की याचना की। (कार्यक्षमता की दृष्टि से) तेजस्वियों में वय नहीं देखा जाता है।

(३) सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥
(नीतिशतक)

सिंह बच्चा होने पर भी हाथियों के मदमलीन गंडस्थलों पर कूद पड़ता है। तेजस्वियों का यह स्वभाव है, उनमें तेज का हेतु वस्तुतः वय नहीं होता है।

वक्तव्य—उपर्युक्त श्लोकों में यह दिखाया गया है कि जो मनुष्य तेजस्वी होते हैं वे अपना तेज बचपन से दिखाते हैं, वयोवृद्धि की उन्हें आवश्यकता नहीं होती।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४) हस्ती स्थूलतनुः स चाङ्कुशवशः, किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशो
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरयः, किं शैलमात्रं पविः ।
दीपे प्रज्वलिते विनश्यति तमः, किं दीपमात्रं तमस्
तेजो यस्य विराजते स बलवान्, स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥

(वृद्धचाणक्य)

हाथी स्थूल शरीर का होता है, फिर भी वह अंकुश के वश में आता है, क्या अंकुश हाथी की मोटाई का होता है ?; वज्र से आघात हुए पर्वत चूर चूर हो जाते हैं, क्या वज्र पहाड़ों के समान बड़ा होता है ? दिया जलाने पर अंधकार नष्ट होया है, क्या दिये के समान (छोटा) अंधकार होता है ? तात्पर्य, जिसका तेज चमकता है वही बलवान् होता है, मोटाई पर क्या विश्वास कर सकते हैं ?

वक्तव्य—इस श्लोक में यह बताया है कि तेजस्वियों में तेज प्रकट होने के लिए शरीर हट्टा-कट्टा मोटा-ताजा होने की जरूरत नहीं होती। एकहरा बदन होने पर भी वे अपना तेज दिखा सकते हैं। यही नहीं, तेजप्रकृति के कारण उनका शरीर प्रायः एकहरा ही होता है। स्थूलता (Obesity) बल की निशानी नहीं, बल्कि निर्बलता की ही होती है। वैद्यक में एक मत से स्थूल की अपेक्षा कृश ही अधिक पसंद किया जाता है—स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यम् । चरक ॥ कृशः स्थूलात्तु पूजितः । सुश्रुत ॥ कार्श्यमेव वरं स्थौल्यात् । अष्टांगसंग्रह ॥ 'यदचेतनोऽपि पादैः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(५) बलवानपि निस्तेजः कस्य नाभिभवास्पदम् ।
निःशङ्कं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम् ॥

(हितोपदेश)

बलवान् होते हुए भी यदि (स्वभाव) तेजस्वी न हो तो वह

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

किससे अपमानित नहीं हो सकता ? राखी के ढेर पर निःशङ्क होकर लोगों द्वारा पैर रक्खे जाते हैं।

(६) अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते ।
निवसन्नन्तर्दारुणि लंघ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः ॥

(पंचतन्त्र)

तेज प्रकट न करने वाला बलवान् मनुष्य भी (औरों से) तिरस्कृत होता है। (ठीक ही है) लकड़ी (या राख) के भीतर छिपा हुआ अग्नि ही लोगों से उल्लंघित होता है, दहकता हुआ नहीं।

(७) यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ॥

(नीतिशतक)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेनसंकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये तेजोविज्ञानीयो नाम
षड्विंशोऽध्यायः समाप्तः ।



अचेतन होने पर भी सूर्यकान्त सूर्यकिरणों का स्पर्श होने पर प्रज्वलित होता है। (अचेतन सूर्यकान्त की जब परकृत विकृति की ओर यह प्रतिक्रिया होती है तब चेतन) तेजस्वी पुरुष उसको कैसे सह सकता है ?

वक्तव्य—पाद—किरण और पैर। इनकान्तः—सूर्यकान्तमणि—इनः सूर्ये प्रभौ राजमृगांके क्षत्रिये नृपे। अमरकोश ॥ विकृति—निकृति, अन्याय, अवमान, अपमान—तदपि खलु मे सव्याहारस्तुरंगमरक्षिणां विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाऽकरोत् ॥ उत्तररामचरित ॥

उपर्युक्त वचनों में बलवान्, तेजस्वी शब्दों का प्रयोग किया गया है। बल (Muscular strength) मनुष्यों की मांसपेशियों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(Muscles) का गुण है। पुष्ट पेशियाँ बलवान् और अपुष्ट या कृश पेशियाँ निर्बल होती हैं। पेशियों की पुष्टि वयोवृद्धि, व्यायाम तथा परिश्रम से होती है और उसका कुछ अनुमान मनुष्य के डीलडौल तथा संहनन से हो जाता है। तात्पर्य पेशीबल बचपन में न होने पर भी वयोवृद्धि के साथ-साथ प्रयत्न करने पर प्राप्त किया जा सकता है। तेज (Spirit) मनुष्य के मन का तथा सहज गुण है। तेजस्विता (Spiritedness) के लिए न हृष्ट-पुष्ट पेशियों की आवश्यकता होती है न वयोवृद्धि की, विशेषतया जवानी की। बच्चा भी बड़े मनुष्य के समान तेजस्वी (Spirited) होता है ('शमयति गजानन्यान्' श्लोक को देखें) परन्तु बलवान् मनुष्य के समान रूपसंहननादि से उसका पता नहीं चलता, प्रसंग पर ही वह मालूम होता है। बल और तेज के समान ऊर्जा (Energy) भी शरीर के संबंध में प्रयुक्त होनेवाला शब्द है। ऊर्जा नाडीतन्त्र (Nervous system) से संबंधित गुण है। इसलिए ऊर्जस्वल या ऊर्जस्वी (Energetic) मनुष्य बलवान् के समान हृष्टपुष्ट न होकर पतला ही रहता है। फिर भी दीर्घकाल तक लगातार परिश्रम करना और श्रान्त न होना इसकी विशेषताएँ हैं।

वैद्यकीय परिभाषा में बलवान् को कफप्रकृति (श्लेष्मलाः··· सारसंहतस्थिरशरीराः···उपचितपरिपूर्णसर्वाङ्गाः···बलवन्त···भवन्ति। चरक॥) तेजस्वी को पित्तप्रकृति (मेधावी निपुणमतिर्विगृह्य वक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः। सुश्रुत॥) और वातप्रकृति को ऊर्जस्वल (वातला रूक्षापचिताल्पशरीराः···लघुत्वाल्लघुचपलगतिचेष्टाहारव्याहाराः···भवन्ति। चरक॥) कह सकते हैं।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां तेजोविज्ञानीयो नाम
षड्विंशोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातः शिरोनेत्रविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम् ।
शिरोऽपि सर्वगात्राणां, व्रतानां सत्यमुत्तमम् ॥

(गरुडपुराण)

शिरःश्रेष्ठता—मनुष्यों में ब्राह्मण, तेजस्वी (पदार्थों) में सूर्य, (शरीर के) सर्वगात्रों में शिर और (आचरण करने के सर्व) व्रतों में सत्य सर्वोत्तम् हैं ।

वक्तव्य—ब्राह्मणः—ब्रह्म वेदं शुद्धं चैतन्यं वा वेत्त्यधीते वा । वेद-पारंगत अथवा ब्रह्मज्ञानी । शिरोऽपि सर्वगात्राणाम्—शरीर के सर्वगात्रों में शिर सर्वश्रेष्ठ मानने के अनेक कारण हैं—(१) कर्मेन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रिय श्रेष्ठ होते हैं । मन के साथ ज्ञानेन्द्रिय छः हैं । स्पर्शनेन्द्रिय को छोड़कर अन्य पाँच ज्ञानेन्द्रिय पूर्णांश में सिर में रहते हैं—प्राणाः प्राणभृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च । तदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते ॥ चरक ॥ शिरस्तास्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः ॥ भेलसंहिता ॥ (२) योगशास्त्रानुसार सहस्रार या सहस्रदल कमल (Brain) शिर में ही स्थित है । (३) अव्यय पुरुष या ब्रह्म से उत्पन्न हुए इस संसार का वर्णन वृक्ष के समान ऊर्ध्वमूल और अधः-शाख ऐसा किया गया है—ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥ गीता ॥ ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ॥ कठोपनिषद् ॥ वैद्यक ने अव्यय पुरुष की यह वृक्ष की कल्पना भौतिक पुरुष के लिए ग्रहण की है—ऊर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः । अष्टांगहृदय ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

केवल यही नहीं, इस पर शारीरिक परिभाषा भी बनायी है। जैसे, वृक्ष के मूल के समान शिर को मूल माना, तना या स्कन्ध के समान शरीरमध्य को स्कन्ध या अन्तराधि कहा और शाखाओं के समान हस्तपादों को शाखा कहा—सप्तोत्तरं मर्मशतमस्मिन्शरीरेस्कन्धशाखा-समाश्रितम्। चरक। स्कन्धशब्देनान्तराधिरुच्यते, शाखा शब्देन चेह शाखेव शाखेतिकृत्वा बाहुद्वयं जङ्घाद्वयं चोच्यते। चक्रपाणि ॥ तात्पर्य, जैसे वृक्ष के पंचांगों में मूल वैसे शरीर के षडङ्गों में शिर सर्वश्रेष्ठ होता है। 'सर्वौषधीनाममृताप्रधाना' श्लोक भी देखें। सत्य-यथार्थ वाणी। पृष्ठ १५६ पर 'काके शौचं द्यूतकारे' श्लोक वक्तव्य देखें।

(२) किं ज्योतिस्तव भानुमानहनि मे रात्रौ प्रदीपादिकम्
स्यादेवं रविदीपदर्शनविधौ किं ज्योतिराख्याहि मे।
चक्षुस्तस्य निमीलनादि समये किं धीर्धियो दर्शने
किं तत्राहमतो भवान् परमकं ज्योतिस्तदस्मिप्रभो ॥

(शंकराचार्य)

नेत्रश्रेष्ठता—तुमारी देखने की ज्योति कौन सी है? दिन में मेरी ज्योति सूर्य और रात में प्रदीप होते हैं; यह ठीक है परन्तु सूर्य और प्रदीप देखने वाली कौन सी ज्योति होती? मुझे कहो, चक्षु; आँखें मूंदने पर कौन सी ज्योति है? बुद्धि; बुद्धि को देखने वाली ज्योति कौन सी? मैं हूँ; इससे सबसे बड़ी ज्योति तू ही होना! गुरुजी मैं ही हूँ।

वक्तव्य—इस वचन में यह बतलाया है कि बाह्यजगत की दृष्टि से नेत्रज्योति और अन्तर्जगत् की दृष्टि से आत्मज्योति श्रेष्ठ है।

(३) चक्षुः प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधाः।
घननीहारयुक्तानां ज्योतिषामिवभास्करः ॥

घन, नीहार से युक्त (आकाशस्थ) ज्योतियों में जैसे सूर्य को वैसे (शरीरस्थ) सर्व इन्द्रियों में नेत्र को मनीषी श्रेष्ठ मानते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४) नाधीयादश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥ (मनु)

नेत्ररक्षा—घोड़ा, वृक्ष, हाथी, नाव, गधा, ऊँट इन पर सवारी करते समय, ऊबड़-खाबड़ भूमि पर चलते समय तथा ऐसी भूमि पर चलने वाले यान में जाते समय पढ़ने का काम न करें।

वक्तव्य—पठन के समय पठन का लक्ष्य स्थिर होना चाहिये जो उपर्युक्त यानवाहनों पर सवारी करते समय हो नहीं सकता। इससे आँखों को पढ़ते समय अधिक कष्ट होता है जिससे आँखों की पेशियाँ तथा दृष्टि दोनों खराब होने की संभावना होती है। यह कथन प्राचीन मोटे अक्षरों के पोथीपठन की अपेक्षा आधुनिक सूक्ष्माक्षरों के पुस्तक वृत्तपत्र-पठन को अधिक लागू होता है। वैसे ही आधुनिक चलचित्र-पटों की स्थिति होने से उनको बहुत अधिक देखने से आँखें खराब हो सकती हैं।

(५) नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तयन्तं कदाचन।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसोगतम् ॥ (मनु)

उदयाभिमुख, अस्ताभिमुख, ग्रहणग्रस्त, जल में प्रतिबिंबित तथा नभोमध्य में पहुँचे हुए सूर्य को कदापि न देखें।

वक्तव्य—उपसृष्टम्–राहू अर्थात् भूमि की छाया से जिसका तेज कुछ घट गया है। इस अवस्था में भी उसको ठीक नहीं देख सकते; इसलिए काँच पर काजल लगाकर ग्रहण देखने का रिवाज है। वारिस्थम्—सलिलगर्भगतोऽपिगभस्तिमाली दुरालोक एव। बाल-रामायण।

इस वचन का तात्पर्य यह है कि सूर्य को तथा सूर्यसम अत्यन्त तेजस्वी ज्योतियों को प्रत्यक्ष आँखों से कदापि न देखें। दृष्टिनाश या अंधता उत्पन्न करने वाले कारणों में यह कारण सबसे आशुकारी है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कभी-कभी क्षणभर में अंधक्षेत्र (Scotoma) उत्पन्न होता है जो एक बिन्दु से लेकर पूर्ण दृष्टिव्यापी हो सकता है। इससे बचने के लिए विद्युज्ज्वलित (Elec, soldering) के समान तेजस्वी ज्योतियों से काम करने वाले आँखों पर गहरा रंगीन चश्मा लगाते हैं या सामने गहरी रंगीन काँच पकड़ते हैं। सूर्य की धूप पीछे से सेवन करने का यही कारण है। नीचे देखिए।

(६) पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत, जठरेण हुताशनम्।
स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया ॥ (हितोपदेश)

पीठ से सूर्य (की धूप) को और सामने से अग्नि (की ताप) को सेवन करें; सर्व प्रकार से स्वामी की और निर्विषय होकर परलोक की सेवा करें।

वक्तव्य—शीतरक्षा का सर्वोत्तम साधन कम्बलसम मोटे वस्त्र हैं—कंबलवन्तं न बाधते शीतम् ॥ परन्तु दरिद्रों के पास ये वस्त्र न होने से उन्हें जानुभानुकृशानु के बलपर शीतपरिहार करना पड़ता है—रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः। एवं शीतं मया नीतं जानुभानुकृशानुभिः ॥ भोजप्रबन्ध ॥ दरिद्र इनका सेवन कैसा करते हैं इसका वर्णन श्रीशंकराचार्य ने अपने प्रसिद्ध चर्पटमंजरिका में किया है—अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पित जानुः ॥ शरीररक्षा की दृष्टि से अग्नि और सूर्य महत्व के हैं। पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत—सामने से धूप सेवन करने पर सूर्य की रोशनी आँखों में बराबर चकाचौंध पैदा करती रहेगी और इससे आँखें खराब होंगी। अतः धूपसेवन पीठ से करें। जठरेण हुताशनम्-पीठ से अग्नि की ताप सेवन करने पर उसके बढ़ने का तथा कपड़े में आग लगने का पता न चलेगा और इससे शरीर झुलसने की या जलने की संभावना बराबर बनी रहेगी। इसलिए सामने से अग्नि की ताप सेवन करना चाहिए। पीठ पर से अग्नि ले जाते

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

समय इसी दृष्टि से पीठ की ओर देखने के लिए कहा जाता है। संक्षेप में 'भृशभास्वज्ज्वलसूक्ष्मवीक्षण' से निवृत्ति नेत्ररक्षा का सूत्र है।

(७) व्यथयतितरामुपेतः स्वच्छप्रकृतिनवद्यलेशोऽपि।
भृशमुद्विजते चक्षुः सक्तेन रजःकणेनापि॥

जैसे, जरा-सा रजःकण सक्त होने पर नेत्र में अत्यन्त व्यथा होती है, वैसे जरा-सा लांछन लगने पर निर्दोष प्रकृति के सज्जनों को अत्यन्त कष्ट होता है।

वक्तव्य—नेत्र सज्जनों के मन के समान निर्मल और अच्छोदसर के जल के समान अत्यन्त स्वच्छ तेजोजल (Aqueous humor), मेदोजल (Vitreous humor) युक्त इन्द्रिय है। अन्य इन्द्रिय न्यूनाधिक मल से लिप्त रहते हैं तथा उसको व्यथित हुए बिना सह सकते हैं। स्पर्शनेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय अंशतः मलोत्सर्जक भी हैं। नेत्र न मल से लिप्त रहना पसंद करते हैं, न लिप्त होने पर उसको सह सकते हैं, न स्वयं मल को उत्सर्गित करते हैं। वे सदैव स्वच्छ रहते हैं। यदि कुछ धूलि कण उनपर आ गिरते हैं तो वे तुरन्त अपने अश्रुजल से उनको बहा देते हैं और यदि उसमें असफल रहे तो जब तक कण उनमें आसक्त रहते हैं तब बराबर व्यथित रहते हैं और मनुष्य को बेचैन करते हैं। इसलिए नेत्रों को सदैव निर्मल रक्खें और आगन्तुक शल्यों से उनकी रक्षा करें।

(८) न खल्वक्षिदुःखितोऽभिमुखे दीपशिखां सहते।

(विक्रमोर्वशीय)

जिसकी आँखों में दुःख है वह दीपशिखा को सामने सह नहीं सकता।

वक्तव्य—अक्षिदुःखितः-दुःखिताक्षि। आँखें जैसी विविध रोगों से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दुःखी होती हैं वैसे प्रकाश देखने के लिए उनका उपयोग न करने से अर्थात् अयोग से ही दुःखी होती हैं—रूपाणां भास्वतां दृष्टिर्विनश्यत्यतिदर्शनात् । दर्शनाच्चातिसूक्ष्माणां सर्वशश्चाप्यदर्शनात ॥ चरक ॥ दोनों में अन्तर यह है कि व्याधिदुःखित आँखों में अनेक लक्षण होते हैं और उनमें से एक लक्षण प्रकाशासहता या प्रकाशसंत्रास (Photophobia) हैं। इसके विपरीत अयोगदुःखित आँखों में प्रायः यही एक लक्षण हुआ करता है। इसके लिए चार-छः मास अँधेरी कोठरी में रक्खे गये बंदीवान् का उदाहरण उत्तम है। बंधनिर्मुक्त होने पर वह यकायक प्रकाश में आ नहीं सकता, उसके आँखों के सामने चकाचौंध होने लगती है, उसे धीरे-धीरे मन्द प्रकाश से अभ्यास करना पड़ता है, अन्यथा आँखें खराब होने का डर रहता है, जैसे दीर्घकाल अनशन किये हुए मनुष्य को धीरे धीरे अल्पमात्रा में पेयों से तथा रसों से भोजन प्रारम्भ करना पड़ता है।

इस दृष्टि से नवजात बालक का विचार करने योग्य हैं। वह भी दीर्घकालीन अँधेरी कोठरी का बंदी होता है जिससे उसकी आँखें प्रकाश से दुःखी (अनभ्यस्त) होती हैं और वे जन्म होते ही तेज प्रकाश सहन करने की स्थिति में नहीं होतीं। इसलिए चरक में कुमारागार 'अतमस्क' अर्थात् बहुत धीमे प्रकाश से युक्त बनाने के लिए कहा है और काश्यपसंहिता में बालक को प्रथममास में प्रतिदिन अल्पकाल सूर्योदय के समय सूर्यदर्शन और रात में चन्द्रमा हो तो अल्पकाल चन्द्रदर्शन कराने के लिए कहा है जिससे बालक की आँखें धीरे-धीरे प्रकाशक्षम हो जाय—अथ खलु शिशोर्जातस्य प्रथम एव मासि सूर्योदयदर्शनोपस्थानं, प्रदोषे चन्द्रमसः ॥ नवजात के आधुनिक कुमारागार में दिन में सूर्यप्रकाश और रात में विद्युत्प्रकाश बहुत अधिक रहता है जो प्राचीन शास्त्र और आधुनिक विज्ञान दोनों की दृष्टि से हितावह नहीं मालूम होता।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) चक्षुरक्षायां सर्वकालं मनुष्यैर्यत्नः
कर्तव्योजीविते यावदिच्छा ।
व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिंदिवानां
पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥

(अ० संग्रह)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये शिरोनेत्रविज्ञानीयो नाम
सप्तविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



जब तक जीवित रहने की इच्छा है तब तक मनुष्यों को सदा-सर्वदा नेत्ररक्षण में यत्न करना चाहिए; क्योंकि धन होते हुए भी रात्र और दिन समान होने वाले अन्धों के लिए जीवित व्यर्थ हो जाता है ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां शिरोनेत्रविज्ञानीयो नाम
सप्तविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अष्टाविंशोऽध्यायः

अथातो वयोवस्थाविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ॥

(१) कालप्रमाणविशेषापेक्षिणी हि शरीरावस्था वयोऽभिधीयते ।
(चरक)

वय की व्याख्या—कालगति के अनुसार बदलने वाली शरीरावस्था को वय कहते हैं ।

(२) गर्भबालकुमाराख्यमित्येतत् त्रिविधं वयः ।
यौवनं मध्यमं वृद्धमेतच्च त्रिविधं पुनः ॥ (काश्यप)

कालानुसार वयोभेद—गर्भावस्था, बाल्यावस्था, कौमारावस्था ये तीन भेद तथा फिर यौवनावस्था मध्यमावस्था, तथा वृद्धावस्था ये तीन भेद (इस प्रकार वय के छः भेद होते) हैं ।

(३) वर्षावरः क्षीरपः स्याद यावत् पिबति वा पयः ।
वयस्तद्बालमस्माच्च यावत् षोडशवार्षिकः ।
अन्नादः सर्व एव स्यात् कौमारे वयसि स्थितः ॥ (काश्यप)

बाल्य और कौमार—एक वर्ष की अवस्था तक अथवा जब तक दूध पीता है तब तक बाल क्षीरप होता है, यही बाल्यावस्था का वय है; इसके पश्चात् १६ वर्ष तक अन्न सेवन करने वाला बालक कौमारावस्था में होता है ।

(४) अतः परं धातुसत्वबलवीर्यपराक्रमैः ।
वर्धमानैश्चतुस्त्रिंशद् युवा वर्षाण्युदर्कतः ॥ (काश्यप)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यौवन—इसके पश्चात शरीर धातु, सत्व (मन, बुद्धि) बल, वीर्य, पराक्रम इत्यादि के बढ़ने के परिणाम स्वरूप ३४ वर्ष की अवस्था तक युवा कहलाता है।

(५) मध्यं पुनः समत्वागतबलवीर्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारण-
स्मरणवचनविज्ञानसर्वधातुगुणं बलस्थितमवस्थितसत्वमवि-
शीर्यमाणधातुगुणं पित्तधातुप्रायमाषष्ठिवर्षमुपदिष्टम्। (चरक)

मध्यवय—इसके पश्चात् साठ वर्ष तक मध्यम वय होता है। उसमें मनुष्य के बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, विषयग्रहणशक्ति, धारणशक्ति, स्मरणशक्ति, भावाभिव्यक्ति, विज्ञान समत्व (पूर्णता) को प्राप्त हुए रहते हैं, बलसत्वादि स्थिरपद होते हैं, धातु क्षीण नहीं होते हैं; और पित्तदोष का प्राधान्य रहता है।

(६) अतः परं हीयमानधात्विन्द्रियबलवीर्यपौरुषपराक्रम
ग्रहणधारणस्मरणवचनविज्ञानं, भ्रश्यमानधातुगुणं वायुधा-
तुप्रायं क्रमेणजीर्णमुच्यते आवर्षशतम्। (चरक)

वृद्धत्व—उसके पश्चात् (रसरक्तादि) धातु, (कर्म और ज्ञान की) इन्द्रियाँ, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, धारण, स्मरण, भाषण (की शक्ति), विज्ञान क्रमशः उत्तरोत्तर ह्रास होनेवाले, (रसरक्तादि) धातुओं के गुण क्षीण होनेवाले, वातदोष का प्रायिक प्राधान्य होने वाले, वय को सौ वर्ष तक वृद्ध कहते हैं।

वक्तव्य—वायु धातुप्रायम्–वातदोष के वैषम्य (Abnormality of nervous system) के विकारों का प्राधान्य होने वाले।

वय की विविध अवस्थाओं को जो बालादि संज्ञाएँ दी गयी हैं वे जन्म के पश्चात् मनुष्य ने इस संसार में जो जीवनकाल व्यतीत किया है उस कालावधि की द्योतक होती हैं। अनेक बार ये संज्ञाएँ वयो-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

-वस्थाओं को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त न होकर प्रत्येक वयोवस्था में बुद्धि का जो स्वाभाविक विकास होता है उसके लिए प्रयुक्त की जाती है। जैसे, बाल अज्ञानी, अप्रगल्भ मूर्ख रहता है, इसलिए 'बाल' मूर्ख के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वृद्ध बहुश्रुत अनुभवी तथा ज्ञानी होता है, इसलिए वृद्धसंज्ञा ज्ञानी के अर्थ में प्रयुक्त होती है। अर्थात् इस दृष्टि से इन संज्ञाओं का प्रयोग तब किया जाता है जब वयोवस्था और बुद्धिविकास दोनों में विरोध रहता है। जैसे, बाल्यावस्था में मनुष्य अज्ञ न रहकर जब ज्ञानी रहता है तब उसे वृद्ध कहते हैं और वृद्धावस्था में जब मूर्ख रहता है तब उसे बाल कहते हैं। नीचे के वचनों में यही सोदाहरण बतलाया गया है—

(७) अज्ञो भवति वै बालः, पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः, पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ (मनु)

गुणानुसार वय—बाल अज्ञानी होता है और पिता मन्त्रद रहता है। इसलिए बाल को अज्ञ और पिता को मन्त्रद कहते हैं।

(८) गुरूलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम् ।
दोषं यो वा न जानाति स बाल इति कथ्यते ॥ (रामायण)

जो (उम्र बढ़ने पर भी) कोई काम प्रारम्भ करने से पहले उत्कृष्ट-निकृष्टता, उससे होने वाले लाभालाभ तथा उसके अन्य दोष जान नहीं सकता वही बाल कहलाता है।

(९) अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः ।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ (नलचंपू)

इस संसार में कुछ कवि लोग बालकों की तरह (मूढ) होते हैं; जिस प्रकार बालक पदन्यास (एक के पश्चात् एक पैर रखने) में, अप्रगल्भ हुआ करते हैं उसी प्रकार ये कवि लोग पदन्यास (एक के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पश्चात् एक शब्दों की रचना करने) में अनिपुण हुआ करते हैं; जिस प्रकार बालक जननी-राग (माता के अनुराग) का हेतु हुआ करते हैं उसी प्रकार ये कवि लोग जन-नीराग (पाठकजनों के नीराग अर्थात् अनाकर्षण) के हेतु हुआ करते है (इनकी कविता पाठकजनों को पसंद नहीं आती जिसके कारण उसको लोग पढ़ते नहीं); जिस प्रकार बालक बहु-लाला-प (बहुत लार पीनेवाले) होते (हैं, लार एक पाचक रस है जो भोजन के समय मुख में स्रवित होकर सेवन किया जाता है, परन्तु बच्चों में उसका स्रवण भोजन के अतिरिक्त समय में अधिक मात्रा में तथा निरर्थक होता रहता) है उसी प्रकार ये कविलोग बहु आलाप (निरर्थक बहुत आलाप याने शब्द प्रयोग) करने वाले होते हैं।

(१०) शैशवं वार्धकं ज्ञेयं तिर्यक्त्वं मृतिरेव च।
तारूण्यमेव जीवस्य जीवितं तद्विवेकि चेत् ॥ (योगवासिष्ठ)

बाल्य और वार्धक्य (पशुपक्षियों का) तिर्यग्योनि ही समझना चाहिए। यह (वास्तव में) निरर्थक अवस्था है। तारूण्य ही जीव का (वास्तविक) जीवित है यदि वह विवेकी हो।

वक्तव्य—शैशवं वार्धकम्—बाल्य में स्वाभाविक बुद्धिहीनत्व या अज्ञान रहता है और वार्धक्य में जरा बुद्धिहीनत्व या अज्ञान उत्पन्न करती है जिससे वृद्ध बालसम हो जाता है। (Old age is second childhood) यह अंग्रेजी कहावत यही स्थिति बताती है। वार्धक्य में दो अवस्थाएँ होती हैं, प्रथम परिपक्व बुद्धि की जिसका स्वरूप नीचे बतलाया गया है और द्वितीय बुद्धिहीनता की जिसका उल्लेख इस श्लोक में किया गया है और जिसका स्वरूप नीचे 'अनायास कदर्थिन्या' इस श्लोक में तथा उसके आगे तीन-चार श्लोकों में प्रदर्शित किया है। प्रथम अवस्था से भिन्न करने के लिए इस द्वितीय अवस्था को 'अति-वृद्धावस्था' कहते हैं। तिर्यक्त्वं—पशुयोनि की अवस्था या प्रकृति—स तिर्यङ् यस्तिरोंचति ॥ अमरकोश ॥ ज्ञानहीनता पशुत्व का प्रधान चिह्न

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

माना गया है, इसलिए ज्ञानहीन मनुष्य पशुतुल्य समझे जाते हैं—पृष्ठ १८२ पर 'आहारनिद्राभयमैथुनं च' श्लोक देखिए। मृति—निरर्थकता, व्यर्थ जीवन की स्थिति। 'मृतो दरिद्रो पुरुषो मृतं मैथुनमप्रजम्' (महाभारत) इस श्लोकगत मृत शब्द से यहाँ का अर्थ स्पष्ट होगा।

(११) न तेन वृद्धो भवति येनास्यपलितं शिरः।
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवास्थविरं विदुः ॥ (मनु)

सिर के बाल पकने से कोई वृद्ध नहीं होता। युवा भी यदि अध्ययन करने वाला (ज्ञानी) हो तो देवता उसे वृद्ध कहते हैं ॥

(१२) न हि ज्येष्ठस्य ज्येष्ठत्वं गुणैर्ज्येष्ठत्वमुच्यते।
केतकीवरपत्रेषु लघुपत्रस्य गौरवम् ॥

केवल वयोवृद्ध होने से ज्येष्ठत्व नहीं, गुणों से ज्येष्ठत्व (वृद्धत्व) कहलाता है। केतकी के सुगंधी पत्तों में भी (अधिक गन्ध होने से) छोटे पत्तों का ही अधिक गौरव होता है ॥

(१३) अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना ॥ (रघुवंश)

विषयोपभोगों से अनाकृष्ट (वैराग्ययुक्त), वेदविद्यापारंगत, धर्मरत उस (दिलीप राजा) को वयोवृद्धत्व के विना भी वृद्धत्व प्राप्त हुआ था ॥

वक्तव्य—पारदृश्वनः-वेदशास्त्रपारं दृष्टवान् स पारदृश्वा, तस्य पारदृश्वनः। जरसाविना-वयोवृद्धत्व के विना। जीर्यत्यङ्गमनया। भौतिक शरीर की दृष्टि से वयोवृद्धत्व, बुढापा यही इसका एकमात्र अर्थ है। वृद्धत्व ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, अधिकत्व। यह इसका मूलार्थ है। इसके दो अर्थ होते हैं (१) शारीरिक दृष्ट्या ज्येष्ठत्व या वयोवृद्धत्व। इसी अर्थ में प्रायः इसका प्रयोग होता है। (२) बौद्धिक दृष्ट्या ज्येष्ठत्व। इस अर्थ में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जब इसका प्रयोग होता है तब प्रायः जिस विषय में वृद्धत्व प्रदर्शित करना पड़ता है उस विषय का शब्द पीछे जोडा जाता है—विद्याशील-वयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्चभारत। धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥ महाभारत ॥ ननुसमानेऽपिज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वाद् गणदासः पुरस्कारमर्हति। मालविकाग्निमित्र ॥ न धर्मवृद्धेषुवयः समीक्ष्यते ॥ कुमारसंभव ॥ वयोवृद्धास्तपोवृद्धाये च वृद्धा बहुश्रुताः। ते सर्वे धनवृद्धानां द्वारि तिष्ठन्ति किंकराः ॥ शार्ङ्गधरपद्धति ॥ परन्तु स्वतन्त्रतया भी वृद्ध शब्द का प्रयोग होता है उस समय उसके निम्न अर्थ होते हैं–(१) वयोवृद्धत्व, यह सामान्य अर्थ है–न तेन वृद्धो भवति। (२) ज्ञानधर्म-तपोवृद्धत्व, जैसे इस श्लोक में है ॥ (३) बड़े, महाजन, असामान्य पुरुष–वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः। उत्तररामचरित। (४) बुद्धि-भ्रष्ट, सारासारविचार में दोष उत्पन्न हुआ ऐसी अवस्था। इसको 'अतिवृद्ध' कहते हैं। नीचे 'श्रोतव्यंखलु वृद्धानां' श्लोक देखें। यह अवस्था साठ साल की आयु होने के पश्चात् प्रायः होने से इसको 'सठियाना' और ऐसे वृद्ध कों 'सठिया गया' कहते हैं।

(१४) प्रभूतवयसः पुंसो धियः पाकः प्रवर्तते।
जीर्णस्य चन्दनतरोरामोद उपजायते ॥ (दृष्टान्तशतक)

वृद्धत्व में बुद्धि प्रागल्भ्य—जैसे पुराने चन्दनवृक्ष में सुगन्ध उत्पन्न होती है, वैसे वय बढ़ने पर मनुष्य की बुद्धि में परिपक्वता आ जाती है।

(१५) आचार्यात्पादमाधत्ते, पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं स ब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण तु ॥

शिष्य अपने ज्ञान का चतुर्थांश गुरू से, चतुर्थांश अपनी ही बुद्धि से, चतुर्थांश अपने सहपाठियों से और चतुर्थांश कालक्रम से (जैसे-जैसे वह वयोवृद्ध होता जाता है वैसे-वैसे) प्राप्त करता है।

वक्तव्य—प्रत्येक मनुष्य अपनी वृद्धावस्था में जो बुद्धि प्रागल्भ्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तथा अनुभव प्राप्त करता है उसका बडा भारी अंश कालक्रम से अर्थात् वयोवृद्धि के साथ-साथ प्राप्त करता जाता है, अन्य साधनों से वह अंश प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का बुद्धिप्रागल्भ्य, ज्ञान, अनुभव वयोवृद्ध होनेपर ही पराकाष्ठा को प्राप्त हो सकता है, उससे पहले नहीं। मार्गदर्शन के लिए इसलिए वृद्धों के पास जाने के लिए तथा उनकी बातें सुनने के लिए कहा है और ऐसे ही वृद्धों की सेवा से बुद्धिमान् बनने की आशा है। 'बुद्धिमान् वृद्धसेवया' (महाभारत) यह युधिष्ठिर का वचन ऐसे ही वृद्धों के उपलक्ष्य में है और इसी कारण से वृद्धत्व वैद्य में गुण माना गया है। 'अलंकरोति हि जरा' श्लोक देखें।

(१६) श्रोतव्यं खलु वृद्धानामिति शास्त्रनिदर्शनम्।
न त्वेव ह्यतिवृद्धानां, पुनर्बाला हि ते मताः॥ (महाभारत)

वयोवृद्धों की बातें माननी चाहिएँ यह शास्त्र का आदेश है, परन्तु अतिवृद्धों की नहीं, क्योंकि वे फिर बालों के समान (बालिश) हो जाते हैं।

वक्तव्य—अतिवृद्ध-इसके लिए कोई कालमर्यादा नहीं है। परन्तु वय बहुत अधिक होने पर प्रायः बुद्धि प्रगल्भता और सारासारविचार-शक्ति नष्ट होने लगती है। गोवर्धनाचार्यजी ने लिखा है कि व्यासजी की भी अतिवृद्ध होने पर यही स्थिति हुई—अतिदीर्घजीविदोषाद् व्यासेन यशोपहारितं हन्त॥ कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः॥ आर्यासप्तशति॥

(१७) अध्वा जरा देहवतां, पर्वतानां जलं जरा।
असंभोगो जरा स्त्रीणां, वाक्शल्यं मनसो जरा॥ (महाभारत)

जराहेतु—पैदल चलना मनुष्यों के लिए, जल (प्रवाह) पर्वतों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के लिए, असंभोग स्त्रियों के लिए और वाक्शल्य मन के लिए जरा (उत्पादक) होते हैं ॥

वक्तव्य—अध्वा–अत्यध्वा, अतिशयेन मार्गगमनम्। मर्यादा के भीतर पैदल प्रवास करने से कोई कष्ट नहीं होता प्रत्युत शरीर के लिए वह हितकर होता है, शरीर की स्थूलता कम करता है और शरीर वातातपसह तथा दृढ बनाता है–अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनम् ॥ यत्तु चंक्रमणं नाति देहपीडाकरं भवेत्। तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥ सुश्रुत ॥ परन्तु जब पैदल प्रवास बहुत अधिकमात्रा में और अधिक कालतक निरंतर होता रहता है तब शरीर में परिक्लान्ति और जरा के लक्षण उत्पन्न होते है–द्राघीयसा वयोतीतः परिक्लान्तः किलाध्वना ॥ किरातार्जुन ॥ अतिदीर्घेणाध्वगमनेन वृद्ध इव दूराध्वश्रान्त इव स्थित इत्यर्थः। मल्लिनाथ ॥ अत्यध्वा विपरीतोऽस्माज्जरादौर्बल्यकृच्च सः ॥ सुश्रुत ॥ इसलिए प्रवास में एक समय अधिक मार्गगमन न करने के लिए कहा है–शनैरध्वसु वर्तेत योजनान्न परं व्रजेत ॥ पर्वतानां जलं जरा–पृष्ठ २४४ पर 'जलमभ्यासयोगेन' श्लोक देखें। वाक्शल्यं मनसो जरा–धनुष्य से निकला हुआ बाण शरीर में घुसता है, वह सुनाई नहीं देता परन्तु दिखाई देता है, इसलिए शस्त्रकर्म से निकाला जाता है और निकालने पर उसके व्रण का रोहण (Healing) हो जाने से उसके कष्ट कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत वाणी से निकला हुआ बाण अमूर्त मन में घुसता है, वह केवल सुनाई देता, दिखाई नहीं देता है। इसलिए उसको किसी प्रकार से निकाल नहीं सकते जिसके कारण वह जीवन भर मन को कष्ट देता रहता है और उसको जराजर्जर करता है–कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः। वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥ रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्। वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ महाभारत ॥ आयुर्वेद में हर्षणादि द्वारा मनःशल्य निकालने के लिए कहा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है-हृद्यवस्थितमनेककारणोत्पन्नं शोकशल्यं हर्षेण ॥ सुश्रुत ॥ इसके आधार पर सुनृता वाणी के द्वारा वाक्शल्य निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। चाणक्यनीतिशास्त्र में 'वाक्शल्यं मनसो जरा' के स्थान में 'वक्त्रस्याक्षालनंजरा' ऐसा पाठ है। 'अक्षालन' से यहाँ पर मुख की अन्तर्बाह्य स्वच्छता न करना, श्मश्रु न करना, चन्दनादि का लेप न करना, मूर्धाभ्यंग न करना इत्यादि प्रसाधन न करने के विविध उपचारों का समावेश होता है।

(१८) चिन्ता जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा।
असंभोगो जरा स्त्रीणां, वस्त्राणामातपो जरा ॥

मनुष्यों के लिए चिन्ता जरा है, घोड़ों के लिए एक स्थान में बंधा रहना जरा है, असंभोग स्त्रियों के लिए जरा है और सूरज की धूप वस्त्रों के लिए जरा है।

वक्तव्य—चिन्ता-यह मानसिक व्याधि है और इसका मुख्य लक्षण ज्वर है। पृष्ठ २३७ पर 'चिन्ता ज्वरो मनुष्याणां' श्लोक देखें। यह ज्वर सदैवशरीर में रहने के कारण शरीर में जरा अकाल में उत्पन्न होती है। अनध्वा वाजिनाम्-घोड़ा क्यों अड़ा ? पान क्यों सड़ा ? रोटी क्यों जली फेरा नहीं था। वस्त्राणामातपो जरा—वस्त्र निरन्तर धूप में सुखा १ से जल्दी जीर्ण होने लगते हैं और यदि रंगीन हो तो रंग में फीके पड़ते हैं।

(१९) ललितान्तानि गीतानि, प्रसवान्तं च यौवनम्।
विशाखान्तानि मेघानि, तक्रान्तं खलु भोजनम् ॥

गायन (के समारोह) का अन्त ललित से होता है, (स्त्रियों के) यौवन का अन्त प्रसूति होता है, (आकाश में) मेघों (के दर्शन) का अन्त (सूर्य) विशिखानक्षत्र (में प्रवेश करने) से होता है और भोजन का अन्त तक्रसेवन से होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—ललित–जैसे वर्षभर नैत्यिक कर्म करने के पश्चात् अन्त में दिल बहलाने के लिए होली का रसिक, शृंगारी खेल खेला जाता है, वैसे गायन-वादन, प्रवचन-कीर्तन इत्यादि का गंभीर अविनोदशील उत्सव होने के पश्चात् अन्त में रसिक शृंगारी कार्यक्रम होता है उसको ललित कहते हैं–अनाचार्योपदिष्टं स्याल्ललितं रतिचेष्टितम् । नाटकरत्नकोश ॥ प्रसवान्तं च यौवनम्–(१) प्रसव के पश्चात् स्त्रियों की योनि का तथा उनके कुचों का काठिन्य चला जाता है जिससे विलासी पुरुष को स्त्री प्रसूत होने से पहिले उसके साथ समागम करने में जैसा स्पर्शसुख का आनन्द मिलता है वैसा प्रसवोत्तर समागम में नहीं मिलता। इसलिए पुरुष की दृष्टि से स्त्री का यौवन प्रथम प्रसूति तक ही होता है। (२) गर्भधारण और प्रसव ये स्त्रियों के यौवनकालीन स्वाभाविक शरीरधर्म होते हैं। इसलिए इन दोनों का उनके यौवन पर वास्तविकतया परिणाम न होना चाहिए। परन्तु अनेक स्त्रियों में प्रसूति के पश्चात् उनका रूपलावण्य और शरीरसौष्ठव अंशतः नष्ट होता है जरूर और कुछ स्त्रियाँ एक ही प्रसव से बूढ़ी-सी हो जाती हैं। तात्पर्य कुछ स्त्रियों में प्रसव यौवनान्तक जरूर होता है। इसलिए कुपुत्र को मातृयौवन हारी कहते हैं–किं तेन जातु जातेन मातृयौवनहारिणा। आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ॥ पंचतन्त्र ॥ वैसे ही जो सुपुत्र अपना ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन व्यर्थ में गया ऐसा समझता है वही अपने को ऐसा ही कहता है—नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरूयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ वैराग्यशतक ॥ (३) रूपलावण्य और शरीरसौष्ठव स्त्री के यौवन के बाह्य और रजःस्राव और अपत्योत्पादन आभ्यन्तरीय लक्षण होते हैं। बाह्य लक्षण शरीर स्वास्थ्य पर वय पर नहीं और आभ्यन्तरीय लक्षण वय पर अधिक अधिष्ठित होते है। पृष्ठ १६६ पर 'मासि मासि रजः स्त्रीणां' श्लोक देखें। इसलिए स्त्री में गर्भधारणक्षमता और उसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

साथ प्रसव का जब अन्त होता है तब उसके यौवन का वास्तविक अन्त होता है, शरीरसौष्ठव और रूप लावण्य का अन्त होने से नहीं होता यह भी इस वचन का शरीरक्रियाविज्ञान (Physiology) की दृष्टि से अर्थ होता है। तक्रान्तं खलु भोजनम्—पेट भर भोज्य-द्रव्य सेवन करने पर यथार्थतया भोजन का अन्त होता है, परन्तु अन्त में कौन सा द्रव्य सेवन करना चाहिए इस दृष्टि से वह वचन लिखा गया है। 'भोजनान्ते च किं पेयं' तथा भोजनान्ते पिबेत्तक्रं' इन श्लोकों को देखिए।

(२०) अनायासकदर्थिन्या गृहीते जरासाजने।
पलायगच्छति प्रज्ञा सपत्न्ये वाहताऽङ्गना॥ (योगवासिष्ठ)

जरालक्षण—आसानी से शरीर को बेकार बनानेवाली जरा द्वारा मनुष्य पकड़ा जाने पर उसकी बुद्धि सौतिन से अपमानित हुई स्त्री के समान उसको छोड़कर भागती है

(२१) वदनं दशनविहीनं वाचो न परिस्फुटा गताशक्तिः।
अव्यक्तेन्द्रियशक्तिः, पुनरपि बाल्यं कृतं जरया॥
(पंचतन्त्र)

मुख दंतविहीन, वाणी अस्पष्ट, शरीर अशक्त, ज्ञानेन्द्रिय (अर्थग्रहण में) असमर्थ होने से जरा ने फिर से बाल्यावस्था उत्पन्न की है।

(२२) वदनं दशनैर्हीनं, लाला स्रवति नित्यशः।
न मतिस्फुरति क्वापि बालेवृद्धे विशेषतः॥

बचपन में तथा वृद्धावस्था में विशेषरूप से मुखं दन्तविहीन होता है, सदासर्वदा मुख से लार टपकती है और बुद्धि कहीं भी काम नहीं करती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२३) श्रुतिः शिथिलतां गता, स्मृतिरपि प्रनष्टाऽधुना ।
गतिर्विपथमागता विगलिता द्विजानां ततिः ॥
गवामपि च संहतिः समुचितक्रियातश्च्युता ।
कृतानुजरया तया कलियुगस्यसाधर्म्यता ॥

(*जरार्थ*)—श्रवणशक्ति मन्द हो गयी, स्मृति भी नष्ट हुई, गति में विमार्गता आ गयी, दन्तपंक्ति गिर गयी, ज्ञानेन्द्रिय अपने समुचित कार्य से च्युत हो गये (कलियुगार्थ)—वेदविहित मार्गों में शिथिलता आ गयी, स्मृत्युक्त मार्ग भी नष्ट हो गये, सम्मार्ग समाप्त हो गये, द्विजों की परम्परा बन्द हो गयी, तथा गायों की सेवासे लोक च्युत हो गये, तात्पर्य जरा ने कलियुग की समता दिखायी ।

(२४) मरणस्य मुने राज्ञो जरा धवलचामरा ।
आगच्छतोऽग्रे निर्याति स्वाधिव्याधिपताकिनी ॥

(योगवासिष्ठ)

हे मुने ! सफेद चामर वाली और आधिव्याधिरूप पताका या सेना होनेवाली जरा यमराज जब आते हैं तब उनके आगे-आगे निकल (कर दिखाई दे)ती है ।

वक्तव्य—धवलचामरा—बालों की सफेदी, पलित या पालित्य जिसकी चँवर है—तं कर्ममूलमागत्यरामेश्रीन्र्यस्यतामिति । कैकेयी शङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥ रघुवंश ॥

(२५) जरासुधालेपसिते शरीरान्तःपुरान्तरे ।
अशक्तिरार्तिरापच्च तिष्ठन्ति सुखमङ्गना ॥ (योगवासिष्ठ)

शरीररूपी अन्तःपुर में जरारूप चूने की सफेदी होने पर दुर्बलता (रोगादि) आपत्तिरूप स्त्रियाँ सुख से रहने लगती हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२६) दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः ॥

(हितोपदेश)

गतायु मनुष्य न बुत गये हुए दीप की गन्ध पहचानते हैं, न मित्र की बात मानते हैं, न आकाशस्थ अरुंधती नक्षत्र को देख सकते हैं।

वक्तव्य—अरुंधती—वसिष्ठ ऋषि की पत्नी। उत्तरध्रुव के पास मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ इन ऋषियों के नाम के सात तारों का एक समूह है जिसको सप्तर्षि कहते हैं और इस समूह में वसिष्ठ तारे के पास एक बहुत सूक्ष्म छोटी मन्द तारका है। वह वसिष्ठ पत्नी अरुंधती है। इसको देखने के लिए दृष्टि सूक्ष्म और तेज होने की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था में दृष्टि मन्द होने पर यह दिखाई नहीं देती। तात्पर्य इसका दिखाई न देना दृष्टि मन्दता का, फिर वह वृद्धावस्था की हो या रुग्णावस्था की हो, लक्षण है। गतायु (१) जिसकी आयु का अधिकांश भाग व्यतीत हो चुका है और अल्पांश शेष रहा है, अर्थात् स्वस्थ होते हुए भी कालक्रम से वृद्ध, अतिवृद्ध जराजर्जर। (२) रोग के कारण जिसके अधिक कालतक बचने की आशा नहीं है, अर्थात् अतिरुग्ण मुमूर्षु। (३) गतप्राण या मृत।

यह वचन गतायु के प्रथम दो अर्थों से निर्दिष्ट दो अवस्थाओं के लिए लागू होता है। इसमें अतिवृद्धावस्था के ज्ञानेन्द्रिय दौर्बल्य के और अतिरुग्णावस्था के ज्ञानेन्द्रिय के अरिष्ट के लक्षण वर्णित हैं। दीपनिर्वाणगंध–शान्ते दीपे च नीरुजः। यो वा गन्धं न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत ॥सुश्रुत॥ सर्वशो वा नयो यश्च दीपगंधं न जिघ्रति ॥ अष्टांगहृदय ॥ सुहृद्वाक्य-परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सु हृद्भिरीरितम् ॥ रामायण ॥ अरुंधती—सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुंधतीम्। ध्रुवमाकाशगंगां वा न स पश्यति वां समाम् ॥ अष्टांग-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हृदय ॥ न पश्यति सनक्षत्रायश्च देवीमरुंधतीम् । ध्रुवमाकांशगंगां वा तं वदन्ति गतायुषम् ॥ सुश्रुत ॥

(२७) यथेक्षुरत्यन्तरसप्रपीडितो
भुवि प्रविद्धो दहनाय शुष्यते ।
तथा जरायन्त्रनिपीणिता तनु-
र्निपीतसारा मरणाय तिष्ठति ॥ (सौन्दरनन्द)

जैसे कोल्हू में डालकर पेरा हुआ ईख पूर्णतया निःसार होकर दग्ध होने की प्रतीक्षा में भूमि पर पड़े-पड़े सूखता है, वैसे जरारूप कोल्हू से पीड़ित होने के कारण निःसार हुआ शरीर मृत्यु की प्रतीक्षा में इह-लोक में पड़ा रहता है ।

(२८) अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह ।
आयूंषि क्षपयंत्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥ (रामायण)

जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें जल का क्षय किया करती हैं वैसे इस संसार में आनेवाले दिन-रात्र सब प्राणियों की आयु का क्षय किया करते हैं ।

(२९) सर्वस्याः सरितोवारि प्रयात्यायाति चाकरात् ।
देहनद्याःपयस्त्वायुर्यात्येवायाति नो पुनः ॥ (योगवासिष्ठ)

सब नदियों का पानी बहकर चला जाता है तथा वर्षाऋतु में मेघों द्वारा फिर से आता है। परन्तु देहरूप नदी का आयुरूप जल बहकर चला ही जाता है, वह फिर कहीं से भी वापिस आता नहीं ।

(३०) ऋतुर्व्यतीतः परिवर्तते पुनः क्षयंप्रयातः पुनरेति चन्द्रमाः ।
गतं गतं नैव तु सन्निवर्ततेजलं नदीनां च नृणां च यौवनम् ॥
(सौन्दरनन्द)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जो ऋतु (इस वर्ष आकर) चला जाता है वह (अगले वर्ष) फिर से चला आता है, जो चन्द्र कृष्णपक्ष में क्षीण (होते-होते अमावास्या को पूर्णतया अदृश्य) होता है वह शुक्लपक्ष में फिर से दिखाई देता है; परन्तु नदियों का जो जल एकबार बहकर (समुद्र में) चला गया तथा मनुष्यों का जो यौवन (आयु) (भूतकाल में) चला गया वह फिर से वापिस नहीं आता है।

(३१) नन्दत्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमितेऽहनि।
आत्मनो नावबुद्ध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम् ॥ (रामायण)

सूर्य का उदय होने पर मनुष्य आनंदित होते हैं, वैसे ही सूर्य का अस्त होने पर भी मनुष्य आनन्दित होते हैं, परन्तु इस उदयास्त के साथ अपने जीवन का क्रमशः क्षय हुआ करता है इसको मनुष्य समझते नहीं है।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों का तात्पर्य यह है कि सूर्योदय के साथ आया हुआ दिन कल के दिन की पुनरावृत्ति न होकर पूर्णतया नया दिन होता है। 'आदित्यस्य गतागतैः' श्लोक देखें।

(३२) वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना-
द्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥
(वैराग्यश.)

जिनसे हम उत्पन्न हुए वे दिवंगत हुए बहुत समय हुआ; जिनके साथ हम संवर्धित हुए वे भी (उनके समान) स्मृति के विषय बन गये; अब हम प्रतिदिन पतनोन्मुख होने के कारण रेतीले नदीतट पर होनेवाले वृक्षों के समान (अस्थिर) स्थिति में पहुँचे हुए हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३३) क्षणं बालो भूत्वा, क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः, क्षणमपिच संपूर्ण विभवः।
जराजीर्णैरंगैर्नटइव वलिमंडिततनु-
र्नरः संसारांते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ (वैराग्यशतक)

(रंगमंच पर काम करनेवाले) नट के समान मनुष्य (संसार के रंगमंच पर) कुछ काल बाल बनकर, कुछ काल कामोपभोग लेनेवाला जवान बनकर, कुछ काल धनहीन और कुछ काल धनी बनकर जीवन में अन्त में जराजीर्ण अंगों से और वलि (झुर्रियाँ) मण्डित शरीर से यम की राजधानी के पर्दे के पीछे प्रवेश करता है।

(३४) बाल्यं वृद्धिश्छवि मेंधा त्वम् दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।
बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं देशतो ह्रसेत् ॥ (शार्ङ्गधर)

आयुर्मान—बाल्य दस वर्ष के वय में, शरीरवृद्धि बीस के वय में, शरीर का डील-डौल तीस के वय में, मेधा चालीस के वय में, त्वचा (की दृढ़ता) पंचास के वय में, दृष्टि साठ के वय में, शुक्र (की उत्पत्ति) सत्तर के वय में, पराक्रम अस्सी के वय में, बुद्धि नब्बे के वय में, (हस्तपादादि) कर्मेन्द्रिय सौ वर्ष के वय में, चैतन्य एक सौ दस वर्ष के वय में और जीवित एक सौ बीस वर्ष के वय में समाप्त होते हैं।

वक्तव्य—मेधा—ग्रन्थग्रहणशक्ति। बुद्धि—सारासारविचार शक्तिव्यवसायात्मिक बुद्धिः। महाभारत॥ इनके विशेष अर्थ भी होते हैं—मतिरागमिका ज्ञेया, बुद्धिस्तत्कालदर्शिनी। प्रज्ञा चातीतकालस्य, मेधाकाल त्रयात्मिका॥ हेमकोष॥ बुद्धि का अर्थ बुद्धीन्द्रिय भी कर सकते हैं। कर्मेन्द्रियम्—बुद्धीन्द्रियाणिचक्षुः श्रोत्रघाणरसनत्वगाख्यानि। वाक्पाणिपादपायूपस्थान् कर्मेन्द्रियाण्याहुः॥ सांख्यकारिका॥

इस श्लोक में शरीर के विविध अंगकर्मों का जो ह्रासक्रम बतलाया

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है वह औसत या आधुनिक परिभाषा में सांख्यिकीय (Statistical) है, वह किसी व्यक्ति के लिए लागू नहीं हो सकता। साधारणतया वेदों से मनुष्य का स्वाभाविक आयुर्मान सौ साल का बतलाया गया है और माना भी जाता है। परन्तु यहाँ पर वह एक सौ बीस साल का बतलाया है यह चिन्त्य है। और एक स्थान में अन्य प्राणियों के आयुर्मान के साथ मनुष्य का आयुर्मान एक सौ बीस साल का ही बताया है—

समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा हयानांद्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः। विरूपासत्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनः स्मृतं छागादीनां दशकसहितः षट् च परमम्॥ शार्ङ्गधरदीपिका॥

(३५) शतंजीवशरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान्॥

(अथर्ववेद)

वृद्धिंगत होते हुए तुम सौ शरद् ऋतु, सौ हेमन्त ऋतु और वसन्त ऋतु जीवित रहो।

(३६) पश्येम शरदः शतं, जीवेमशरदःशतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्चशरदः शतात्॥ (यजुर्वेद)

सौ वर्ष तक हम देखें, सौ वर्ष तक हम जीवित रहें, हम सुनें सौ वर्ष तक, हम भाषण करें सौ वर्ष तक, ओजस्वी रहें (इतना ही क्यों) सौ वर्ष से भी अधिक (हम इस प्रकार) रहें।

(३७) वर्षशतं खलु आयुषः प्रमाणमस्मिन् काले। सन्ति च पुनरधिकोनवर्षशतजीविनोऽपि मनुष्याः (चरक)

इस कलियुग में आयुर्मान सौ वर्ष का होता है। फिर भी उससे अधिक तथा कम जीनेवाले मनुष्य होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३८) य एव शतं वर्षाणि यो वा भूयांसि जीवति स ह वैतद-
मृतमाप्नोति ॥ (शतपथ ब्राह्मण)

जो शत वर्ष अथवा उससे अधिक जीवित रहता है वही (ऐहिक) निश्रेयस को प्राप्त करता है।

(३९) शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ (महाभारत)

सर्व वेदों में यद्यपि मनुष्यों की आयु सौ वर्ष (या इससे कुछ अधिक) बतलायी है, तथापि किसी न किसी कारण से उनको उतनी आयु प्राप्त नहीं हुआ करती है (यह वस्तुस्थिति है)।

(४०) पथ्याशिनां शीलवतां नराणां
सद्वृत्तभाजां विजितेन्द्रियाणाम् ।
एवं विधानामिदमायुरेव
सत्यं भवेद्वृद्धमुनि प्रणीतम् ॥ (सारावलि)

वृद्ध मुनियों द्वारा प्रदर्शित (उपर्युक्त) आयुर्मान केवल पथ्यभोजी, शीलवान् , सदाचारी, जितेन्द्रिय तथा इस प्रकार के अन्य मनुष्यों में ही सत्य होता है।

वक्तव्य—वृद्धमुनिप्रणीत—(१) ऋषिमुनियों के उपर्युक्त वचनों में निर्दिष्ट। (२) यह वचन ज्योतिषशास्त्र का होने ने हस्तसामुद्रिक या कुण्डली के आधार पर ज्योतिषशास्त्र से दिग्दर्शित ऐसा भी इसका अर्थ कर सकते हैं। तात्पर्य, वेदोक्त या ज्योतिषोक्त आयुमनि यदि प्राप्त हो सकता है, तो वैद्यकोपदिष्ट हिताहारविहारादि का पालन करने वालों को ही प्राप्त होता है, इतरों को नहीं। यदि कोई यह समझता हो कि कुण्डली में अस्सी वर्ष की आयु लिखी है, इसलिए हम कैसे

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भी क्यों न अहिताचरण करें, उससे पहले मृत्यु हो नहीं सकती तो उसका यह भ्रम है—कालविद्भिर्विनिर्णिता यस्यातिचिरंजीविता। स चेज्जीवति संच्छिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम् ॥ योगवासिष्ठ ॥

(४१) न हि वर्षशतस्यान्तं नरः संभृत्य जायते ।
उपायेन हि जीवन्ति नरा वर्ष शतायुपः ॥ (सुभाषितावलि)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये वयोवस्थाविज्ञानीयो नाम
अष्टविंशोऽध्यायः समाप्तः



शतवर्ष तक की आयु लेकर कोई भी मनुष्य जन्मग्रहण नहीं करता है। उपाय से ही मनुष्य शतवर्ष तक जीवित रहते हैं ॥

वक्तव्य—उपायेन—आहारविहारआचारविचारादि पथ्यकर उपायों का सेवन करके। 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' श्लोक का वक्तव्य देखिए।

इति भास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां वयोवस्थाविज्ञानीयो नाम
अष्टविंशोऽध्यायः समाप्तः



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातः सेव्यासेव्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति हस्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय विष्ण्वादीन् देवतान् स्मरेत् ।
शौचं कृत्वा मृदाऽऽचम्य भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥

(अग्निपुराण)

पूर्वाण्ह कर्म—बाम्ह मुहूर्त में उठकर (बिस्तरे पर बैठे बैठे) विष्णु आदि (अपने कुल तथा इष्ट) देवताओं का स्मरण करें, (पश्चात्) शौच होकर मिट्टी तथा जल से (गुह्यांग तथा हाथ का) प्रक्षालन करके दन्तकाष्ठ चर्वण करें ।

वक्तव्य—ब्राह्म मुहूर्त–ब्रह्मणोऽयं ब्राह्मः । ब्रह्मज्ञानं तदर्थमध्ययनाद्यपि ब्रह्म स्तस्ययोग्योमुहूर्त्तो ब्राह्मः, ब्रह्मयोग्यश्च ॥ शशिलेखा ॥ सूर्योदय पहले का समय । इसके संबंध में तीन मत हैं–(१) रात्रि का अन्तिम याम–रात्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ॥ रत्नावलि ॥ (२) रात्रि का अन्तिम आधायाम–रजनीप्रान्तयामार्धं ब्राह्मः समय उच्यते ॥ स्कन्दपुराण ॥ (३) रात्रि के अन्तिम याम का तीसरा मुहूर्त—रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः । स बाह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने ॥ उत्थाय—उठकर विस्तरे पर बैठे बैठे तीन बातों का चिन्तन करना चाहिए—(१) देवताचिन्तन (२) जीविका की दृष्टि से धर्मार्थ या आत्महितचिन्तन—धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । मनु । चिन्तयेदात्मनो हितम् ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति ॥ (३) आरोग्य की दृष्टि से जीर्णाजीर्ण या कायक्लेशचिन्तन—जीर्णाजीर्णं निरूपयन् ॥ अष्टांग संग्रह ॥ मृदा—प्राचीन काल से मलद्वार और वामहस्त धोने के लिए सर्वत्र प्राप्य मिट्टी का उपयोग किया जाता है । यह मिट्टी कंकड,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कण्टक, कांच इत्यादि से विरहित और शुद्ध होनी चाहिए–निःशल्या-दुष्टमृत्पिण्डीपरिमृष्टमलायनः ।। अष्टांग संग्रह ।। उत्तर प्रदेश में अभीतक लोहमार्गों के स्थानकों (Railway station) पर पानी की कल के पास 'साफमिट्टी' इस काम के लिए रक्खी रहती है। शौचं कृत्वा— (१) मलमूत्रोत्सर्जन। (२) मलद्वार तथा हाथ की सफाई। (३) मुख-नासानेत्रादि की सफाई। आचम्य—(१) गुह्यांगों की जल से सफाई—आचमनं योनिप्रक्षालनोदकम् ।। डल्हण ।। (२) जल से मुख नासा, नेत्रादि की सफाई। (मुख में दो-चार बार थोड़ा थोड़ा जल लेना—त्रिःप्राश्यापो द्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत्। अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ।। याज्ञवल्क्यस्मृति ।। शुद्ध जल से सफाई ऐसी होनी चाहिए कि शरीर के नवद्वारों का लेप तथा मल की दुर्गन्ध दोनों नष्ट हो जाँय। लोग मलोत्सर्जन के लिए नदी, तालाब आदि जलाशयों के किनारे जाते हैं और आबदस्त नदी-तालाब में जाकर लेते हैं। इससे उनका जल दूषित होता है। अतः वैद्यक और धर्मशास्त्र में इसका निषेध किया है और लोटे से पानी लेकर जलाशय से दूर आबदस्त लेनेके लिए कहा है—अभ्युद्धृतैर्जलैः। गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ।। याज्ञवल्क्यस्मृति ।। अभ्युद्धृताभिः शुचिभिर-द्भिर्मृद्भिश्च योजयेत्। गन्धलेपावहं शौचमनुत्पतितबिन्दुभिः ।। अष्टांग-संग्रह ।। उद्धृताभिरिति जलान्तः शौचनिषेधः ।। मिताक्षरा ।। अभ्यु-द्धृताभिरद्भिः नदीतटाकादितः कलशपाण्यादिना उद्धृताभिः। न तुकटि-मेव नद्यामवगाह्य शौचयेत्। शशिलेखा ।। दन्तधावन्—दन्तधवन, दन्तपवन, दतुवन, दाँत साफ करने के काष्ठ–अर्कन्यग्रोधखदिर करंज ककुभादिकम् ।। अष्टांगहृदय ।। यह दन्तधावन का सामान्य अर्थ है। इसके अतिरिक्त दाँत साफ करने के लिए विशेषतया प्रयुक्त होने के कारण दन्तधावन शब्द खदिर, बकुल और करंज का पर्याय भी है। भक्षयेत्—दन्तकाष्ठ दाँतों से कूँच-कूँच कर कूँची के समान मृदु बनाये जाते हैं और उसके पश्चात् उनसे दाँत रगड़े जाते हैं। इसलिए यहाँ भक्ष

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

का अर्थ अन्य भक्ष्यद्रव्यों के समान निगल जाना नही हैं किन्तु केवल चर्वण करना, कूँचना ऐसा है। दन्तधावन शौच से निवृत्त होने के पश्चात् करने का कर्म है। उठने पर करने का प्रथम है कर्म शौच हैं। इसके लिए शरीर अभ्यस्त होने की आवश्यकता हुआ करती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को उठने पर शौच को हो आने की आदत डालनी चाहिए। धर्मशास्त्र तथा वैद्यकशास्त्र की दिनचर्या में शौच सर्वप्रथम कर्म रक्खा है। यह कर्म शरीरदृष्ट्या जितना स्वास्थ्यप्रद होता है समाजदृष्ट्या उतना ही श्रेयस्कर होता है ऐसा नीतिविदों का अनुभव सुप्रसिद्ध है—दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम्। मुख-प्रक्षालनात्पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ॥

(२) मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्।
पूर्वाण्ह एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ (मनु)

शौच, शरीरप्रसाधन, स्नान, दन्तधावन, नेत्राञ्जन और देवताओं का पूजन ये कर्म पूर्वाह्ण में ही करने चाहिएँ।

वक्तव्य—मैत्र-मित्र गुद की देवता है—पायोर्मित्रोऽधिदैवतम्। सुश्रुत ॥ इसलिए मैत्र का अर्थ शौच या मलोत्सर्जन होता है—मित्र-देवताकत्वान्मैत्रः पायुस्तद्भवत्वान्मैत्रं पुरीषोत्सर्गम् ॥ मन्वर्थमुक्तावलि ॥ प्रसाधन-शरीर को सुशोभित करना (Toilet)। मैत्र को प्रथम क्यों निर्दिष्ट किया इसके लिए ऊपर का वक्तव्य देखें।

(३) अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं वराः स्त्रियः।
एतद्वो मानवाः पथ्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम् ॥
(भोजप्रबंध)

सेव्यआहारविहार—उष्णजलस्नान, दुग्धपान, सुन्दर स्त्रीसेवन और (घी, मलाई, मक्खन इत्यादि) स्निग्धभोज्यद्रव्ययुक्त तथा उष्ण (ताजा) भोजन हे मनुष्यों ! हितकर होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४) शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्रं स्नानमाचरेत् ।
लक्षं विहाय दातव्यं, कोटिं त्यक्त्वा हरिंभजेत् ॥

सौ काम छोड़कर भोजन करे, सहस्र काम छोड़कर स्नान करे, लाख काम छोड़कर दानधर्म करे और कोटी काम छोड़कर हरि-भजन करें।

वक्तव्य—भोक्तव्यम्—भोजन काल पर चाहे जितने काम आ जाँय सब छोड़कर भोजन करना चाहिए। पृष्ठ १३५ पर 'नास्ति क्षुधासमं दुःखं' श्लोक का वक्तव्य देखें। इस वचन में मनः शरीर स्वास्थ्य से संबंधित भोजनादि कम व्यावसायिक कर्मों से अधिक महत्व के होते हैं यह बतलाया है। 'द्विजोहि वेदाध्ययनव्रतादिकं' तथा उस के पश्चात् के कुछ श्लोक देखें।

(५) सद्यःपक्वघृतं, द्राक्षा, बालास्त्री, क्षीरभोजनम् ।
उष्णोदकं, तरुच्छायासद्यःप्राणकराणि षट् ॥
(चाणक्य रा० नीति)

ताजा बनाया हुआ घृत, द्राक्षा, बाला, क्षीरभोजन, उष्णोदक, वृक्षच्छाया ये छः तत्काल प्राणकर होते हैं।

(६) वृद्धार्कोयज्ञधूमश्च बालास्त्री निर्झरोदकम् ।
आयुष्यवर्धकं नित्यं रात्रौ क्षीरान्नभोजनम् ॥

अपराह्न की धूप, यज्ञ का धूँआ, बालास्त्री, स्रोत से निकलने वाला जल और रात में क्षीरभोजन आयुष्यवर्धक होते हैं।

(७) नहि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते ।
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः ॥ (महाभारत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जो सबके लिए हितकर (अतएव सेव्य) हो ऐसा कोई भी आचार (विचार आहार विहार) नहीं होता है। क्योंकि एक के लिए जो प्रभावी होता है वह दूसरे के लिए बाधक होता है।

वक्तव्य—ऊपर अनेक सेव्य आचारविचार आहारविहार बतलाये हैं, ये साधारणतया हितकर अतएव सेव्य हैं; परन्तु प्रत्येक के लिए ये हितकर होंगे यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक का मिष्टान्न दूसरे के लिए विषान्न (One man's meat is another's poison) हो सकता है। १५४ पृष्ठ पर 'न दुर्जनानामिह कोऽपि दोषः' श्लोक का वक्तव्य देखें। अतः प्रत्येक सेव्य आचारविचार आहारविहार का अनुभव देखें और यदि वह हितकर अनुभूत हो तो जारी रक्खें। 'पथ्यं-पथोऽनपेतं' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(८) हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥ (चरक)

परीक्षक (सारासारविचार द्वारा) ठीक परीक्षा करके हितकर मार्ग का सेवन करते हैं। परन्तु रजोमोहावृत लौकिक मनुष्य (हिताहित का विचार न करके तत्काल), प्रिय (मालूम होनेवाले आचारादि) का सेवन किया करते हैं।

वक्तव्य—रजोमोहावृतात्मनः—विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतो-पमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥ गीता॥

(९) विहितस्याननुष्ठानमिन्द्रियाणामसंयमः।
निषिद्धसेवनं नित्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः॥ (व्रतहेमाद्री॥

असेव्यानि—शास्त्रविहित (आहाराचारादि) का असेवन, इन्द्रियों का असंयम तथा शास्त्रनिषिद्ध (आहाराचारादि) का सेवन इनको प्रयत्न करके वर्ज्य करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१०) कुदेशं च कुवृत्तिं च कुभार्यां कुनदीं तथा ।
कुद्रव्यं च कुभोज्यं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥

(चाणक्यशतक)

कुदेश, कुवृत्ति, कुभार्या, कुनदी, कुद्रव्य और कुभोज्य इनको बुद्धिमान् वर्ज्य करें ।

वक्तव्य—कु—इसके अनेक अर्थ होते हैं, परन्तु सब का आशय निंद्य, गर्ह्य, अहितकर होता है—कुपापीयसि कुत्सायामिषदर्थे निवारणे । हैमकोश । कुदेश—'श्रोत्रियो नृपतिर्वैद्यः', 'नाधार्मिके वसेद्ग्रामे' श्लोकों को तथा 'उपसर्गेऽन्यचक्रे च' श्लोक के वक्तव्य को देखें । कुभार्या—'परमुखदृष्टी', 'कलहप्रिया' 'निष्ठुरभाषिणी, क्रोधमुखी' इत्यादि । कुनदी—जिसमें पानी बहुत कम हो, बहता न हो अतएव गंदे पानी की नदी । कुभोज्य—रुचि, गुणवत्ता और मात्रा की दृष्टि से हीन । 'कुग्राम-वास' श्लोक (पृष्ठ ११३) देखिए ।

(११) बालातपः प्रेतधूमो वृद्धास्त्री तरुणं दधि ।
आयुष्कामो न सेवेत तथा संमार्जनीरजः ॥

(गरुड पुराण)

प्रातःकालीन सूर्य की धूप, चिता का धुआँ, वृद्धास्त्री, ठीक जमने से पहले का दही, झाड़ू लगाते समय उड़नेवाले रजःकण इनको दीर्घायु चाहने वाला वर्ज्य करें ।

वक्तव्य—संमार्जनीरजः—झाड़ू से भूमि का समार्जन करते समय वातावरण में असंख्य अणुरेणु उठते हैं । ये मुख्यतया धूलि के सूक्ष्मकण होते हैं । परन्तु सड़कों के संमार्जन के समय इनके अतिरिक्त मल-मूत्र थूक तथा सड़े-गले द्रव्यों के सूक्ष्मकण तथा अनेक रोगों के विकारी जीवाणु (Pathogens) भी हो सकते हैं । ये सब श्वास से नासा,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गला, श्वसनसंस्थान में जाकर प्रकोप (Irritaton) उत्पन्न करके प्रतिश्याय, खाँसी इत्यादि सामान्य विकार और कभी कभी क्षय तक उत्पन्न कर सकते हैं। अतः झाड़ू लगाते समय तथा झाड़ू लगते हुए सड़क पर से जाते समय मुख-नासा वस्त्रावृत करके रखना चाहिए और जिनको सदैव यही काम करना है उनको जैन-मुनियों या शस्त्रकर्म करनेवाले शस्त्र-चिकित्सकों के समान मुख-नासा पर अवगुंठन रखना चाहिए।

(१२) चतुष्पथं चैत्यतरुं श्मशानोपवनानि च।
दुष्टस्त्री-संनिकर्षं च वर्जयेन्निशि सर्वदा ॥ (विष्णुपुराण)

चौराहा, चैत्यतरु, श्मशान, उपवन और दुष्ट स्त्री इनको रात में सदैव वर्ज्य करना चाहिए।

वक्तव्य—उपवन-वृक्षों से दिन में प्राणवायु और रात में उच्छ्वासित वायु के भीतर की दूषित वायु (CO^2) अधिक उत्सर्गित हुआ करती है। इसलिए दिन में उपवनों में बैठना या सोना हितकर होता है, परन्तु रात में नहीं होता 'नक्तं सेवेत न द्रुमम्।' अष्टांगहृदय॥ श्मशान—इसमें शव गाड़े जाते हैं तथा जलाये भी जाते हैं। जलने वाले शवों से ज्वलन पूर्ण होने तक ही दुर्गंध आती है परन्तु गाड़े हुए शवों से निरंतर थोड़ी थोड़ी दूषित हवा आती रहती है। इसलिए अन्त्यकर्म के समय को छोड़कर अन्य किसी समय में श्मशान में विशेषतः प्राकार-परिवृत श्मशान में न बैठना चाहिए न सोना चाहिए—सूनाटवीशून्यगृहश्मशानानि दिवापि च॥ अष्टांगहृदय॥

(१३) अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ (मनु)

अतिभोजन आरोग्यनाशक, आयुह्रासक, स्वर्गप्रतिबन्धक, पुण्यहारक और लोकनिंदित होने से उसका परित्याग करें।

वक्तव्य—लोकविद्विष्टम्—बहुभोजितया लोकैर्निन्दनात्। मन्वर्थमुक्तावलि। ११६ पृष्ठ पर 'गुणाश्च षट्' श्लोक देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१४) नक्तचर्या दिवास्वप्नमालस्यं पैशुनं मदम् ।
अतियोगमयोगं च श्रेयसोऽर्थी परित्यजेत् ॥ (महाभारत)

अपने हित की इच्छा करनेवाले को रात में जागरण, दिन में निद्रा, आलस्य, चुगलखोरी, नशा करना तथा (आहार-विहार-निद्रा इत्यादि विहित कर्मों का) अतियोग तथा अयोग इनका वर्जन करना चाहिए ।

वक्तव्य—अतियोगमयोगं च—अनुथायात् प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् । अष्टांगहृदय ॥ Golden mean ।

(१५) चत्वारि घोररूपाणि संध्याकाले परित्यजेत् ।
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥

(१६) आहाराज्जायते व्याधिर्मूढगर्भश्च मैथुनात् ।
अलक्ष्मी शयनाच्चैव स्वाध्यायादायुषःक्षयः ॥
(चाणक्यराजनीति)

संध्या के समय आहार, मैथुन, निद्रा तथा अध्ययन इनका सेवन घोर परिणामकारी होता है । अतः उस समय इनका परित्याग करें ।

संध्या के समय भोजन करने से रोग, मैथुन करने से (यदि उस मैथुन से संयोगवश गर्भ-धारणा हो जाय तो) मूढगर्भ, नींद लेने से दुःखदारिद्रय और अध्ययन करने से आयु का क्षय होता है ।

वक्तव्य—संध्याकाल—सम्यग्ध्यायन्त्यस्यामिति संध्या । यह समय जपजाप्यादि धार्मिक अनुष्ठानों का होने के कारण इस समय भोजनादि कर्म निषिद्ध किये हैं—नाश्नीयात् संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ॥ मनु ॥ दिन-रात्रि के बीच की वह कालावधि संध्या है जिसमें न दिन का सूर्य दिखाई देता है न रात के नक्षत्र—अहोरात्रस्य या संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जिता । सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदार्शिभिः ॥ इसका चिह्न रक्तिमा या अनुराग है—अनुरागवती संध्या दिवसस्त-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्पुरःसरः। अहो दैवगति-श्चित्रा तथापि न समागमः॥ काव्यप्रकाश॥
मूढगर्भ—पूर्णकालीन, पूर्ण विकसित परन्तु मार्गावरुद्ध (obstructed Labour)—सर्वावयवसंपूर्णो मनोबुद्ध्यादिसंयुतः। विगुणापानसंमूढो मूढगर्भोऽभिधीयते॥ डल्हणटीका॥

(१७) शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः।
न विलंबेत शौचार्थं, न मुखेनानलं धमेत्॥ (मार्कण्डेयपुराण)

शौच के सब समयों में, आवेग बलवान् हो या निर्बल, शौच हो आने में विलंब न करें। तथा मुख से अग्नि का प्रधसन न करें।

वक्तव्य—न विलंबेत शौचार्थम्—न वेगान् धारयेद् धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः॥ चरक॥ न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात्॥ अष्टांगहृदय॥ भोजन और शौच के सम्बन्ध में यह एक नियम ध्यान में रक्खे कि, जब भोजन करें कि न करें ऐसी दुविधा मन में पैदा हो जाय तब भोजन न करना श्रेयस्कर होता है और जब शौच हो आवें कि न हो आवें ऐसी शंका मन में पैदा हो जाय उस सयय शौच हो आना ही श्रेयस्कर होता है। न मुखेनानलं धमेत्—मुख से अग्नि प्रज्वलित करने में हवा इधर-उधर जाने से फूँकने की शक्ति के अनुसार अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, मुख अग्नि के पास होने से झुलसने की, मुख-नासा में धूलि-धूम-राख जाने की, नेत्रों में धूआँ तथा अग्निकण जाने की संभावना होती है। धमनी का प्रयोग करने से दूर से अग्नि प्रज्वलित होती है और अन्य सब आपत्तियों से मनुष्य बच जाता है।

(१८) न विषादे मनः कार्यं विषादो बलवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥ (रामायण)

विषाद में मन न लगाना चाहिए; विषाद अत्यन्त बलवान् होता है। वह क्रुद्ध सर्प जैसे बच्चे का नाश करता है वैसे मनुष्य का नाश करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—विषाद—मनोभंग, निराशा—विषादश्चेतसोभङ्ग उपाया-भावनाशयोः ॥ विषादो रोगवर्धनानाम् (श्रेष्ठतमः) चरक ॥

(१९) साहसं वर्जयेत्कर्म रक्षन् जीवितमात्मनः ।
जीवन् हि पुरुषास्त्विष्टं कर्मणः फलमश्नुते ॥ (चरक)

मनुष्य जीवित रहने पर ही अपने कर्मों का फल भोग सकता है। अतः साहसिक कर्म वर्ज्य करें जिससे अपने जीवित की रक्षा हो जाय।

वक्तव्य—साहस—सहसा बलेन निवृत्तं, सहसि बले भवं वा–साहसं तुदमे दुष्करकर्मणि। अविमृश्य कृतौ धार्ष्ट्ये। हैमकोश ॥ शक्ति से अधिक, अयथाबल, अविचारी कर्म–सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। किरातार्जुनीय ॥ जीवन् हि पुरुषः—यथा यथैव जीवेद्धि तत्कर्तव्यमहेलया। जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन्धर्ममवाप्नुयात् ॥ महाभारत—

(२०) विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

(याज्ञ० स्मृति)

शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान न करने से, निन्दित कर्मों का सेवन करने से तथा इन्द्रियों का निग्रह न करने से मनुष्य का पतन होता है।

(२१) न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ (मनु)

मांस, मद्य और मैथुन इनके सेवन में कोई दोष नहीं, इनके सेवन में मनुष्यों को सहज प्रवृत्ति हुआ करती है; परन्तु इनका वर्जन ही फलप्रद होता है।

लोके व्यावायामिषमद्यसेवा नित्याऽस्ति जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ भागवत ॥

इस संसार में मैथुन, मांस और मद्य का सेवन मनुष्यों से नित्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हुआ करता है, उसके लिए प्रेरणा देने की आवश्यकता नहीं होती। इनके सेवन के लिए विवाह, यज्ञ और (सौत्रामणि यज्ञ में) सुरा-सेवन की व्यवस्था है। फिर भी (यावच्छक्य) इनसे निवृत्ति इष्ट है।

वक्तव्य—मद्य-मांस-मैथुन विशिष्ट उद्देश्य-पूर्ति के लिए सेव्य हैं, अन्यथा असेव्य है। जैसे, संतानार्थ मैथुन। 'तृप्त्यर्थं भोजनं येषां' का वक्तव्य (पृष्ठ २०२) देखें।

(२१) दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ (मनु)

असेव्यकर्मफल—वर्जनीय आचरण करनेवाला मनुष्य समाज में निंदित, स्वयं सदैव दुःखी, रोगग्रस्त एवं अल्पायु भी होता है।

वक्तव्य—'प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः' इस शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार सेवन किये गये असेव्य आहार-विहार के दुष्परिणाम भोगे बिना मुक्ति नहीं होती है। केवल दुष्परिणाम प्रकट होने में असेव्य कर्म और सेवन करनेवाला इनके बलाबल के अनुसार न्यूनाधिक समय लगता है जो त्रिविध होता है। इसका स्वरूप सोदाहरण निम्नोक्त तीन वचनों में स्पष्ट किया गया है। 'नापथ्यसेविनं सद्यः' तथा 'कृतापचारोऽपि परैः' श्लोकों को भी देखें॥

(२२) न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर ॥ (रामायण)

रामचन्द्रजी कहते हैं—हे खर ! सेवन किये हुए विषयुक्त अन्न के समान असेव्य कर्मों का फल शीघ्र ही मिल जाता है।

(२३) न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः ॥ (रामायण)

जिनकी जड़ें जीर्णशीर्ण हो गयी हैं ऐसे वृक्ष जैसे कुछ काल हरे-भरे रहकर पश्चात् नष्ट होते हैं, वैसे लोकनिंदित वर्जनीय कर्म करनेवाले

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पुरुष कुछ काल ऐश्वर्य भोगकर पश्चात् अपने कर्मों का फल भोगते हैं !

(२४) नाधर्मश्चरतो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ (मनु)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय
सुभाषितसाहित्ये सेव्यासेव्यविज्ञानीयो नाम ।
एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



अधर्माचरण करनेवाले का अधर्म गौ के समान तत्काल फलप्रद नहीं होता, किन्तु धीरे धीरे फलोन्मुखी होकर (अपने योग्य समय पर) करनेवाले की जड़ काटता है।

वक्तव्य—गौरिव—यहाँ पर गोशब्द 'भूमौ च सुरभावपि' अर्थात् द्वयर्थी प्रयुक्त हुआ है और उसके अनुसार 'गौरिव' पदका अर्थ दोहरा होता है गौ के अर्थ में वैधर्म्यात्मक और भूमि के अर्थ में साधर्म्यात्क—(१) घास चारा सामने रखने पर गाय जैसे तत्काल पूरा दूध देती है वैसे असेव्य या पाप कर्म तत्काल फल नहीं देता है। (२) किन्तु बीज बोनेपर अथवा कलम लगाने पर भूमि जैसे धीरे-धीरे उसको विकसित तथा परिवर्धित करके न्यनाधिक दीर्घकाल के पश्चात् उसके फल देती है वैसे अधर्म्य कर्म दीर्घकाल के पश्चात् फलित होते हैं।

यहाँपर सविषमन्नमिव से तात्कालिक, 'शीर्णमूलद्रुमा इव' से अल्पकालिक और 'गौरिव' से दीर्घकालिक असेव्य कर्मों के फल बतलाये हैं। सेव्य कर्मों का भी ऐसा ही है—त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते ॥ हितोपदेश ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायां सेव्यासेव्यविज्ञानीयोनामः
एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्त ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोऽनागतविधानविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपस्थितम् ।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति ॥ (हितोपदेश)

मृत्यु, व्याधि और शोक इनमें से कौन सी आपत्ति उपस्थित होकर आज मेरे ऊपर गिरनेवाली है इसको प्रतिदिन (उठने पर) सोच लेना चाहिए ।

वक्तव्य—उत्थायोत्थाय-उत्थायोत्थायेति वीप्सायां, प्रत्यहमिति कर्तव्यताख्यापनायेत्येके; अन्ये तु उत्थायेति अभियोज्येत्यर्थः, अभितो योगमभिसंयोगं कृत्वा, अभियोग उद्यमः, उत्पूर्वस्य स्थाधातोरभियोगार्थत्वात् । सततम्, अहरहरित्यर्थः ॥ उत्थायोत्थाय सततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता' इस सुश्रुत के वचन पर डल्हण टीका । १२५, २२८, ३०१ पृष्ठ पर 'ब्राह्मे मुहूर्ते' श्लोक का वक्तव्य भी देखो ।

(२) आपस्ता पुनरागुर्मा याभिः शस्यं पुरा हतम् ।
यथा प्रक्रियते सेतुः प्रतिकर्म तथाऽऽश्रये ॥ (चरक)

जिस पानी से पहले भूमिगत फसल नष्ट हो गयी थी वह पानी फिर से न आने पावे इस दृष्टि से जैसे सेतु (बांध) बंधन किया जाता है, वैसे (जिस रोग से पहले समाज या व्यक्ति का स्वास्थ्य नष्ट हो गया था वह रोग फिर से आकर समाज या व्यक्ति का स्वास्थ्य नष्ट न करें इस दृष्टि से (समाज या व्यक्ति के) शरीर में चिकित्सा की जाती है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) पूर्वरूपं विकाराणां दृष्ट्वा प्रादुर्भविष्यताम् ।

या क्रिया क्रियते सा च वेदनां हन्त्यनागताम् ॥ (चरक)

भविष्य काल में प्रादुर्भूत होनेवाले विकारों का पूर्वरूप देखकर जो चिकित्सा की जाती है वह आनेवाले रोग का नाश करती है ।

(४) चिन्तनीया हि विपदामादावेव प्रतिक्रिया ।

न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

पहले से ही (भविष्य में होनेवाली रोगादि) आपत्तियों की अनागत चिकित्सा का चिंतन करके (उसके अनुसार सिद्ध) रहना चाहिए । घर में आग लगने पर कूँआ खोदना उपयुक्त (उचित) नहीं होता है ।

(५) यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यःप्रयत्नो महान्

प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

(वैराग्यशतक)

जब तक यह शरीररूपी घर स्वस्थ है, जब तक जरा दूर है, जब तक इन्द्रियों की अर्थग्रहण-शक्ति बनी है और जबतक आयु क्षीण नहीं हुई है तबतक बुद्धिमान् मनुष्य को अपने श्रेय (शरीर सुखी और स्वस्थ बनाये रखने) के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए । घर में आग लगने पर कूँआ खोदने के उद्योग को क्या कहा जाय ?

(६) अनागतं यः कुरुते स शोभते ।

स शोचते यो न करोत्यनागतम् ॥ (पंचतन्त्र)

जो अनागत विधान करता है वह सुखी और जो नहीं करता वह शोक-पीड़ित होता है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—अनागतम्-अनागतविधानम्। स शोचते-उसपर पश्चात्ताप करने की नौबत आ जाती है।

(७) अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदाशङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता ॥ (रामायण)

भावी आपत्तियों की आशंका करनेवाले हितैषी विचारी मनुष्य को अनागत विधान करना चाहिए।

वक्तव्य—अनागतविधानम्—आजिगमिषितस्यानिष्टस्य विधानं परिहारः। रामकृत तिलकटीका ॥ इसी को वैद्यकीय परिभाषा में अनागत-व्याधिचिकित्सा या रोगप्रतिबन्धन (Prophylaxois or Prevention of disease) कहते हैं।

अनागत व्याधि चिकित्सा सामान्य और विशेष करके दो प्रकार की होती है, फिर विशेष के दो भेद होते हैं, इस तरह इसके तीन प्रकार हो जाते हैं। (१) तात्कालिक—चूहों का मरना प्लेग होने का और विचित्र-विचित्र पूर्वाभासों (Aura) का होना अपस्मार (Epilepsy) का पूर्वरूप होता है। इनके होनेपर समाज में प्लेग न हो तथा व्यक्ति में अपस्मार का आवेग न आवे इस दृष्टि से जो चिकित्सा या प्रतिकर्म करना होगा उसको तात्कालिक प्रकार कह सकते हैं। इसका दिग्दर्शन 'पूर्वरूपं विकाराणां' इस श्लोक में किया है। (२) भूतकालाधिष्ठित—एक वर्ष पहले मेले में विसूचिका का उद्रेक (out break) होकर सैकड़ों लोग मर गये। इस प्रकार की आपत्ति फिर मेले में न आने पावे इस दृष्टि से मेले के लिए तथा पिछले वर्षा ऋतु में विषमज्वर (malaria) हो गया था वह फिर न होने पावे इस दृष्टि से व्यक्ति या कुटुम्ब के लिए जो चिकित्सा या प्रतिकर्म करना होगा उसको भूतकालाधिष्ठित प्रकार, कह सकते हैं। इसी का दिग्दर्शन 'आपस्ताः पुनरागुर्मा' इस श्लोक में किया गया है। ये दोनों प्रकार विशिष्ट के हैं, क्योंकि इन दोनों में विशिष्ट रोग के लिए या उसको

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ध्यान में रखकर प्रतिकर्म किया जाता है। (३) सार्वकालिक—इसमें किसी विशिष्ट काल के विशिष्ट रोग की ओर ध्यान देकर प्रतिकर्म नहीं किया जाता है; किन्तु शरीर सदा-सर्वदा-सर्वकाल हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ रहें, किसी भी रोग से कभी भी आक्रान्त न हो इस दृष्टि से प्रतिकर्म किये जाते हैं। इसलिए इसको सार्वकालिक प्रकार कह सकते हैं। यह प्रकार सामान्य स्वरूप का है। इसका दिग्दर्शन 'चिन्तनीया हि विपदाम्' तथा 'यावत्स्वस्थमिदं' इन श्लोकों में किया गया है। विशेष प्रकार के प्रतिकर्म प्रत्येक रोग में भिन्न भिन्न होने के कारण उनका दिग्दर्शन यहाँ पर नहीं हो सकता, परन्तु सामान्य प्रकार के प्रतिकर्म हितकर, पथ्यकर, स्वास्थ्यकर आहाराचार-विहार-विचारादि सर्वसाधारण स्वरूप (General nature) के होने के कारण वे इस अध्याय के अन्त में दिये गये हैं।

(८) अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेव सुखमेधेते, दीर्घसूत्री विनश्यति ॥ (महाभारत)

भावी आपत्तियों के लिए पहले से ही प्रतिकर्म करनेवाला, आपत्ति आने पर तत्काल उपचार करनेवाला ये दोनों सुख-स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं; परन्तु दीर्घसूत्री नाश को प्राप्त होता है।

वक्तव्य—अनागतविधाता—अनागतमुद्दिश्य विदधाति। प्रत्युत्पन्नमतिः—प्रत्युत्पन्नकृतिः। दीर्घसूत्री—प्रतिकर्म करने में विलंब करनेवाला। इसके स्थान में 'यद्भविष्यः (जो होगा सो होने दीजिये इस विचार का) तथा 'दैवदृष्टिः' (दैवपर विश्वास करनेवाला) ऐसे भी पाठ हैं। दोनों का तात्पर्य कुछ भी न करने वाला ऐसा है। सुखम्—अनागत व्याधिचिकित्सा से रोग-प्रतिबन्धन कैसे होता है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार का है—'यदा चिकित्सा सुख-(आरोग्य)-हेतुः सेव्यते तदादुःखहेतुसेवाभावाद्दुःखं नोत्पद्यते, सुखहेतुसान्निध्यात्सुखमारोग्यमुत्पद्यते, तेन चिकित्सयाऽनागतंदुःखं (रोगः) हेतुप्रतिबन्धान्निरुध्यते,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सुखं च जन्यते' इति सिद्धान्तः ।। चक्रपाणिदत्त ।। इस श्लोक में चिकित्सा के तीन प्रकार बतलाये हैं, प्रथम अनागत-विधान जिसका विवरण ऊपर हो चुका है। दूसरा प्रकार आगतव्याधि चिकित्सा है। इसके दो भेद होते हैं, एक रोग होते ही की गयी-चिकित्सा और दूसरा रोग जीर्ण होने पर की गयी चिकित्सा। 'तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यः' श्लोक देखिए।

(९) वर्जयन्ति यथाऽरण्यं ससिंहं मृगपक्षिणः ।
वर्जयन्ति ग्रहास्तद्वत् सौषधं सूतिकागृहम् ॥

जिस प्रकार सिंह रहनेवाले अरण्य को मृग-पक्षी परित्याग करते हैं, वैसे औषधियुक्त सूतिकागार को ग्रह छोड़कर भाग जाते हैं।

(१०) अनेन विधिना युक्तमादावेव निशाचराः ।
वनं केशरिणाऽऽक्रान्तं वर्जयन्ति मृगा इव ॥ (सुश्रुत)

वन सिंहाकान्त होनेपर जैसे पहले से ही रहते हुए मृग छोड़ कर भाग जाते हैं वैसे इस विधि से व्रणित को निशाचर छोड़कर भाग जाते हैं।

वक्तव्य—प्रथम श्लोक सूतिका से और द्वितीय शस्त्रचिकित्सक द्वारा शस्त्रकर्म किये हुए व्रणित से सम्बन्धित है, परन्तु अनागतव्याधि-चिकित्सा की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि प्रसूता स्त्री भी प्रकृति के द्वारा प्रसव का शस्त्रकर्म की हुई बड़ी भारी व्रणित ही होती है और दोनों की यह समानता दोनों के लिए सिंहाक्रान्त वन का जो दृष्टान्त दिया है उससे बहुत स्पष्ट हो जाती है। ग्रहाः—भूत-प्रेत पिशाच-निशाचरादि सूक्ष्मयोनि के जीव। आधुनिक परिभाषा में इनको विकारी जीवाणु (Pathogenic organisms) कह सकते हैं, क्योंकि ये मलिन, अस्वच्छ, दुर्बल मनुष्यों में विशेषतया व्रणितों पर आक्रमण करके उनमें विविध रोग उत्पन्न करते हैं—अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतंवा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यदि वाऽक्षतम् । हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ।। इन भूतादि सूक्ष्म विकारी जीवों से मनुष्यों में असंख्य रोग उत्पन्न होते हैं जिनमें सूतिका में प्रसूतिज्वर और व्रणित में व्रणपूतिता (Sepsis) बहुत महत्त्व के रोग हैं जिनसे कभी कभी इनका नाश हो जाया करता है। अतः इनको व्रणित के पास फटकने न देना तथा उनका नाश करना यही इनसे बचने की अनागत-चिकित्सा है। सौषधम्—निम्ब, वचा, सर्षप, गुग्गुलु तथा 'वचाकुष्ठक्षौमकहिंगुसर्षपातसीलशुनकणकणिका' (चरक) इत्यादि रक्षोघ्न औषधियों से युक्त। विधि—ये औषधियाँ मुख्यतया गृह-वस्त्र-प्रावरणादि के धूपन के लिए और तद्द्वारा जीवाणु-नाशन और कीट-मशकादि के परिहरण के लिए प्रयुक्त हुआ करती हैं धूपितार्चितसंमृष्ट-मशकाद्यपवर्जितम् । ब्रह्मघोषैः सवादित्रैर्वादितं वेश्म शस्यते ।। काश्यपसंहिता ।।

(११) धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।। (महाभारत)

पङ्कप्रक्षालनन्याय—दानधर्म करने के लिए जिसको धन की इच्छा होती है उसको धन की इच्छा न करना ही श्रेयस्कर है; (क्योंकि शरीर पङ्कमग्न करके फिर उस) पङ्क को धोकर स्वच्छ होने की अपेक्षा (उससे दूर रहकर) स्पर्श न होने देना ही श्रेयस्कर होता है।

वक्तव्य—पङ्क—(१) सामान्य सर्वपरिचित अर्थ कीचड या गंदा द्रव्य 'निषद्वरस्तु जंबालः पंकोऽस्त्री शादकर्दमौ' ।। अमरकोश ।। (२) धार्मिक अर्थ पाप 'पाप्मा—अस्त्री पंकं पुमान्पाप्मा पापं किल्बिषकल्मषम्', अमरकोश ।। (३) वैद्यकीय अर्थ रोग, व्याधि होता है क्योंकि वैद्यक में पाप, पाप्मा रोग के पर्याय हैं—ज्वरस्तमो विकार आतंकः पाप्मा गदो व्याधिराबाधो दुःखमामयो यक्ष्मा रोग इत्यनर्थान्तरम् ।। अष्टांग-संग्रह ।। वैद्यक में आलंकारिक भाषा में रोग के लिए रोगरूपी पंक और रोगी के लिए रोगपंकमग्न कहते हैं—आतंकपङ्कमग्नानां हस्तालम्बो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भिषग्जितम् ॥ अष्टांगहृदय ॥ रोगपङ्काब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ॥ रसरत्नसमुच्चय ॥ पंक के इन तीन अर्थों के अनुसार द्वितीय श्लोकार्ध के तीन अर्थ होते हैं। (१) कीचड से शरीर मलिन होने के पश्चात् जलादि से प्रक्षालन करके निर्मल होने की अपेक्षा कीचड से दूर रहकर शरीर मलिन ही न होने देना श्रेयस्कर होता है। (२) पापकर्म से पापी बनने के पश्चात् प्रायश्चित्त द्वारा निष्कृति करके निष्पाप होने की अपेक्षा पापकर्मों से दूर रहकर कदापि पापी न बनना श्रेयस्कर होता है। (३) रोगपीडित होने के पश्चात् चिकित्सा द्वारा रोगनिर्मुक्त होने की अपेक्षा रोगों से दूर रहकर सदैव नीरोग रहना श्रेयस्कर होता है। इस श्लोकार्ध का अंग्रेजी पर्याय है Prebention is better than Cure, परन्तु यथार्थतया यह केवल तीसरे अर्थ का अर्थात् वैद्यकीय पर्याय है, मूल श्लोकार्ध अधिक व्यापक स्वरूप का है। श्रेयस्कर मार्ग इस प्रकार का होते हुए भी इस संसार में मनुष्यों का व्यवहार कैसे विपर्यस्त हुआ करता है इसका सुन्दर चित्रण भर्तृहरि ने नीचे के श्लोक में किया है।

(१२) तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सञ्शालीन् कवलयति शाकादिवलितान्।
प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

(वैराग्यशतक)

प्यास से कण्ठ सूखने पर मनुष्य स्वादु सुवासित जल पीता है, क्षुधा से पीड़ित होने पर मनुष्य शाकादि के साथ चावल सेवन करता है, कामवासना प्रदीप्त होनेपर मनुष्य अपनी पत्नी को दृढ़ आलिंगन देता है, तात्पर्य, मनुष्य (आगत) व्याधि की चिकित्सा (करने के पश्चात् प्राप्त हुए सुख-स्वास्थ्य) को सुख समझने की भूल करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—वलित-मिश्रित। प्रतीकारो व्याधेः—उपर्युक्त पङ्कप्रक्षालन वचन के अनुसार। सुख—(१) दुःखनिवृत्ति (२) व्याधिनिवृत्ति या स्वास्थ्य। पङ्कप्रक्षालनं-न्याय के अनुसार इस श्लोक के अर्थान्तरन्यास का व्यावहारिक अर्थ यह है कि पङ्कमग्न होने के पश्चात् प्रक्षालन किये जाने पर स्वच्छ हुए वस्त्र को लोग पङ्क से अलिप्त रहे हुए स्वच्छ वस्त्र के समान समझते हैं, परन्तु यह बड़ी भारी भूल है, क्योंकि पंकमग्न वस्त्र का प्रक्षालन करने के पश्चात् भी उसमें पंक के सूक्ष्मांश जरूर रहते हैं जो अमग्न वस्त्र में नहीं होते और यदि उनको निकालने के लिए बहुत अधिक प्रक्षालन किया जाय तो वस्त्र को क्षति हुए बिना नहीं रहती और यदि इस प्रकार का प्रक्षालन बारंबार करना पड़ा तो वस्त्र जल्दी जीर्ण होकर उसकी आयु जल्दी क्षीण हुए बिना नहीं रहती। पंक के स्थान में व्याधि और प्रक्षालन के स्थान में प्रतीकार शब्द रखने से उपर्युक्त कथन वस्त्र के बदले मनुष्यों के लिए ठीक लागू होता है। इस अर्थान्तरन्यास के उपर्युक्त व्यावहारिक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक और वैद्यकीय अर्थ होते हैं—

मन में विषयवासनाएँ उत्पन्न होनेपर उनका प्रतीकार अर्थात् पूर्ति करने से मनुष्य को जो सुख अनुभव होता है वह 'यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्॥ विक्रमोर्वशीय॥ किंवा 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्॥ चारुदत्त॥ इन सुभाषितों के अनुसार बहुत प्रभावी होता है, इसलिए मनुष्य ऐसे सुख को वास्तविक समझने की भूल करके सदैव उसी के पीछे पड़ता है, परन्तु वास्तविक सुख यह नहीं, वह मन सदैव निष्काम या निर्विषय रखने में है यह इसका आध्यात्मिक आशय है।

वैसे ही शरीर में रोग उत्पन्न होनेपर जब मनुष्य को दुःख होने लगता है तब उसका अर्थात् आगत व्याधिका प्रतीकार करके दुःखनिवृत्ति होने के पश्चात् मनुष्य जो स्वास्थ्यसुख अनुभव करता है वह उपर्युक्त सुभाषितों के अनुसार बहुत प्रभावी होता है, इसलिए मनुष्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसी को वास्तविक स्वास्थ्यसुख समझता है और जब कभी रोगग्रस्त होता है तब तृषार्त जैसे शीतल जल के पीछे पड़ता है वैसे वह व्याधि-प्रतिकार के पीछे प्रयत्नशील और दत्तचित्त रहता है। परन्तु वास्तविक स्वास्थ्यसुख यह नहीं है, यह उसका विपर्यास है। वास्तविक स्वास्थ्य-सुख शरीर सदैव निरामय रखने में अर्थात् व्याधियों से पूर्ण अनाक्रान्त रहने में है यह इसका वैद्यकीय आशय है जो संक्षेप में नीचे के श्लोक में बतलाया है।

(१३) आधयो व्याधयश्चैव द्वयं दुःखस्य कारणम्।
तन्निवृत्तिः सुखं विद्यात्तत्क्षयो मोक्ष उच्यते ॥
(योगवासिष्ठ)

आधि और व्याधि दोनों दुःख के कारण होती हैं। (उत्पन्न होने पर) उनसे निवृत्ति सुख और उनका क्षय मोक्ष कहलाता है।

वक्तव्य—निवृत्ति-प्रतीकार से उनका हरण। क्षय-उनका पूर्ण नाश या उन्मूलन। सुख-अवास्तविकसुख। मोक्ष—वास्तविक या शाश्वत सुख। उपर्युक्त वचनों का और उनके वक्तव्यों का तात्पर्य यह है कि मनुष्य आवश्यक वासनाओं का तथा प्रसंगवश प्राप्त रोगों का प्रतीकार जरूर करें, परन्तु उसी में संतोष न करके अभ्यास—वैराग्य से मन निर्विषय और अनागतविधान के विविध मार्गों से शरीर निरामय रखकर वास्तविक तथा शाश्वत सुख तथा स्वास्थ्य का उपभोग लेने का प्रयत्न करें। अनागत-विधान के विविध उपाय तथा मार्ग अब नीचे दिये जाते हैं।

(१४) परान्नं परवस्त्रं च परशय्यां परस्त्रियम्।
परवादं परद्रव्यं दूरतः परिवर्जयेत् ॥
(चाणक्यराजनीति)

उपसर्गप्रतिबंधनमार्ग—दूसरों का अन्न तथा वस्त्र, दूसरों की शय्या

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तथा स्त्री, दूसरों के साथ वितण्डवाद और दूसरों का धन इनका दूर से परिवर्जन करें।

वक्तव्य—सामान्य धार्मिक अर्थ के अतिरिक्त 'परान्न' का दूसरों का झूठा अन्न, 'परवस्त्र' का दूसरों के द्वारा पहने हुए वस्त्र, 'परशय्या' का दूसरों द्वारा सोने के लिए प्रयुक्त शय्या, गद्दा, तकिया ये भी अर्थ होते हैं जो अनागत-विधान की दृष्टि से महत्त्व के हैं। विशेष विवरण के लिए नीचे के श्लोक का वक्तव्य देखें।

(१५) आसनाच्छयनाच्चैव संजल्पात्सहभोजनात्।
पुंसां संक्रमते पापं घटाद् घटमिवोदकम् ॥ (चाणक्यराजनीति)

जैसे (निकट आनेपर) एक घड़े के जल का संक्रमण दूसरे घड़े में होता है वैसे आसन, शयन, संभाषण, सहभोजन इत्यादि के द्वारा निकट आनेपर मनुष्यों का पाप एक दूसरे पर संक्रान्त होता है।

वक्तव्य—पाप—अस्त्री पङ्कं पुमान्पाप्मा पापं किल्बिषकल्मषम् ॥ अमरकोश ॥ इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त वैद्यकीय परिभाषा में पाप या पाप्मा का अर्थ रोग होता है—रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिः' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें। उपर्युक्त दो श्लोकों में मनुष्यों से मनुष्यों पर रोगों का संक्रमण होने के विविध मार्ग बतलाये हैं जो निम्न सुश्रुत के वचन से और स्पष्ट होंगे—प्रसंगाद् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात्। सहशय्यासनाच्चापि वस्त्र माल्यानुलेपनात। कुष्ठं ज्वरश्चशोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्। इस प्रकार फैलनेवाले रोगों को औपसर्गिक (Infectious) या संक्रामक रोग कहते हैं। 'स्मारं ज्वरं घोरं' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(१६) नाधार्मिके वसेद् ग्रामे, न व्याधिबहुले भृशम्।
नैकः प्रपद्येदध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥ (मनु)

अधार्मिक (लोग जहाँ बहुत रहते हैं ऐसे) तथा व्याधियों से बहुत

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पीडित (लोग जहाँ होते हैं ऐसे) गाँव में वास न करें, अकेला प्रवास न करें तथा पहाड़ों पर दीर्घकाल वास न करें।

(१७) उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसंपर्के यः पलायेत् स जीवति ॥ (वृद्धचाणक्य)

उपसर्ग, परचक्र, भयावह, अकाल तथा दुर्जनों का संसर्ग इनसे जो भाग जाता है वही जीवित रहता है।

वक्तव्य—उपसर्गः—मरकप्रादुर्भावः। चक्रपाणि ॥ जानपदिक रोग का उद्रेक (Out break of an epidemic) यः पलायेत्—अनागत-व्याधिचिकित्सा के अर्थात् आगन्तु व्याधियों से बचने के जो अनेक उपाय हैं उनमें व्याधिपीड़ित तथा उपसर्ग के स्थान में न जाना, यदि आवश्यकता न हो तो वहाँ पर वास न करना, यदि अपने वास के स्थान में उपसर्ग पैदा हो जाय तो उस स्थान को छोड़कर अन्य स्वस्थ स्थान में चले जाना यह प्राचीन तथा अर्वाचीन शास्त्रसंमत मार्ग है—तत्र स्थानपरित्याग···परैर्भवितव्यम्। एवं साधु भवति। सुश्रुत ॥ हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम् ॥ चरक ॥

(१८) भोजनान्ते पिबेत्तक्रं, वासरान्ते पिबेत्पयः।
निशान्ते च पिबेद्वारि, त्रिभिर्रोगो न जायते ॥

निजरोगप्रतिबंधकमार्ग—भोजन के अन्त में मट्ठा सेवन करें; दिन के अन्त में दूध सेवन करें; रात्रि के अन्त में पानी सेवन करें, इन तीनों के (यथासमय) सेवन से रोग नहीं होते हैं।

वक्तव्य—तक्र—आमाशयगत अन्नपाचन के लिए अम्ल की आवश्यकता होती है। जठररस (Gastric juice) में अम्ल रहता है। तक्र से इस में सहायता होती है। युक्तिव्यपाश्रय भेषज के अध्याय में तक्र के गुण भी देखें। निशान्ते च पिबेद्वारि-ब्राह्ममुहूर्त में उठने पर। इसको उषःपान कहते हैं—विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि। स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ योगरत्नाकर ॥

स्वास्थ्य विभाग के प्रारम्भ से अनागत-विधान ही वर्णित है। यहाँ से उसका सारसर्वस्व संक्षेप में बताया जाता है।

(१९) वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति ॥

बाईं करवट सोनेवाला; दो बार भोजन करनेवाला, छः बार मूत्र-त्याग करनेवाला, दो बार मलत्याग करनेवाला और अल्पमैथुन करनेवाला मनुष्य शतजीवी होता है।

वक्तव्य—वामशायी—भोजन के उपरान्त बाईं करवट सोने के लिए वैद्यकशास्त्र ने कहा है—भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः। ततः पादशतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत् ॥ सुश्रुत ॥ द्विभुञ्जानः—पृष्ठ ११६ पर 'सायंप्रातर्मनुष्याणां' श्लोक देखें। द्विपुरीषकः—स्वास्थ्यास्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन और मलत्याग का क्या संबंध होना चाहिए। इसका निदर्शन निम्न कहावत में बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित किया है—जैबार खाना तैबार पाखाना ॥ एक बार खाय योगी, दो बार खाय भोगी, तीन बार खाय रोगी ॥ एकबार जाय योगी, दोबार जाय भोगी, तीनबार जाय रोगी ॥

(२०) हितपरिमितभोजी नित्यमेकान्तसेवी
सकृदुचितहितोक्तिः स्वल्पनिद्राविहारः।
अनुनियमनशीलो यो भजत्युक्तकाले
स लभत इह शीघ्रं साधु चित्तप्रसादम् ॥ (शंकराचार्य)

हितकर और मात्रानुसार भोजन करनेवाला, नित्यएकान्तसेवी, एकबार परन्तु उचित और हितकर बोलने वाला, अल्पमात्रा में निद्रा और विहार सेवन करनेवाला, नियमोंके अनुसार चलनेवाला प्रत्येक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कार्य उचित कालपर करनेवाला मनुष्य शीघ्रतासे उत्तम प्रकारकी मनः प्रसन्नता प्राप्त करलेता है ॥

(२१) नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः
दाता समः सत्यपरः क्षमावान्
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः (चरक)

सदासर्वदा हितकर आहारविहारसेवन करनेवाला, सारासार तथा पूर्ण विचार करके कार्य करनेवाला, विषयसेवन में आसक्ति न रखनेवाला, मनोवृत्ति सम रखनेवाला, सत्यभाषी क्षमावान्, आप्तोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य नीरोग रहता है।

वक्तव्य—आप्तोपसेवी-वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभवी मनुष्यों के उपदेशानुसार चलनेवाला-साक्षात्करणमर्थस्याप्तिः। तया वर्तते इत्याप्तः ॥ वात्स्यायन भाष्य, न्यायसूत्र ॥ आप्तो नामानुभवेन वस्तु-तत्वस्य कार्त्स्न्येन निश्चयवान् रागादिवशादपि नान्यथावादी यः सः ।लघुमंजूषा॥

(२२) मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सन्
तमात्मवन्तं प्रजहात्यनर्थाः ॥ (महाभारत)

जो आश्रितों को अन्न बाँटकर पश्चात् स्वयं मिताहार करता है; बड़े बड़े कर्म करके रातमें उचित कालतक निद्रा लेता है; याचना करनेपर मित्र न होनेवालों को भी दान देता है उस जितेन्द्रिय को छोड़कर (रोगादि) आपत्तियाँ भाग जाती हैं।

(२३) मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्धं
सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः ॥ (चरक)

जिसकी बुद्धि, वाणी और क्रिया स्वास्थ्य का अनुबंध बनाये रखनेवाली होती हैं; मन स्वायत्त होता है, बुद्धि निर्मल रहती है, जो ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ और योगनिष्ठ होता है उसपर रोगोंका आक्रमण नहीं होता।

(२४) सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ (मनु)

अनागतविधानमहत्वः—सर्वलक्षण होने पर भी जो सदाचारका पालन करता है, श्रद्धावान् होता है, तथा दूसरोंका द्वेष नहीं करता वह शतजीवी होता है।

वक्तव्य—सर्वलक्षणहीनोऽपि-शुभसूचकलक्षणशून्योऽपि। मन्वर्थमुक्तावलि। दीर्घायुसूचक शुभलक्षणहीन। वैद्यकमें अल्पायु, मध्यमायु और और दीर्घायु के शारीरिक लक्षण बतलाये जाते हैं। दीर्घायुके कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुःपात्रं सुखायुषः। ललाटमुन्नतं श्लिष्टशंखमर्धेन्दुसंनिभम् ॥ ग्रीवाह्रस्वा घना वृत्ता स्कन्धावुन्नतपीवरौ ॥ अष्टाङ्गहृदय ॥ गूढसंधिसिरास्नायुः संहताङ्गः स्थिरेन्द्रियः। उत्तरोत्तर सुक्षेत्रो यः स दीर्घायुरुच्यते ॥ सुश्रुत ॥ मनुष्यों की दीर्घजीविता का संबंध आत्मा से नहीं पांच भौतिक शरीर से है। दीर्घजीवी होने के लिए सन्निवेश (रचना विशेष), संहनन, स्वरूप इत्यादि बातों में शरीर का विशिष्टलक्षणयुक्त होना अपेक्षित होता है। इस वचन का आशय यह है कि यथोचित शरीरकी अपेक्षा दीर्घायु प्राप्त करने में धार्मिक तथा वैद्यकीय दृष्ट्या हितकर, पथ्यकर, श्रेयस्कर आहारविहार, आचारविचार अधिक महत्वका है। अतः दीर्घायु प्राप्तिकी दृष्टिसे अकेला सदाचार फलदायी होता है, परन्तु यदि उसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

साथ यथोचित शरीरका संयोग रहा तो दूधके साथ शर्करा के संयोग के समान दोनों का संयोग अधिक मधुर फलदायी हो सकता है। पृष्ठ १४४ पर 'त्वदनुस्मृतिरेवपावनी' श्लोक देखें।

(२५) अद्यैव न चिकित्सां यः करोति मरणापदः।
संप्राप्तायां मृतौ मूढः करिष्यति किमातुरः॥
(योगवासिष्ठ)

अनागतविधान समय पर करने का महत्व—(व्याधियों तथा अन्य आपत्तियों के रूप में आनेवाली अकाल) मरणकी आपत्ति की अनागत चिकित्सा जो प्रारम्भ से नहीं करता है वह मूर्ख (अकाल) मृत्यु सामने खड़े होने पर क्या करेगा ?

वक्तव्य—मरणापद्–अकालमरणरूप आपत्ति। कालमृत्यु निष्प्रतिक्रिय है, अतः उसके लिए चिकित्सा करना व्यर्थ है, परन्तु अकालमृत्यु असंख्य होते हैं और वे चिकित्स्य या प्रतिक्रिय होते हैं। अतः उनकी चिकित्सा जरूर करना चाहिए। 'एकोत्तरं मृत्युशतं' तथा 'जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः' श्लोकों को देखें।

(२६) निर्वाणदीपे किमु तैलदानं
चौरे गते वा किमु सावधानम्।
वयो गते किं वनिता विलासः
पयो गते किं खलु सेतुबन्धः॥ (नीतिप्रदीप)

दीप बुझ जाने पर तेल डालने से क्या लाभ ? चोर निकल जाने पर सावधान होने से क्या उपयोग ? यौवन समाप्त हो जाने पर वनिता विलास से क्या आनंद ? और पानी बह जाने पर सेतु बांधने से क्या फल ?

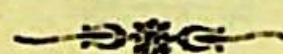
वक्तव्य—सेतु–जलबंध (Dam)—नलिनीं क्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः॥ कुमारसंभव॥ (२) पुल (Bridge)—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लंका का सेतु प्रसिद्ध है—वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशि ॥ रघुवंश ॥ यहाँ पर दोनों अर्थ उपयुक्त है। सेतुबंध–जलबंध का निर्माण और रोगप्रतिबंधक उपायों का आचरण। विशेष विवरण के लिए पृष्ठ ३१३ पर 'आपस्ताः पुनरागुर्मा श्लोक' और उसका वक्तव्य देखें। इस वचन का आशय इस हिंदी कहावत से स्पष्ट होगा—आछे दिन पाछे गये किया न हरिसे हेत। अब पछताये होत क्या जब चिडिया चुग गयी खेत ॥

(२७) दिवसेनैव तत्कुर्याद्येनरात्रौ सुखं वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखंवसेत् ॥
(२८) पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येनवृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कूर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ (महाभारत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय सुभाषित–साहित्ये अनागतविधानविज्ञानीयो नाम
त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



संक्षेप में अनागतविधान—दिन में वह काम करें जिससे रात में सुख से (निद्रित) रह सके; आठ मास वह काम करें जिससे वर्षा (ऋतु के चार मास) में सुख से रह सके ॥ जवानी में वह काम करें जिससे वृद्धावस्था में सुख से रह सके; और यावज्जीव वह काम करें जिससे परलोक में सुख से रह सके ॥

इति श्री भास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायामनागतविधानविज्ञानीयो नाम
त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याधिचिकित्सा संबन्धी

तृतीयो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो रोगनिदानविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बंधनं व्यसनानि च ॥

(वृद्धचाणक्य)

रोगहेतु (१) प्रज्ञापराध—दरिद्रता, रोग, दुःख, बंधन तथा संकट ये मनुष्यों के अपने अपराधरूप वृक्ष के फल होते है ।

वक्तव्य—आत्मापराध—मन, बुद्धि, धृति, स्वभाव इत्यादि के अपराध-आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभावे परमात्मनि । चित्ते धृतौ च बुद्धौ च परव्यावर्तनेऽपि च ।। धरणि कोश) जाने अनजाने अपने द्वारा किये हुए कुकर्म । वैद्यकीय परिभाषा में इसको प्रज्ञापराध कहते हैं—धीधृति-स्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत्कुरुतेऽशुभम् । प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्व दोष-प्रकोपणम् ।। चरक ।। पृष्ठ ५ पर 'कायवाग्बुद्धि' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(२) लोभमूलानि पापानि, रसमूलानि व्याधयः ।
इष्टमूलानि शोकानि त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव ॥

(२) *असात्म्यार्थसंयोग*—लोभ के कारण पाप होते हैं, रस के कारण रोग होते हैं, इष्ट के कारण शोक होते हैं, अतः तीनों का परित्याग करके सुखी हो जाओ।।

वक्तव्य—इष्ट—प्रिय वस्तु, मनुष्य, मित्र, पति, आशा इत्यादि अनेक अर्थ हैं । ये सब यहाँ पर लागू होते हैं । रसनार्थो रसः । चरक ।। रस रसनेन्द्रिय या जिह्वा का अर्थ है । षडेव रसाः । चरक ।। रसायत्त आहारः । सुश्रुत ।। इन वचनों के आधार पर 'षड्सात्मक आहार' यह

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रस का सामान्य अर्थ होता है। युक्ति युक्त आहार स्वास्थ्यवर्धक और अयुक्तियुक्त अर्थात् हीनामिथ्यातियोगेन सेवन किया हुआ आहार व्याध्युत्पादक होता है। रस व्याधियों का हेतु होने से यहाँ पर रस अयुक्तियुक्त आहार के अर्थ में है। 'अद्यते विधिवद्भुक्तं' श्लोक (पृष्ठ ८६) देखें। (२) विषय वासना—विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं, रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता ॥ अर्थात् हीन मिथ्यातियोग में विषयों का सेवन। इसको 'असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग' या 'असात्म्यार्थसंयोग' कहते हैं। (३) क्लिन्नता या आर्द्रता। नीचे के वचन का वक्तव्य देखें।

रसमूलानि व्याधयः—मनुष्यों में होने वाले रोग अयुक्तियुक्त आहार, विषयासक्ति तथा क्लिन्नता इन तीन कारणों से होते हैं।

(३) विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता। सा च सर्वमेव जलप्रायं कुर्वाणा वर्षातिवृद्धयैवोपजायते ॥ (कादंबरी)

(३) *आर्द्रता*—विकारों का मूल प्रायः आर्द्रता होती है। वह सर्व जलमय करने वाली अतिवृष्टि से उत्पन्न होती है।

वक्तव्य—सरसता—इसमें रसके दो अर्थ हैं—(१) जलाधिक्यजन्य आर्द्रता या क्लिन्नता (Humidity, moisture)—रसो गंधरसे जले। मेदिनी ॥ आर्द्र भूमि, देश तथा वातावरण रोगोत्पादक होते हैं। अतः वर्षाऋतु प्रत्यक्ष जल बरसने के कारण, शरद संचित जल के कारण (वैद्यानां शरदी माता' श्लोक देखें) और आनूप देश इसी कारण से रोगभूयिष्ठ माने गये हैं—प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु खलु देहिनाम्। मन्देऽग्नौ कोपमायान्ति सर्वेषां मारूतादयः॥ बहूदकनिम्नोन्नतनदीवर्षगहनोकफवातरोगभूयिष्ठश्चानूपः ॥ सुश्रुत ॥ (२) काम ! राग, विषयवासना—गुणे राग द्रवे रसः। अमरकोश। विषयवासना या काम मनोविकारों का मूल होता है। विषयविज्ञानीय (पृष्ठ २०६)अध्याय देखिए। यह वचन श्लेषालंकार का उत्तम उदाहरण है, क्योंकिइसमें 'रस' के अतिरिक्त 'जल'

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

और वर्ष इनशब्दों पर भी श्लेष हैं। जलप्राय—(१) जलमय, जलपूर्ण। यह सामान्य अर्थ वैद्यकीय दृष्ट्या उपयुक्त है। (२) जडप्राय, मूढ, मूर्ख। यह श्लेष 'लके' स्थान में 'ड' का विपर्यय करने पर अधिष्ठित है—यमकश्लेषचित्रेपु बवयोर्डलयोर्न भित्॥ वाग्भटालंकार। और यह श्लेष नीचे दिये हुए कादंबरी के अर्थ में उपयुक्त है। वर्षातिवृद्ध्या—(१) अतिवृष्टि के द्वारा। यह सामान्य अर्थ वैद्यकीय दृष्ट्या उपयुक्त है। (२) बढती हुई उम्र से, जवानी से। यह श्लेष नीचे दिये हुए कादंबरी के अर्थ में उपयुक्त है।

(कादंबरी का अर्थ)—कामुकता (मानसिक) विकारों का हेतु है, जो सर्व प्रकारसे मूढ बनानेवाली वर्षावृद्धि (जवानी) से उत्पन्न होती है।

(४) ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते। (गोपथब्राह्मण)

(४) *काल*—ऋतुओं के संधिकाल में व्याधियों की उत्पत्ति हुआ करती है।

वक्तव्य—ऋतुसंधि—जानेवाले ऋतुका अन्तिम सप्ताह और आने वाले ऋतु का प्रारम्भिक सप्ताह इस प्रकार दो सप्ताहों का ऋतुसंधि होता है—ऋत्वोरन्त्यादि सप्ताहावृतुसंधि इति स्मृतः॥ अष्टांगहृदय॥ वर्षभर जलवायु (climate) एकसी नहीं होती वह बराबर बदलती रहती है और इस बदलती हुई जलवायु के आधारपर वर्ष के छः ऋतु किये गये हैं। मनुष्यों को अपना स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए बदलती हुई जलवायु के अनुसार अपना आहारविहार बदलना पड़ता है या बदलना उचित होता है। यह परिवर्तन इस ऋतुसंधि में धीरे धीरे करना हितकर होता है—तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥ अष्टांगहृदय॥ इस प्रकार आहारविहारमें परिवर्तन न करने से मनुष्यों में अनेक रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। इनको ऋतुज या प्राकृत (seasonal) रोग कहते हैं—कालप्रकृतिमुद्दिश्य निर्दिष्टःप्राकृतो ज्वरः॥ चरक॥ वैसे ही जब ऋतुओं की जलवायु में अनैसर्गिक या आगन्तुक हीन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मिथ्या अथवा अतियोग के स्वरूप के परिवर्तन होते है तब भी मनुष्यों में रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। उनको 'कालज' रोग कहते हैं—स्वगुणै-रतियुक्तेपु विपरीतेषु वा पुनः। विषमेष्वपि वा दोषाः कुप्यन्त्यृतुषु देहिनाम् ॥सुश्रुत॥ येषु कालेषु नियता ये रोगास्ते च कालजाः ॥ चरक।

दोषज सब रोगों की उत्पत्ति के तीन सर्व साधारण कारण होते हैं जो उपर्युक्त वचनों में वर्णित हैं—कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या न चाति च। द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतुसंग्रहः ॥ चरक ॥

(५) व्याधिर्वित्तविनाशः प्रियविरहो दुर्भगत्वमुद्वेगः।
सर्वत्राशाभङ्गः स्फुटं भवति ह्यकृतपुण्यस्य ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

(५) *पूर्वकर्म*—रोग, धननाश, प्रिय व्यक्तिका वियोग, कुरूपता, चित्तोद्वेग और सब कार्यों में निराशा ये जिसने पुण्य नहीं किया उसके यहाँ प्रकट हुआ करते हैं।

(६) यद्व्यंगाः कुष्ठिनश्चान्धाः पङ्गवश्च दरिद्रिणः।
पूर्वोपार्जित पापस्य फलमश्नन्ति देहिनः ॥ (भोजप्रबंध)

विकलांग, कुष्ठी, अंध, पङ्गु और दरिद्र लोग (अंग वैकल्य, कुष्ठ, अन्धता, पङ्गुता और दरिद्रता के रूप में) अपने पूर्वजन्मार्जित पापों का फल भोगते हैं।

(७) कर्मजा हि शरीरेषु रोगाः शारीरमानसाः।
शरा इव पतन्तीह विमुक्ता दृढधन्विभिः ॥ (सुभाषितावलि)

अपने पूर्वकर्म के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होनेवाले शारीरिक तथा मानसिक रोक मनुष्य के शरीर पर ठीक उस प्रकार आक्रमण किया करते हैं, जैसे अचूक धनुर्धारी से छोड़े हुए शर उसके लक्ष्य का ठीक वेधन किया करते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—कर्मज-पूर्वजन्म में किये हुए कर्म से उत्पन्न-जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि । कादंबरी ॥ यह भारतियों का कर्म सिद्धान्त है। मनुष्यों के अधिकसंख्य रोग इसी जन्म में कृत, दृष्ट, ज्ञाताज्ञात या स्मृत प्रज्ञा पराधादि रोगहेतुओं से हुआ करते हैं। इनको दोषज, 'प्रत्युत्पन्न कर्मज,' 'दृष्टकर्मज' 'दृष्टापचारज' कहते हैं। परन्तु कुछ रोग पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों से, जिसे दैव कहते हैं, भी हुआ करते हैं। इनको 'कर्मज', 'पूर्वापराधज', 'दैवज', 'पूर्वकर्मज', 'अदृष्ट कर्मज' कहते हैं—निर्दिष्टं दैवशब्देन कर्म यत्पौर्वदेहिकम् । हेतुस्तदपि कालेन रोगाणामुपलभ्यते ॥ चरक ॥ त एते पुनर्द्विविधा भवन्ति, प्रत्युत्पन्नकर्मजाः पूर्वकर्मजाश्च । तस्माद् दृष्टहेतवः प्रत्युत्पन्नकर्मजा विपरीता दैवजन्मानः ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ कर्मज रोग उत्पन्न करनेवाले पूर्वजन्म के कर्म कोई विशेष या अद्भुत होते हैं ऐसी स्थिति नहीं होती, वे भी इस जन्म में रोग उत्पन्न करनेवाले सामान्य हेतु ही, विशेषतया प्रज्ञापराध ही, होते हैं—इसको ध्यान में रखना चाहिए—प्रज्ञापराधात्संभूते व्याधौ कर्मज आत्मनः । नाभिशंसेद् बुधो देवान्न पितृन्नापि राक्षसान् । वाय्वादीनां यत् (जनपदोध्वंसनीयं) वैगुण्यमुत्पद्यते तस्य मूलमधर्मः, तन्मूलं वा कर्म पूर्वकृतं, तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव । चरक । तात्पर्य वैयक्तिक तथा सामुहिक कर्मजरोग वैयक्तिक तथा सामुहिक प्रज्ञापराध का ही परिणाम होता है।

इस जन्म के प्रज्ञापराध से इसी जन्म में रोग उत्पन्न होने की कल्पना को आधुनिक रोगविज्ञानविद् मानते है, परन्तु पूर्वजन्म के प्रज्ञापराधों से इस जन्म में रोगोत्पत्ति हुवा करती है इस कल्पना को मानना उनके लिए जरा कठिन है। परन्तु इससे यह कल्पना गलत है ऐसा नहीं कह सकते हैं. क्योंकि पूर्वजों के शरीर तथा स्वभाव के दोष उनके शुक्र शोणित (बीजों) द्वारा संतान में संचारित होते हैं। यह प्राचीन कल्पना जैसे विज्ञान से सिद्ध हुई हैं, वैसे पूर्वजन्म के कुकर्मों के दोष लिंगशरीर द्वारा अगले जन्म में रोगों के रूप में संचारित हो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सकते हैं यह प्राचीन कल्पना भविष्य में विज्ञान से सिद्ध हो सकती है। और यदि भविष्य में सिद्ध न भी हुई तो भी उसपर विश्वास करके तदनुसार व्यवहार करना व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकर ही है। तात्पर्य, रोगोत्पत्ति की इस कल्पना की उपयुक्तता विज्ञान द्वारा उसकी सिद्धि या असिद्धि के ऊपर अधिष्ठित नहीं है, वह स्वयं सिद्ध है।

(८) अथाग्निवेशः सततातुरान्नरान्
हितं च पप्रच्छ, गुरुस्तदाह च।
सदातुराः श्रोत्रियराजसेवका-
स्तथैव वेश्या सह पण्यजीविभिः ॥ (चरक)

रोगोत्पादकचर्या—सदा रोगी कौन पुरुष रहते हैं और उनके लिए हितकर क्या है? यह अग्निवेशने गुरु से पूछा, तब गुरुने उत्तर दिया—श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्या और वैश्य ये सदा सर्वदा रोग पीडित हैं।

वक्तव्य—श्रोत्रियादि–इनकी दिनचर्या नीचे के श्लोकों में बतलायी है, तदनुसार जिनका जीवन होता है उस वर्ग के ये प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। यदि वर्णानुसार विचार किया जाय तो श्रोत्रिय ब्राह्मणवर्ण का, पण्यजीवी वैश्यवर्ण का और राजसेवक तथा वेश्या शूद्रवर्ण का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्षत्रिय वर्ण का इसमें कोई प्रतिनिधि नहीं है। कारण यह है कि उनकी दिनचर्या व्यायामी परिश्रमी होती है—सर्वदिग्भागभागेषु हस्त्यश्वरथपत्तिषु। शस्त्रास्त्रैर्यस्तु संयोगः सचर्येति प्रकीर्त्यते॥ जिससे वे स्वस्थ रहते हैं, फिर सदातुर होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

(९) द्विजो हि वेदाध्ययनव्रताह्निक-
क्रियादिभिर्देहहितं न चेष्टते।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नृपोपसेवी नृपचित्तरक्षणात्
परानुरोधाद् बहुचिन्तनाद् भयात् ॥ (चरक)

द्विज वेदाध्ययन, व्रत, (पूजापाठादि) आह्निक कर्मों (में व्यस्त रहने) से अपने शरीर के हित की चेष्टा नहीं करता। राजसेवक भी राजा तथा (राजपरिवार के) अन्यों के मनोरंजन में चिन्तित तथा भयभीत रहने से अपने हित की चेष्टा नहीं करता।

(१०) नृचित्तवर्तिन्युपचारतत्परा
मृजाविभूषानिरतापणांगना।
सदासनादत्यनुबन्धविक्रय -
क्रयादिलोभादपि पण्यजीविनः ॥ (चरक)

(आये हुए) पुरुषों की मनोनुकूल सेवा में तथा (अपने शरीर की) स्वच्छता तथा वेषभूषा में तत्पर रही वेश्या तथा सदैव बैठे रहने से और क्रयविक्रय के लोभ में सदैव फँसे रहने से आपणिक भी (अपने हित की चेष्टा नहीं करता)।

वक्तव्य—उपचार—शिष्टाचार, सौजन्य-उपचारः कर्तव्यो यावदनुत्पन्नसौहृदाः पुरुषाः। उत्पन्नसौहृदानामुपचारः कैतवं भवति ॥ वेश्या के यहाँ 'क्रयक्रीत मैथुन' के लिए सब परपुरुष होते हैं। अतः उनके साथ बहुत सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना पड़ता है। सदासनात्-घण्टों बैठे रहने के कारण। सदासनी Sedantary, सदासनता Sedantariness.

(११) सदैव ते ह्यागतवेगनिग्रहं
समाचरन्ते न च कालभोजनम्।
अकालनिर्हारविहारसेविनो
भवन्ति येऽन्येपि सदातुराश्च ते ॥ (चरक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(उपर्युक्त स्वरूप की व्यवसायचर्या होने के कारण) ये सदैव मल मूत्रादि के वेगों को रोका करते हैं तथा समय पर भोजन नहीं करते। जो दूसरे भी इस प्रकार अकाल में मलमूत्रोत्सर्जन आहार तथा विहार किया करते हैं वे भी श्रोत्रियादि के समान सदा रोग पीडित रहते हैं।

वक्तव्य—निर्हार—मलादिनिर्गमः । चक्रपाणि ॥ आहार के विरुद्ध ।

(१२) अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च
दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ ।
संरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च
षड्भिः प्रकारैः प्रभवन्ति रोगाः ॥ (विक्रमचरित)

अतिशय जलसेवन, विषमाशन, दिवानिद्रा, रात्रिजागरण, मूत्र-विधारण, मलविधारण इन छः कारणों से रोग होते हैं।

(१३) कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥ (गरुडपुराण)

मलिन वस्त्रपरिधान करनेवाले, मलिन दाँत रखनेवाले, अधिक भोजन करनेवाले, कठोर भाषण करनेवाले, सूर्योदय-सूर्यास्त के समय निद्रा लेनेवाले विष्णु को भी लक्ष्मी परित्याग करती है।

वक्तव्य—कुचैल-(१) विष्णु की दृष्टि से जो पीतांबर जैसे महावस्त्र नहीं हैं। (२) स्वास्थ्य दृष्टि से मलीन वस्त्र। दन्त मल—दाँतों की सफाई न करने से मल उनके ऊपर उनके बीच में तथा उनकी जड़ों में इकट्ठा होता है, सडता है उसमें पूयजन जीवाणु (Pyogenic bacteria) बढ़ते हैं और इससे पूयदंत (Pyorrhoea alveola-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ris) उत्पन्न होता है। इसका पूय खानपान के साथ पेट में और पेट से रक्त में जाकर संधिविकारादि अनेक रोग उत्पन्न करता है। श्री–(१) विष्णु की पत्नी लक्ष्मी। (२) स्वास्थ्य रूप लक्ष्मी–धनमायुर्निरामयम्।

(१४) नीचेषु यावनी वाणी का, कः स्याच्छुभदो जने।

शम्भोरावरणं किं, कं भजन्ते व्याधयो जनम्॥

नीचों के प्रति यवनों की क्या पुकार होती है? मनुष्य के लिए शुभद क्या होता है? शंकर का क्या आवरण होता है? व्याधियाँ किस मनुष्य को पसंद करती है?

वक्तव्य—यह बहिरालाप का उदाहरण। इसके प्रथम तीन प्रश्नों के उत्तर जोड़ने से चौथे प्रश्न का उत्तर मिलता है। प्रथम प्रश्न का उत्तर है 'अवे' परन्तु 'वबयोः सावर्ण्य' इसके आधार पर वे के स्थान में वे लिया जायगा। दूसरे का उत्तर है 'लाभ' और तीसरे का है 'अजिनम्'। इस प्रकार चौथे का उत्तर होता है 'अवेलाभोजिनम्' अर्थात् भोजन के नित्य समय पर जो भोजन नहीं सेवन करता उसमें व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं (पृष्ठ १२०)

(१५) अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसंपदः॥ (शिशुपालवध)

क्षयहेतु—शक्ति से अधिक प्रयास क्षयरोग का हेतु होता है।

वक्तव्य—यह श्लोकार्ध चरक संहिता से ग्रहण किया गया है—अयथाबलमारम्भं वेगसंधारणं क्षयम्। यक्ष्मणःकारणं विद्याच्चतुर्थं विषमाशनम्॥ क्षयसंपदः राजयक्ष्मा से संपन्न होने का निदानम्–येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत्। क्षयोवृद्धिश्चदोषाणां निदानं हि तदुच्यते। वंगसेन॥ अयथाबलमारम्भः–पृष्ठ ३७ का वक्तव्य देखें।

(१६) तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः।

आमयस्तु रतिरोगसंभवो दक्षचाप इव चन्द्रमक्षिणोत्॥

(रघुवंश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कामासक्त होते हुए भी अग्निवर्ण पर अन्य राजालोक (बाह्यशत्रु) रघुकुल के प्रभाव से आक्रमण न कर सके। परन्तु दक्षशाप से जैसे चन्द्र वैसे वह क्षय (अन्तःशत्रु) से आक्रान्त हुआ।

वक्तव्य—रतिरोगसंभव आमय—अतिव्यवायजन्य रोग अर्थात् क्षय या फुफ्फुस यक्ष्मा (Phthisis, Pulmonary tuberculosis) क्षय के यद्यपि ऊपर चार कारण बताये हैं तथापि अतिव्यवायजन्य शुक्रक्षय ही उसका प्रधान कारण माना जाता है—एतया च प्रागुत्पत्त्या धातु-क्षयो राजयक्ष्मणः प्रधानं कारणम् ॥ चक्रपाणि ॥ साहित्य में भी जहां क्षयोत्पत्ति का निर्देश आता है, वहाँ पर यही हेतु पाया जाता है—चण्डघोषस्तु युवराजोऽत्यासंगादंगनासु राजयक्ष्मणाऽसुक्षयमगात् । दशकुमारचरित। दक्षशाप—प्रजापति का शाप जिससे चन्द्र में क्षय उत्पन्न हुआ—पूर्वं दक्षनामा प्रजापतिरभूत् , तस्य बह्वयो दुहितरो बभूवुः, तेन च सप्ताधिकाविंशतिः कन्यकाश्चन्द्राय विवोढे दत्ताः, स चन्द्रमास्तासु मध्ये रोहिण्यामेवानुरक्तो बभूव, ततश्च दुहितृभिरात्मपितरि दक्षसंज्ञके चन्द्रस्य रोहिण्यामासक्तिवृत्तान्तो निवेदितः, ततो दुहितॄणां वार्तामाकर्ण्य चन्द्रमाहूय सर्वास्वपि निजपुत्रीषु समतया वर्तनाय चन्द्रोऽभिहितः; स तथेति स्वीकृत्यापि गुरोर्वचनमनादृत्य न तासु समवर्तत, ततो दक्ष-प्रजापतेः क्रोधोविश्वासरूपेण मूर्तिमान् भूत्वा निःसृत्य यक्ष्मरूपेण रोहिण्यामतिप्रसंगेनाविलंचन्द्रमाविशत ॥ डल्हण ॥

(१७) अर्थवन्तं नरं नित्यं पंचभिर्घ्नन्ति शत्रवः ।
राजा चोरश्च दायादा भूतानि क्षय एव च ॥

(महाभारत)

राजा, चोर, दायाद, (भिक्षा मांगने वाले) मनुष्य और क्षय रोग ये पाँच शत्रु धनवान् का नाश करते हैं।

वक्तव्य—क्षय-यक्ष्मा विशेषतया फुफ्फुसयक्ष्मा (Pulmonary T. B.) राजा के समान धनवानों को, अमीरों को होने के कारण भी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इसको राजयक्ष्मा कह सकते हैं। अन्य व्युत्पत्तियों के लिए 'मावेदि यद्यसावेको' श्लोक का वक्तव्य देखिए। धनवान् लोग भोगी विलासी होते हैं, व्यायाम नहीं करते, खानपान में तथा स्त्रीसेवन में ज्यादती करते हैं। अतः इन्हें अनेक रोग हुआ करते हैं जिनमें राजयक्ष्मा एक महत्व का रोग है।

(१८) वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारा
ज्योतिर्विदा ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।
भूताभिषंग इति भूतविदो वदन्ति
प्राचीनकर्मबलवन्मुनयो वदन्ति ॥

चतुर्विधरोगनिदान—वैद्य कहते हैं कि रोग वातपित्तकफ (के प्रकोप) से होते हैं; ज्योतिषी कहते हैं कि वे ग्रहगति (के प्रभाव) से होते हैं; भूतविद् कहते हैं कि वे भूतों के आक्रमण से होते हैं और ऋषि मुनी कहते हैं कि वे बलवान् प्राचीन कर्म से होते हैं।

वक्तव्य—इस श्लोक में रोगोत्पत्ति के हेतु के संबंध में तज्ज्ञों के मतमतांतर निर्दिष्ट किये हैं। कफपित्त मरुत्—वातपित्तकफ, इनको दोष, मल तथा धातु भी कहते हैं। पृष्ठ २८ पर 'समदोष' श्लोक का वक्तव्य देखें॥ इनको त्रिदोष कहते हैं और आयुर्वेद ऋषि इनको सब रोगो का मूल मानते हैं—सर्वेषां च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलम् ॥ सुश्रुत ॥ आधुनिक वैद्यक की दृष्टि से सब अनौपसर्गिक (Non-infectious) व्याधियों का समावेश (जैसे, nervous, endocrine, metabolic, allergic, constitutional etc) दोषज व्याधियों में कर सकते हैं। ग्रहगति—नक्षत्रों में भ्रमण करनेवाले विविध ग्रहों का प्रभाव। 'नक्षत्र पीडा बहुधा यथा काल विपच्यते' तथा 'ग्रहनक्षत्रचरितैर्वा उपध्वस्यन्ते जनपदाः' सुश्रुत ॥ इस प्रकार के कुछ इनेगिने वचनों को छोड़कर आयुर्वेद में रोगोत्पत्ति की दृष्टि से ग्रहगति को विशेष महत्व नहीं दिया गया है, प्रधान कारण दोष हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भूताभिषंग—भूतों का आक्रमण या झपेटना। भूत शब्द यहाँ पर भूत-प्रेत पिशाच राक्षस निशाचर इत्यादि अदृश्य जीवों के लिए और भूताभिषंग 'अमानुषभूतोपसर्ग' (सुश्रुत) के लिए प्रयुक्त हुआ है। आधुनिक परिभाषा में भूताभिषंग का अर्थ विकारी सूक्ष्म जीवों का उपसर्ग (Infection by pathogenic organisms) होता है।

(१९) अपथ्याशनशीतोष्ण श्रमतापादिकारकम्।
तथाऽन्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसंगमे ॥

(मार्कण्डेय पुराण)

अपथ्य भोजन, शीतोष्ण, परिश्रम, मनस्ताप तथा पाप ये जो रोगोत्पत्ति के कारक होते हैं वे रोगोत्पत्तिरूप फल संगम के समय एक दूसरे (की सहायता) की अपेक्षा करते हैं।

वक्तव्य—प्राचीन पाप कर्म रोगोत्पत्ति के अदृष्ट कारण और अपथ्याशनादि अर्वाचीन कर्म रोगों के दृष्ट कारण होते हैं। अदृष्ट कारण रोगोत्पत्ति कर सकते हैं, परन्तु रोगोत्पत्ति के समय उनको दृष्ट कारणों की सहायता अपेक्षित होती है यह एक महत्व का सिद्धान्त इस श्लोक में बताया हैं। इसको ध्यान में रखकर स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए अपथ्याशनादि दृष्ट कारणों को सदैव टालना चाहिए।

(२०) सुखस्य दुःखस्य न कोऽपिदाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहंकरोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ (अध्यात्मरामायण)

स्वास्थ्य और व्याधि का कोई दाता नहीं होता, दूसरा कोई हमको स्वास्थ्य और व्याधि देता है यह विचार सरणी ठीक नहीं है। वैसे ही सब कुछ मैं प्राप्त कर सकता हूँ यह भी मिथ्या अभिमान है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तात्पर्य मनुष्य (सुखदुःखादि की प्राप्ति के सम्बन्ध में अपने (दृष्टादृष्ट) कर्मों से बंधा हुआ रहता है।

वक्तव्य—सुखदुःख—सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःख मेव च ॥ चरक ॥

(२१) व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ति
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥

(वैराग्यशतक)

शेरनी के समान जरा डर दिखाती हुई सामने खड़ी है; रोग शत्रु के समान शरीर पर बराबर आक्रमण करते रहते हैं; फूटे घड़े से चूनेवाले पानी के समान जीवित बराबर कम होता जाताहै; फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि लोग (आयुष्यह्रासकर रोगों को उत्पन्न करनेवाले और जरा को समीप लानेवाले) अपथ्यकर आहारविहार-विचार का सेवन किया करते हैं।

(२२) आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥

(वैराग्य शतक)

इति श्री भास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित—
साहित्ये रोगनिदानविज्ञानीयो नाम
एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सूर्य के उदयास्त के साथ दिनप्रतिदिन आयु घटती जाती है; बहुत कार्यभारवाले व्यापारों में फँसे रहने से समय बीतते पता नहीं लगता; लोगों के जन्म, वार्धक्य आपत् और मरण देखकर डर नहीं लगता, क्यों कि मोह उत्पन्न करनेवाली प्रज्ञापराधरूप मदिरा पीकर संसार उन्मत्त रहता है।

वक्तव्य—प्रमाद—बुद्धि के प्रमाद अर्थात् प्रज्ञापराध। पृष्ठ ३२० पर तृषा शुष्यत्यास्ये श्लोक का वक्तव्य भी देखें।

इति भास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां रोगनिदानविज्ञानीयो नाम
एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो बीजक्षेत्रवैशिष्ट्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) बीजमेके प्रशंसन्ति, क्षेत्रमन्ये मनीषिणः ।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये, तत्रेयं तु व्यवस्थिति ॥ (मनु)

एक बीज की, दूसरे क्षेत्र की, तीसरे बीज और क्षेत्र दोनों की प्रशंसा करते हैं। इन मतभेदों में वास्तविक स्थिति निम्न प्रकार की होती है।

वक्तव्य—वनस्पतिसृष्टि और प्राणीसृष्टि की उत्पत्ति में जैसे बीज और भूमि ये दो अंग होते हैं वैसे रोगसृष्टि की उत्पत्ति में भी दो अंग होते हैं। इनमें प्राणियों का शरीर भूमि और रोगोत्पादक हेतु बीज समझ सकते हैं। रोगोत्पादन में क्षेत्रबीज में से किसको प्राधान्य दिया जाय इसके संबंध में जो मतभेद हो सकते हैं वे सब इस श्लोक में वनस्पतिसृष्टि की उत्पत्ति के निमित्त प्रदर्शित हुए हैं और आगे के वचन में उनका तारतम्य बताया है।

(२) अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति ।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥
(३) सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ॥ (मनु)

अक्षेत्र में पड़ा हुआ बीज (भूमि में अंकुरित हुए बिना) बीच में ही नष्ट हो जाता है और सुक्षेत्र बीजरहित होने से अक्षेत्र हो जाता है॥ परन्तु जब सुक्षेत्र में सुबीज पडता है तब वह उत्तम रीति से उत्पन्न होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—अक्षेत्र-जिसमें पड़ा हुआ अंकुरित नहीं होता ऐसी ऊसर, अनुर्वर या अनुपजाऊ भूमि। क्षेत्र-सुक्षेत्र, जिसमें बीज अच्छी तरह अंकुरित होता ऐसी ऊर्वर या उपजाऊ भूमि। रोगसृष्टि की दृष्टि से बलवान् शरीर अक्षेत्र और कृश दुर्बल शरीर क्षेत्र या सुक्षेत्र होता है।

यहाँ पर भूमि वनस्पतिविहीन रहने के लिए जो दो अवस्थाएँ बतलायी हैं वे ही दो अवस्थाएँ शरीर नीरोग रहने की होती है; यथा, रोगहेतु उपस्थित होते हुए शरीर का बलवान् होना और शरीर दुर्बल होते हुए रोगहेतु का अनुपस्थित होना। वैसे ही भूमि वनस्पतियों से फूली फली रहने के लिए जो अवस्था बतलायी है वही अवस्था शरीर रोगों से आक्रान्त और ग्रस्त होने की होती है।

यह कथन संपूर्ण रोगसृष्टि के लिए यद्यपि लागू होता है तथापि प्राचीन परिभाषा के अनुसार अमानुषोपसर्गजन्य और अर्वाचीन परिभाषा के अनुसार जीवाणूपसर्ग (Microbic infection) जन्य रोगसृष्टि के लिए यथार्थतया लागू होता है। क्यों कि उसमें शरीर की बलवत्ता रोगक्षमता (Immunity) नामक एक विशिष्ट शक्ति के रूप में और रोगोत्पादक हेतु बीज के समान विशिष्ट सूक्ष्म जीवों (Micro organisms) के रूप में विद्यमान रहते हैं।

प्रत्येक स्थान के लोगों में सबल या रोगक्षम और निर्बल या अरोगक्षम लोग सदैव उपस्थित रहते हैं, परन्तु रोगहेतु सदैव उपस्थित नहीं रहते। इससे उस समय सब लोग एक से नीरोग रहते हैं। परन्तु वसन्तागमन होने पर जैसे कौआ कौआ ही रहता है और कोयल कोयल बनती है, वैसे रोगोत्पादक हेतुओं के आगमन पर सबल या व्याधिक्षम नीरोग ही रहते हैं और निर्बल या अव्याधिक्षम रोगी बनते हैं—काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः। वसन्ते समुपायाते काकः काकः पिकः पिकः॥ सबल निर्बल का भेद कैसे खुलता है इसको समझाने के लिए काक पिक का दृष्टान्त इस लिए दिया गया है कि वसन्तागमन;

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होनेपर कोयल के कण्ठ में सुस्वर उत्पन्न होते हैं और कौवे का कण्ठ ज्यों का त्यों रहता है—तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः। यावत् सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ॥ 'व्याधिक्षमत्वं' वचन का वक्तव्य देखें।

(४) न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति,
न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो,
न वेशजाताः शुचयस्तथाऽङ्गना ॥ (मृच्छकटिक)

पर्वतों के शिखर पर नलिनीकमल नहीं उत्पन्न होते, गधे घोड़ों की धुरा नहीं वहन कर सकते; यव बोने पर चावल नहीं उत्पन्न होते, और वेश्या के घर में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ पवित्र (सती) नहीं होती।

(५) यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन् बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ (मनु)

अनुकूल कालपर भूमि में जिस प्रकार का बीज बोया जाता है उस प्रकार का अंकुर उस भूमि में बीज के विशिष्ट गुणों से व्यञ्जित होकर उत्पन्न होता है।

(६) अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥ (मनु)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये बीजक्षेत्रवैशिष्ट्यविज्ञानीयो नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एक प्रकार का बीज बोया गया और दूसरे प्रकार का अङ्कुर उत्पन्न हुआ ऐसा कभी नहीं पाया जाता है। जिस प्रकार का बीज बोया जाता है उसी प्रकार का अंकुर उत्पन्न होता है।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों का तात्पर्य यह है कि जैसे अनन्तप्रकार की वनस्पतियाँ एक उर्वरा या उपजाऊ भूमि में उत्पन्न हो सकती हैं, प्रत्येक प्रकार की वनस्पति के लिए स्वतन्त्र भूमि की आवश्यकता नहीं होती वैसे अनन्त प्रकार की व्याधियाँ एक ही व्याध्यक्षम या रोग उत्पन्न होने योग्य (Susceptible) शरीर में उत्पन्न हो सकती हैं, प्रत्येक व्याधि के लिए स्वतन्त्र शरीर की आवश्यकता नहीं होती; तथा जैसे भूमि एक होने पर भी प्रत्येक प्रकार की वनस्पति के लिए उसके विशिष्ट बीज की आवश्यकता होती है, एक ही बीज से सब प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न नहीं हो सकतीं, वैसे शरीर एक होनेपर भी उसमें उत्पन्न होनेवाली प्रत्येक प्रकार की व्याधि के लिए उसके स्वतन्त्र हेतु या निदान की आवश्यकता होती है; एक ही हेतु से सब प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न नहीं हो सकतीं—नान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिः ।। चरक

रोगसंप्राप्ति (Pathogenesis) की दृष्टि से उपर्युक्त विवरण का तात्पर्य यह है कि रोग की उत्पत्ति में शरीर अधिक महत्व रखता है। यदि शरीर व्याधिक्षम (Immune or nonsusceptible) रहा तो हेतु कोई भी हो रोग उत्पन्न नहीं होगा और यदि शरीर व्याध्यक्षम रहा तो हेतु कोई भी हो रोग उत्पन्न होगा। इसके विपरीत विशिष्ट रोग की उत्पत्ति में हेतु महत्व रखता है। इसलिए यदि शरीर व्याध्यक्षम रहा तो हेतु जिस प्रकार का होगा उसके अनुसार उस प्रकार का रोग उत्पन्न होगा। यथानिदानं दोषोत्थः (वाग्भट) यह शास्त्र का नियम है। रोगहेतु असंख्य हैं, सबों के लिए यह नियम लागू है, जैसे, वातप्रकोपक हेतु होने पर वातरोग, पित्तप्रकोपक हेतु होने पर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पित्तरोग, रक्तदूषक हेतु होने पर रक्तरोग इत्यादि। परन्तु सर्वसाधारण रोगहेतुओं की अपेक्षा विकारी जीव-जन्तु-कृमियों के हेतुओं के लिए यह नियम अधिक लगभग पूर्णांश में लागू होता है। जैसे, अपतानक दण्डाणु (B. Tetanus) से केवल अपतानक या धनुस्तम्भ, विसूचिका वक्राणु (Vibrio cholera) से केवल विसूचिका या हैजा, तन्द्राभदण्डाणु (B. Typhosus) से केवल आन्त्रिक या तन्द्राभज्वर (Typhoid fever) होगा और दूसरा कोई रोग उत्पन्न नहीं होगा। पृष्ठ ७७ पर 'यथा भूमिस्तथातोयं' श्लोक का वक्तव्य भी देखिए तथा रोग क्षमता के लिए आत्मचिकित्सा का अध्याय देखिए— लोकेऽपि प्रायः कारणगुणभाञ्जैव कार्याणि दृश्यन्ते ॥ कादम्बरी ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां बीजक्षेत्रवैशिष्ट्यविज्ञानीयो नाम
द्वात्रिंशोध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो व्याधिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुःखमामयः ।
यक्ष्मातंकगदावाधशब्दाः पर्यायवाचिनः ॥ (अष्टांगहृदय)

व्याधिपर्याय—रोग, पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतंक, गद, आबाध ये शब्द पर्यायवाची हैं ।

वक्तव्य—पर्यायः—तुल्यार्थाभिधायिनां शब्दानामभिधानं पर्यायः। समानार्थशब्द (Synonym) रोगः—रुजतीति रोगः । इन्दु ॥ रुजाकरणाद्रोगः । पाप्मा—सर्वे रोगाः पापस्य कर्मणः फलमिति कृत्वा पाप्मेत्युच्यते ॥ अरुणदत्त । 'कारणे कार्योपचारादितिन्यायेन' पाप का अर्थ रोग किया गया है । ज्वरः–देहमनस्तापकरत्वात् । यह ताप सर्व रोगों में होने से ज्वर का सामान्य अर्थ रोग और विशेष रूप से ताप में (Fever) होने से इसका विशेष अर्थ ताप होता है–ज्वर प्रत्यात्मिकं लिंगं संतापो देहमानसः । चरक । व्याधिः–विविधं दुःखमादधातीति व्याधिः । विकारः–बुद्धीन्द्रियमनः शरीराणामन्यथात्वम् (Abnormality) । दुःखम्–सर्वेषां प्रतिकूलतया वेदनीयं दुःखम् । तर्कसंग्रह । बाधनालक्षणं दुःखम् ॥ न्यायसूत्र ॥ आमयः–(१) आमयतीति आमयः । अम् रोगे । (२) आमसमुत्थः आमयः । आम के अनेक अर्थ होते हैं, परन्तु वे सब रोगोत्पादक हैं—आममन्नरसं केचित् केचित्तु मलसंचयम् । प्रथमां दोषदुष्टिं च केचिदामं प्रचक्षते । आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् । समूलं सर्वरोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥ मधुकोशव्याख्या ॥ पृष्ठ १६० पर आमयावी भी देखें। यक्ष्मा–(१) इस वचन के अनुसार यक्ष्मा सामान्य रोग का पर्याय जरूर है और 'राजयक्ष्मा',

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

'यच्च राजा च यक्ष्मा च' इन शब्द प्रयोगों में वह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वेदों में इस अर्थ में यक्ष्मा शब्द अधिक प्रयुक्त हुआ है—शिवौतेस्तां व्रीहियवावलासावदोमधौ। एतौ यक्ष्मं विबाधेते एतौ मुञ्चत अंहसः ॥ अथर्ववेद ॥ परन्तु सामान्य रोग के अर्थ में वैद्यक में तथा भाषा में इसका उपयोग प्रायः नहीं होता। (२) इसका रूढ़ और परिचित अर्थ है राजयक्ष्मा (Tuberculosis) और 'नामैकदेशे नामग्रहणं' इसके अनुसार यक्ष्मा शब्द उसके लिए रूढ़ हुआ है। वैद्यक में तथा बोलचाल में इसी अर्थ में यक्ष्मा प्रयुक्त होता है और इस अर्थ में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—वैद्योऽव्याधिमतायस्माद् व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते। स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ भावप्रकाश ॥ राजयक्ष्मा एक कठिन और दुश्चिकित्स्य रोग है। वैद्यराज इसकी चिकित्सा मनोयोग देकर करें, इस लिए धनादि से वैद्यजी को पूजित करके संतुष्ट रखना पड़ता है। इस अनुभव पर यक्ष्मा की (यक्ष पूजायाम्) यह व्युत्पत्ति दी गयी है। अधिक विवरण के लिए 'मावे-दियद्यसौ' श्लोक का वक्तव्य देखें। आतंकः–'तङ्क (तकि) कृच्छ्रजीवन-इत्यस्य धातोराङ्‌पूर्वस्य रूपम्। सर्वांगसुन्दरीटीका। पीडा, ताप और भय या आशंका ये आतंक के तीन अर्थ हैं–रूक्तापशंकास्वातङ्कः। अमरकोश ॥ ये तीनों अर्थ रोगी में उपस्थित रहने के कारण तथा इनसे रोगी का जीवन कष्टमय होने के कारण आतंक शब्द वैद्यक में तथा साहित्य में रोग के लिए प्रचलित है—आतंकपंकमग्नानां हस्ता-लंबो भिषग्जितम्। अष्टांगहृदय ॥ इन पर्यायों के अतिरिक्त रुज्, रुजा, उपताप ये भी रोग के पर्याय हैं—स्त्री रुक्रुजाचोपताप रोगव्याधि गदामयाः ॥ अमरकोश ॥

(२) तद्दुःखसंयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते। (सुश्रुत)

व्याधिव्याख्या—जिनका संयोग उसके दुःख के लिए होता है वे व्याधियाँ हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—तत्-पुरुष के लिए है। पुरुष समनस्क शरीर और आत्मा का समवाय है। इसमें आत्मा ज्ञानी है जो समनस्क शरीर के संयोग से विविध स्वरूप की संवेदनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेता है—अस्मिन् शास्त्रे पंचमहाभूत शरीर समवायः पुरुष इत्युच्यते ॥ सुश्रुत ॥ आत्माज्ञः करणैर्योगाज् ज्ञानं तस्य प्रवर्तते। करणानामवैमल्यादयोगाद्वा न वर्तते ॥ करणानि मनोबुद्धिर्बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च। कर्तुः संयोगजं कर्मवेदना बुद्धिरेव च ॥ चरक ॥ शरीर और मन जब स्वस्थ (Normal) रहता है तब पुरुषको दुःख नहीं होता, वह प्रसन्न रहता है। (पृष्ठ २७) और आत्मा को जब शरीर मन से दुःख होता है तब शरीर मन तद्गत विशिष्ट परिवर्तनों के कारण अस्वस्थ रहता है। यही रोग है। पृष्ठ २८ पर 'विकारो धातुवैषम्यं' श्लोक भी देखें।

(३) रोगस्तु दोषवैषम्यम्। (अष्टांगहृदयम्)

रोग (रसरक्तादि धातु और वातादि) दोषों का वैषम्य है।

वक्तव्य—ऊपर के वचन में लाक्षणिक दृष्ट्या रोग की परिभाषा है और इसमें रोग संप्राप्ति की दृष्टि से (Pathogenesis) परिभाषा है और इसका तात्पर्य है कि दोषधातु वैषम्य (Abnormality) रोग है।

(४) त एवापरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि।
रुजावर्णसमुत्थानस्थानसंस्थाननामभिः ॥ (चरक)

व्याधियों की अपरिसंख्येयता—ये व्याधियाँ लक्षण, वर्ण, हेतु, शरीरगत स्थान, रूपाकृति तथानाम इनके आधार पर विभक्त करने से अपरिसंख्येय हो जाती हैं।

(५) एकारोगोरुजाकरणसामान्यादिति भार्गवप्रमितिः ॥

(काश्यपसंहिता)

व्याधियों का एकत्व—पीडा करने की समानता (सब रोगों में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होने) से (असंख्य होते हुए भी) रोग एक ही है ऐसा भार्गव प्रमिति का मत है।

वक्तव्य—प्राणियों के स्वास्थ्य का नाश करनेवाले रोगों की संख्या प्राचीन काल में भी सैकड़ों रहीं, डल्हण ने अपनी टीका में यह संख्या ११२० बतलायी है—रोगाणां तु सहस्रं यच्छतं विंशतिरेव च। डल्हण ॥ आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते ॥ आधुनिक काल में वैद्यकशास्त्र की उन्नति के साथ तथा सूक्ष्मतम शरीरगत परिवर्तनों का अवलोकन करने के विविध साधन उपलब्ध होने के कारण रोगों की संख्या प्राचीनकाल से कई गुना अधिक हो गयी है और भविष्य में और भी अधिक होने की संभावना है।

स्वास्थ्य और रोग एक दूसरे के पूर्णतया विरोधी है और यह विरोध केवल शारीरिक स्थिति में नहीं, संख्या में भी है। जहाँ स्वास्थ्य एक वहाँ रोग असंख्य, परन्तु यह असंख्यता वास्तविक नहीं, स्थान समुत्थानादि के कारण उत्पन्न हुए एक ही दोषधातु के रूपवैषम्य की है—एको रसः करुण एव निमित्त भेदाद् भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम् ॥ उत्तररामचरित ॥ अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपं बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ कठोपनिषद् ॥ एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ वसिष्ठसंहिता ॥

मनुष्यों के असंख्य रोगों में एकता देखने का यह प्राचीन महर्षियों का मत केवल कवि कल्पना नहीं है, किन्तु सर्व भूतों में एक परमात्मा देखने की उनकी उत्तुंग कल्पना के समान रोगविज्ञान के उनके विशाल तथा गंभीर ज्ञान की द्योतक होती है यह पाश्चात्य वैद्यक के एक उदाहरण से स्पष्ट होगा। उसमें its अक्षर अन्त में होनेवाले सैकड़ों रोगनाम मिलेंगे। सामान्य मनुष्य को ये सब भिन्न-भिन्न रोग मालूम

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होंगे। परन्तु व्याधितत्वज्ञ की दृष्टि से ये सैकड़ों रोग नहीं, एक ही रोग है और वह है 'शोथ' (Inflamation), जिसके विविध अंग-प्रत्यंगों में होने से ये सैकड़ों रूप दिखाई देते हैं।

मनुष्यों में होनेवाले असंख्य रोगों की चिकित्सा के लिए प्राचीन काल में भी अनेक चिकित्सासंप्रदाय ('अधमः शस्त्रदाहाभ्याम्' श्लोक देखें) प्रचलित थे। वर्तमानकाल में उनकी संख्या और भी अधिक हो गयी है। परन्तु इनका आपस में कोई संबंध नहीं ऐसा कदापि न समझना चाहिए। जैसे रोगनाम असंख्य होते हुए भी 'रुजाकरण-सामान्यात्' रोग एक ही होता है वैसे चिकित्सासंप्रदायनाम असंख्य होते हुए भी 'रुजाहरण सामान्यात्' चिकित्साशास्त्र या वैद्यक एक ही होता है और इसलिए विविध चिकित्सा संप्रदाय शरीर के विविध अंग-प्रत्यंगों के समान एक ही वैद्यक के अंगप्रत्यंग समझने चाहिएँ—एकं वैद्यकं रुजाहरण सामान्यादिति भास्कराचार्यः॥ अधिक विवरण के लिए 'एकं शास्त्रमधीयानः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(६) द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म, निर्द्वन्द्वं नोपलक्ष्यते॥

(७) शारीराज्जायते व्याधिर्मानसो नात्र संशयः।
मानसाज्जायते व्याधिः शारीर इति निश्चयः॥ (महाभारत)

रोगों का द्वैविध्य—शारीर और मानस करके रोग दो प्रकार के होते हैं। इनका जन्म परस्परावलंबी होता है, ये अकेले नहीं दिखाई देते॥ शारीर से मानस होता है इसमें संदेह नहीं होता; और मानस से शारीर होता है यह भी निश्चित है।

वक्तव्य—ऊपर के वचन में लक्षण सामान्य के आधार पर रोगों का एकत्व प्रदर्शित करके इन वचनों में अधिष्ठान के आधार पर उनका

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्विविधत्व बताया है—अधिष्ठानद्वयं तेषां शरीरं मन एव च। आधयो मानसास्तत्र, शारीरा व्याधयः स्मृताः॥ काश्यप॥ निर्द्वन्द्वं नोपलभ्यते—चिकित्सा पुरुष 'सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्'। चरक॥ इस प्रकार तीन अधिष्ठानों का बनता है। इनमें आत्मा नीरोग या अनामय होने से रोगोत्पत्ति के लिए शरीर और मन दो ही रहे। ये दोनों तिपाई के पैयाँ होने से जुडवे बच्चे के समान दोनों मिलकर रहते हैं जिससे एक की विकृति का प्रभाव दूसरे के ऊपर होकर वह भी रोगी हो जाता है। परन्तु नामकरण में दोनों का समावेश नहीं किया जाता, किन्तु 'व्यपदेशस्तु भूयसा' इस न्याय से जिसमें रोग की प्रथमता तथा प्रधानता होगी उसका नाम-शारीर या मानस-दिया जायगा।

(८) भक्तद्वेषो जले प्रीतिः सुरुचिर्गुरुलङ्घने।
मुखे कटुकता नित्यं धनिनां ज्वरिणामपि॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

ज्वर—भक्तद्वेष, जल में रुचि, गुरु लंघन में विशेष रुचि और मुख में कटुता ये धनियों में पाये जाने वाले लक्षण ज्वरितों में भी होते हैं।

वक्तव्य—इस श्लोक के भक्तद्वेष, जल, गुरुलंघन और कटुकता इन शब्दों पर श्लेष है—नानार्थसंश्रयः श्लेषः॥ चन्द्रालोक॥ भक्तद्वेष—(१) विश्वासू सेवकों के प्रति द्वेष। (२) भोजन में द्वेष—चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वाऽपि भोजनम्। द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते॥ वृद्धभोज॥ जले प्रीतिः—(१) जडों मूर्खों के प्रति प्रेम। यहाँ पर 'डलयोः सावर्ण्यं' इस आधार पर जल के बदले जड शब्द का ग्रहण करना है। (२) जलप्रीति अर्थात् जल सेवन की अभिलाषा। गुरु-लंघने—(१) गुरूणां लंघने। तत्पुरुषसमास। गुरुजन, वृद्ध आप्तजन इन की आज्ञा का उल्लंघन, अतिक्रमण करने में। (२) दीर्घकाललंघने, कर्मधारयसमास। दीर्घ उपवास करने में—लंघनं तूपवासे स्यात् क्रमणे

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(अतिक्रमणे) प्लवनेऽपि च ॥ मेदिनी ॥ कटुकता–श्रवणकटु, चुभने वाले शब्दों का उच्चारण । (२) मुख में सदैव कडवापन, तिक्तास्यता । धनिनाम्–धनरोग से पीडितों में–संपद्रोगोऽयमद्भुतो राजन् ।

भक्तद्वेष और कटुकता ज्वर के लक्षण हैं। लंघनरुचि भक्तद्वेष का परिणाम है और ज्वरित के लिए हितकर भी होता है, क्योंकि ज्वर की चिकित्सा लंघन से ही प्रारंभ की जाती है–ज्वरादौ लंघनं प्रोक्तं ज्वर-मध्ये तु पाचनम्' ज्वरान्ते रेचनं दद्यात् सर्वज्वरचिकित्सितम् ॥ योग-रत्नाकर ॥ 'शयनं पित्तनाशाय' श्लोक का वक्तव्य देखें। जलप्रीति तृषा लक्षण का परिणाम है।

(९) कृतारुचिः पृथुश्वासस्तमोदृष्टिर्विरागवान् ।
कन्यायावरणे वृद्धो मूर्तो ज्वर इवागतः ॥ (देशोपदेश)

घृणा उत्पन्न करने वाला, जोर से हाँफने वाला, ठीक दिखाई न देने वाला (अंधे के समान), विरागी सा वृद्ध वर जब कन्यावरण के लिए आता है तब (अरोचक, श्वास, धुंधली दृष्टि या लाल आँखें, त्वचा की विवर्णता, इत्यादि लक्षणों युक्त) ज्वर (के रोगी) की जीती जागती मूर्ति सा प्रतीत होता है।

(१०) यद्भक्ष्यमम्लकटुतिक्तमपेक्षते त–
न्नस्वादुखादति च सूक्षयते हितोक्तम् ।
जङ्घाविवेष्टयति हुंकृतिमादधाति
बालेषु न क्वचन दर्शयते रुचिं च ॥ (जीवानन्द)

ज्वरी अम्ल, कटु, तिक्त रसों की अपेक्षा करता है, स्वादु द्रव्य नहीं सेवन करता, पथ्य कर खाद्यों का द्वेष करता है, पिण्डलियों में ऐंठता है, कण्ठ से आवाज करता है, और मनुष्यों का बच्चों के प्रति जो स्वाभाविक प्रेम होता है उसको भी प्रदर्शित नहीं करता।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(११) आलस्यमश्मयतां पुलकोद्गमं च
गात्रे करोति न रतिं क्वचिदातनोति ।
जाताश्रुजृम्भयति दृष्टिविघूर्णमल्प-
घ्राणं तमम्बु च पिपासयेऽनुवेलम् ॥ (जीवानन्द)

ज्वर शरीर में आलस्य, भारीपन, रोमहर्ष, बेचैनी, आखों में पानी के साथ जँभाई, सिर में चक्कर, बलहानि और बारबार पानी पीने की इच्छा उत्पन्न करता है ।

(१२) वैकल्यं धरणीपातमयथोचितजल्पनम् ।
संनिपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत् ॥ (पंचतन्त्र)

संनिपात—दुर्बलता, शय्याग्रस्तता (Bedridden state), प्रलाप (Delirium) ये संनिपात के सर्व लक्षण मद्य (मद्यपमें) उत्पन्न करता है ।

वक्तव्य—संनिपात–त्रिदोषजज्वर । मन्त्रिणां 'भिन्नसंधाने' श्लोक देखें । विशेष लक्षणों के आधारपर इसके तन्द्रिक, चित्तविभ्रम, रक्त-ष्ठीवी, प्रलापक इत्यादि अनेक प्रकार किये गये हैं । आधुनिक तन्द्राभ (Typhoid) तन्द्रिक (Typhus) ज्वर संनिपात ज्वर के ही भेद समझ सकते हैं । संनिपात के उपर्युक्त लक्षणों का स्वरूप शराबी में निम्न प्रकार का होता है । वैकल्य–हाथ पैर होते हुए भी लूले-लंगड़े के समान व्यवहार करना । धरणीपात–चलते समय बारबार भूमि पर गिरना । अयथोचित जल्पनम्–बीभत्स, अश्लील बकझक करना ।

(१३) आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैर्लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम् ।
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के ॥
(शिशुपाल वध)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपस्मार—पृथ्वी को आलिंगन दिये हुए, जोर से सीत्कार करते हुए, हाथी की सूँड के समान चलायमान तथा बडेबडे तरंगों से युक्त, फेन को उगलने वाले नदीपति समुद्र को (भगवान् श्री कृष्ण) मृगी का रोगी समझते रहे।

वक्तव्य—भुज-हस्तिकर हाथी की सूँड

(१४) न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः।
भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्भव्यमसमं
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च॥

(शृंगारशतक)

यह स्मरापस्मार न मन्त्रों से वश में आता है, न औषधियों से ठीक होता है, न विविध शान्ति कर्मों से नष्ट होता है और जब उसका भ्रमोत्पादक आवेग आता है तब अंगों पर विचित्र परिणाम होते हैं, आँखें फिर जाती हैं और सिर चक्कर खाने लगता है।

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों में अपस्मार (Epilepsy) का वर्णन किया है; प्रथम में समुद्र के लक्षणों से और द्वितीय में कामातुरता के लक्षणों से। ये लक्षण अपस्मार रोग के लक्षणों से कितने मिलते जुलते हैं यह प्रत्येक लक्षण के सामने अपस्मार के दिये हुए लक्षणों से स्पष्ट होगा। आश्लिष्टभूमिम्-प्रस्खलन् पतति क्षितौ। अष्टांगसंग्रह॥ रसितारमुच्चैः-असाम्ना विलपन्तम्, अवकूजन्तम् ॥ चरक॥ लोलद्-भुजाकारबृहत्तरंगम्-हस्तौ पादौ च विक्षिपन्। चरक॥ फेनायमानम्-दन्तान् खादन् वमन् फेनम्। सुश्रुत॥ भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्-भव्यमसमम्-तमो विशन् मूढमतिर्बिभत्साः कुरुते क्रियाः॥ अष्टांग-संग्रह॥ भ्रमयति दृशम्-भ्रूव्युदासः, सततमक्ष्णोर्वैकृतम्। चरक॥ घूर्णयति च-मूढा भ्रान्तेन चेतसा। चरक॥ स्मरापस्मार-कामदेव का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

संचार, कामातुरता। इससे होने वाले मनमस्तिष्क के लक्षण अपस्मार-सम होने के कारण इस को स्मरापस्मार कहा है। परन्तु इसमें श्लेष द्वारा अपस्मार से इसका भेद भी प्रदर्शित किया है। अपस्मार में स्मरण नष्ट होता है—स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषग्विदः॥ चरक॥ परन्तु यह अपस्मार सस्मरण (स्मर—स्मरणयुक्त) होता है।

(१५) वरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवाद्विभवादिह।
कृशताऽभिमता देहे पीनता न तु शोफतः॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

सर्वांगशोफ—इस संसार में अन्याय से प्राप्त धनवैभव की अपेक्षा दरिद्रता अच्छी होती है, जैसे सर्वांगशोफजन्य शरीर के मोटेपन से स्वस्थावस्था की कृशता अच्छी होती है।

वक्तव्य—शोफ-त्वचाके नीचे लस (Serum) इकट्ठा होने से जो उत्सेध उत्पन्न होता है उसे शोफ (Oedema) कहते हैं। यहाँ पर शोफ से सर्वांगशोफ (General anasarea) अभिप्रेत है। इसमें शरीर की संपूर्ण त्वचा के नीचे जल इकट्ठा होने से शरीर बहुत मोटा हो जाता है, परन्तु यह मोटापन हृष्ट-पुष्टता तथा स्वास्थ्य का निदर्शक न होकर हृदय, वृक्क (Kidney) और यकृत् जैसे मर्मांगों की विकृति-का निदर्शक होता है।

(१६) त्वया विधेया न गिरो मदर्थाः क्रुधाकदुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंस कुलावतंस॥
(नैषध)

कामला—हे हंसकुलभूषण? जब नल का चित्त क्रोध से (या अन्तः पुर की अन्य स्त्रियों के पाश में फँस जानेसे) विचलित हो उस समय उनको मेरी ओर से कुछ भी कथन न करें (क्यों कि उस समय मैं सुन्दर होने पर भी उनको कुरूप मालूम होगी)। पित्त (प्रकोपजन्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कामला) से जिह्वा दूषित होने पर शर्करा भी कडवी प्रतीत हुआ करती है।

(१७) निजदोषावृतमनसामतिसुंदरमेवभाति विपरीतम्।
पश्यति पित्तोपहतः शशिशुभ्रशंखमपि पीतम् ॥

अपने दोषों से जिसका मन दूषित हो गया है उसको सुन्दर (निर्दोष) वस्तु भी असुन्दर (सदोष) मालूम होती है, जैसे, पित्त-पीडित रोगी को चन्द्रमासम शुभ्र शङ्ख भी पीला दिखाई देता है।

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों में 'पित्तेन दूने' और पित्तोपहत' शब्दों से कामला (Jaundice, Icterus) रोग का निर्देश किया है। प्रथम वचन में कामला का 'तिक्तास्यता' (मुँह में कडुवापन) और दूसरे वचन में पीतावलोकन (पीला दिखाई देना या पीत दृष्टि Yellow vision, Xanthopsia) लक्षण निर्दिष्ट किया है। कामला के अनव-रोधज (Nonobstructive) और अवरोधज (Obstructive) करके दो प्रकार होते हैं। अवरोधज में पित्त रक्त में अवशोषित होता है और नेत्र, नख, त्वचा में संचित होकर उन्हें रंगीन बनाता है। पित्त रंग में पीला हरा और स्वाद में कटु होने से मुँह में कडुवापन और नेत्रादि में पीलापन उत्पन्न करता है। शङ्खमपि पीतम्—पीतदृष्टि के लिए संस्कृत कवियों का यह प्रिय दृष्टान्त है—हरिकर पुष्करहंस हारमणीनां प्रसूतिमिव लक्ष्म्याः। पित्तेन पांचजन्यं पीतं पश्यन् भिषज्यति किम् ॥ सुभाषितनीवि ॥

(१८) स्मारं ज्वरं घोरमपत्रविष्णोः
सिद्धागदङ्कारचये चिकित्सौ।
निदानमौनादविशद्विशाला
सांक्रामिकी तस्य रुजैव लज्जा ॥ (नैषध)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

संक्रामकरोग—घोर कामज्वर की चिकित्सा करनेवाला चिकित्सा-समर्थ वैद्यगण रोग के निदान की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ न होने के कारण लज्जाशील नल की विशाल लज्जा संक्रामक रोग के समान उस (वैद्यगण) में संक्रामित हुई ॥

वक्तव्य—नल के रोगका निदान करने में 'असमर्थ होने के कारण वैद्य समूह लज्जित हो गया यह इस श्लोक का सीधा अर्थ है, परन्तु कवि ने उसको इस प्रकार सीधा न कहकर वैद्यकीय उपमा से याने वैद्यकीय परिभाषा में कहा है। जो रोग रोगी से या दूषित स्थान से लोगों पर फैलते हैं उनको संक्रामक कहते हैं। संक्रमण के अनेक मार्ग होते हैं। परन्तु रोगी या दूषित स्थान के न्यूनाधिक संपर्क में आना प्रधान मार्ग है। इसलिये उनको औपसर्गिक (Infectious) भी कहते हैं—'आसनाच्छयनाच्चैव' श्लोक का (पृ० ३२२) वक्तव्य देखें॥ केवल समीप होने से रोग का संक्रमण नहीं होता, समीप आनेवालों में दुर्बलता, असमर्थता याने वैद्यकीय परिभाषा में ग्रहणशीलता (Susceptibility) भी होनी चाहिए। यहाँ पर कवि ने लज्जा एक संक्रामक मनोविकार समझा है। नल में यह विकार बहुत (विशाला) था। वैद्यगण उसके पास पहुँचा था और रोगनिदान करने में असमर्थ होने के कारण उसकी स्थिति इस विकार को ग्रहण करने में अत्यन्त अनुकूल हुई थी। इसलिए नल की लज्जा वैद्यगण पर संक्रामक हो गयी जिससे वैद्यगण लज्जित हुआ। अगदंकार-कन्यान्तपुरबाधनाय श्लोक का वक्तव्य देखें।

(१९) मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।

राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम् ॥ (शिशुपालवध)

राजयक्ष्मा—चेदिराट् (शिशुपाल) अकेला है, अतः वह आसानी से जीतने योग्य है यह न समझों। जैसे क्षय (अकेला न होकर) अनेक रोगों का समूह होता है। वैसे शिशुपाल अनेक राजाओं का समूह है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः—यह शब्द रचना भी चरक से ली गयी है, ३३६ पृष्ठ पर 'अयथाबलमारम्भः' श्लोक देखें। राजयक्ष्मा (Tuberculosis) को ठीक करना कोई मामूली काम नहीं है, क्योंकि राजा के समान उसको मदत करने वाले उसके साथ अनेक उपसर्ग और उपद्रव रहते हैं। इसलिए उसको 'रोगाणां समूह' कहा है। चरक में राजयक्ष्मा की यही विशेषता वर्णित है—राजयक्ष्मा रोगसमूहानां श्रेष्ठः॥ राजयक्ष्मा के समूह में होने वाले रोग कुछ उसके पहले प्रकट होते हैं, कुछ पश्चात्—अनेक रोगानुगतो बहुरोग पुरोगमः। अष्टांगहृदय॥ राजयक्ष्मा शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से दी जा सकती है—(१) 'यक्ष्मणां रोगाणां राजा' राजयक्ष्मा,—यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततः स्मृतः॥ चरक॥ रोगों का राजा इसलिए उसको 'रोगराट्' भी कहा है—राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः॥ अष्टांगहृदय॥ (२) यथा राजा प्राक् पश्चाज्जनैरनुगम्यते तथा अयं रोगः अतो राजयक्ष्मा॥ (३) नक्षत्रों का, औषधियों का, द्विजों का राजा चन्द्र उसको यह प्रथम हुआ इसलिए उसको राजयक्ष्मा याने राजा का रोग कहते हैं—नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा। अष्टांगहृदय॥ यस्मात्स राज्ञः प्रागासीद्राजयक्ष्मा ततो मतः॥ चरक॥ (४) राज्ञां धनिनां यक्ष्मा राजयक्ष्मा। 'अर्थवन्तनरं नित्यं' (३४० पृष्ठ) श्लोक देखिए। अन्य रोगों की तुलना में सबसे अधिक मनुष्य इससे पीडित तथा मृत होने के कारण अँग्रेजी में भी इसको (Captain of death) कहते हैं।

(२०) जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च।
ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च॥
यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया।
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः॥

(शृङ्गारशतक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कुष्ठ—जन्म से अन्धा, दुर्मुख, सर्वाङ्ग जराजीर्ण हुआ, देहाती, नीच कुल में जन्मा हुआ गलत्कुष्ठ से पीडित ऐसे पुरुष को अल्पधन के लालच से अपना सुन्दर शरीर देने वाली और विवेक रूप कल्पलता का छेद करने वाली वेश्याओं में कौन आसक्त होगा ?

वक्तव्य—कुष्ठ–इसका सर्वसामान्य अर्थ त्वग्विकार है–त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्तितत् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ कुष्णाति निष्कुषितं प्रभिन्नं प्रस्रुतांगं च करोतीति कुष्ठम्' यह इसकी निरुक्ति है—कालेनोपेक्षितं यस्मात् सर्वं कुष्णाति तद्वपुः ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ इसमें खुजली (Itches) से लेकर कोढ़ (Leprosy) तक सब त्वविकारों का समावेश होता है । गलत्कुष्ठ—(१) इसमें त्वचा मोटी, कंगुरेदार और व्रणित होती है, आगे त्वचादि धातु गलने लगते हैं, नासा बैठ जाती है, अंगुलियाँ गिरकर उनके ठूंठ रह जाते हैं । कुष्ठ का यह विशेष प्रकार है और अंग गलने से इसको गलत् या गलित कुष्ठ (Leprosy) नाम दिया है जिससे अन्य कुष्ठों से विशेषतया श्वित्र से इसका पार्थक्य हो जाय–पादयोः श्वयथुस्तोदो गलन्त्यङ्गुलियो यदि । नासिकास्वरयोर्भङ्गो गलत्कुष्ठस्य लक्षणम् ॥ रस रत्नसमुच्चय ॥ (२) गलत्कुष्ठ की प्रारम्भिक अवस्था में त्वग्व्रणन, अंगगलन, नासाभङ्ग इत्यादि लक्षण नहीं होते, उसकी अन्तिम या तृतीयावस्था में होते हैं । इसलिए गलत्कुष्ठका एक मर्यादित अर्थ उसकी तृतीयावस्था (Lepra mutilans) है । इस भर्तृहरी के वचन में यह अर्थ अभिप्रेत है ।

(२१) यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥

(योगवासिष्ठ)

श्वित्र—कीर्तिवन्तों की शुद्ध कीर्ति को और गुणवन्तों के प्रशंसनीय गुणों को जरा सा लोभ वैसे नष्ट कर देता है जैसे श्वित्र (का छोटा सा धब्बा रूपवन्तों के) प्रिय रूप को ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—श्वित्र–श्वेतभावात् श्वित्रम् । काश्यपसंहिता ॥ इस रोग में त्वचा अवर्णक होने से मनुष्य सफेद दिखाई देता है। इसलिए इसको श्वेत कुष्ठ या श्वित्र कहते हैं। किलास इसी का पर्यायवाची नाम है जो वेद में अधिक प्रयुक्त होता है–अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि । दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्मश्वेतमनीनशम् ॥ अनीनशत्किलासं सरूपामकरत्त्वचम् ॥ अथर्ववेद ॥ प्रारम्भ में त्वचा में एकाध सफेद धब्बा दिखाई देता है। वैदिक किलास का यही अर्थ है और इसी अर्थ में इस वचन में श्वित्र का उपयोग किया गया है। जब शरीर भर त्वचा में ऐसे छोटे-मोटे धब्बे बन जाते हैं तब त्वचा में 'चित्रविचित्रता आ जाती है। इसलिए इसको 'चर्मचित्रक' कहते हैं—श्वित्रं तु चर्मचित्रकम् ॥ राजनिघंटु ॥ परन्तु वास्तव में यह नाम इस अवस्था का है। इस प्रकार ये तीन पर्यायवाची शब्द है। परन्तु रोग के निर्देश के साथ उसकी स्थिति सूचित करना हो तो एकाध धब्बे के रोग के लिए किलास, अनेक धब्बों के रोग के लिए चर्मचित्रक और अधिकांश शरीर सफेद होनेपर श्वित्र का प्रयोग उचित होता है।

मनुष्य शरीर में काले रंग के अनेक वर्णक (Black pigment) होते हैं। उनको मेल्यानिन (Melanin) कहते हैं। यह वर्णक त्वचा, केश और नेत्र के रंजितपटल (Choroid coat) में रहता है। सूर्य प्रकाश या कड़ी धूप से यह शरीर की रक्षा करता है। ऊष्ण कटिबंध (Torrid zone) में कड़ी धूप होने के कारण वहाँ के निवासियों की त्वचा में इसकी मात्रा अधिक बनने से वे कृष्णवर्ण होते हैं और अत्युष्ण कटिबंध के इसी कारण से काल कलूटे रहते हैं। इसके विपरीत शीत या हिम कटिबंध (Frigid zone) में धूप न होने से वहाँ के निवासी गौरवर्ण और कुछ ठीक श्वित्री जैसे होते हैं। एक ही समाज के स्त्री पुरुषों में पुरुष धूप में अधिक काम करने के कारण स्त्रियों से अधिक काले होते हैं और एक ही शरीर में वस्त्रावृत भाग से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अनावृत भाग अधिक काला रहता हैं। वृद्धावस्था में बालों में से यह वर्णक कम होने लगता है जिससे वे भूरे और सफेद बन जाते हैं परन्तु त्वचा में कम न होने से उसके वर्ण में कोई अन्तर नहीं होता।

त्वचा की सफेदी सहज (Congenital) और जन्मोत्तर दो प्रकार की होती है। सहज में त्वचा जन्म से ही अवर्णक होती है, और जीवन भर वैसी ही रहती है। (इसको धवलता (Albinism) कहते हैं) जन्मोत्तर में प्रथम त्वचा कृष्णवर्ण होती और कुछ वर्षों के पश्चात् वह सफेद होने लगती है। दोनों में इस वर्णक की उत्पत्ति बंद रहती है, सहज में गर्भावक्रान्ति के समय से और जन्मोत्तर में उत्तर काल में। शरीरगत चयापचय (Metabolism) के दोष से यह रोग उत्पन्न होता है।

कुष्ठश्वित्रसाधर्म्य—दोनों में अनेक बातों में समानता होने से आयुर्वेद में दोनों का विवरण एक साथ मिलता है। (१) हेतु-दोनों का हेतु पूर्वकर्म या पूर्वजन्मजकर्म माना गया है—पाप क्रिया पूर्वकृतं च कर्म हेतुः किलासस्य विरोधिचान्नम् ॥ चरक ॥ ब्रह्मस्त्रीसज्जनवध परस्वहरणादिभिः। कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य संभवम् ॥ सुश्रुत ॥ इसलिए वाग्भट ने अपने दोनों ग्रन्थों में श्वित्र का वर्णन 'कुष्ठैक संभवं श्वित्रं किलासं दारुणं च तत्' इस प्रकार प्रारम्भ किया है। (२) आदि बल या कुलज प्रवृत्ति Inherited predisposition or heridatory susceptibility—दोनों में संचारी प्रवृत्ति होती है। विशेष विवरण के लिए पृष्ठ १८८ पर 'महान्त्यपिसमृद्धानि' श्लोक का वक्तव्य देखें। (२) विकृति (Morbidity)—दोनों मुख्यतया तथा बाह्यतः त्वचा के विकार। काश्यपसंहिता में तो श्वित्रका समावेश अष्टादश कुष्ठों में किया गया है। शेष सब संहिताओं में कुष्ठाध्याय में अन्त में श्वित्र का वर्णन मिलता है। सुश्रुताचार्य ने इसको 'कुष्ठविकल्प' कहा है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्वित्र कुष्ठ वैधर्म्य—इस प्रकार साधर्म्य मानते हुए दोनों में भेद भी बतलाये गये हैं। (१) जीवाणुजन्यता (Microbism)—आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के मतानुसार कुष्ठ जीवाणु जन्य माना गया है—रक्तजा जन्तवोऽणवः । षट्तेकुष्ठैकर्माणः ।। अष्टांगहृदय ।। शोणितजानां तु खलु कुष्ठैः समानं समुत्थानम् ।। चरक ।। श्वित्र जीवाणु जन्य नहीं है यह आधुनिक पाश्चात्य मत अपने ग्रन्थों में भी मिलता है—श्वित्रमस्माच्च कुष्ठबाह्यमुदाहृतम् ।। अष्टांगसंग्रह ।। क्लेदकृम्याद्यभावात् । शशिलेखा ।। (२) शारीरिकविकृति (Morbid anatomy)—कुष्ठ में त्वचा में विकृति होती है परन्तु वह बहुत अधिक होती है-जैसे चकत्ते गाँठे, भद्दापन, वैवर्ण्य, चुमचुमायन (Tingling), सुप्ति (Tingling), अस्वेदन (Anhydrosis), परिस्रावीव्रण, बालों का गिरना, अंगुलियों का गिरना, नासा का बैठ जाना इत्यादि । श्वित्र में केवल त्वचा और बालों में विकृति होती है और वह भी वर्णकाभाव तक मर्यादित रहती है अधिक नहीं होती । कुष्ठ किलासयोरन्तरम्-त्वग्गतमेव किलासपरिस्रावि च । सुश्रुत ।। कुष्टबाह्य का दूसरा अर्थ ऐसा ही किया जाता है—कुष्ठबाह्यत्वग्गतमेव । अरुणदत्त ।।

संक्रामकता (Transmissibility)—कुष्ठ रोग संसर्ग से दूसरों पर संक्रान्त होता है इसका स्पष्ट उल्लेख 'कुष्ठंज्वरश्चशोषश्च' इस वचन में मिलता है । श्वित्र के लिए ऐसा नहीं कहा गया है । 'आसनाच्छयनात्' श्लोक का वक्तव्य (३२२ पृष्ठ) देखें ।

साहित्य में कुष्ठश्वित्र—इन दोनों में जो अन्तर है वह कवियों ने अपना भाव प्रकट करने के लिए बहुत अच्छी तरह प्रयुक्त किया है । कुष्ठं दुर्गन्धियुक्तं लघुकृमिविकृतं पूयमज्जास्रवाहि व्याप्तं तन्मक्षिकाभिर्गतिरितिवपुषः कुत्सिता' इस प्रकार कुष्ठी की स्थिति रहने से उसके संबंध में देखने वाले मनुष्यों के मन में कुत्सा, जुगुप्सा या घृणा उत्पन्न हुआ करती है । अतः जहाँ पर कवि घृणा का भाव या दृश्य उत्पन्न करना

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चाहता है वहाँ पर किसी प्रकार का वर्णन न करके केवल 'गलत्कुष्ठ' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे कि 'जात्यन्धाय च' श्लोक में किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी इसी काम के लिए भर्तृहरी ने यह शब्द प्रयोग किया है—क्वचिद्रम्या रामाः क्वचिदपिगलत्कुष्ठवपुषो न जाने संसारःकिमममृतमयः किं विषमयः ॥ वैराग्यशतक ॥ इसके विपरीत श्वित्र में शरीर की कोई हानि नहीं होती, केवल वर्ण की होती है जिससे सौंदर्य और रूप में दोष या बिगाड उत्पन्न होता है। अतः जहाँ पर रूप विनाश का भाव या दृश्य प्रत्यक्ष करना हो वहाँ पर श्वित्र शब्द प्रयोग होता है, जैसे कि इस वचन में किया है। ठीक इसी प्रकार अन्यत्र भी श्वित्र का प्रयोग पाया जाता है—तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन। स्याद्वपुः सुंदरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ काव्यादर्श ॥ सब स्थानों में केवल कुष्ठ शब्द के प्रयोग से आवश्यकतानुसार गलत्कुष्ठ तथा श्वेतकुष्ट अर्थ करके भाव निकल सकता था, परन्तु भाव निश्चिति के लिए ऐसा न करके दो स्वतन्त्र शब्द प्रयुक्त किये गये हैं।

(२२) आदौ गृहीतपाणिः पश्चादारूढजघनकटिभागा।
नखमुखलालनसुखदा सा किं रामास्ति! नैव भो पामा॥

पामा—प्रथम पाणिग्रहण करके पश्चात् कटिभाग पर जो आरोहण करती है तथा नखाग्रों से लाड प्यार करने पर जो अत्यन्त सुख प्रदान किया करती है क्या वह पत्नी है? नहीं भाई वह पामा है।

वक्तव्य—पामा-खुजली (Scabes, itches)। यह त्वग्रोग है जो प्रथम हाथों की अंगुलियों पर प्रकट होता है, पश्चात् कटिप्रदेश पर आक्रमण करता है और नखाग्रों से धीरे धीरे सहलाने पर बहुत ही सुख प्रद मालूम होता है।

(२३) अकस्माद्द्वेष्टियोभक्तमाजन्मपरिसेवितम्।
न व्यंजने रुचिर्यस्य त्याज्यो नृप इवातुरः॥
(प्रसंगरत्नावलि)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अन्नद्वेष—(रोगी पक्ष में)–जन्मभर सेवन किये हुए अन्न के संबंध में जिसके मन में अकस्मात् द्वेष उत्पन्न होता है तथा व्यंजनों में भी जिसे अरुचि होती है वह रोगी राजा के समान त्याज्य होता है।

(*राजपक्ष में*)–जन्म भर सेवा किये हुए सेवक के संबंध में जिसके मनमें अकस्मात् द्वेष उत्पन्न हुआ करता है तथा नये सेवक (नव्यंजने) के संबंध में प्रेम उत्पन्न हुआ करता है वह राजा रोगी के समान सेवा न करने योग्य होता है।

वक्तव्य—भक्त–(१) राजा की दृष्टि से भक्ति से सेवा करनेवाला सेवक-न मे भक्तः प्रणश्यति ।। गीता ।। (२) रोगी की दृष्टि से अन्न-भिस्सा स्त्री भक्तमंधोऽन्नमोदनः ।। अमरकोश ।। न व्यंजने–(१) राजा की दृष्टि से नवीन सेवक। (२) रोगी की दृष्टि से सूपशाकादि व्यंजनों में। पृष्ठ १०० पर 'ख्यातः सर्वरसानां' श्लोक का वक्तव्य देखें। इस श्लोक में भक्तद्वेष और अरोचक दो रोगों का निर्देश है। भक्तद्वेष के लक्षण ३५५ पृष्ठ पर 'भक्तद्वेषो जले प्रीतिः' इस के वक्तव्य में और अरोचक के पृष्ठ १५४ पर 'इन्दुं निन्दति चक्रवाक' के वक्तव्य में देखें। ये दोनों रोग क्षुधा और अन्न पाचन से संबंधित होते हैं। इनके होने से मनुष्य उचित मात्रा में अन्न सेवन नहीं कर सकता और सेवन किया हुआ अन्न शरीर पोषक नहीं होता, जिससे मनुष्य दिन प्रतिदिन दुर्बल होता जाता है और रोगी अन्न सेवन न होने से बहुत शीघ्रता से मृत्युकी ओर बढ़ाता है। त्याज्यो नृपइवातुरः–दीर्घकाल तक श्रद्धा भक्ति से स्वामी की सेवा करनेवाले सेवक के प्रति स्वामी की यकायक द्वेष भावना उत्पन्न होना सेवा की निष्फलता का निदर्शक होता है। अतः सेवा बंद करके ऐसे स्वामी का परित्याग करना जैसे इष्ट होता है, वैसे दीर्घकाल तक उचित अनुभूत चिकित्सा करते हुए यकायक अन्नद्वेष (तथा अन्य गंभीर उपद्रवों) का उत्पन्न होना चिकित्सा की निष्फलता का निदर्शक होता। अतः चिकित्सा बंद करके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रोग या रोगी का परित्याग करके अर्थात् उसको स्वैर छोड़कर उसे अपनी ही मृत्यु से मरने देना इष्ट होता है। अधिक विवरण के लिए 'सर्वत्र मैत्री करुणातुरेषु' तथा 'असाध्य इति वैद्येन' वचनों के वक्तव्यों को देखें।

(२४) ज्योतिषं जलदे मिथ्या, मिथ्या श्वासिनि वैद्यकम्।
योगो बह्वाशिने मिथ्या, मिथ्याज्ञानं च मद्यपे ॥

अर्थ—पर्जन्य में ज्योतिष, श्वासी में वैद्यक, अतिभोजनी में योग और मद्यसेवी में (आत्म) ज्ञान व्यर्थ होते हैं।

वक्तव्य—ज्योतिषं जलदे मिथ्या—पर्जन्य जीव सृष्टि का जीवन है—अन्नाद्भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसंभवः ॥ गीता ॥ इसलिए फल ज्योतिष के द्वारा प्रतिवर्ष पर्जन्य कैसा होगा इसका भविष्य कथन करने की प्रथा प्राचीन काल से रही। परन्तु यह भविष्य प्रायः सत्य नहीं होता था यह अनुभव इस वचन में लिपिबद्ध किया गया है। आधुनिक काल में पर्जन्य तथा अन्तरिक्ष के अन्य विषयों का आन्तरीक्षिकी या अन्तरिक्षविज्ञान (Meteorology) करके एक बड़ा भारी शास्त्र बन गया है। विमानोड्डान में इससे और विमानोड्डान से इसमें बहुत सहायता मिलती है। इसके द्वारा भी पर्जन्य का भविष्य कथन होता है। परन्तु यह कथन प्राचीन फलज्योतिषाधिष्ठित कथन से अधिक सही होता है ऐसी कोई बात नहीं, अनेक बार यह कथन लोगों में परिहास का विषय रहा है। मिथ्या श्वासिनि वैद्यकम्—(१) श्वास या दमा (Asthama) श्वसन संस्थान का रोग है। यह रोग प्रायः कुलज होता है और दौरे के साथ आता है। दौरे के समय रोगी को साँस लेने में अत्यन्त कठिनाई हुआ करती है। दौरे के समय कष्ट कम करने की औषधियाँ प्राचीन वैद्यक में हैं, अर्वाचीन में उससे अच्छी औषधियाँ हैं, परन्तु रोग निर्मूलन करने की औषधियाँ न प्राचीन में हैं, न अर्वाचीन में। (२) अन्तिम अवस्था में रोगी में घर्घर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्वास, शीतश्वास, छिन्नश्वास, ऊर्ध्वश्वास इत्यादि अनेक प्रकार के श्वसन के उपद्रव उत्पन्न होते हैं। ऐसे श्वसनोपद्रवों से पीडित रोगियों में कोई वैद्यकीय उपचार सफल नहीं होता—शीतपादकरोच्छ्वासच्छिन्नश्वासश्चयो भवेत्। काकोच्छ्वासश्चयो मर्त्यस्तं धीरः परिवर्जयेत॥ सुश्रुत॥ ह्रस्वं च यः प्रश्वसिति व्याविद्धं स्पन्दते च यः। मृतमेव तमात्रेयो व्याचचक्षे पुनर्वसुः॥ ऊर्ध्वं च यः प्रश्वसिति श्लेष्मणा चाभिभूयते। हीनवर्णबलाकारो यो नरो न सजीवति॥ चरक॥ योगो बह्वाशिने मिथ्या—नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति ॥ गीता॥ मिथ्याज्ञानं च मद्यपे—'भैंस के आगे बीन बजे भैंस पड़ी पगुराय' या या 'बंदर क्या जाने अदरख का स्वाद' इस प्रकार की स्थिति शराबी के आगे ज्ञान या उपदेश कहने की होती है—न रोचते क्रमेलाय मधुरं कदलीफलम्।

(२५) गतेर्भङ्गः स्वरो हीनो गात्रे स्वेदो महद्भयम्।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचके ॥ (गरुडपुराण)

(२६) वेपथुर्मलिनं वक्त्रं दीना वाग्गद्गदः स्वरः।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचके ॥ (लटकमेलक)

मृत्युव्याधि—(हस्तपादादि अवयवों की) गति का नाश, आवाज बंद होना, शरीर पर स्वेद, भयभीत होना॥ शरीर में कंप, मुख की निस्तेजता, वाणी में दीनता, स्वर में गद्गदता ये मरणोम्मुख रोगी के लक्षण याचक में पाये जाते हैं।

वक्तव्य—मृत्यु एक व्याधि है। वैद्यक में चतुर्विध व्याधियाँ बतलायी हैं, और मृत्यु का समावेश स्वाभाविक व्याधियों में किया गया है—स्वाभाविकास्तु क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः॥ सुश्रुत॥

(२७) शरीरं ज्ञानजननं, रोगो विष्णुस्मृतिप्रदः।
विपद्वैराग्यजननी त्रयं सुखकरं सताम् ॥ (जगन्नाथ पंडित)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याधिगुण—शरीर आत्मज्ञानजनक होता है, रोग विष्णु का स्मरण करनेवाला होता है और आपत्ति वैराग्योत्पादक होती है। अतः सज्जनों के लिए ये तीनों सुखप्रद होते हैं।

वक्तव्य—रोगो विष्णुस्मृतिप्रदः—'स्मशानमापदं दैन्यं' (पृष्ठ २६३) 'अशक्तस्तु भवेत्साधुः' तथा 'आर्ता देवान्नमस्यन्ति' श्लोक तथा उनके वक्तव्य (पृष्ठ ३८२) देखें।

(२८) आलस्यं स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम्।
संतोषो भीरुत्वं षड् व्याघाता महत्वस्य ॥ (हितोपदेश)

व्याधि दोष—काम न करने की प्रवृत्ति, स्त्री लंपटता, जन्मभूमि का (अवास्तविक) प्रेम, संतोषी वृत्ति, और डरपोक वृत्ति ये महत्वाकांक्षा (Ambition) की छः बाधाएँ हैं।

(२९) कुले कलङ्कः, कवले कदन्नता, सुतः कुबुद्धिर्भवने दरिद्रता।
रुजः शरीरे, कलहप्रियाप्रिया गृहागता दुर्गतयः षडेव हि ॥

कुल में कलङ्क, भोजन के लिए कदन्न, दुर्बुद्धियुक्त पुत्र, घर में दारिद्र्य, शरीर में रोग और झगडालु पत्नी ये गृहस्थी की छः दुर्गतियाँ हैं।

(३०) न च विद्यासमो बन्धुर्न च व्याधिसमो रिपुः।
न चापत्यसमः स्नेहो न च दैवात्परं बलम् ॥

(चाणक्य शतक)

रोग का शत्रुत्व—विद्या के समान मित्र नहीं, व्याधि के समान शत्रु नहीं, अपत्य के समान स्नेह (का पात्र) नहीं और दैव से बढ़कर बल नहीं।

वक्तव्य—अपत्यसमः स्नेहः—'प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य' वचन (पृष्ठ २३६) देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३१) परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥

(चाणक्य नीतिशास्त्र)

पराया होने पर भी जो हितकारी होता है वह मित्र, और मित्र होने पर भी जो अहितकारी होता है वह पराया है। जैसे, व्याधि अपने देह की होने पर भी शत्रु और औषधि जंगल की होने पर भी मित्र होती है।

(३२) भुजंगमे वेश्मनि दृष्टनष्टे, देहे चिकित्साविनिवृत्तरोगे ।
हस्ताद्गतेविद्विपिजागरूके, शल्ये प्रकोष्ठान्तरिते धृतिः का ॥

(चाणक्यनीति)

मकान में दिखाई दिये गये साँप के अदृष्ट हो जाने पर, चिकित्सा करके ठीक हुए रोग का पुनरावर्तन हो जाने पर, हस्तगत हुए शत्रु के जागरूक स्थिति में हाथ से निकल जाने पर और प्रकोष्ठक के भीतर शल्य के प्रविष्ट होने पर धैर्य कैसे रक्खा जा सकता है।

वक्तव्य—चिकित्साविनिवृत्त रोगे--ठीक चिकित्सा करते हुए रोग का पुनरावर्तन होना (Relapse) शरीर की दुर्बलता और रोग की बलवत्ता का अतएव कृच्छ्रसाध्यता का निदर्शक होता है—चिकित्स्यमानः सम्यक् च विकारो योऽभिवर्धते । प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥ सुश्रुत ॥ शल्ये प्रकोष्ठान्तरिते–प्रकोष्ठ की दो हड्डियाँ कुछ दूरी पर होने से उनके बीच में एक गड्ढा बनता है जिसको कूर्परखात (Cubital fossa) कहते हैं। इस खात के चारों ओर प्रकोष्ठ की पेशिपिण्डियों का आवेष्टन होता है और खात में प्रकोष्ठ की धमनी नाडी आदि महत्व के अंग रहते हैं। यह एक मर्म है और इसका नाम 'इन्द्रबस्ति' है। शल्य जब इसमें चला जाता है तब धमन्यादि अंगों के वेधन का संकट होता है और यदि वेधन न हुआ तो भी शल्य धमनी नाडी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इत्यादि से घिरा हुआ रहने के कारण शल्याहरण का शस्त्रकर्म संकटमय रहता है। धृतिःका-सुख शान्ति, संतोष कहाँ से मिलेगा-धृतिर्योगान्तरे धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु ।। विश्वकोश ।। जब तक साँप को मारा नहीं, पुनरावर्तित रोग ठीक हुआ नहीं, फरारी शत्रु पकडा नहीं और मर्मगत-शस्त्र निकाला नहीं तब तक संबन्धित मनुष्य को चिन्ता बराबर बनी रहेगी और सुख शान्ति मिलेगी नहीं यह इस वचन का आशय है।

(३३) शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ।। (चाणक्यसूत्र)

शत्रु से भी (शरीर की) व्याधि विशेष (भयावह) होती है।

(३४) उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यःपथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ।।

(शिशुपालवध)

रोग की अनुपेक्ष्यता—(अपने देह के अथवा देह के राज्य का) हित चाहनेवाले (राजा या मनुष्य) को सिर ऊपर उठानेवाले शत्रु या रोग की उपेक्षा न करनी चाहिए, क्यों कि राजनीतिज्ञों ने बढनेवाले शत्रु और रोग को समान माना है।

(३५) जीर्णशरीरे व्याधिं वर्धमानं नोपेक्षेत ।। (चाणक्यसूत्र)

दुर्बल शरीर में होने वाली व्याधि की (प्रारम्भ से ही जरा भी) उपेक्षा न करनी चाहिए।

वक्तव्य—व्याधि की उपेक्षा किसी के लिए श्रेयस्कर नहीं है, परन्तु जवानी में बलवान् शरीर में 'सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां स्वकं' इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कुछ काल तक व्याधि की उपेक्षा की जाय तो वह क्षम्य हो सकती है, क्योंकि अनेक बार रोग शरीर की प्रतिकारक शक्ति के कारण आपसे आप ठीक भी हो जाता है। परन्तु दुर्बल शरीर में उपेक्षा कदापि न होनी चाहिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३६) उपेक्षितः क्षीणबलोऽपि शत्रुः
प्रमाददोषात्पुरुषैर्मदान्धैः ।
साध्योऽपि भूत्वा प्रथमंततोऽसा-
वसाध्यतां व्याधिरिवप्रयाति ॥ (पञ्चतंत्र)

जैसे प्रारम्भ में साध्य रोग चिकित्सा की उपेक्षा होने से असाध्यता को प्राप्त होता है, वैसे प्रारम्भ में कमजोर शत्रु गर्वांध पुरुषों के प्रमाद दोष से उपेक्षित होने पर बलवान् (दुर्दम्य) हो जाता है।

(३७) विषं चंक्रमणं रात्रौ, विषं राज्ञोऽनुकूलता ।
विषं स्त्रियोऽप्यन्यहृदो, विषं व्याधिरवीक्षितः ॥
(चाणक्यशतक)

अवीक्षित व्याधि की भयानकता—रात्रि में इतस्ततः भटकना, राजा की मैत्री, स्त्री की अन्य पुरुषों के साथ मित्रता, और व्याधि का अवीक्षित रहना विष है।

(३८) विषं कुपठिता विद्या, विषं व्याधिरनौषधः ।
विषं व्याधिर्दरिद्रस्य, वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥

अचिकित्सित व्याधि की भयानकता—ठीक न पढ़ी हुई विद्या (पढने वाले के लिए, अचिकित्सित तथा दरिद्र की व्याधि (रोगी के लिए) और तरुण पत्नी वृद्ध पति के लिए विष (सम हानिकर हुआ करती) है।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों में साध्य रोग असाध्य हो जाने के निम्न कारण बतलाये हैं—(१) उपेक्षा-यह उपेक्षा (Neglect) जान-बूझ कर तथा अनजाने एवं रोगी तथा चिकित्सक दोनों से दोनों प्रकार हो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सकती है। (२) अवीक्षण (Wrong diagnosis)—रोग और रोगी की ओर ध्यान देकर ठीक वीक्षण न करने से गलत निदान होता है और इससे गलत चिकित्सा भी हुआ करती है। यह चिकित्सा जब अपाय कारक नहीं होती तब रोग अपनी गति से बढता है और जब अपायकारी होती है वह रोग तेज गति से बढता है (३) ध्यान में न आना (Overlook)। मधुमेह, राजयक्ष्मा, कर्कार्बुद (Cancer) रक्तचाप (Blood pressure) ये इस प्रकार के रोग हैं। (४) चिकित्सा बिलकुल न होना या ठीक न होना। दरिद्रता-चिकित्सा के लिए धन की आवश्यकता होती है। उसके न होने से उचित चिकित्सा नहीं हो सकती। तात्पर्य निर्धन की और निरौषध व्याधि परिणाम में एक सी (असाध्य) हुआ करती है। 'त्वं दरिद्र आतुर इव' वचन का वक्तव्य (पृष्ठ ३८४) देखिए। ५ चिकित्सा पादों की अव्यवस्थिति—'अहल्याकामुकस्य महेन्द्रस्य वैद्यः सचिवः' अथवा 'शिरसि भयमतिदूरेतत्प्रतीकारः' इस प्रकार की अस्तव्यस्त चिकित्सा की स्थिति ॥

(३९) नष्टं द्रव्यं प्राप्यते ह्युद्यमेन
नष्टा विद्या प्राप्यतेऽभ्यासयुक्त्या।
नष्टारोग्यं सूपचारैः सुसाध्यं
नष्टा वेला या गता सा गतैव ॥

नष्ट हुआ धन प्रयत्न से फिर प्राप्त होता है; नष्ट हुई (विस्मृत) विद्या अभ्यास से फिर स्मरण होती है; नष्ट हुआ आरोग्य (अर्थात् प्राप्त व्याधि) उत्तम चिकित्सा साधनों से फिर से प्राप्त होता है (अर्थात् व्याधि नष्ट होती है), परन्तु जो वेला गयी वह सदा के लिए गयी।

वक्तव्य—नष्टा वेला-व्यतीत हुआ जीवन का काल। सर्वस्याः सरितो वारि' तथा 'ऋतुर्व्यतीतः' श्लोक देखें। नष्टारोग्यम्—व्याधि।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४०) जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं वा प्रशमं नयेत् ।
अतिपुष्टांगयुक्तोऽपि स पश्चात्तेन हन्यते ॥ (भोजप्रबंध)

इति श्री भास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय सुभाषित
साहित्ये व्याधिविज्ञानीयो नाम त्रयस्त्रिंशोऽ-
ध्यायः समाप्तः ॥



व्याधि के प्रति कर्तव्य—शत्रु या व्याधि उत्पन्न होते ही जो उसका दमन या शमन नहीं करता वह अतिबलवान् होने पर भी (कुछ काल के) पश्चात् उससे नष्ट होता है।

वक्तव्य—इस वचन का स्पष्टीकरण चरक के इन वचनों में किया गया है-यथा स्वल्पेन यत्नेन छिद्यते तरुणस्तरुः। स एवातिप्रवृद्धस्तु न सुच्छेदतमो भवेत्। एवमेव विकारोऽपि तरुणः साध्यते सुखम्। विवृद्धः साध्यते कृच्छ्रादसाध्यो वाऽपि जायते ॥ अधिक विवरण के लिए 'उपकारः कृतः काले' तथा 'तस्मात्प्रागेवरोगेभ्यः' श्लोक तथा उनका वक्तव्य देखें।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक रहस्य-
दीपिकायां व्याधिविज्ञानीयो नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो व्याधितविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) बुधः कीदृग् वचो ब्रूते ? को रोगी ? कश्च नास्तिकः ।
कीदृक् चन्द्रं नमस्यन्ति ? किं सूत्रं पाणिनेर्वद ॥

व्याधितव्याख्या—विद्वान् किस प्रकार की भाषा बोलते हैं ? रोगी कौन होता है ? नास्तिक कौन है ? किस चन्द्र को नमस्कार करते हैं ? पाणिनि का सूत्र कौन सा है ?

वक्तव्य—किं सूत्रम्—इस श्लोक में जो चार प्रश्न हैं उनके 'अर्थवत्' (सारयुक्त), 'अधातु', 'अप्रत्यय' (अश्रद्धावान्) और 'प्रातिपदिकम्' (प्रतिपदा का) ये क्रम से चार उत्तर हैं। इनको एक के बाद एक रखने से 'अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम्' यह पाणिनीका सूत्र बनता है। बहिरालाप का यह उदाहरण है। अधातुः—अप्रशस्ता वैषम्ययुक्ता धातवो यस्य। अ नञ् का प्रतिनिधि है और उसके छः अर्थ होते हैं—तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥ इनमें से अप्राशस्त्य अर्थ यहाँ पर अभिप्रेत है। शरीर में रस रक्तादि तथा वातादि धातु होते हैं। इनका अप्राशस्त्य अर्थात् वैषम्य रोग होता है—रोगस्तु दोषवैषम्यम्। वाग्भट। विकारो धातु वैषम्यम्। आयुर्वेद में शरीर के पूर्ण स्वस्थ धातुओं के लिए शस्त शब्द का प्रयोग होता है—लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ चरक ॥ को रोगी—इसका उत्तर है जिसके शरीर के धातूपधातु वैषम्य युक्त हैं वह मनुष्य। आयुर्वेदानुसार शरीर में होने वाले रोगों की छः अवस्थाएँ हुआ करती हैं—संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्। व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां च सवै

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भिषक्॥ सुश्रुत॥ इनमें पूर्व पूर्वावस्था के रोग अधिकाधिक सूक्ष्म अतएव अप्रकट और उत्तरोत्तर अवस्थाओं के अधिकाधिक स्थूल, अतएव सुलभ इन्द्रियग्राह्य या प्रकट होते हैं। शरीर में जितने भी रोग होते हैं उन सबों का प्रारम्भ दोषधातुओं के वैषम्य से होता है। आयुर्वेदानुसार यही वास्तविक रोग (Real disease) है। इसलिए मनुष्य इसी अवस्थाओं में रोगी होता है। परन्तु इस अवस्था में लक्षण प्रकट न होने से लौकिक दृष्ट्या वह रोगी नहीं कहा जाता। स्थान संश्रय की अवस्था में रोग लक्षण प्रकट होने से इस अवस्था के दोषवैषम्य को रोग और इस अवस्था के मनुष्य को रोगी कहने की प्रथा हो गयी है और स्थान लक्षणानुसार उनका नामकरण भी किया गया है। वास्तव में देखा जाय तो जिनको हम रोग कहते हैं वे रोग न होकर रोग के उत्तर कालीन परिणाम होते हैं (Disease result)। रोग उनके बहुत पहले शरीर में रहता है, परन्तु वह सूक्ष्म या अतीन्द्रिय होने से सामान्य जनता उसको समझ सके इस प्रकार का उसके लिए कोई नाम नहीं होता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शरीर नीरोग है। रोगनिदान में नाम को महत्व देनेवाले और समझने वाले लोगों की दृष्टि से ही चरक महर्षि ने कहा है कि रोगी के रोग का लौकिक नाम बताने में असमर्थ होने पर वैद्यजी को लज्जित होने का कोई कारण नहीं, क्यों कि प्रत्येक रोग की प्रारम्भिक अवस्था में लौकिक नाम से उसका निर्देश करना असंभव होता है। वैद्य की बुद्धिमानी लौकिक नाम प्राप्त होने की स्थिति में पहुँचने से पूर्व रोग को पहचानने में है। इस अवस्था में रोग निदान करने के लिए यन्त्रोपकरण बहुत उपयोगी नहीं होते, प्रश्नों द्वारा प्राप्त ज्ञान और पूर्वानुभवों पर अधिष्ठित रोगी परीक्षण ही अधिक उपयुक्त होता है।

आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में धातु मलों की विकृतियों को ही रोग (Diseases characterised by changes in the tissues) मानते हैं। इसलिए जब कोई मनुष्य उसके चिकित्सकों के पास अपनी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अस्वस्थता की शिकायत लेके जाता है तब वे अपनी आधुनिक साधन सामग्री से उसकी खूब जाँच करते हैं और यदि उन्हें मनुष्य के धातु मलों में कोई विकृति मालूम हुई तो उसको रोगी समझते हैं और यदि न मालूम हुई तो उसके हजार बार कहने पर भी उसे रोगी समझने के लिये तैयार नहीं होते। उनके लिए ज्वरी वह होता है जिसमें ज्वर मापक पर ज्वर मालूम हो, मनुष्य के ज्वरांश की शिकायत पर नहीं। परन्तु वास्तविकता कुछ और होती है। शरीरान्तरात्मा अचेतन ज्वरमापक की अपेक्षा शरीरान्तर्गत परिवर्तनों को अनुभव करने में अधिक सूक्ष्मग्राही (Sensitive) होता है। आयुर्वेद महर्षियोंने इसलिए रोगी के कहने पर विश्वास करके अपनी बुद्धि से उसकी अन्तरात्मा का सूक्ष्म परिक्षण करके भीतर अदृश्य सूक्ष्म विकृति का पता लगाने के लिए कहा है—विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कथंचन। न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥ ज्ञान बुद्धि-प्रदीपेन योनाविशति तत्ववित्। आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्स्यति॥ चरक॥ पृष्ठ २८ पर 'आतुरस्य' श्लोक देखे इससे यह स्पष्ट होगा कि आधुनिक पाश्चात्यवैद्यकानुसार स्थानसंश्रय की अवस्थामें मनुष्य रोगी होता है। इसके विपरीत आयुर्वेदानुसार धातुसाम्यावस्था में जरासा वैषम्य उत्पन्न होनेसे मनुष्य रोगी रहता है।

(२) रोगी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च, षडेते दुःखभागिनः॥ (महाभारत)

व्याधितजीवन—रोगी, (लोगों की दृष्टि में) घृणित (जैसे,गलत्कुष्टी, असंतुष्ट, क्रोधी, शक्की, दूसरों पर निर्वाह करनेवाले ये छः दुखःभोगी होते हैं।

(३) रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्वम्।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव

न बुद्धयन्ते धनभोगान्नसौख्यम् ॥ (महाभारत)

रोगग्रस्त (अपने सुकर्मों के) फलों का उपभोग नहीं ले सकते ; विषयों में कोई तत्व नहीं पाते हैं ; सदासर्वदा दुःखीकष्टी रहते हैं और धन का उपयोग और सुख नहीं समझ सकते हैं ।

(४) लोकेषु निर्धनो दुःखी ऋणग्रस्तस्ततोऽधिकः ।

ताभ्यां रोगयुतो दुःखी, तेभ्यो दुःखी कुभार्यकः ॥

इस संसारमें निर्धन दुःखी होता है, कर्जदार उससे अधिक दुःखी होता है, रोगग्रस्त इन दोनों से अधिक दुःखी होता है और कुभार्या होनेवाला सबसे अधिक दुःखी होता है ।

(५) रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।

यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्यविश्रामः ॥

(हितोपदेश)

(नित्य) रोगी । नित्यप्रवासी, (नित्य) परान्नसेवी, (नित्य) परगृहवासी इनके लिए जीवन मृत्यु (सम कष्टदायक) है और मृत्यु विश्राम है ।

(६) जीवितोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः ।

दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥ (पञ्चतंत्र)

दरिद्र, रोगग्रस्त, मूर्ख, नित्य प्रवासी, नित्य सेवक ये पाँच जीवित रहते हुए भी निर्जीव के समान होते हैं ऐसा व्यासजीने कहा है ।

(७) न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन् सधनतामृते ।

अनातुरत्वाद् भद्रंते; मृतकल्पा हि रोगिणः ॥ (महाभारत)

सधनता और नीरोगता के विना मनुष्य में कोई गुण प्रकट नहीं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होता है। हे राजन्! (इन बातों में) भगवान् तेरा कल्याण करे, क्योंकि रोगी मृत के समान होते हैं।

(८) नारी परसुखद्रष्टी, कविरव्यवहारवित्।
अपथ्यसेवी रोगी च कियद्भिर्नोपहास्यते ॥

रोगी और अपथ्यसेवन—परपुरुष की ओर देखनेवाली स्त्री, अव्यवहारी कवि या पण्डित अपथ्यसेवन करनेवाला रोगी इनका उपहास किनसे नहीं होता।

(९) अनादायी व्ययं कुर्यादसहायी रणप्रियः।
आतुरः सर्वभक्षी च नरः शीघ्रं विनश्यति ॥

कमाई न करके व्यय करनेवाला, अकेला लढने (के लिए दौड़ने) वाला (पथ्यापथ्य का विचार न करके अनापसनाप) सब भक्षण करने वाला रोगी ये सब जल्दी मर जाते हैं।

(१०) कासी विवर्जयेच्चौर्यं निद्रालुश्च स चौरिकाम्।
जिह्वालौल्यं रुजाक्रान्तो जीवितं योऽभिवाञ्छति ॥
(पञ्चतंत्र)

खाँसी और नींद आनेवाले को चौर्य कर्म वर्ज्य करना चाहिए; तथा जो जीवित रहना चाहता है ऐसे व्याधित को जिह्वालौल्य (के अनुसार खानपान) छोड़ना चाहिए।

(१) उवाच चैनं क्षणदाचरेन्द्रं
सुखं महाराज विना मयाऽऽस्स्व।
मूर्खातुरः पथ्यकटूननश्नन्
यत्सामयोऽसौ भिषजां न दोषः ॥ (भट्टिकाव्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बिभीषण राक्षसराज से बोला, हे महाराज ! आप मेरे बिना सुख-पूर्वक रहे; पथ्यकर कटु द्रव्यों का सेवन न करनेवाला मूर्ख रोगी यदि व्याधिपीडित ही रहा तो उसमें वैद्यों का कोई दोष नहीं होता है।

(१२) सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः ।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन् ॥ (मनु)

कन्या, पुत्रवधू, रोगी, गर्भिणी स्त्री इन को अतिथि अभ्यागतों से पहले किसीका विचार न करे (समय पर) भोजन देना चाहिए।

(१३) अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधितो देवभक्तश्च वृद्धानारी पतिव्रता ॥

(वृद्धचाणक्य)

व्याधित की धार्मिकवृत्ति—दुर्बल सज्जन बनता है, निर्धन (विवाह न होनेके कारण) ब्रह्मचर्यरत रहता है; रोगी (दुःखी कष्टी रहने के कारण) देवभक्त, होता है और वृद्धस्त्री (जवानी समाप्त होनेके कारण) पतिव्रता बन बैठती है।

(१४) आर्ता देवान्नमस्यन्ति, तपः कुर्वन्ति रोगिणः ।
निर्धना दानमिच्छन्ति, वृद्धानारीपतिव्रता ॥

आपत्ति से आर्त देवताओं को नमस्कार करते हैं; रोगग्रस्त तप करते हैं, निर्धन दान करना चाहते हैं और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है॥

वक्तव्य—सुखी और स्वस्थ मनुष्यों की देवताओं पर तथा धर्म-कर्मोंपर भले ही श्रद्धा न हो, आर्त और रोगग्रस्त होनेपर वे प्रायः देवभक्त व श्रद्धालु बनते हैं यह सर्वपरिचित तथा अनुभूत बात है चतुर्विधा भजन्ते मां नराः सुकृतिनोऽर्जुन । आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गीता ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१५) धर्माख्याने स्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बन्धनात् ॥
(वृद्धचाणक्य)

धार्मिक प्रवचन में, स्मशान में (किसी के अन्त्यकर्म के लिए उपस्थित रहने पर) सर्व सामान्य मनुष्य की और रोग उत्पन्न होनेपर रोगियों की जो मति होती है वह यदि जीवन भर बनी रहेगी तो बंधन से कौन मुक्त नहीं होगा ?

वक्तव्य—या मतिर्भवेत्-(१) सामान्य मनुष्य में पुराण और स्मशान से वैराग्य उत्पन्न होता है। पृष्ठ २६६ पर 'पुराणान्ते' श्लोक और २६३ पर 'स्मशानमापदं' श्लोक देखें। (२) रोगग्रस्त होनेपर मनुष्य में देवभक्त बनने की, दैवव्यपाश्रयभेषज द्वारा (दैवव्यपाश्रय का ३६ वाँ अध्याय देखें) चिकित्सा करने की, वैद्य को बुलाकर उसको युक्तिव्यपाश्रयभेषज द्वारा चिकित्सा करने की और चिकित्सा से रोगमुक्त होनेपर फिर से रोग पीडित न होने के लिए प्रयत्नशील रहने की बुद्धि उत्पन्न होती है। तृषाशुष्यत्यास्ये' श्लोक (पृष्ठ ३२०) का वक्तव्य देखें। बन्धनम्—(१) सामान्य मनुष्य की दृष्टि से संसारबन्धन (२) रोगी की दृष्टि से रोग का बन्धन।

द्वितीय श्लोकार्थ का आशय यह है कि यदि यह द्विविधबुद्धि यावज्जीव रही तो मनुष्य शीघ्र रोगमुक्त होकर स्वस्थ बनेगा, स्वस्थ-वृत्तानुसार रहकर फिर रोग पीडित नहीं होगा, स्वस्थ रहने से धर्मकर्म अच्छी तरह कर सकेगा (पृष्ठ ३१ पर 'अपिक्रियार्थं' श्लोक देखें) और इस प्रकार संसार और व्याधि दोनों के बन्धनों से मुक्त होगा। परन्तु ऐसा प्रायः नहीं होता। इसलिए 'को न मुच्येत बन्धनात्' यह प्रश्न पूछा है। रोगमुक्त होनेपर प्रायः मनुष्य देव और वैद्य दोनों को भूल जाता है (उपाध्यायश्च वैद्यश्च श्लोक देखें) और उसके साथ साथ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अधर्माचरण और प्रज्ञापराध करने लगता है जिससे वह संसार और रोग के चक्र में बराबर फँसा रहता है।

(१६) दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥ (हितोपदेश)

रोगीका सर्वस्व औषधि—हे अर्जुन ! दरिद्रों को, न कि धनिकों को, धन प्रदान करो ! रोगी के लिए औषधियाँ उपयुक्त हुआ करती हैं, व्याधिमुक्त को औषधियों से क्या करना है ?

वक्तव्य—पथ्यम्—मनुष्य को जिस समय जिसकी आवश्यकता होती है उस समय उसका दान जैसे उचित वैसे अनमोल होता है, फिर वह वस्तु कितनी भी क्षुद्र क्यों न हो—किं चानर्घं यदवसरे दत्तम् ॥ शंकराचार्य ॥

(१७) विद्या मित्रं प्रवासेषु, भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं, धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ (वृद्धचाणक्य)

प्रवास में विद्या, घरमें पत्नी, रोगी में औषधि और मृतमें धर्म मित्र होते हैं।

वक्तव्य—भार्या-रोगी की दृष्टि से भार्या के विवरण के लिए 'न च भार्यासमं किञ्चित्' श्लोक का वक्तव्य देखें ! धर्मोमित्रं मृतस्य' के लिए 'धनानि भूमौ पशवश्च' श्लोक देखें।

(१८) दरिद्र इवातुरो वैद्येनौषधं दीयमानमिच्छासि ।
(मालविकाग्निमित्र)

रोगीदोष (१) दारिद्रय—जैसे निर्धन रोगी (अपने लिए) दी जानेवाली औषधियाँ वैद्यजीसे चाहता है वैसे (तुम) चाहते हो।

वक्तव्य—अग्निमित्र राजा मालविकाप्राप्ति का अपना सब काम विदूषक से निकालना चाहता रहा। तब एक प्रसंगपर विदूषक ने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसको 'एतावान् में मतिविभवो भवन्तं सेवितुम्' इस वाक्य से अपनी असमर्थता बतलायी। जब राजा ने इसको न माना और 'अलमलं-परिच्छेदेन' ऐसा कहा तब विदूषक ने दरिद्र आतुर का उदाहरण देकर उसका अच्छा परिहास किया।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो रोगी अपनी चिकित्सा के लिए धन खर्च नहीं कर सकता उसका रोग या तो जल्दी ठीक नहीं होता या असाध्य हो जाता है। इसलिए रोगी धनाढ्य होना चाहिए ऐसा शास्त्र में कहा है। 'देवक्षोणि' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ ३८६) देखें। इसके साथ ही साथ सब रोगी धनाढ्य हो नहीं सकते यह सत्य है। उनके लिए चिकित्सक अपनी ओर से चिकित्सा करें ऐसा भी शास्त्र कहता है—नहिजीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते। तस्मादुपाचरेत् स्वेन स्वेन निस्व तपस्विनः॥ अष्टांगसंग्रह॥ आधुनिक चिकित्सा प्राचीन चिकित्सा से बहुत मँहगी होने के कारण निर्धन रोगी उसका लाभ उठा नहीं सकते और जो मध्यमवर्ग के रोगी उसमें फँसते हैं वे चिकित्सा समाप्त होने तक कोल्हू में से निकले हुए इक्षुदण्ड की खोई के समान बन जाते हैं।

(१९) दृष्टदोषमपि तन्नसोऽसृजत् संगवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते॥
(रघुवंश)

(२) अनाश्रवता—वैद्यों की सूनी अनसूनी करनेवाले उस (अग्निवर्ण राजा) ने (राजयक्ष्मोत्पादक) दोष दिखाई देने पर भी संगवस्तु स्त्री का परित्याग नहीं किया। सुखकर मालूम होनेवाले विषयों से बहका हुआ इन्द्रिय समूह उन विषयों से बहुत कष्ट के साथ परावृत्त किया जा सकता है।

वक्तव्य—दृष्टदोषम्—क्षय (Consumption) रूप दोष जिसमें प्रकट हो गया है ऐसे स्त्री संग को। अतिव्यवाय क्षय का एक प्रधान हेतु बतलाया गया है—अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तरम्।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ सुश्रुत ॥ अनाश्रवः—न आश्रवः, अनाश्रवः, आश्रृणोतिवाक्यमिति आश्रवः; वचनेस्थित आश्रवः। अमरकोश ॥ वचनकर आश्रव और अवचनकर अनाश्रव-वचनकर-मनाश्रवो, महात्मानं दुरात्मा, कपिञ्जलमहसद्राक्षम् ॥ कादम्बरी ॥ वैद्य के वचन के अनुसार आहारविहारादि न रखनेवाला, अर्थात् जो 'भिषग्वश्य', 'वैद्यवाक्यस्थ' या 'निर्देशकारी' नहीं है। 'अप्रियस्य च पथ्यस्य' श्लोक का वक्तव्य देखें ॥

(२०) यो व्याधितो व्याधिमवैतिसम्यग्
व्याधेर्निदानं च तदौषधं च।
आरोग्यमाप्नोति हि सोऽचिरेण
मित्रैरभिज्ञैरूपचर्यमाणः ॥ (सौन्दरनन्द)

रोगीगुण(१) रोगज्ञान—जो रोगी अपनी व्याधिको, उसके निदान तथा औषध को भलीभाँति जानता है वह ज्ञानी वैद्यों से चिकित्सित होने पर शीघ्रता से (व्याधिमुक्त होकर) नीरोगता को प्राप्त कर लेता है।

वक्तव्य—वैद्य तथा डाक्टर प्रत्येक रोगको सर्वसाधारणतया जानता है, परन्तु प्रत्येक रोगीमें प्रत्येक रोग की अपनी कुछ विशेषताएँ हुआ करती हैं जिसको जाने बिना कोई भी चिकित्सक रोगी के रोग की यथार्थ चिकित्सा कर नहीं सकता और यथार्थ चिकित्सा किये बिना सत्वर नीरोगता प्राप्त नहीं हो सकती। सामान्य रोगी की अपेक्षा रोग की जानकारी रखने वाला रोगी अपने रोग की विशेताएँ तथा चिकित्सक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर अधिक बुद्धिमानी से बतला सकता है यह सत्य है। रोगनिदानचिकित्सा करने में चिकित्सक को इससे बहुत सहायता मिलती है। इसको 'ज्ञापकत्व' कहते हैं और रोगी के लिए यह एक गुण बतलाया है—ज्ञापकत्वं च रोगाणामातुरस्य गुणाः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्मृताः । चरक । ज्ञापकोनिदानामावेदको वैद्यं रोगाहारविहारादीनामन्वयव्यतिरेकं बोधयितुं समर्थः ॥ अरूणदत्त ॥ यह ज्ञापकत्व, जैसे कि ऊपर के वचन में बताया है, व्याधिविज्ञान की सर्वसाधारण जानकारी रक्खे बिना प्राप्त नहीं हो सकता ।

आजकल के शिक्षित लोग बाह्य जगत की तथा उसमें दिन प्रतिदिन होनेवाली घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने में बहुत प्रयत्नशील होते हैं, परन्तु जिसके बल पर लोग ये सब प्रयत्न और अन्य प्रपञ्च करते हैं उस शरीररूप अपने जगत् में समय समय पर जो प्राकृतिक तथा वैकृतिक घटनाएँ हुआ करती हैं उनकी जानकारी प्राप्त करने की ओर प्रायः ध्यानतक नहीं देते, फिर प्रयत्नशील होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। परिणाम यह होता है कि अपने जगत् की जरा-जरा सी बात के लिए उन्हें वैद्य डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है और वे जो भी कहते हैं और जैसा भी करते हैं, वह सब अत्यावश्यक न होने पर भी तथा अपायकारी होने की संभावना रहने पर उन्हें एक मूक जीव के समान चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है। इस दोहरी लाचारी से बचने के लिए श्रेयस्कर मार्ग तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति पहले से ही स्वास्थ्यरक्षा और व्याधिविज्ञान की सर्वसाधारणतया जानकारी रक्खें जिससे जराजरा सी बात के लिए वैद्य डाक्टरों के पास जाने से वह बच जाय और जब कभी दुर्भाग्य से या अपनी ही गलती से रोगपीडित होने की आपत्ति में फँस जाय तब जैसे की इस वचन में बतलाया है, उस रोग की रोगनिदानचिकित्सा के संबन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त करलें। कुछ तीव्र और आशुकारी (Acute) रोगों को छोड़कर शेष रोगों में रोगी यह कार्य कर सकता है। इससे रोगी अपनी चिकित्सा के संबंध में क्या निदान ठीक है ? क्या मात्रा अधिक तो नहीं होगी ? क्या सूई लगाने की जरूरत है ? क्या सुईका निर्जीवाणुकरण (sterilization) हो चुका है ? इत्यादि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अनेक सूचक प्रश्नोंपप्रश्नों द्वारा चिकित्सक को अपनी चिकित्सा करते समय सदैव जागरूक रखकर उसकी लापरवाही से उत्पन्न होने वाले अपायों से ('उपायसंदर्शनजा' श्लोक का वक्तव्य देखिये) बच जायगा। रोगों का वर्गीकरण विविध होता है। एक वर्गीकरण रोगीकृत और चिकित्सककृत ऐसा भी करसकते हैं। आयुर्वेद चिकित्सककृत रोगों के बहुत विरुद्ध है। 'प्रयोगः शमयेद् व्याधि' श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखिए। तात्पर्य रोगी अपने रोग की चिकित्सा का उत्तरदायित्व पूर्णतया चिकित्सक के ऊपर छोड़कर संतोष न करें, किन्तु स्वयं भी यथाबुद्धि उसमें सहायता करें—न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ऋग्वेद ॥ जरां मृत्युं भयं व्याधिं यो जानाति स पण्डितः ॥ भोज-प्रबंध ॥

(२१) देवक्षोणीसुरहितकृते दारितम्लेच्छपङ्क्ते-
सह्या सह्या कथमपि महाराष्ट्रयूथस्य चेष्टा।
व्याधिव्यूहप्रतिहतिकृतां व्यक्तमुग्रौषधीनां
कायारोग्यप्रणयिहृदयैः काटवं मर्षणीयम् ॥

(विश्वगुणादर्श)

(२) सहनशीलता—जैसे शरीरस्वास्थ्यप्रेमी शरीर हित के लिए अपने रोग समूह का नाश करने वाली वीर्यवान् औषधियोंकी (रस या विपाक में) प्रकट होने वाली कटुता सहते हैं, वैसे देवब्राह्मण (प्रेमी जन) के हित के लिए यवनों की सेनाव्यूहपंक्ति तोड़नेवाले मराठा जवानों से इस भूमि में जो कुछ दुश्चेष्टित होता है वह देश प्रेमियों को सहन करना चाहिए।

वक्तव्य—मर्षणीयम्—सहनशीलता रोगी के लिए एक आवश्यक गुण है। यह सहनशीलता जैसे रोग के कष्टप्रद लक्षण सुखसे सहन करने में उपयुक्त हुआ करती है, वैसे रसवीर्य विपाक के कारण शरीर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मन के लिए अप्रिय पथ्य तथा औषधियों का सेवन सुखसे करने के लिए आवश्यक होती है। रोगी को रोग के कष्ट विवश होकर सहन करने ही पड़ते हैं। उसके सामने उनको चाहने न चाहने का प्रश्न उसपर आक्रमण करने वाले रोगों के द्वारा रक्खा नहीं जाता। परन्तु वैद्योपदिष्ट पथ्य तथा औषधों की स्थिति वैसी नहीं होती। ये दोनों प्रायः रोगी की दृष्टि से अप्रिय, कटु, कष्टप्रद ही हुआ करते हैं। यदि रोगीमें अप्रिय पथ्य तथा औषधों को वैद्योपदिष्ट विधि, मात्रा तथा वारंवारता के अनुसार सेवन करने के लिए आवश्यक सहनशीलता न हो तो उससे उनके सेवन में टालमटोल होकर पथ्यौषधि उचित होने पर भी वह रोगहरण करने में सफल न होगी।

इस वचन का आशय यह है कि स्वातन्त्र्यसंग्राम के काल में जैसे पारतंत्र्य में फँसे हुए लोगों को बहुत कष्ट सहन करने की आवश्यकता होती है और उनसे डरकर यदि वे संग्राम नहीं करते हैं तो जैसे उन्हें स्वातंत्र्य प्राप्ति नहीं होती, वैसे अपने रोगों के चिकित्सा काल में रोगियों को बहुत कष्ट सहन करने पड़ते हैं और यदि वे डरकर अपने रोगों की चिकित्सा ठीक नहीं कर सकते हैं तो उनको भी स्वास्थ्य प्राप्ति नहीं होती। तात्पर्य सहनशीलता और धैर्य ये गुण रोगी में सफल चिकित्सा के लिए नितान्त आवश्यक है।

असाध्य रोगों और मुमूर्षु रोगियों को छोड़कर सब रोग और रोगी गुणसंपन्न वैद्य, रोगी, परिचारक और औषधि इस पाद चतुष्टय से साध्य होते हैं ऐसा आयुर्वेद महर्षियों का कहना है—चतुष्पादोपपत्तिश्च सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ चरक ॥ इस पादचतुष्टय के गुणों में रोगी के लिए धनाढ्यता, निर्देशकारित्व या वैद्य के कथनानुसार आहार-विहारादि का सेवन करना, ज्ञापकत्व और सत्व-वत्ता ये चार गुण बतलाये हैं—आढ्यो रोगी भिषग् वश्यो ज्ञापकः सत्व-वानपि ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ इनमें से प्रथम तीन गुणों का विवरण उपर्युक्त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तीन वचनों में किया गया है और सत्ववान् का विवरण इस वचन में है। सत्व का एक अर्थ मन है—सत्वमुच्यते मनः। इसका दूसरा अर्थ है सत्व रजस् तमस् इन तीन गुणों में से एक सत्वगुण। ये मन के गुण होते हैं। इसके आधार पर सत्वगुणयुक्त जिसका मन है ऐसा सत्ववान् का अर्थ होता है विषमास्थिति, व्यसन, व्याधि इत्यादि आपत्तियों में धीरज रखना उनके कष्टों को हँसी खुषी से सहन करना, मनमें विषाद न उत्पन्न होने देना ये सत्व के गुण हैं—सत्वं तु व्यसनाभ्युदयक्रियादिस्थानेष्वविक्लवकरम् ॥ सुश्रुत ॥ इसलिए सत्ववान् सहनशील, धैर्यवृत्ति होता है—सत्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ सुश्रुत ॥ धैर्यवृत्ति के कारण चरक में इसका निर्देश 'अभीरुत्व' से किया है।

(२२) शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित्कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥

(स्वप्नवासवदत्ता)

रोगीशयनगृह—शय्या कहीं भी दबी हुई नहीं है, जैसे लगायी गयी वैसे ठीक ठीक है न उसके ऊपर की चद्दर कहीं इधर उधर हुई है; सिर के नीचे का निर्मल तकिया शिरःशूल की औषधियों से कहीं भी खराब हुआ नहीं है; रोग में रोगी की दृष्टि के लिए विलोभक हो ऐसी कोई शोभा (दायक सजावट) नहीं की गई है; शय्याश्रित हुआ रोगपीडित मनुष्य (जब तक ठीक ठीक स्वस्थ नहीं होता तब तक) अपनी ओर से शय्या को छोड़ता नहीं।

वक्तव्य—इस वचन में रोगी का शयन तथा शयनगृह कैसा होना चाहिए इसका अप्रत्यक्षतया संक्षिप्त दिग्दर्शन मिलता है। वैद्यक में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

'शयनमसंबाधं' तथा 'धूमातपरजसामनभिगमनीयमनिष्टानां च शब्द-स्पर्शरूपरसगन्धानां' इस प्रकार निषेधार्थक वर्णन मिलता है। 'दृष्टि विलोभन' शब्द से यह बतलाया है कि शयनगृह केवल अनिष्ट शब्द-स्पर्शादि से विरहित होना पर्याप्त नहीं, वह इष्ट तथा सुखद स्पर्शदृश्यादि से युक्त भी होना उचित है। प्राणी प्राप्य—औषधि और चिकित्सक जैसे रोगी के मित्र होते हैं वैसे शयन भी रोगी का मित्र होता है। इसलिए जैसे रोगी स्वस्थ हुए बिना आपनी ओर से औषधि और चिकित्सक को नहीं छोड़ता वैसे वह पूर्ण स्वस्थ हुए बिना अपनी ओर से शयन को छोड़ना नहीं चाहता यह व्यावहारिक सत्य इस में बतलाया गया है। तात्पर्य, रोगी का शय्या छोड़ना उसके स्वस्थ होने का निदर्शक होता है। शयनगृह के अधिक विवरण के लिए 'इहैव नरक व्याधेः' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(२३) औषधं मूढवैद्यानां त्यजन्तु ज्वरपीडिताः।
परसंसर्गसंसक्तकलत्रमिव साधवः॥ (वैद्यजीवन)

जैसे सज्जन परपुरुषसंसक्त स्त्रीका परित्याग करते हैं वैसे बुद्धिमान् रोगियों को कुवैद्यों की औषधियों का परित्याग करना चाहिए।

वक्तव्य—मूढवैद्य—भिषक् च्छद्मचर, वैद्यव्यंजक। वैद्यभाण्डौषधैः श्लोक और उसका वक्तव्य देखें। इनसे मूल रोग दूर होने में ही कठिनाई होती है और यदि संयोगवश हो गया तो भी नया रोग उत्पन्न होने की संभावना बराबर बनी रहती है—रसायनरसाभिनिवेशिनश्च-वैद्यव्यञ्जनाः सुबहुपुरुषान्तरप्रकाशितौषधिगुणा गणपतेविदेहराजसुतस्य राजयक्ष्माणमजनयन्। हर्षचरित।

(२४) प्रचेतुमनघांवृत्तिमपचेतुमपक्रियाम्।
भजते विश्वकर्तारं भिषज्यन्तमिवातुरः॥ (संकल्पसूर्योदय)

मनुष्य पुण्यप्राप्ति के लिए और पापनाशन के लिए विश्वकर्ता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(परमेश्वर) को भजता है, जैसे रोगी (स्वास्थ्यप्राप्ति और रोगनाशन के लिए) भिषग् को भजता है।

वक्तव्य—इस वचन का वैद्यकीय तात्पर्य यह है कि रोगी स्वास्थ्य प्रदान और व्याधिनाशन करनेवाले सुवैद्य को पसंद करें और पसंद करने पर परमेश्वर के समान उसको माने। 'वैद्योनारायणः स्वयम्' वचन देखें।

(२५) इदं शरीरं शतसंधिजर्जरं
पतत्यवश्यं परिणामदुर्वहम्।
किमौषधं पृच्छसि मूढदुर्मते
निरामयं रामरसायनं पिब ॥ (गोमतीदास)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेनसंकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये व्याधितविज्ञानीयो नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



अन्तकाल में रामनाम—सैंकड़ों स्थानों में जर्जर और अन्तमें दुर्वह हुआ यह शरीर अवश्य नष्ट हो जाता है; अतः हे मूर्ख दुर्मते! औषधि की क्यों पृच्छा कर रहे हो; (अब केवल) शाश्वतसुखदायक रामरसामृत पीओ।

वक्तव्य—मनुष्य की जीविताशा बहुत ही प्रबल होती है, जिससे मृत्यु सामने खड़ा होने पर भी वह औषधि लेकर उससे बचने की आशा किया करता है—अतिकष्टास्ववस्थास्वपि जीवित निरपेक्षा न भवन्ति खलु जगतिसर्वप्राणिनां प्रवृत्तयः ॥ कादंबरी ॥ मनुष्य की इस प्रवृत्ति को देखकर ही इस वचन में मरणोन्मुख व्याधित को 'मूढ', 'दुर्मति' करके संबोधित किया है। और उसे कहा है कि अब

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वैद्यजी को बुलाकर और उसकी औषधि पीकर बीचने का समय चला गया, अब रामनाम लेकर और गंगाजल पीकर पारलौकिक सुख प्राप्त करने का समय रहा है। यदि तुम औषधि के पीछे पड़ोंगे तो 'इदं च नास्ति पर न लभ्यते' इस प्रकार की तुमारी स्थिति होगी। अधिक विवरण के लिए 'शरीरे जर्जरीभूते' श्लोक का वक्तव्य देखें।

रामरसामृतम्—देहान्त के समय मनुष्य की जो मति होती है उसी के अनुसार वह उच्च या नीच गति को प्राप्त होता है—अन्ते मतिः सा गतिः ॥ भगवान् श्री कृष्ण जीने भी यहीं कहा है—यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा सद्भाव-भावितः ॥ अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ गीता ॥ इसलिए अन्तकाल में औषधि इत्यादि सब छोड़कर स्मरणपूर्वक रामनाम लेने के लिए कहा है—'मृत्यून्मुखांधरां ज्ञात्वा' श्लोक देखिए।

सब विचारवान् महापुरुषों की विचारसरणी समान होती है ऐसी अंग्रेजी में कहावत है (All great men think alike) परन्तु यदि भाषा की दृष्टि से इनके समान विचारों का अनुशीलन किया जाय तो यह समानता भाषा और शब्द विन्यास में भी दृग्गोचर होती है। इसके उदाहरण इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय में मिलेंगे, फिर भी यहाँ पर इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण दिया जाता है—अविश्रमं यावदिदं शरीरकं पतत्यवश्यं परिणाम दुर्वहम्। किमौषधं पृच्छसि मूढदुर्मते निरामयं कृष्णरसायनं पिब ॥ नारायणदास सिद्ध ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायां व्याधितविज्ञानीयो नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो भिषग्विज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) यत्रौषधीः समग्मत राजानः समताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहाऽमीवचातनः ॥ (ऋग्वेद)

भिषकव्याख्या—समिति में जैसे (सदस्यों की सहायता से) राजा लोक (शासन का कार्य करते हैं) वैसे औषधियों की सहायता से जो विप्र रोगों के कारणभूत) राक्षसों का नाशन और रोगों का शमन करता है वह भिषक् होता है ।

वक्तव्य—भिषक्—भिषङ् नाम यो भिषज्यति चिकित्स्यति । चक्रपाणि ॥ बिभेत्यस्माद्रोगो वा ।

(२) विद्यासमाप्तौ भिषजस्तृतीया जातिरुच्यते ।
अश्नुते वैद्यशद्बं हि, न वैद्यः पूर्वजन्मना ॥ (चरक)

भिषक् की जाति—वैद्यकशास्त्र का अभ्यास समाप्त होनेपर वैद्य का तीसरा जन्म हुआ ऐसा कहते हैं तथा वह वैद्य उपाधि को प्राप्त होता है; पूर्वजन्म से वैद्य नहीं बनता ।

वक्तव्य—पूर्वजन्म—प्रथमजन्म, जन्म से उपनयन संस्कार तक । उसके पश्चात् वेदशास्त्राध्ययन समाप्त होने तक द्वितीय जन्म या द्विजत्व । तृतीयाजातिः—वेदशास्त्राध्ययन समाप्त होने पर वैद्यकका अध्ययन होनेसे तीसरा जन्म अथवा त्रिजत्व । तात्पर्य, द्विजकुल में जन्म लेनेसे जैसे कोई द्विज नहीं होता किन्तु वेदशास्त्राध्ययन के संस्कारसे बनता है—जन्मनाजायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यतो मनु—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वैसे, वैद्यकुल में जन्म लेनेसे कोई वैद्य नहीं बनता, किन्तु वेदशास्त्राध्ययनोत्तर वैद्यकविद्याका अध्ययन करनेसे बनता है—तस्माद् वैद्यस्तृज: स्मृत: ।। चरक ।। तात्पर्य प्राचीन कालके वैद्य उस समय के सर्व प्रचलित शास्त्रों से भली भाँति परिचित रहते थे। स्वतंत्रकुशल: श्लोक और उसका वक्तव्य भी पढ़िये !

(३) न प्राणिरहितो देशो न च प्राणी निरामय: ।
तस्मात्सर्वत्र भिषजां कल्पिता एव वृत्तय: ।।

(रसरत्नसमुच्चय)

वैद्यों की जीविका—मनुष्य रहित कोई देश नहीं और सर्वथा रोग रहित कोई मनुष्य नहीं; इसलिए वैद्योंकी जीविका सर्वत्र बनी रहती है।

वक्तव्य—न च प्राणी निरामय:—मनुष्य स्वस्थ होते नहीं यह इसका अर्थ नहीं है। किन्तु जीवन भर में सदैव नीरोग नहीं रहते, बीच बीच में रोग पीड़ित हुआ करते हैं यह इसका अर्थ है। पृष्ठ ३४ पर २१ वाँ और २२ वाँ श्लोक देखें।

(४) तक्षा रिष्टं, रुतं भिषग् , ब्रह्मासुन्वन्तमिच्छति ।। (ऋग्वेद)

बढ़ाई टूटी फूटी वस्तु को, वैद्य रोगी को और ब्रह्मा यज्ञार्थी को चाहता है।

वक्तव्य—ब्रह्मा-यज्ञ के ऋत्विजों में से एक-उद्गातृ होतृ ब्रह्मणो यथा-ऽध्वयु विनाऽध्वरे ।। सुश्रुत ।।

(५) वैद्यानामातुर: श्रेयान् , व्यसनी यो नियोगिनाम् ।
विदुषां जीवनं मूर्ख:, सद्वर्णो जीवनं सताम् ।।

(हितोपदेश)

वैद्यों के लिए रोगी तथा अधिकारियों के लिए व्यसनी श्रेयस्कर होते हैं, पण्डितों का जीवन अपण्डितों पर और सज्जनों का उच्च वर्णियों पर होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६) स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्ति किञ्चन ।
कातरा दीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्य हेतवः ॥

नीरोग और असाध्य रोग पीड़ित इनसे वैद्यों को कुछ भी लाभ नहीं है, (रोग से अकारण) डरे हुए (Nervous) और जीर्ण रोगी वैद्यों के भाग्य हेतु होते हैं ।

(७) चोराः प्रमत्ते जीवन्ति, व्याधितेषु चिकित्सकाः ।
राजा विवदमानेषु, नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥

(महाभारत)

चोर गाफिल रहनेवालों पर, वैद्य रोगियों पर, राजा लड़ाई झगड़े करनेवालों पर और पण्डित मूर्खोंपर सदैव जीवित रहते हैं ।

(८) वैद्यानां शारदी माता, पिता च कुसुमाकरः ।
यमदंष्ट्रा स्वसा प्रोक्ता, हितभुङ्मितभुङ्रिपुः ॥

शरद् ऋतु वैद्यों की माता, वसंत वैद्यों का पिता, कार्तिक मार्गशीर्ष का संधिकाल वैद्यों की बहन और हितमित भोजन करनेवाला वैद्यों के शत्रु होते हैं ॥

वक्तव्य—यमदंष्ट्रा-कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावाग्रयणस्य च । यमदंष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति ॥ शार्ङ्गधर ॥ शरदादि में रोग अधिक होने से वे वैद्य के लिए मातादिसमहितकारी मित्र और मितभुक् रोगी न होने से शत्रु बतलाये हैं ॥

(९) विद्या प्रवसतो मित्रं, भार्या मित्रं गृहे सतः ।
आतुरस्य भिषङ् मित्रं, दानं मित्रं मरिष्यतः ॥ (महाभारत)

प्रवासी के लिए विद्वत्ता, गृहस्थाश्रमी के लिए पत्नी, रोगी के लिए चिकित्सक और मुमूर्षु के लिए दान मित्र होते हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१०) कष्टं जीवति गणिका, गणकोऽपि च राजसेवको वैद्यः ।
दिवसे दिवसे मरणं परस्य यच्चित्तरंजनं वृत्तिः ॥

वेश्या, ज्योतिषी, राजसेवक और वैद्य, प्रतिदिन परचित्तरंजन करने की वृत्ति होने के कारण, मरणसम कष्टदायक जीवन बिताते हैं।

वक्तव्य—वेश्या, ज्योतिषी, राजसेवक तथा अन्य सेवक और मनुष्य इनमें चाटुकारता या खुशामद परचित्तरंजन का अर्थ होता है और स्वार्थ तथा अर्थ की सिद्धि उसका उद्देश्य रहता है, इससे अधिक नहीं। परन्तु वैद्य में उसका अर्थ और उद्देश्य दोनों बहुत ऊँचे रहते हैं। मनुष्य जब रोगग्रस्त होता है तब वह उद्विग्न, उदास, चिंतित, भयभीत, दुर्बल हुआ करता है जिससे उसका रोग बढ़ने में सहायता होती है। अतः वैद्य को औषधिचिकित्सा के अतिरिक्त रोगियों को मृदु, मधुर, प्रिय, इष्ट, सुखावह शब्दों के द्वारा धैर्य, आश्वासन, बलप्रदान करने की आवश्यकता होती है और यही उसके रोगी के अनुरंजन का उद्देश्य होता है और तद्द्वारा रोगी को रोगमुक्त करना उसका स्वार्थ रहता है। तात्पर्य, परानुरंजन उसके व्यवसाय का परार्थ होता है। 'आश्वासन 'सुहृद' भी देखें।

(११) प्रत्यक्ष कविकाव्यं च, रूपं च कुलयोषितः ।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचित् यदि रोचते ॥

वैद्य की उपेक्षा—जीवित कवि का काव्य, धर्मपत्नी का रूपलावण्य और गृहवैद्य का चिकित्सा कौशल्य यदि किसी को प्रिय होता हो तो किसी विरला को।

वक्तव्य—गृहवैद्य—परिवार या कुटुम्ब में आवश्यकता पड़नेपर हमेशा तथा प्रथम बुलाये जाने वाले चिकित्सक (Family physician) की कदर न होनेका मुख्य कारण अतिपरिचय है। इससे अच्छे मनुष्यों के संबंध में भीं अवज्ञा उत्पन्न हो जाती है—अतिपरिच-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यादवज्ञा संततगमनादनादरो भवति । मलये भिल्लपुरन्ध्री चन्दनतरुका-ष्ठमिन्धनं कुरुते ।। दूसरा कारण निकटता । घर का जोगी जोगडा, आनगांव का सिद्ध—सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् । गांगं हित्वा यथाऽन्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ।। भागवत ।। इसलिए गृहवैद्य कितना भी योग्य क्यों न हो, बाहरसे चिकित्सक बुलाये जाते हैं और वे भी अनेक बार गृहवैद्य से विचारविनिमय किये बिना। जो स्थिति गृहवैद्य की वही स्थिति छात्रावास (Hostels) के चिकित्साधिकारियों की (Medical of ficers) भी रहती है।

(१२) षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम् ।।
(१३) नारीविगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम् ।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ।।

(महाभारत)

ये छः सदासर्वदा अपने ऊपर पहले उपकार किये हुए लोगों का अवमान किया करते हैं—(१) गुरूसे शिक्षा प्राप्त शिष्य गुरूका (२) विवाह हुए पुत्र माता का (३) कामोपभोग का वय नष्ट हुए पुरूष पत्नीका (४) अर्थसिद्धि हुए सेवक स्वामी का, (५) कान्तार पार किये हुए नाव का (६) और (रोग मुक्त हुए) रोगी चिकित्सक का।

वक्तव्य—कान्तारः—कान्तारोऽस्त्री महारण्ये बिले दुर्गमवर्त्मनि ।। मेदिनी ।। जिसमें से जाना कठिन है ऐसे दुर्गम नदी को पार किये हुए।

(१४) उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वराङ्गनाः ।
सूतिका दूतिका चैव कार्यान्ते तृणवन्मताः ।।

(अध्ययन काल में) अध्यापक, (चिकित्साकाल में) वैद्य, समागमकालमें स्त्रियाँ, (प्रसवकाल में) सूतिका और (संदेशप्रेषण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

काल में) दूतिका ये (कार्यकाल में अत्यन्त उपयुक्त मालूम होने पर भी) कार्य समाप्त होने पर तृणसम तुच्छ माने जाते हैं।

वक्तव्य—सूतिका—(१) प्रसूतास्त्री, यह अर्थ यहाँ पर उचित नहीं है। (२) सूतिं कारयति या सा, प्रसवमाणस्त्री को प्रसव में सहायता देनेवाली स्त्री। यहाँ पर यही अर्थ योग्य है और इस अर्थ में (Mid wife) सूतिका का उपयोग वाग्भटने किया है—तत्रोदीक्षेत सा सूतिं सूतिकापरिवारिता। अष्टांगहृदय" इसकी टीकामें अरुणदत्त 'अनेक वार प्रसवानुभूत तत्कालोचित व्यवहारकुशलाभिः स्त्रीभिः परिवारिता' ऐसा उसका अर्थ दिया है।

(१५) निर्वृत्ताध्वरकृत्य ऋत्विज महोत्तीर्णापगो नाविकं
युद्धान्ते सुभटं च सिद्धविजयो, वोढारमाप्तस्थलः ॥
वृद्धं वारवधूजनं च कितवो निर्घृष्टतद्यौवनो
ध्वस्तातङ्कचयश्चिकित्सकमपि द्वेष्टि प्रदेयार्थिनम् ॥

(विश्वगुणादर्श)

यज्ञकर्म से निवृत्त हुआ प्रदेयार्थी ऋत्विजका, नदीपार किया हुआ प्रदेयार्थी नाविक का, युद्ध के अन्तमें विजयी प्रदेयार्थी योद्धा का, यौवन का पूर्ण उपभोग लिया हुआ धूर्त प्रदेयार्थी वृद्ध वारवधूका, और रोग समुदाय नष्ट हुआ रोगी प्रदेयार्थी चिकित्सक का द्वेष करता है।

वक्तव्य—प्रदेयार्थी–दक्षिणा, शुल्क (Fee) क्रय या वेतन मांगने वाला, इसका संबंध प्रत्येक के साथ है। कृतघ्नता मनुष्य का बड़ा भारी दुर्गुण है। इसने न जन्मदात्री माता को छोड़ा न प्राणदाता चिकित्सक को, तब औरों की क्या कथा? कृशानु ने वैद्य धनहारक होते हैं ऐसी उनकी निन्दा की, तब विश्वावसुने 'अहो कष्टं कृतोपकारेष्वगदङ्कारेषु कृतघ्नएवनिर्विवेको लोकः' इस वचन से लोकप्राणाभिसर वैद्यों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के प्रति भी कैसे कृतघ्न होते हैं इसको इस श्लोकमें प्रथम विविध क्षेत्रों से विविध स्वरूप के विविध उदाहरण देकर बतलाया और इस प्रकार मनुष्यों की कृतघ्नता कैसी चतुर्दिक् होती है उसको स्पष्ट किया।

(१६) व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

वैद्यत्वकी परिसीमा—व्याधि का ठीक निदान करना, रोगी के कष्टों का निवारण करना इसमें वैद्य का वैद्यत्व है; वैद्य किसी की आयु का स्वामी नहीं होता।

(१७) अपि धन्वन्तरिर्वैद्यः किं करोति गतायुषि। (हितोपदेश)

धन्वन्तरि वैद्य भी मरणासन्न रोगी में क्या कर सकता है?।

वक्तव्य—धन्वन्तरि–सिद्धहस्त, सफल, काय–तथा शल्य चिकित्सक। 'ततो धन्वन्तरि' श्लोक (पृष्ठ १८) और उसका वक्तव्य देखिए। धन्वन्तरि मरणोन्मुख रोगी को भी बचाता है ऐसी लोगों की धारणा है, परन्तु वह गलत है। जो प्रयत्नसाध्य हैं, चिकित्सासाध्य हैं, प्रयत्न तथा चिकित्सा के विना जो साध्य नहीं हो सकते ऐसे रोगों से पीडितों को जो अपनी युक्ति बुद्धि तथा प्रयत्न पराकाष्ठा से बराबर बचाने में सफल होता है वह धन्वन्तरि वैद्य है।

(१८) न ह्यलं ज्ञानवान् भिषङ् मुमूर्षुरातुरमुत्थापयितुम्। (चरक)

ज्ञानी चिकित्सक भी मरणासन्न रोगी को बचाने में समर्थ नहीं होता।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों का तात्पर्य यह है कि चिकित्सक का वास्तविक स्थान चिकित्स्य विशेषतया दुश्चिकित्स्य रोगों में तथा उनसे पीड़ित रोगियों में है और उनकी प्रतिष्ठा इनको ठीक करने में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है, असाध्य रोगों तथा मरणासन्न रोगियों को ठीक न करने में उनकी अप्रतिष्ठा नहीं हैं।

(१९) मन्त्रिणां भिन्नसंधाने, भिषजां सांनिपातिके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, सुस्थे को वा न पण्डितः॥

(हितोपदेश)

चिकित्सक की कसौटी—(संबंधित देशों से) मित्रता नष्ट होने पर किये जानेवाले कर्म में मन्त्रियों की बुद्धि की और सान्निपातिक रोगों में चिकित्सक की बुद्धि की अभिव्यक्ति होती है। जब सब ठीक रहता है तब कौन नहीं पण्डित बन बैठता है?

वक्तव्य—सांनिपातिके–दुश्चिकित्स्य रोग में, क्यों कि सन्निपात दुश्चिकित्स्य होता है–सन्निपातो दुश्चिकित्स्यानाम् ।चरक। मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता। भालुकितन्त्र। उसमें सामान्य परिपाटी से सफलता नहीं मिलती, बहुत सोच विचार करके युक्ति बुद्धि तर्क लड़ाकर काम लेना पड़ता है। (पृष्ठ ३५७ पर) 'वैकल्यं धरणीपातं' श्लोक देखें।

(२०) वैद्यस्तर्कविहीनो निर्लज्जा कुलवधूर्यतिर्मूर्खः।
कटके च प्राहुणिको मस्तकशूलानि चत्वारि॥

वैद्यमें तर्क का महत्व—तर्कहीन (निर्बुद्ध) चिकित्सक, निर्लज्जस्त्री, मूर्खयति, और घर में मेहमान ये चार बातें सिरदर्द करनेवाली होती है।

वक्तव्य—मार्गदर्शनार्थ चिकित्सा के कुछ सामान्य सिद्धान्त होते हैं। परन्तु रोगी की चिकित्सामें आँखें मूंदकर उनको काम में नहीं ला सकते। रोगी के दूष्यदोषादि का विचार करके उनको काम में लाना पड़ता है या त्यागना पड़ता है। इस सारासार विचार करने की शक्ति को तर्क कहते हैं। इस तर्कका महत्व चरक में बहुत स्पष्टतया वर्णित है—न चैकान्तेन निर्दिष्टेऽप्यर्थेऽभिनिविशेद्बुधः। स्वयमप्यत्र वैद्येन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तर्क्यं बुद्धिमता भवेत् ।। उत्पद्येत ही साऽवस्था देशकालबलं प्रति । यस्यां कार्यमकार्यं स्यादकार्यं कार्यमेव च ।। तस्मात्सत्यपि निर्देशे कुर्यादूह्य स्वयं धिया। विना तर्केण यासिद्धिर्यदृच्छा सिद्धिरेव सा ।। इसलिए यदि किसी तर्क हीन वैद्यसे रोगीकी चिकित्सा होती हो तो जबतक रोगी ठीक नहीं हुआ तब तक वह एक सिरदर्द की बात है इसमें जरा भी संदेह नहीं हो सकता ।

(२१) अलङ्करोति हि जरा राजामात्यभिषग्यतीन् ।
त्रिडंबयति पण्यस्त्रीमल्लगायकसेवकान् ।।

वैद्यमें वयोवृद्धता का महत्व—राजा मन्त्री, वैद्य और यति इनमें वयोवृद्धता शोभावह हुआ करती है । इसके विपरीत वेश्या, मल्ल गायक और सेवक इनमें वह दोषावह होती है ।

वक्तव्य—वयोवृद्धि के साथसाथ मनुष्यकी बुद्धि अधिकाधिक प्रगल्भ होती जाती है तथा उसके अनुभव अधिकाधिक समृद्ध होते जाते हैं, 'आचार्यात्पादमादत्ते' श्लोक पृष्ठ २८८ पर देखें। इसलिए, बाल वृद्ध, दुर्बल रोगियों में, तीव्र, चिरकारी (Chronic) दुश्चिकित्स्य रोगों से पीड़ितों में जहाँ तक हो सके वृद्ध वैद्यको ही पसंद करना चाहिए ।

(२२) राक्षसी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता ।
शस्त्रैः कपायैर्लोहाद्यैः, क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः ।।
(भैषज्यरत्नावली)

(२३) अधमः शस्त्रदाहाभ्यां, मध्यमो मूलकादिभिः ।
उत्तमो रसवैद्यस्तु, सिद्धवैद्यस्तु मान्त्रिकः ।।

भिषक्के प्रकार—शस्त्र (अग्निक्षारादि) से राक्षसी, (जड़ी बूटियों के) कषायादि से मानुषी और लोहादि (धातुओं के भस्मादि) से दैवी इस प्रकार त्रिविध चिकित्सा होती है, ये क्रम से अधिकाधिक पूजित होती हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इनमें शस्त्रदाहादि द्वारा चिकित्सा करनेवाला चिकित्सक निकृष्ट, जड़ी-बूटियों से चिकित्सा करनेवाला मध्यम और रसादि से चिकित्सा करनेवाला चिकित्सक उत्तम होता है। मान्त्रिक चिकित्सा करने वाला सिद्ध वैद्य होता है।

वक्तव्य—इन वचनों में प्राचीनकाल के प्रमुख चिकित्सा संप्रदाय और उनके संबंध में लोगों की भावना बतलायी है। क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः—उस भावना के अनुसार शस्त्रचिकित्सा सब से कम पूजनीय अर्थात् स्वीकार करने योग्य और रस भस्मादि की चिकित्सा सबसे अधिक पूजनीय अर्थात् स्वीकार करने योग्य रही। राक्षसी-राक्षसों के समान क्रूर हिंसक तथा कष्टदायक। संमोहक औषधियाँ न होने से रोगियों को बांधबूंध करके रखने की आवश्यकता होने के कारण उसी के अभाव से शस्त्रक्रिया के समय रोगियों को अत्यन्त असह्य कष्ट होने के कारण तथा शस्त्र, अग्नि, दाह जैसे क्रूर उपाय प्रयुक्त होने के कारण प्राचीनकाल की शस्त्रचिकित्सा को जो राक्षसी कहा है वह उचित ही है। वर्तमानकालीन शस्त्रचिकित्सा में संमोहन औषधियों के कारण जरा भी कष्ट नहीं होते, फिर भी रोगी, जबतक लाचारी नहीं होती तबतक उसको पसंद नहीं करते, फिर प्राचीन राक्षसी चिकित्सा को लोगों ने निकृष्ट माना तो उसमें आश्चर्य नहीं है। परन्तु इससे कोई यह न समझें कि भारतवर्ष में शस्त्रचिकित्सा सदैव राक्षसी स्वरूप की रही। प्राचीन काल में एक समय ऐसा था जब शस्त्रचिकित्सा ही दैवी चिकित्सा थी, क्योंकि उस समय अश्विनीकुमार, धन्वन्तरि जैसे शस्त्रचिकित्सक थे, संमोहनी, संधानी, संजीवनी जैसी शस्त्रकर्म में अत्यंत उपयुक्त अमोघ दिव्य औषधियाँ उपलब्ध थीं तथा इनके कारण बड़े बड़े शस्त्रकर्म भी (major operations) सरलता से, सुख से और सफलता से सुसंपन्न हो जाते थे। पृष्ठ १७ पर 'अश्विनौ देवभिषजौ' तथा 'हे राजन् न भेतव्यम्' ये वचन तथा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उनका वक्तव्य देखिए। यह दैवी चिकित्सा राक्षसी कहलाने का प्रथम कारण संमोहन्यादि औषधियों की अनुपलब्धता, दूसरा कारण बौद्ध धर्म या अहिंसा धर्म का प्रचार और प्रभाव, तीसरा कारण रसशास्त्र का उदय तथा उत्कर्ष। दैवी—रसचिकित्सा। रस शंभुज अर्थात् शंकर जी से उत्पन्न होने के कारण, राक्षसी चिकित्सा की क्रूरता तथा कष्टदायकता रसचिकित्सा में होने के कारण, अल्प मात्रा, अरुचि का अभाव शीघ्र गुणवत्ता, दीर्घकाल औषधि सेवन की आवश्यकता होने पर उसके लिए ऊब उत्पन्न न होने के कारण, देशकाल दोष दूष्यादि का विशेष परीक्षण आवश्यक न होने के कारण और अनेकबार असाध्य रोग भी साध्य होने की शक्यता होने के कारण रसचिकित्सा को दैवी कहा है। 'अल्पमात्रोपयोगित्वात्' श्लोक देखें। इन कारणों से लोगों ने रस चिकित्सा और उसके चिकित्सकों को अधिक पसंद किया हो तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। लोह-धातु (Metals) धातु-लोहे लुह इति मतः सोऽपि कर्षार्थवाची ॥ रसरत्नसमुच्चय ॥ सुवर्णं रूप्यकं ताम्रं वङ्गं जसदसीसकम्। लौहं चेति मताः सप्त धातवो गिरि संभवाः ॥ आयुर्वेदप्रकाश ॥ इन तीन प्रकारों में दैवी और मानुषी चिकित्सा, समान क्षेत्र होने के कारण, साथ साथ रहती हैं और एक दूसरे को सहायक तथा उपकारक, होती है। शस्त्रचिकित्सा का क्षेत्र भिन्न होता है। कषाय 'कण्ठस्य कर्षणात्' श्लोक देखें।

(२४) द्विविधा समुदेति वेदना नियतं चेतसि देह एव च।
श्रुतिविध्युपचारकोविदा द्विविधा एव तयोश्चिकित्सकाः ॥

(सौन्दरनन्द)

मन तथा देह में निश्चित स्वरूप की द्विविध वेदनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं और उन द्विविध वेदनाओं के शास्त्र तथा उपचार के (विशेषज्ञ) चिकित्सक भी द्विविध होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—इन दो वचनों में चिकित्सकों के प्रकार या वर्ग निर्दिष्ट किये हैं। प्रथम वचन का वर्गीकरण चिकित्सापद्धतियों पर और दूसरे वचन का अधिष्ठान पर अधिष्ठित है।

प्रथम वचन में क्रम से शल्यचिकित्सक या शस्त्रचिकित्सक (Surgen), कायचिकित्सक (Physician), रसचिकित्सक और मन्त्र-चिकित्सक निर्दिष्ट हैं।

द्वितीय वचन में 'तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा' इसके आधार पर दो वर्ग किये हैं। मनोऽव्यथा को आधि कहते हैं। इसलिए उसकी चिकित्सा करनेवाले को मनश्चिकित्सक या आधिचिकित्सक (Psychotheraputist) कहते हैं। 'दूसरा कायचिकित्सक। उसके अर्थ के लिए नीचे देखिए।

(२५) जाठरः प्राणिनामग्निः कायइत्यभिधीयते।
यस्तं चिकित्सेत् सीदन्तं स वै कायचिकित्सकः॥
(भोजतन्त्र)

प्राणियों की जठराग्नि को काय कहते हैं। उस दुर्बल हुई जठराग्नि की जो चिकित्सा करता है वह कायचिकित्सक है।

वक्तव्य—'रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ' इस सिद्धान्त के अनुसार रोगों की चिकित्सा का मतलब जठराग्निचिकित्सा। इसलिए वैद्य को काय-चिकित्सक कहा है। काय का दूसरा अर्थ है सर्वशरीर—कायचिकित्सा-नां सर्वाङ्गसंश्रितानां व्याधीनां ज्वररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मारकुष्ठमे-हातीसारादीनामुपशमार्थम्॥ चरक॥ दूसरी चिकित्सा 'शल्योद्धरणार्थं यन्त्रशस्त्रक्षारप्रणिधान' द्वारा होती है। इस प्रकार कायचिकित्सक (Physician, General practitioner) और शस्त्रचिकित्सक (Surgeon) करके दो प्रकारके चिकित्सक होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२६) द्विविधास्तु खलु भिषजो भवन्त्यग्निवेश! प्राणानामेकेऽभिसरा हन्तारो रोगाणां, रोगाणामेकेऽभिसरा हंतारः प्राणानामिति॥

(चरक)

हे अग्निवेश ! दो प्रकार के भिषक् होते हैं; एक प्राणदाता और रोगनाशक और दूसरे रोगदाता और प्राणनाशक।

(२७) वैद्यभाण्डौषधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः ।
लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रतिरूपकाः ॥

(२८) श्रुतदृष्टक्रियाकालमात्राज्ञानबहिष्कृताः ।
वर्जनीया हि ते मृत्योश्चरन्त्यनुचराभुवि ॥ (चरक)

रोगाभिसर भिषक्—वैद्यक व्यवसाय के लिए उपयुक्त पात्र, औषधियाँ, ग्रन्थ (या चित्र प्रतिकृति) हरी वनस्पतियाँ इत्यादि बाह्य आडम्बरों से जो वैद्यशब्द को प्राप्त होते हैं वे अज्ञानी मनुष्य प्रतिरूपक वैद्य होते हैं॥ शास्त्र, अनुभव, क्रियाभ्यास, काल, प्रमाण इनके ज्ञान से पूर्णतया बहिष्कृत जो होते हैं उनको पृथ्वी पर घुमनेवाले यमराज के अनुचर समझकर (चिकित्सार्थ) वर्ज्य करें।

वक्तव्य—पुस्त—(१) पुस्तक, ग्रन्थ । (२) चित्र प्रतिकृति (Models) इत्यादि–मृदा वा दारूणा वाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा। लोहरत्नैः कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते ॥ प्रतिरूपकाः—ढोंगी वैद्य। भिषक्छद्मचर, भिषक्वेशाचर, वैद्यव्यंजन और रोगाभिसरभी इनको कहते हैं। अनुचराः—आगे कुवैद्यों का जो वर्णन है उसको देखिए। इनके द्वारा जिस प्रकारकी चिकित्सा होने की प्रायः संभावना होती उसका स्वरूप नीचे के श्लोक में वर्णित है। ३६१ पृष्ठ पर औषधं मूढवैद्यानां' श्लोक का वक्तव्य देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२९) यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि घर्षितम् ।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति ॥
(लटकमेलक)

आदर्शरोगाभिसर चिकित्सा—जिस किसीभी पेड़ की जड़ उठाकर, जिस कीसी द्रव्य के साथ पीसकर, जिस किसी रोगी को दे दिया जाय। फिर उस का फल कुछ न कुछ (अच्छा या बूरा) होकर ही रहेगा।

(३०) मिथ्यौषधैर्हन्तमृपाकषायै-
रसह्यलेहैरयथार्थतैलैः ।
वैद्या इमे वञ्चितरुग्णवर्गाः
पिचण्डभाण्डं परिपूरयन्ति ॥ (विश्वगुणादर्श)

मिथ्या औषधियाँ, काढ़े, असह्य लेह और रद्दी तेल इनसे रोगी समूह को ठगाने वाले ये वैद्य अपना उदरपूरण किया करते हैं।

(३१) कषायैरुपवासैश्च कृतामुल्लाघतां नृणाम् ।
निजौषधकृतां वैद्यो निवेद्य हरते धनम् ॥
(विश्वगुणादर्श)

काढे, उपवास इन से हुई रोगियों की रोगमुक्ति अपने औषधों से हुई है ऐसा कहकर वैद्य रोगियों से धनका हरण करता है।

वक्तव्य—उल्लाघता-उल्लाघो निर्गतो गदात्। अमरकोश॥ रोगमुक्त (Convlescent), उसकी अवस्था उल्लाघता (Convalescence) रोगमुक्ति की अवस्था। निजौषधकृताम्—धातुसाम्यरक्षण (Haemostasis) और प्रतिकूल परिस्थिति के लिए शरीर को अनुकूल बनाना (Adaptation) ये शरीर के दो स्वभावधर्म हैं। इनके बलपर शरीर जहाँ तक हो सके अस्वस्थ नहीं होता और यदि परिस्थिति या हेतु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

बलवान् होने से वह कुछ अस्वस्थ हुआ तो कुछ समय के पश्चात् उपचार के बिना अथवा उपवास विरेचनादि सामान्य उपचारों से वह यथापूर्व स्वस्थ हो जाता है। मनुष्यों के बहुतेरे नित्यनैमित्तिक रोग प्रायः इस प्रकारके होते हैं और औषधियों के बिना ठीक हो सकते हैं। हरते धनम्–रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सक के पास जाना मनुष्यों का स्वभाव है और रोगियों पर चिकित्सकों की वृत्ति होने से आवश्यकता न होने पर भी रोगियों को औषधियाँ, सूचिकाभरण इत्यादि देना उनका स्वभाव हैं। इससे आपसे आप ठीक होने वाले रोगों को ठीक करने का श्रेय उन्हें मिल जाता है, साथ ही साथ रोगी से धन हरण करने के लिए अच्छा बहाना भी प्राप्त होता है। प्राचीन काल की अपेक्षा वर्तमान कालमें धनहरण अधिक मात्रा में होने लगा है, क्योंकि आधुनिक चिकित्सकों के हाथोंमें महंगी औषधियों के अतिरिक्त रोगी परीक्षण के निमित्त एकसे एक महंगे अनन्त साधन उपलब्ध हुए हैं। एकबार रोगी उसके चक्रव्यूह में फ़ँसने पर कोल्हू में फँसे हुए ईख के समान खोई होकर ही बाहर निकल सकता है। उपवासैः कृताम्—इसका आशय यह है कि वैद्य द्वारा दी हुई औषधियाँ रोगी को उल्लाघता प्राप्त होने में जरूर सहायक होती हैं, परन्तु उसका वास्तविक श्रेय स्वभाव, प्रकृति, या ईश्वर को है, वैद्य जी को नहीं है, इसको न भूलना चाहिए—वैद्य करे वैदाई, चंगा करे खुदाई। Physician treats, Nature cures. i treat, HE CURES.

(३२) वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर।
यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥

(सुभाषितावलि)

हे यमराज सहोदर वैद्यराज ? तुम्हें मेरा नमस्कारः, तुम यम से भी बढ़कर हो, क्योंकि यम केवल प्राणों का अपहरण करता है; परन्तु तुम प्राण तथा धन दोनों का अपहरण करनेवाले हो।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३३) वैद्यराज नमस्तुभ्यं क्षपिताशेष मानव ।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते ॥

(शार्ङ्गधर पद्धति)

समस्त मानवजाति का नाश करने वाले हे वैद्यराज ? तुम्हें मेरा नमस्कार। (मानव संहार करनेका) यह भार तुमारे पर छोड़कर यमराज सुख से रहते हैं।

(३४) चितां प्रज्वलितां दृष्ट्वा वैद्यो विस्मयमागतः ।
नाहं गतो न मे भ्राता, कस्येदं हस्तलाघवम् ॥

जलती हुई चिताको देखकर वैद्यको आश्चर्य हुआ ; (वह मन में सोचने लगा) न मैं गया न मेरा कोई भाई, फिर यह हस्तलाघव किसका है ?

वक्तव्य—उपर्युक्त तीन वचनों में, विशेषतया इस वचन में चिकित्सक के द्वारा होनेवाले रोगियों के नैत्यिक धनापहरण कर्म के अतिरिक्त उनके नैमित्तिक प्राणापहरण कर्म का बहुत रोचक वर्णन किया है। भ्राता—व्यवसायबन्धु। हस्तलाघवम्—प्राणापहरण करनेका हस्तकौशल्य।

चिकित्सकों के द्वारा अनेक बार रोगियोंकी अकालमृत्यु होती है। उसके अज्ञान, तर्कहीनता, उसके कारण रोग का ठीक निदान न होना, आत्मप्रतिष्ठा की मिथ्याकल्पना, आत्मविश्वास का अतियोग, अन्य अच्छे वैद्यों से आवश्यकता होने पर भी विचारविनिमय तथा परामर्श न लेनेकी प्रवृत्ति, रोगियों के सम्बन्ध में अनास्था, उसके कारण तथा उनको अज्ञानी समझकर उनसे पूंछे गये प्रश्नों की ओर तथा बताये गये सुझावों की ओर ध्यान न देना, चिकित्सा करने में अवास्तव उत्साह (Overenthusiasm) दिखाना तथा शीघ्रता या चमत्कार दिखाने की प्रवृत्ति, इसलिए अतिवीर्यशाली तथा अतिविषालु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

औषधियों का प्रयोग, प्रयोगपूर्व आवश्यक पूर्वोपायों (Precautions) की ओर ध्यान न देना इत्यादि में से एक या अनेक कारण हुआ करते हैं। प्राचीन वैद्यक में विषैली तथा अतिवीर्यवान् औषधियाँ बहुत ही कम होने से तथा उनके अवचरण (Administration) का एक ही राजमार्ग होने से रोगियों पर यह आपत्ति आ पडने के मौके बहुत कम हुआ करते हैं। इसके विपरीत आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में औषधियाँ एक से बढकर विषालु तथा वीर्यवान् होने से तथा उनके अवचरण के मार्ग वैसे ही एक से एक बढकर आशुकारी होने से रोगियों पर यह आपत्ति पहले से अधिक बार तथा अधिक शीघ्रता से आ पडती है। अनेक बार आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सक अपने हस्त लाघव का चमत्कार अपने सामने देखता है, प्राचीन वैद्य के समान उसे स्मशान में जाकर चिता देखने-की आवश्यकता नहीं होती।

(३५) प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तं विद्याद् ब्रह्मघातकम्॥
(नारदस्मृति)

प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्योतिष तथा धर्म निर्णय जो शास्त्राधार के विना कहता है वह ब्रह्मघातक होता है।

वक्तव्य—प्रायश्चित्त—अपने पापकर्मों के लिए अपनी इच्छा से किया जाने वाला धर्मशास्त्रोक्त व्रतोपवासादि देहदण्ड—प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते। तपो निश्चय संयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते॥ हेमाद्रि॥ वैद्यकीय अर्थ के लिए 'चिकित्सितं व्याधिहरं' श्लोक का वक्तव्य देखें। ज्योतिषम्—वैद्यकीय दृष्ट्या रोगी के लक्षण अरिष्ट आदि देखकर उसके संबंध का भविष्य कथन। धर्मनिर्णय—पथ्यापथ्य की दृष्टि से रोगी को आहार विहार संबंधी किया गया उपदेश। इस वचन का वैद्यकीय आशय यह है कि जो वैद्य रोगी के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सम्बन्ध का भेषज, उपचार, भविष्य और पथ्यापथ्यादि का निर्णय शास्त्र या अनुभव के आधार पर न कहकर यद्वा तद्वा कहता है वह ब्रह्महत्या का पातक करता है। तात्पर्य रोगी के ऊपर औषधि आदि का प्रयोग करके देखना महापाप है। 'यस्य कस्य तरोः' (पृष्ठ ४०७) श्लोक देखिए।

(३६) चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या प्रचरतां दमः ॥ (मनु)

कुचिकित्सा के लिए दण्ड—मिथ्या चिकित्सा करनेवाले सब चिकित्सकों का दमन होना चाहिए।

वक्तव्य—मिथ्याप्रचरताम्—सर्वेषां कायशल्यादिभिषजां दुश्चिकित्सां कुर्वतां दण्डः कर्त्तव्यः। मन्वर्थमुक्तावलि ॥ योग्यताप्राप्त (Qualified) चिकित्सक होते हुए भी उससे होने वाली दुश्चिकित्सा मिथ्याचरण कहलाती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी 'भिषङ् मिथ्याचरन् दण्ड्यः' कहा है। वहाँ पर मिताक्षरा में 'यः पुनर्भिषक् मिथ्या आयुर्वेदानभिज्ञ एव जीवनार्थं चिकित्सितज्ञोऽहमिति तिर्यङ्मनुष्यराजपुरुषेषु चिकित्सामाचरत्यसौ दण्डनीयः' इस प्रकार इसका अर्थ दिया है। इससे मिथ्याचरण का अर्थ कुवैद्य (Quack) चिकित्सा होता है। तात्पर्य, कुवैद्य चिकित्सा व्यवसाय करने पर और योग्यता प्राप्त वैद्य दुश्चिकित्सा करने पर दण्ड्य होते हैं। यह दण्ड रोगी को हुई हानि के अनुसार सौम्य या कठोर देनेके लिए कहा है—भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वस्साहस दण्डः, कर्मोपरोधेन विपत्तौ मध्यमः, मर्मवैगुण्यकरणे दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥ कौ. अर्थशास्त्र ॥

मनुष्य स्खलनशील होनेसे चिकित्सकों द्वारा गलतियाँ होना स्वाभाविक है। फिर भी यदि वे रोगियों के लिए हानिकर रही तो क्षम्य नहीं हैं। पाश्चात्य देशों में चिकित्सकों की गलतियाँ वृत्तपत्रों में प्रकाशित होकर उनपर मुकदमें चलाये जाते हैं। यहाँके वृत्तपत्रों में चिकित्सकों की गलतियाँ वृत्तपत्रों में प्रकाशित हुई प्रायः दिखाई नहीं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देती, न उनपर चलाये गये मुकदमें प्रायः सुनाई देते हैं। परन्तु इससे यह समझने का कोई कारण नहीं है कि हमारे देश के चिकित्सक रोगियों को हानि पहुँचे इस प्रकार के प्रमाद करते ही नहीं, चिकित्सकों से छोटी मोटी गलतियाँ और उनके कारण रोगियों की न्यूनाधिक हानियाँ बराबर हुआ करती हैं, किन्तु जनता की उपेक्षा से वे न प्रकाशित होती हैं, न न्यायालयों तक पहुँचती हैं। परन्तु रोगियों की दृष्टि से यह उपेक्षा योग्य नहीं होती। अतः यदि रोगी के कष्ट में या मृत्यु में चिकित्सक की गलती की आशंका हो तो न्यायालयों द्वारा उसका निर्णय और तदनुसार चिकित्सक को दण्ड होना चाहिए। इससे चिकित्सक लापरवाही से चिकित्सा न करेंगे और रोगियों की बहुत सी आपत्तियाँ टल जायँगी। 'उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए।

(३७) प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाः सुखप्रदाः।
जीविताभिसरास्तेस्युर्वैद्यत्वं तेष्ववस्थितम्॥ (चरक)

(३८) योगमासां तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तमः॥ (चरक)

जीविताभिसर भिषक्—कर्माभ्यास और ज्ञानविज्ञान इन दोनों की सफलता में जो सिद्ध हों तथा रोगियों को आरोग्य प्रदान करनेवाले हों वे जीविताभिसर हैं ; उन्हीं में वैद्यत्व अधिष्ठित होता है॥ प्रत्येक रोगी को भली भाँति देखकर देशकालानुसार जो औषधियों के योगों को प्रयुक्त करना जानता है वही भिषग्वर होता है।

वक्तव्य—सुखप्रदाः-स्वास्थ्यप्रदान करनेवाले। जीविताभिसराः-रोगियों में रोगों का नाश करके जीवित को लानेवाले अर्थात् जीवित मित्र। चरक के दशप्राणायतनीय अध्याय में (पृष्ठ ४०६) रोगाभिसर और प्राणाभिसर करके द्विविध भिषक् बतलाये हैं। रोगाभिसरों का वर्णन ऊपर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

किया गया है। अब इन वचनों मेंप्राणाभिसर अर्थात् जीविताभिसर भिषगों का वर्णन किया गया है—देशकाल-देशकालादिरोगी की द्वादश बातें—दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः। सत्वं सात्म्यं तथाऽऽहारम-वस्थाश्च पृथग्विधाः। अष्टांगहृदय॥ सदा दोषौषधादीनि वीक्ष्य द्वादश तत्वतः। कुर्याच्चिकित्सितं प्राज्ञो न योगैरेव केवलैः॥ अष्टांगसंग्रह॥ पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य-द्रव्यगुणविज्ञान (Materia medica) में अमुक रोग की अमुक औषधि इस प्रकार की समीकरण रूप औषधि योजनाएँ दिखाई देती हैं। परन्तु रोग स्वतन्त्र न होकर शरीराधिष्ठित होने से उनके दूष्य दोष सत्व सात्म्यादिका उनके ऊपर जरूर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है और इसलिए रोग एक होने पर भी उससे पीड़ित विभिन्न व्यक्तियों में उसके स्वरूप में कुछ न कुछ विभिन्नता आ जाती है और इसलिए एक औषधि योजना सब में समान रूपेण सफल नहीं होती। अतः प्राच्य मनीषियों ने बल देकर यह कहा है कि रोगी का सूक्ष्म परीक्षण किये बिना की हुई चिकित्सा ठीक चिकित्सा हो नहीं सकती—ज्ञान-बुद्धिप्रदीपेन यो नाविशति योगवित्। आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति॥ चरक॥ आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के चिकित्सक औषधि योजना करने से पूर्व रोगी का खूब परीक्षण करते हैं अथवा करवाते हैं और इस प्रकार रोगनिदान करने के पश्चात् औषधि योजना करते हैं। परन्तु उनके द्वारा किये गये अथवा करवाये गये रोगी के परीक्षण वास्तव में रोगी के न होकर रोग के होते हैं जिससे रोग की उचित औषधि योजना होते हुए भी रोगी को अनेक बार अनेक अपाय हुआ करते हैं। आधुनिक औषधियों से रोगियों को हानियाँ होने के अनेक कारण होते हैं उनमें रोगी का आवश्यकतानुसार परीक्षण न करना एक कारण होता है। उदाहरण के लिए लसद्रव्यों (Serums) और प्रतिजीवी द्रव्यों (Antibiotics) को लीजिये। रोग की दृष्टि से इनकी योजना सर्वथैव उचित होने पर भी इनकी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सुई लगाने से पूर्व रोगी की सुग्राहिता (Sensitivity) देखने की आवश्यकता हुआ करती है। इसका रोग से कोई संबंध नहीं होता, रोगी से होता है। इसका परीक्षण न करके सुई लगाने से आजतक अनेक रोगी यमधानी जवनिका के पीछे जा चुके हैं और रोगीपरीक्षण की इस सावधानता की ओर ध्यान न दिया जाय तो भविष्य में भी जाते रहेंगे।

(३९) एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः ॥ (सुश्रुत)

(४०) स्वतन्त्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः ।
वैद्यो ध्वज इवाभाति नृपतद्विद्यपूजितः ॥ (सुश्रुत)

केवल एक शास्त्र का अध्ययन करनेवाला चिकित्सक उस शास्त्र को निश्चयपूर्वक विदित नहीं करता, इसलिए अन्य अनेक (संबंधित) शास्त्रों को पढ़कर चिकित्सक अपने शास्त्र का अच्छा ज्ञाता बने॥ अपने शास्त्र में प्रवीण है और अन्य (संबंधित) शास्त्रों से जो अपरिचित नहीं है ऐसा वैद्य राजाओं तथा शास्त्रविदों से संमानित होकर ध्वज की तरह (यश और ख्याति से) चमकता है—

वक्तव्य—एकं शास्त्रम्—वैद्यकशास्त्र का एक अंग, विषय, शाखा या संपूर्ण वैद्यकशास्त्र। शास्त्रनिश्चय–प्रत्येक शास्त्र या शास्त्रांग के विषयों के विवरण तथा स्पष्टीकरण के लिए तत्सम, तत्संबंधित तथा तद्विरुद्ध भी अन्य अनेक शास्त्रों या शास्त्रांगों की सहायता लेनी पड़ती है, परन्तु उनका सविस्तर विवरण उस शास्त्रग्रन्थ में स्थान स्थान पर नहीं किया जा सकता और उनको ठीक समझे विना मूल शास्त्र का भी ठीक आकलन नहीं होता। बहुश्रुतः–अतः अपने शास्त्र के अच्छे विद्वान् बनने के लिए प्रत्येक चिकित्सक को तत्समादि अन्य शास्त्रों को स्वयं पढ़कर तथा उनके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विद्वानों से प्रवचन, व्याख्यान सुनकर बहुश्रुत बनना चाहिए–अन्य शास्त्रोपपन्नानां चार्थानामिहोपनीतानामर्थवशात्तेषां तद्विद्येभ्य एव व्याख्यानमनुश्रोतव्यं, कस्मात्? न ह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणामवरोधः कर्तुम् ॥ सुश्रुत ॥ स्वतन्त्र कुशलः–चिकित्सक जिस चिकित्सापद्धति में तथा वैद्यक के जिस अंग में व्यवसाय करता हो उसमें उसको अपने को सदैव योग्य रखना चाहिए; जैसे सर्वसामान्य चिकित्सक को कायचिकित्सा में, शस्त्रचिकित्सक को शल्यतन्त्र में, बालचिकित्सक को कौमारभृत्य में तथा वैद्य को आयुर्वेदीय चिकित्सा में, हकीम को यूनानी चिकित्सा में, डाक्टर को एलोपाथी चिकित्सा में, मान्त्रिक को मन्त्रतन्त्र चिकित्सा में, होमिओपाथ को होमिओपाथी और शुस्लर को जीव रसायन चिकित्सा में, प्राकृतिक चिकित्सक को निसर्गोपचार में इत्यादि। अन्येषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः–जो चिकित्सक अपने चिकित्साशास्त्र का अच्छा विद्वान् हो तथा अपनी चिकित्सा पद्धति में बहुत निपुण हो, फिर भी जो अन्य शास्त्रों और चिकित्सा पद्धतियों का बहिष्कार न करता हो, बल्कि उनसे परिचित होकर जो अपने शास्त्र और अच्छी तरह आकलन करने के लिए तथा अपने रोगियों की चिकित्सा में अधिक सफलता मिलने के लिए उनके उपयुक्त विषयों का ग्रहण करता हो वही आदर्श चिकित्सक होता है। इसके विपरीत जो अन्य शास्त्रों की ओर आँखें मूँद कर उनसे बहिष्कृत रहता है और केवल अपने शास्त्र को सर्वश्रेष्ठ समझ कर उससे प्राप्त ज्ञान से आत्मसंतुष्ट होता है वह कूपमण्डूक चिकित्सक है, फिर वह प्राचीन, अर्वाचीन बृहत् या लघु किसी भी एक चिकित्सा पद्धति का चिकित्सक क्यों न हो। चरकाचार्य जी कहते हैं कि बुद्धिमान्, जिनमें चिकित्सक भी आते हैं, संपूर्ण जगत् को अपना गुरु समझें और उसमें जो भी उपयुक्त विदित हो उसको स्वीकार करके व्यवहार में लावें–कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमताम्, अतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धि-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मताऽमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतोवचः श्रोतव्यमनुविधातव्यं चेति। चरक॥ १५ वें पृष्ठ का प्रारम्भिक वक्तव्य भी देखें।

इस प्रकार आयुर्वेद महर्षियों के अनुसार भिषगोत्तम बनने के लिए 'अन्येषु शास्त्रेष्वबहिष्कृत' होना आवश्यक होने के कारण 'अधिकस्याधिकं फलं' इस न्याय से चिकित्सक जितने अधिक चिकित्सासंप्रदायों का अभ्यास करेगा उतना अधिक उत्तम बनेगा इसमें कोई संदेह नहीं है। परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक होने के कारण यदि न्यूनतम संप्रदायों के अभ्यास से अच्छी बहुश्रुतता प्राप्त करना हो तो आयुर्वेद और एलोपाथी पर्याप्त है। आयुर्वेद भारत की अतिप्राचीन, प्राचीन ज्ञानविज्ञानाधिष्ठित लोकप्रिय तथा लोकमान्य चिकित्सा है और एलोपाथी अत्याधुनिक नवज्ञानविज्ञानाधिष्ठित राज्यमान्य तथा राज्यप्रिय चिकित्सा है। इस प्रकार दोनों का बाह्यतः आकाशपाताल का अन्तर दिखाई देने पर भी ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक दृष्ट्या सूक्ष्म विचार करने पर एलोपाथी में आयुर्वेद 'जनकस्य स्वभावो हि जन्ये तिष्ठति निश्चयम्' इस न्याय से जनक या बीज रूपेण दिखाई देता है और इसी कारण से वह आयुर्वेद के अनेक सूत्ररूप विषयों को समझने तथा समझाने के लिए बहुत उपयुक्त होता है।

इसलिए महामना मालवीयजीने शुद्ध आयुर्वेद का शास्त्राचार्य का अभ्यासक्रम तोडकर आयुर्वेद के साथ एलोपाथी का आवश्यक भाग पढाने के लिए मिश्र अभ्यासक्रम (Integrated course) का महाविद्यालय अपने विश्वविद्यालय में खोला। इस से जो अच्छे स्नातक निकले उन्होंने शुद्ध आयुर्वेदीय वैद्योंसे तथा शुद्ध एलोपाथीय डाक्टरों से सर्वसामान्य चिकित्सा व्यवसाय (General practice) में अधिक सफलता तथा अधिक श्रेष्ठता प्राप्त की और कुछ स्नातकों ने शस्त्रकर्म चिकित्सा में भी नाम कमाया। इसको देखकर आयुर्वेद को शुद्ध रखने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वाले और एलोपाथी को सर्वश्रेष्ठ समझने वाले वैद्य और डाक्टर बहुत बेचैन होते रहे और उन्होंने केन्द्रीय आरोग्य विभाग के मन्त्री को अपने अनुकूल देखकर उनके द्वारा घोषणा की कि संमिश्र अभ्यास क्रम से पढाये जाने वाले आयुर्वेद को नहीं, किन्तु केवल शुद्ध, जिसमें आधुनिक कुछ भी नहीं रहेगा, आयुर्वेद को मान्यता मिलेगी और केवल शुद्ध आयुर्वेद के विद्यालयों तथा संस्थाओं को आयुर्वेदीय संशोधन के लिए अनुदान मिलेगा। इस घोषणा से 'आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ताः' होकर स्थानस्थान पर शुद्ध आयुर्वेद के विद्यालय खुलने लगे और संमिश्र अभ्यास क्रम के पुराने विद्यालयों को शुद्ध में परिवर्तित करने के लिए भले बुरे सब प्रकार के उपायों से प्रयत्न होने लगे। संमिश्र अभ्यास क्रम की सफलता सिद्ध करने के लिए इस घोषणा के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

आज अष्टांगआयुर्वेद अष्टांगसंग्रह या अष्टांग हृदय नामक एक छोटी शी संहिता में दिखाई देता है, परन्तु एक काल था जब इसका स्वरूप अनन्तपार, अपार महौषधि के समान विशाल था, प्रत्येक अंगपर अनेक स्वतन्त्र संहिताएँ थीं और कोई एक चिकित्सक आयुर्वेद के सब अंगों की चिकित्सा नहीं कर सकता था, इसलिए वर्तमान काल के समान प्राचीन काल में चिकित्सा व्यवसाय में विशेषज्ञों की प्रथा थी—सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामतिः। चरक॥ आयुर्वेदं श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्रह्माम्नासीदग्निवेशादयस्तु। कृत्स्नज्ञेयप्राप्तसाराः स्वतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधांगं वितेनुः॥ आयुर्वेदोदधेः पारमपारस्य प्रयाति कः॥ अष्टांगसंग्रह॥ दाहे धान्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्। क्षारप्रयोगे भिषजां क्षारतन्त्रविदां बलम्॥

इसके विपरीत एलोपाथी (पाश्चात्यवैद्यक) एक समय में नदी के मूल के समान छोटी रही है और कालप्रवाह के साथ बहते बहते उसने आज प्राचीन आयुर्वेद से भी अधिक विशाल रूप धारण किया।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इनके अतिरिक्त आज युनानीचिकित्सा, योगचिकित्सा, होमिओ-चिकित्सा, जीवरसायन चिकित्सा- निसर्गचिकित्सा (Naturopathy), मनश्चिकित्सा (Psycho therapy), आहारचिकित्सा (Dietetics), पथ्यचिकित्सा, जलचिकित्सा (Hydrotherapy) निर्झरस्नान चिकित्सा (Balneotherapy) मर्दनचिकित्सा, स्वेदनचिकित्सा (Pyrotherapy), सूर्यरश्मिचिकित्सा (Helio therapy) इत्यादि अनेक अन्य चिकित्सासंप्रदाय चिकित्सार्थ उपलब्ध हैं।

मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले विविध रोगों की चिकित्सा करने के लिए इतनी अधिक संख्या में चिकित्सासंप्रदायों का प्रचलित रहना इस वस्तुस्थिति या सत्यस्थिति का द्योतक है कि केवल प्राचीनतम आयुर्वेद और अधुनातन पाश्चात्य वैद्यक ही नहीं कोई भी एक चिकित्सा पद्धति मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले विविध स्वरूप के संपूर्ण रोगों की चिकित्सा सफलता से करने में असमर्थ है। इसलिए जब किसी चिकित्सक को चिकित्सार्थ आये हुए किसी रोगी की चिकित्सा में अपनी अनुभूत चिकित्सा पद्धति से असफलता मालूम हो या यदि प्रारम्भ में ही किसी रोगी के लिए अन्य चिकित्सा अधिक उपयुक्त तथा सुखावह होगी ऐसा मालूम हो तो उसका कर्तव्य है कि वह अन्य चिकित्सा का प्रयोग करें और यदि स्वयं न करसके तो उसके तज्ज्ञ के पास जाने में मार्गदर्शन करें। यह कार्य चिकित्सक तभी कर सकता है जब वह 'अन्येषु शास्त्रेष्वबहिष्कृत' हो। इस योग्यता के आधारपर चिकित्सकों के तीन वर्ग कर सकते हैं—(१) स्वतन्त्रकुशलः—जो एक चिकित्सापद्धति में अच्छी योग्यता तथा अनुभव रखता हो, परन्तु अन्य चिकित्सापद्धतियों से बहिष्कृत' हो। (२) द्वितन्त्रकुशलः—चिकित्सापद्धतियों में से किसी दो में योग्यता रखने वाला इसवर्ग में आसकता है, परन्तु एलोपाथी और आयुर्वेद या एलोपाथी और होमियोपाथी इनके द्वितन्त्रकुशल इस वर्ग में श्रेष्ठ समझने चाहिएँ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दो के संयोग में द्वितीय स्थान में कोई भी चिकित्सा पद्धति हो प्रथम स्थानमें एलोपाथी सदैव होनी चाहिए, क्यों कि उसका ज्ञान, विशेषतः उसके शारीर, शारीर क्रियाविज्ञान, विकृतिविज्ञान, रोगविज्ञान, इत्यादि विषयों का ज्ञान अन्यचिकित्सा पद्धतियों की उपयुक्तता बढ़ाने में बहुत सहायक होता है।

(३) स्वतन्त्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः—एक चिकित्सा पद्धति में अच्छी योग्यता तथा अनुभव रखने वाला और अन्य अनेक चिकित्सापद्धतियों का अच्छा ज्ञान तथा कामचलाऊ अनुभव रखने वाला। इस भिषगोत्तम का वर्णन अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति में एक अक्षर निकाल करके अर्थात् नन (None) के स्थान में वन (One) करके बहुत अच्छी तरह हो जायगा–Jack of all trades and master of one। जो चिकित्सक रोगी का हित सो अपना हित समझता है, अपनी ही चिकित्सापद्धति सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण वैज्ञानिक तथा अन्य चिकित्सापद्धतियाँ तुच्छ तथा अवैज्ञानिक इस प्रकार की उनके संबंध में उच्चनीचता की कल्पना नहीं रखता और 'कोकालः फलदायकः 'इस न्याय से किस समय कौनसी चिकित्सा रोगी को हितकर होगी इसका कोई ठीक नियम नहीं इसको ध्यान में रखकर अन्य चिकित्साओं की जानकारी प्राप्तकर आवश्यकता प्रतीत होने पर उनका उपयोग करके रोगी को स्वास्थ्यदान और उसके साथ अभयदान (पृष्ठ २१) देता है वही आधुनिक काल में सर्वोत्तम चिकित्सक है।

इस प्रकार की बहुश्रुतता चिकित्सक स्वयं प्राप्त कर सकता है, यदि वह दिल से चाहता हो। लेखकने मेडिकलकालेज में पढ़ते समय से ही आयुर्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया था और शूस्लर की जीवरसायन चिकित्सा (Dr. Schuessler's Biochemistry or Twelve Tissue Remedies) के मराठीग्रन्थ का हिंदीरूपान्तर करने का मित्रकार्य इसी दृष्टि से लेखक ने स्वीकार किया था। उस ग्रन्थ की भूमिका में लेखक ने लिखा है—'अतएव मैं आवश्यक समझता हूँ कि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वैद्य, डाँक्टर या हकीम अपनी चिकित्सा प्रणाली के विशेषज्ञ होते हुए भी अन्य चिकित्सा प्रणालियों से काफी परिचित रहे। मैं एलोपाथी और आयुर्वेद का विद्यार्थी हूँ। मेरे मित्रने जब अपने जीवरसायन चिकित्सा ग्रन्थ का हिंदी अनुवाद करने के लिए मुझ से प्रार्थना की तब मैंने मित्रकार्य के साथ अनुवाद के निमित्त एक और चिकित्साप्रणाली का ज्ञान प्राप्त होगा ऐसा समझ कर इस कार्य को स्वीकार किया'।

परन्तु अनेक चिकित्सा संप्रदायों की जानकारी स्वयं प्राप्त करना कठिन काम है। इसको सुकर बनाने के लिए एक वैद्यकसमन्वय महाविद्यालय (College of Medical Sciences) स्थापित किया जाय। इसमें सब चिकित्सा संप्रदायों के स्नातकों को प्रवेश दिया जाय। अभ्यासक्रम एक वर्ष का हो। इसमें लगभग सब चिकित्सा संप्रदायों के प्राध्यापक हों। प्रत्येक प्राध्यापक 'स्वतन्त्र कुशल' हो। एक साथ रहने से कुछ काल के पश्चात् वे 'अन्येषु, शास्त्रेष्वबहिष्कृत' हो जायँगे। प्रत्येक चिकित्सापद्धति का प्राध्यापक अपनी पद्धति के मूलभूत सिद्धान्त, औषधि संभार, उसकी उपयुक्तता और चिकित्सा जगत में उस पद्धति का विशेष स्थान इन विषयों पर तुलनात्मक निश्चित संख्या में व्याख्यान दे। इस विद्यालय में प्रत्येक पद्धति के लिए एक स्वतन्त्र रुग्णविभाग रहे और सब विभागों का मिलकर 'वैद्यक समन्वय चिकित्सालय' बने। इस चिकित्सालय में चिकित्सार्थ आये हुए हुए रोगियों का समन्वय की दृष्टि से परीक्षण किया जाय। जो चिकित्सा रोगी के लिए अधिक उपयुक्त तथा सुखावह मालूम पड़ती हो उसके रुग्णविभाग में प्रथम उसको भरती किया जाय। यदि उसमें अपेक्षित लाभ न हो यो दूसरे विभाग में स्थानान्तर करें। जिन चिकित्साओं के रुग्णविभाग चिकित्सालयों में नहीं रक्खे जा सकते, जैसे सूर्यरश्मिचिकित्सा, निर्झरस्नानचिकित्सा इत्यादि, प्राध्यापक सालभर में एकबार चिकित्सकों को उनके स्थानों पर ले जाकर दिखावें। प्रत्येक प्रकार की चिकित्सा किस प्रकार के रोगों और

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रोगियों में अधिक उपयुक्त हुआ करती है इसके संबंध का अनुभवाधिष्ठित सांख्यिकीय वृत्तान्त प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाय।

ऐसे समन्वय विद्यालय से विविध चिकित्साओं का स्नातकोत्तर प्रशिक्षण प्राप्त हुए चिकित्सकों की दृष्टि विशाल होगी, विचार उदार होंगे, और मन कूपमण्डूकवृत्ति छोड़कर 'योजकस्तत्र दुर्लभः' (अमन्त्र मक्षरं श्लोक देखें) इस चिकित्सा सिद्धान्त को आकलन करने योग्य व्यापक होगा। सारांश, सुश्रुतोक्त बहुश्रुत चिकित्सक आधुनिक काल में उपर्युक्त स्वरूप का होगा।

आज भारत वर्ष में प्राचीन अर्वाचीन, प्राच्यप्रतीच्य अनेक चिकित्सा संप्रदाय अपने अपने चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार रोगनाशन का कार्य कर रहे हैं। इनमें आयुर्वेद और पाश्चात्य वैद्यक ऐसे संप्रदाय हैं जो अधिक प्रतिशत रोगियों के रोगहरण और रोगनिवारण का कार्य करते हैं। कुछ संप्रदाय ऐसे हैं जिनका क्षेत्र बहुत मर्यादित है। फिर भी उपयुक्तता और प्रतिष्ठा की दृष्टि से दोनों प्रकारों के संप्रदायों में अन्तर नहीं होता है। जनतन्त्र या गणतन्त्र के समान बहुत रोगियों के रोगहरण में अर्थात् सुख में संतोष करना यह चिकित्सक के लिए रक्खा हुआ आदर्श नहीं है; उसका आदर्श शतप्रतिशत या सब रोगियों का रोगहरण करके उन्हें सुखी बनाने का होता है—भिषग्-त्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्। आबाधेभ्योऽभिसंरक्षेत् ज्ञानं धर्ममनुस्मरन् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ इसलिए एकाध प्रतिशत रोगियों के लिये जो संप्रदाय रोगहरण करके सुख प्रदान करता है उसके संबंध में भी चिकित्सक के मन में वही प्रतिष्ठा का स्थान होना चाहिए॥

किसी विषय का तुलनात्मक अभ्यास उस विषय में जितना ज्ञान-वर्धक और विशालदृष्टिदायक होता है उतना अकेला उस विषय का अभ्यास नहीं होता यह विद्वन्मान्य सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त अन्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शास्त्रों की अपेक्षा चिकित्सा शास्त्र में अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। आज संसार में रोगहरण के लिए अनेक चिकित्सा संप्रदाय उपलब्ध हैं, परन्तु उनमें से कोई भी एक संप्रदाय विविध रोगों से पीड़ित सब रोगियों को रोग निर्मुक्त करने में पर्याप्त या समर्थ नहीं दिखाई देता है। ऐसी अवस्था में उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक संप्रदाय के चिकित्सक का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह रोगियों के हित की दृष्टि से तथा अपने ज्ञान की दृष्टि से अन्य चिकित्सा संप्रदायों का ज्ञान प्राप्त करें, फिर वह अपने संप्रदाय का कितना भी ज्ञानी तथा सिद्धहस्त चिकित्सक और उसका संप्रदाय कितना भी व्यापक या बड़ा क्यों न हो ? आयुर्वेद महर्षियों के चिकित्सक संबंधी उच्च आदर्श आचरण करने का यही एकमेव मार्ग है। जो चिकित्सक इस मार्ग का अवलंबन करते हुए अपने रोगियों की चिकित्सा करते हैं वे ही आदर्श प्राणाभिसर कहे जा सकते हैं। आदर्श प्राणाभिसर बनने के लिए चिकित्सकों को प्राचीन काल से भी वर्तमान् काल में अपने चिकित्सा संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य अनेक चिकित्सा संप्रदायों से परिचित रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान काल में चिकित्सा का क्षेत्र बहुत विशाल हो गया है और अपने पास आये हुए रोगियों को स्वहस्तेन या परहस्तेन रोगमुक्त करना प्रत्येक चिकित्सक का परम कर्तव्य होता है। ऊपर विविध स्वरूप के जो चिकित्सा संप्रदाय निर्दिष्ट किये हैं उनके दो विभाग होते हैं। प्रथम विभाग में वे संप्रदाय आते हैं जिनमें केवल अपनी विशिष्ट रोगसंप्राप्ति (Pathogenesis), चिकित्सा के सिद्धान्त, चिकित्सा संभार, चिकित्सा योजना इत्यादि रोग चिकित्सा संबंधी विषयों का ही विवरण होता है। इसको अपूर्ण कह सकते हैं। दूसरा विभाग उन संप्रदायों का है जिनमें चिकित्सा संबंधी विषयों को अतिरिक्त शारीर, शारीरक्रियाविज्ञान, विकृतशारीर (Morbid anatomy), स्वास्थ्यरक्षण, रोगप्रतिबंधन इत्यादि सामान्य मूलभूत

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विषयों का विवरण रहता है। ये पूर्ण हैं। अधिकसंख्य संप्रदाय अपूर्ण स्वरूप के होते हैं। पूर्ण विभाग में आयुर्वेद और एलोपाथी महत्व के हैं। कुछ लोक आयुर्वेद को अपूर्ण कहते हैं। परन्तु उनका यह कथन, स्वयं कितने भी अन्य विषयों के पण्डित क्यों न हो, आयुर्वेद संबंधी अज्ञान, मिथ्याज्ञान, दुराग्रह, परप्रत्ययनेय बुद्धि, विद्वेष इत्यादि पर अधिष्ठित है, अतएव भ्रान्त है। आयुर्वेद आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के समान एक सर्वांग परिपूर्ण शास्त्र है; केवल वह संक्षिप्त है। उसमें शारीरादि विषयों के अतिरिक्त पाश्चात्य वैद्यक में न होने वाले या उपेक्षित दार्शनिक शारीर, स्वस्थवृत्त (Personal hygiene), दूष्य-दूष्यादि पर अधिष्ठित रोगी का परीक्षण, पथ्य इत्यादि अनेक विचारणीय विषय हैं। परन्तु व्यावहारिक दृष्ट्या सबसे महत्व की बात तो यह है कि वह आज भी प्रत्यक्षाप्रत्यक्षतया एलोपाथी से अधिक भारतीयों के स्वास्थ्यरक्षण और व्याधिहरण का कार्य कर रहा है।

प्राचीन काल में भी भारत में अनेक चिकित्सा संप्रदाय (पृष्ठ ४०२ पर 'राक्षसी मानुषी' श्लोक देखें) रहे और उत्तर काल में बाहर से बहुत प्रचलित हुए। परन्तु किसी से आयुर्वेद को आघात नहीं हुआ। इसमें अँग्रजों के साथ आया हुआ पाश्चात्य वैद्यक अपवाद रहा। उसका कारण जैसे पाश्चात्य वैद्यक की वर्धिष्णु गुणवत्ता रही वैसे भारतीयों की आत्मघाती मूर्खता रही। अंग्रजों के शासन काल में जैसे आंग्लभाषा-विभूषित, सूटबूट में लेस भारतीय धोती-अँगरखा-बंडी पहने हुए संस्कृतज्ञ परन्तु आँग्लभाषा अनभिज्ञ अपने बाप दादा को तुच्छता से देखते थे, वैसे पाश्चात्य वैद्यक विभूषित सूटबूट में लेस भारतीय चिकित्सक धोती-अँगरखा-बंडी पहने हुए आयुर्वेदज्ञ परन्तु पाश्चात्य वैद्यक अनभिज्ञ भारतीय चिकित्सकों को तुच्छता से देखते थे और उनसे विचार विमर्श करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझते थे। यह प्रवृत्ति अब भी पूर्णतया नष्ट नहीं हुई है। परन्तु अब कुछ समय परि-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वर्तन हुआ है और पाश्चात्य वैद्यक के मुखिया शुद्ध आयुर्वेद को मानने लगे हैं और उनके कारण शासन द्वारा भी उसको राजमान्यता मिली है। इस परिवर्तन के पीछे आयुर्वेद की निष्ठा नहीं है किन्तु वैद्यों को आधुनिक वैद्यकीय विज्ञान से बहिष्कृत रख के तथा मिश्र अभ्यास क्रम के वैद्यों का निर्माण बंद करके अपना व्यवसायिक मार्ग निष्कंटक बनाने की शुद्ध स्वार्थवृत्ति है। इसलिए आयुर्वेद हितैषियों को शुद्ध आयुर्वेद के मोह में न फँसना चाहिए, किन्तु स्वतन्त्र में कुशल होते हुए अन्य शास्त्रेषु अबहिष्कृत होकर 'इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि' इस प्रकार की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए।

(४१) प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शिनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥ महाभारत ॥

विद्वानों की सेवा करने वाले, धार्मिक (आचार विचार के), प्रियदर्शी, मित्रयुक्त, सुनृतभाषी और सदय वैद्य को अपने पास रक्खे ॥

वक्तव्य—प्रियदर्शी—जिसकी वेषभूषा आकर्षक, शालीनतादर्शक हो, उजड्ड न हो—अनुद्धतवेशेन, नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवस्त्र परिहितेन। सुश्रुत। मित्रवन्त—बन्धुभूतेन भूतानाम्। सुश्रुत। सुवाक्य—श्लक्ष्ण शुक्ल-धर्म्यशर्म्यधन्यसत्यहितमितवचसा भवितव्यम् ॥ चरक ॥ सुहृद्—करुणार्द्र, सदय, रोगियों के साथ सहानुभूति या समदुःखिता प्रकट करने वाला।

(४२) रोगस्य ते चिकित्सां निदानमालोच्य सुंदरि करिष्ये।
मा हन्त कातरा भू, रसक्रियायां नितान्त निपुणोऽस्मि ॥

(जगन्नाथ पंडित)

आदर्श चिकित्सा—हे सुंदरी, तेरे रोग के निदान का ठीक विचार करके मैं तेरी चिकित्सा करूँगा। घबडाइयेगा नहीं; रसक्रिया में भी मैं अत्यन्त निपुण हूँ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—रसक्रियायाम्—इस श्लोक में इस पर श्लेष है जिससे यह श्लोक द्व्यर्थी हो गया है। कामी के पक्ष में इसका अर्थ है 'शृङ्गार रस कर्मों में' और वैद्य के पक्ष में इसका अर्थ है 'धातूपधातू के भस्म तथा रस की औषधियाँ इनके निर्माण तथा प्रत्यक्ष प्रयोग में'।

इस श्लोक का वैद्यकीय दृष्ट्या विचार करने पर उसमें आदर्श चिकित्सा के तत्व मिलते हैं।

(१) निदान—चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले रोगी के रोग मूल कारणात्मक निदान होना चाहिए। (२) आलोच्य-निदान होने के पश्चात् उसका ठीक आलोचन करके निदान के अनुसार औषधियों का वरण करके चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए। (३) मा कातरा भू-केवल औषधि चिकित्सा से वैद्य को संतोष न करना चाहिए। समय समय पर मृदु मधुर वचनों से उसे हर्षित, उत्साहित, आश्वासित करके धैर्य और दिलासा देना चाहिए। क्योंकि रोगग्रस्त होने पर रोगी भयभीत, उदासीन, विषण्ण हो जाता है और उससे उसका शारीरिक तथा मानसिक रोग बढ जाता है। (४) रस क्रियानिपुणता—वैद्य द्वारा रोगी को दी जानेवाली औषधि प्रयोग (Experiment) के लिए तथा उसका अनुभव प्राप्त करने के लिए न होनी चाहिए किन्तु अनुभव प्राप्त औषधि वैद्य को रोगी की चिकित्सा में प्रयुक्त करनी चाहिए। इन तत्वों के विशेष विवरण 'भेषज' से आगे अध्यायों में मिलेंगे।

(४३) मा बोधि वैद्यकमथापि महामयेषु
प्राप्तेषु यो भिषगिति प्रथितस्तमेव।
आकारत्यखिल एव विशेषदर्शी
लोकोऽपि, तेन भिषगेष न दूषणीयः॥

(विश्वगुणादर्श)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सिद्धहस्तभिषक्—वैद्यक शास्त्र नहीं जानता है तथापि बड़े बड़े (दुश्चिकित्स्य) रोग उत्पन्न होने पर जो (सिद्ध हस्त सफल) चिकित्सक करके प्रसिद्ध रहता है उसी को ही सब विशेषदर्शी लोक बुलाते हैं। यह भिषक् इस प्रकार का होने के कारण (वैद्यक शास्त्र जानता नहीं इसलिए) इसको दोष न देना चाहिए।

वक्तव्य—विशेषदर्शी-विशेष भेद या अन्तर जाननेवाला। रोग और रोगी की स्थिति देखकर चिकित्सक चिकित्सक में अन्तर करने वाला और उसके अनुसार योग्य चिकित्सक को ही बुलाने वाला। चिकित्सक वैद्यक का अच्छा ज्ञाता होना इष्ट है, परन्तु अध्यात्म के समान वैद्यक केवल शाब्दिक चर्चा या वादविवाद का शास्त्र नहीं, प्रत्ययावह शास्त्र है। पृष्ठ ४१० पर 'प्रायश्चित्तं चिकित्सां च' तथा पृष्ठ ६ पर 'अन्यानि शास्त्राणि' श्लोक देखें। इसलिए 'महामयेषु प्राप्तेषु' प्रत्यय दिलानेवाले अनुभवी चिकित्सक ही बुलाये जाते हैं और बुलाना चाहिए, फिर वे शास्त्रज्ञान में कुछ कच्चे भी क्यों न हो। विदेशी बहूपाधि प्राप्त नये नये चिकित्सकों की अपेक्षा देशी अल्पोपाधि के परन्तु वृद्ध अनुभवी चिकित्सकों का व्यवसाय अधिक तेजी से चलने का यही कारण है। इसलिए चिकित्सक को क्या करना चाहिए इसको चरकाचार्य कहते हैं—

(४४) भिषग्बुभूषुर्मतिमानतः स्वगुणसंपदि।

परं प्रयत्नमातिष्ठेत् प्राणदःस्याद्यथा नृणाम् ॥ चरक ॥

भिषक् का कर्तव्य—इसलिए जो बुद्धिमान् भिषक् बनना चाहता है उसको वह (रोगी) मनुष्यों के लिए जिस प्रकार प्राणाभिसर हो सके उस प्रकार की गुणसंपत्ति प्राप्त करने में प्रयत्न, पराकाष्ठा करनी चाहिए।

वक्तव्य—गुणसंपद्–'हेतुलिंगौषधज्ञान' अर्थात् स्वास्थ्यरक्षण तथा व्याध्युत्पादन हेतुओं का ज्ञान, स्वास्थ्य तथा विविध व्याधियों के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लक्षणों का ज्ञान और व्याधिहरण के लिए आवश्यक आहारौषधियों का ज्ञान इस प्रकार भिषक् को त्रिस्कन्धात्मक ज्ञान होना चाहिए। इसमें औषधिज्ञानं सर्वेषां मूर्ध्नितिष्ठति', क्योंकि उसके बिना कोई भी भिषक् प्राणद हो नहीं सकता और उसके होने से कोई अभिषक् प्राणद हो सकता है। अतः भिषक् को प्राणद बनने के लिए जिस गुण को प्राप्त करने में प्रयत्न पराकाष्ठा करनी चाहिए वह गुण है शास्त्रोक्त औषधि ज्ञानं, और दैनंदिन व्यवसाय में उनके प्रयोगाधिष्ठित अनुभव। प्रत्येक रोगी की, उसमें भी कुछ विशेष रोगियों की, उनमें भी जिनमें भिषक् असफल रहा ऐसे रोगियों की चिकित्सा से सबक सीखने से अनुभव मिलता है।

(४५) स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ चरक ॥

श्रेष्ठभिषक्—जो रोगों से (रोगियों को) मुक्ति करता है वही श्रेष्ठ भिषक् है।

वक्तव्य—ऊपर ४१२ पृष्ठ पर भिषगुत्तम की जो परिभाषा दी हुई है उसका रोगियों की सफल या निष्फल चिकित्सा से कोई संबंध नहीं है, अतएव वह पूर्णतया शास्त्रीय तात्विक तथा विद्वन्मान्य है। इसके विपरीत यहाँ की भिषक् श्रेष्ठ की परिभाषा पूर्णतया रोगियों की सफल चिकित्सा पर अधिष्ठित होने से वह अशास्त्रीय तथा शुद्ध व्यावहारिक है और वैद्यक प्रत्ययावह शास्त्र होने से सर्वसामान्य मनुष्य की दृष्टि से ठीक भी है। सामान्य मनुष्य जब तक रोगी को लाभ नहीं हुआ तब तक चिकित्सक को उत्तम नहीं समझता, फिर वह लौकिक या तात्विक दृष्ट्या कितना भी उत्तम चिकित्सक क्यों न हो। परन्तु उसको जब लाभ होता है तब वह चिकित्सक को केवल उत्तम ही नहीं, देवता तक मानने को तयार होता है, फिर वह चिकित्सक बहुत मामुली झाड फूँक करने वाला भी क्यों न हो। धर्मशास्त्र में वैद्य नारायण स्वरूप जरूर है (नीचे देखें) परन्तु वह स्वरूप चिकित्सा के लिए किसी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चिकित्सक स्वीकार करने के प्रारम्भ से मानने के लिए कहा है, चिकित्सा में सफलता मिलने के पश्चात् नहीं। पहले मानने से रोगी को अपने रोग की चिकित्सा में लाभ होने की संभावना होती है। इसका पूर्वार्ध 'तदेव युक्तं' देखें।

(४६) सर्वत्रमैत्री, करूणाऽऽतुरेषु
निरामदेहेषु नृषु प्रमोदः।
मनस्युपेक्षापकृतिं व्रजत्सु
वैद्यस्य सद्वृत्तमलं तनोति ॥ (अष्टांगसंग्रह)

वैद्यसद्वृत्त—मनुष्य मात्र के प्रति सुहृद्वृत्ति, रोगियों के प्रति करूणावृत्ति, स्वस्थ मनुष्यो (को देखकर उन) के प्रति प्रसन्नवृत्ति और म्रियमाणों के प्रति उपेक्षावृत्ति, यह वैद्यका सद्वृत्त उसके यश को दूर तक फैलाता है।

वक्तव्य—भगवान् पतंजलि के योगसूत्र में संसार के सुखदुःख पाप पुण्य इनको देखकर योगाभ्यासीका चित्त विचलित न होकर प्रसन्न रहे इसलिए मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चार भावनाओं का क्रम से सुखादिक के लिए स्वीकार करने को कहा है—मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ चरक में सर्वसाधारण सद्वृत्त में अन्यवृत्तियों के साथ इनका समावेश किया है—ब्रह्मचर्यज्ञानदानमैत्रीकारुण्य हर्षोपेक्षाप्रशमपरश्चस्यात् ॥ और वाग्भटने इस वचन में चिकित्सक अपने व्यवसाय में स्वस्थ तथा रूग्ण मनुष्यों को देखकर अप्रसन्न चित्त न हो इसलिए चिकित्सक को इन वृत्तियों का उपयोग कहाँ पर कहाँ पर करना चाहिए इसका दिग्दर्शन किया है।

मैत्री—सर्वभूतेषु आत्मनीवाप्रतिकूलाप्रवृत्तिः। चक्रपाणि ॥ किसी प्रकार का भेदभाव न करके सब मनुष्यों के साथ आत्मौपम्येन व्यव-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हार करना। करूणा—परदुःख प्रहाणेच्छा। चक्रपाणि ॥ उपायसाध्य रोगियों में उनके रोगों का नाश करने की इच्छा। इसके लिए चित्त-वृत्ति आर्द्र या सहानु-भूतिक होने की आवश्यकता होती है—प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ मेघदूत ॥ निरामदेहेषु प्रमोदः—वैद्यों की उपजीविका रोगियों पर हुआ करती है यह वस्तुस्थिति ऊपर अनेक वचनों में प्रदर्शित की गयी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वैद्य रोगियों को देखकर प्रसन्न चित्त हों और लोग अधिकाधिक रोगग्रस्त हों ऐसी इच्छा करें। इस वचन में यह बताया है कि रोगियों पर जीविका होते हुए भी वैद्य को 'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरा-मयाः' ऐसी इच्छा रखनी चाहिए, स्वस्थ मनुष्यों को देखकर प्रसन्न चित्त होना चाहिए और लोग स्वस्थ बने रहे इस दृष्टि से प्रयत्न भी करना चाहिए। उपेक्षापक्रतिं व्रजत्सु—असाध्य, अचिकित्स्य रोगों से पीडितों में तथा जराजर्जर, रोगजर्जर रोगियों में जिनमें उनके बचने की आशा नहीं होती उनमें चिकित्सा विशेष उत्साह से न करके केवल 'वेदनायाश्चनिग्रहः' इस दृष्टि से जितनी आवश्यक उतनी ही की जाय। 'असाध्य इति वैद्येन' इस वचन को उसके पश्चात् दिये हुए कुछ वचनों को तथा उनके वक्तव्यों को देखें।

(४७) रोगपङ्कार्णवेमग्नं यः समुद्धरते नरम्।
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥
(योगरत्नाकर)

भिषक् की पूजार्हता—जो रोग रूप कीचडके महासागर में फँसे हुए मनुष्य का उद्धार करता है उससे कौन सा पुण्य कर्म नहीं होता और वह किस पूजा के लिए अयोग्य होता है।

वक्तव्य—इस वचन का आशय यह है कि जो भी पुण्यतम कर्म होते हैं उनके करने का श्रेय रोगियों की उचित चिकित्सा करने वाले

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सच्चरित्र वैद्यों को मिलता है तथा मनुष्यों के लिए जो अधिक से अधिक सन्मान दिया जा सकता है उसके लिए वह मानार्ह होता है।

(४८) चिकित्सको यत्कुरूते तदन्येन न शक्यते।
तस्माच्चिकित्सकः स्पर्शे शुद्धो भवति नित्यशः॥

(मिताक्षरा)

चिकित्सक (रोग हरण और जीवदान का) जो कार्य करता है वह अन्यों से नहीं हो सकता। इसलिए, चिकित्सक (चाहे जिस धर्म वर्ण-जाति का हो, स्पर्श की दृष्टि से सदैव शुद्ध पवित्र रहता है।

वक्तव्य—प्राचीन काल में भी चिकित्सावृत्ति केवल ब्राह्मणों की नहीं थी, शूद्रतक सर्व लोक चिकित्सक बन सकते थे—स च अध्येतव्यो ब्राह्मणराजन्यवैश्यैः। सामान्यतो वा धर्मार्थ काम परिग्रहार्थं सर्वैः॥ चरक॥ केन चाध्येय इति ब्राह्मण क्षत्रियवैश्यशूद्रैरायुर्वेदोऽध्येयः। तत्रार्थपरिज्ञानार्थं पुण्यार्थं चात्मनः प्रजानुग्रहार्थं ब्राह्मणैः, प्रजासंरक्षणार्थं क्षत्रियैः, वृत्यर्थं वैश्यैः, शुश्रूषार्थमितरैः॥ काश्यपसंहिता। फिर भी चिकित्सक को पवित्र मानने के लिए कहा है। इसका मुख्य कारण उनकी परोपकारी वृत्ति है।

(४९) वैद्यो नारायणः स्वयम्।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये भिषग्विज्ञानीयो नाम
पंचत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः॥



वैद्य स्वयं भगवान् विष्णु होता है।

वक्तव्य—भगवान् विष्णु जैसे ब्रह्माड के स्थितिरक्षक और संकट निवारक होते हैं वैसे चिकित्सक पिण्डके स्वास्थ्य रक्षक और व्याधि-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निवारक होते हैं। अतः उनको विष्णुस्वरूप मानने के लिए कहा है। महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम में भिषग् और वैद्य विष्णु के नाम बतलाये हैं—वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः॥ त्रिसामासामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषग्॥ ३६१ पृष्ठ पर प्रचेतुमनघांवृत्ति' तथा 'शरीरे न जर्जरीभूते' श्लोकों को देखिए।

इति श्री भास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्य दीपिकायां भिषग्विज्ञानीयो नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातः पथ्यापथ्यविज्ञानीयमध्यायां व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) पथ्यं पथोऽनपेतं यद् यच्चोक्तं मनसः प्रियम् ।
यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत् ॥ (चरक)

पथ्य—जो (शरीर के विविध) पथों के लिए अनुकूल तथा मन के लिए हितकर होता है वह पथ्य है। जो निश्चित रूप से (सदैव) अहितकर या प्रतिकूल होता है ऐसा कुछभी अवलोकन में आता नहीं।

वक्तव्य—*पथ्य*—(१) पथि साधु पाथेयं शम्बलमित्र । पथ्यतिथि वसति स्वपतेढञ् । यात्रा प्रवास में क्षेमकर वस्त्रपात्र विशेषतया खाद्य । (२) पथादनपेतं, पथोऽनपेतं पथ्यम् । अर्थादनपेतं अर्थ्यम् । सिद्धान्त कौमुदी । शरीर के विविध मार्गों के लिए अविपथकर, अनुकूल या उपकारक ॥ पथ—(१) प्रवास यात्रामार्ग (२) शरीरस्रोत, शरीर स्रोतोमय है—अपि चैके स्रोतसामेव समुदयं पुरुषमिच्छन्ति । चरक ॥ जैसे अन्नवह स्रोत या महास्रोत, प्राणवह स्रोत, इत्यादि । किंवा स्वास्थ्यरक्षण और व्याधिपरिमोक्ष के आयुर्वेदोपदिष्ट मार्ग । प्रिय—हितकर । मनुष्यों का जीवन सोपचास सालका एक दीर्घ यात्रा पथ है। इसको सुख से तय करने के लिए ऐसे आचारविचार आहारविहाररूप पाथेय की आवश्यकता होती है जो शरीर को जीवन भर स्वस्थ रक्खें। यही पाथेय पथ्य है । दोनों की व्युत्पत्ति एकही है—पथिसाधु पथ्यं पाथेयं वा । पाथेय जैसे प्रत्येक यात्री में भिन्न होता है वेसे पथ्य भी प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न हो सकता है । इसलिए निश्चित रूप से किसी को अपथ्य नहीं कह सकते हैं । फिर भी कुछ आहारविहारआचार-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विचार सामान्यतया अपथ्यकर या पथ्यकर होते हैं और इस सामान्य अर्थ से ही पथ्य तथा अपथ्य शब्दों का प्रयोग होता है। जिनको सामान्यतया पथ्यकर कहा है वे भी मात्रा-कालादिसे अपथ्यकर और पथ्यकर हो जाते हैं—जैसे विष अल्पमात्रा में पथ्यकर—मात्राकाल-क्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम्। प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा ॥ चरक ॥

(२) शासनमर्हतां प्रतिपद्यध्वं मोहव्याधिवैद्यानाम्।
ये प्रथममात्रकटुकं पश्चात् पथ्यमुपदिशन्ति ॥

(मुद्राराक्षस)

पथ्यका स्वरूप—मायामोह रूप व्याधि के वैद्य अर्हतों के उपदेश के अनुसार आचरण करो। इनका उपदेश पहले भले ही कड़वा मालूम हो अन्तमें वह पथ्यकर होता है।

(३) लेढि भेषजवन्नित्यं यः पथ्यानि कटून्यपि।
तदर्थं सेवते चाप्तान् कदाचिन्न स सीदति ॥ (भट्टिकाव्य)

पथ्यसे लाभ—जो औषधि के समान कड़वे होते हुए भी पथ्य (द्रव्यों या वचनों) का सेवन करता है तथा तदर्थ प्राप्ति के लिए आप्तोंकी सेवा करता है वह कदापि नाश को प्राप्त नहीं होता।

वक्तव्य—पथ्य प्रायः अप्रिय होता है, इसलिए उसके साथ साथ कटु या अप्रिय शब्द का प्रयोग उसका स्वरूप दिग्दर्शित करने के लिए किया जाता है। पृष्ठ ३८१ पर 'उवाच चैनं क्षणदाचरेन्द्रं' श्लोक देखें। अर्हत्—बुद्ध और जैन धर्मों के महापुरुष। प्रथममात्रकटुकम्—प्रारम्भमें सेवन और आचरणमें अप्रिय। पश्चात् पथ्यम् (१) कुछ सेवन या आचरण के पश्चात् अभ्यास से खाद्य द्रव्यों का कडुआपन तथा अप्रिय द्रव्यों का अप्रियत्व नष्ट होता है। पृष्ठ १४५ पर 'अभ्यासेन कटु द्रव्यं' और पृष्ठ १४७ पर 'दधि मधुरं मधु मधुरं' श्लोकों को देखें। (२) परिणाम

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

या फल देखनेके पश्चात् द्रव्य कड़ुवा या अप्रिय होनेपर भी मनुष्य उनकी ओर ध्यान नहीं देता और सब को प्रिय मानने लगता है। तात्पर्य पथ्य 'यत्तदग्रेविषमिव परिणामे सुखोपमम्' (गीता) सात्त्विक सुख सम हुआ करता है। आप्त—'नित्यं हिताहार' (पृष्ठ ३२५) का वक्तव्य देखें।

(४) अप्रियस्यापि पथ्यस्य परिणामः सुखावहः ।
वक्ता श्रोता च यत्रास्ति रमन्ते तत्र संपदः ॥

(हितोपदेश)

(सामान्य अर्थ)—अप्रिय होने पर भी पथ्य का परिणाम सुखोत्पादक होता है अतः जहाँपर अप्रिय होने पर भी पथ्य कहने वाले वक्ता और अप्रिय पथ्य को सुननेवाले श्रोता होते हैं वहाँ पर लक्ष्मी निवास करती है।

(वैद्यकीय अर्थ)—अप्रिय भी पथ्य स्वास्थ्यप्रद होता है। अतः जहाँ पर अप्रिय होते हुए भी पथ्य कहने वाले वैद्य और उनको सुननेवाले रोगी लोक होते हैं वहाँपर स्वास्थ्यसंपदा निवास करती है।

वक्तव्य—यह वचन मारीचने रावण को कहे हुए 'सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः' इस प्रसिद्ध वचन पर अधिष्ठित है और इसका आशय यह है कि पथ्य अप्रिय होने पर भी हितकर और स्वास्थ्यप्रद होता है, अतः अप्रिय है या अप्रिय होगा इस डर से चिकित्सक को पथ्य कथन से और अप्रिय है इसलिए रोगी मनुष्यों को पथ्य पालन से विन्मुख न होना चाहिए। वक्ता—कुछ चिकित्सक लोकप्रियता संपादन करनेके लिए प्रियवादी बनते हैं। परन्तु यह सुलभ लोकप्रियता टिकाऊ या शाश्वत नहीं होती। शाश्वत लोकप्रियता चिकित्सा सफलता पर अधिष्ठित होती है और उसके लिए जब आवश्यक हों तब कटु पथ्य कहना आवश्यक होता है, सदा-सर्वदा प्रियवादी बनने से काम नहीं बनता। 'अनिष्टमप्यौषधमातुराय' श्लोक देखें। श्रोता—परन्तु केवल चिकित्सक के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तृत्व से काम नहीं बनता उसके लिए श्रोता की भी आवश्यकता होती है। श्रोता के दो अर्थ होते हैं—(१) कर्ण से केवल सुननेवाले, जैसे सर्वसाधारण व्याख्यान सुननेवाले लोक। श्रोता शब्द मुख्यतया इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। (२) कर्ण से सुनकर तदनुसार आचार विचार रखनेवाले, जैसे गुरु के शिष्य। इस अर्थ में इसका पर्याय 'आश्रव' है। पीछे पृष्ठ ३७५ पर 'दृष्टदोषमपि' श्लोक का वक्तव्य देखें। चिकित्सक के श्रोता भी दो प्रकार के होते हैं। एक तीव्र आशुकारी (Acute) रोगों से पीड़ितों का और दूसरा मन्द (Mild) अनुतीव्र (Sabacute) या चिरकारी (Chronic) रोगों से पीड़ितों का। प्रथम प्रकार के रोगी अत्यन्त रोगग्रस्त होने से प्रिय-अप्रिय सब प्रकार का पथ्यपालन करने के लिए तयार होते हैं या उसका विरोध करने की स्थिति में नहीं होते। इसलिए वे जल्दी स्वास्थ्यसंपदा प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे प्रकार के रोगियों की स्थिति प्रथम प्रकारके रोगियों से विपरीत हुआ करती है। वे अपने व्यवहारों में बहुत कुछ स्वतन्त्र होनेसे अपनी रुचि-अरुचियों को तथा आदतों को जल्दी छोड़ नहीं पाते या छोड़ना नहीं चाहते, जिससे चिकित्सक के कहने पर उनके द्वारा पथ्यपालन विशेषतः उनकी दृष्टि से अप्रिय पथ्यपालन हो नहीं पाता। तात्पर्य चिरकारी रोगियों को स्वास्थ्यसंपदा प्राप्त न होनेके जो अनेक कारण हैं उनमें एक कारण उनकी अनाश्रवता है।

(५) दक्षः श्रियमधिगच्छति, पथ्याशी कल्यतां, सुखमरोगी।
उद्युक्तो विद्यान्तं, धर्मार्थयशांसि च विनीतः॥
(हितोपदेश)

कार्यकुशल मनुष्य धन, पथ्य (कर भोजन) सेवी स्वास्थ्य, निरामय सुख, उद्योगी पूर्णविद्या, और विनयशील धर्म, यश और अर्थ प्राप्त करते हैं॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६) सादिताखिलनृपं महन्महः संप्रति स्वनयसंपदैव ते ।
किं परस्य स गुणः समश्नुते पथ्यवृत्तिरपि यद्यरोगिताम् ॥
(शिशुपालवध)

श्रीकृष्ण भगवान् युधिष्ठिर से कहते हैं—इस समय तुम्हारा महा-प्रताप अपनी नीतिसंपदा से ही समस्त राजाओं को पराजित करनेवाला बना है। पथ्यसेवन करनेवाला यदि नीरोग रहा तो उसमें दूसरे का क्या संबंध है।

वक्तव्य—परस्य—वैद्य जी का। 'कषायैरुपवासैश्च' श्लोक (पृष्ठ ४०७) का वक्तव्य देखें॥

(७) साधितोऽपि स किं कुर्याद् रसः पथ्यक्रमं विना ।
जिह्वाचापल्यमुद्भाव्य स एव ध्वंसयिष्यते ॥ (जीवानन्द)

सिद्ध होने पर भी पारद पथ्याचरण के बिना क्या कर सकता है? (कुछ भी लाभ नहीं कर सकता, किन्तु) जिह्वालौल्य उत्पन्न करके शरीर का नाश कर सकता है।

वक्तव्य—रसः—रसौषधियाँ। ये काष्ठौषधियों से बहुत शीघ्र गुण देनेवाली होती हैं। 'रसनात्सर्वधातूनां' तथा उसके पश्चात् दिये हुए कुछ वचनों को देखें। फिर भी इनके सेवन के साथ-साथ पथ्याचरण पर ध्यान देना पड़ता है। यदि न दिया जाय तो अन्य औषधियों से अधिक हानि होती, इसको ध्यान में रखना चाहिए। आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक में रसौषधियों के समान अनेक रोगों पर बहुत वीर्यशाली औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं। परन्तु उनमें भी उनके अनुसरण तथा रोगानुसार आहार-विहार सम्बन्धी पथ्य-पालन की आवश्यकता होती है इसको न भूलना चाहिए।

(८) नाश्नतो पथ्यमेवान्नं व्याधयः संभवन्ति हि ॥
(भागवत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

केवल पथ्यकर अन्न सेवन करनेवाले को व्याधियाँ उत्पन्न नहीं होती ।

(९) दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः
संतापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः ।
कं श्रीर्न दर्पयति, कं न निहन्ति मृत्युः
कं स्त्रीकृता न विषयाः परितापयन्ति ॥ (हितोपदेश)

अपथ्य से हानि—किस दुर्मन्त्री को राजनीति के दोष दूषित नहीं करते हैं ? किस अपथ्य भोजी को रोग पीड़ा नहीं देते ? किसको लक्ष्मी गर्वीला नहीं बनाती ? मृत्यु किसका नाश नहीं करता ? स्त्री विषय किसको ताप नहीं देते ?

(१०) सर्वस्य जायते मानः स्वहिताच्च प्रमाद्यति ।
वृद्धौ भजति चापथ्यं नरो येन विनश्यति ॥ (भट्टिकाव्य)

(स्वास्थ्य की या धन की) वृद्धि होने पर प्रत्येक को (उसके संबंध में) अहंकार उत्पन्न होता है । जिससे वह स्वहित के व्यवहार में गलती करके अपथ्य सेवन करता है और उससे नष्ट होता है ॥

(११) पथ्यं मुक्त्वा तु यो मोहाद् दुष्टमश्नाति भोजनम् ।
परिणाममविज्ञाय तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ (महाभारत)

पथ्यकर भोजन छोड़कर परिणाम का विचार न करके जो लालच से अपथ्यकर भोजन सेवन करता है उसका जीवन उसी से (अकाल में) समाप्त होता है ॥

(१२) कृत्वा बलवतां संधिमात्मानं यो न रक्षति ।
अपथ्यमिवतद्भुक्तं तस्यानर्थाय कल्पते ॥ (महाभारत)

बलवानों के साथ संधि करके जो अपनी रक्षा नहीं करता उसका

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यह कार्य अपथ्य भोजन के समान उसके अनर्थ के लिए कारण होता है।

(१३) अपथ्यव्यंजनोपेतं भुक्तमन्नं यथाऽऽतुरम् ।
इदानीं तत्तपति मां यन्मया सुकृतं त्वयि ॥ (रामायण)

राजा दशरथ कैकेयी को कहते हैं—अपथ्यकर व्यंजनादि से युक्त पहले सेवन किया हुआ भोजन जैसे पश्चात् रोगी को पीड़ा देता है, वैसे पहले (अपथ्यकर वरदान देकर) तुम्हारे लिए किया हुआ कर्म अब मुझे पीडा दे रहा है।

(१४) आपातरमणीयानां संयोगानां प्रियैः सह ।
अपथ्यानामिवान्नानां परिणामोऽतिदारुणः ॥
(हितोपदेश)

(जिह्वा पर निपात होने पर रुचिकर परन्तु) अपथ्य अन्न का परिणाम जैसे अतिदुःखद होता है वैसे दर्शन होते ही सुखकर मालूम होनेवाला प्रियजनों का संयोग (वियोग के समय) अतिदुःखद होता है।

(१५) अव्याकरणमधीतं, भिन्नद्रोण्यां तरंगिणीतरणम् ।
भेषजमपथ्यसहितं त्रयमिदमकृतं कृतं न वरम् ॥

व्याकरण के बिना अध्ययन, सच्छिद्र नाव में नदी पार करना और पथ्य के बिना औषधि सेवन ये तीनों कर्म करने की अपेक्षा न करना ही श्रेयस्कर होता है।

(१६) मुमूर्षूणां तु सर्वेषां यत्पथ्यं तन्न रोचते ।
मृत्युकाले यथा मर्त्यो विपरीतानि सेवते ॥ (रामायण)

मरने वाले को कोई हितकर बात रुचती नहीं, इसलिए मृत्युकाल समीप आने पर मनुष्य (अपने हित की दृष्टि से) विपरीत (आहार-विहारादि का) सेवन करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१७) भवति पुरुषस्य व्याधिर्मरणं वा सेवितेऽपथ्ये ।
राजापथ्ये पुनः सेविते सकलमपि कुलं म्रियते ॥
(मुद्राराक्षस)

(शरीर के लिए) अपथ्य का सेवन करने से मनुष्य को व्याधि या मृत्यु प्राप्त होती है। परन्तु राजा के लिए अपथ्यकर सेवा करने से (उस मनुष्य का) समूचा कुल नष्ट होता है।

(१८) बलोपपन्नोऽपि हि बुद्धिमान् नरः
परं नयेन्न स्वयमेव वैरिताम् ।
भिषङ् ममास्तीति विचिन्त्य भक्षये-
दकारणात्को हि विचक्षणो विषम् ॥ (पंचतन्त्र)

बलवान् होने पर भी बुद्धिमान् मनुष्य अपनी ओर से दूसरे को शत्रु न बनावें। चिकित्सक मेरा है इस विचार से कौन सा विचारी मनुष्य अकारण विष सेवन करेगा ?

वक्तव्य—वैरिताम्—आहार, निद्रा, व्यायाम, मथुन इत्यादि कर्म यथाविधि और पथ्य का पालन करने से शरीर के मित्र और पथ्य का पालन न करने से शरीर के शत्रु बनते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह, बलवान् अथवा भिषङ्मित्र भी क्यों न हो, पथ्य का पालन करके इनको शत्रु होने का तथा रोगग्रस्त होने पर पथ्य का पालन करके रोगरूप शत्रु को बढने का मौका न दे। 'आपातरमणीयानां' श्लोक (पृष्ठ ४३८) देखें।

(१९) आयासः सर्वापथ्यानाम् ॥ (चरक)

सर्वअपथ्यों में आयास सर्वश्रेष्ठ है।

वक्तव्य—आयासः—शरीरं पीडयते येन शुभेनाप्यशुभेन वा। अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते॥ इसके विपरीतकरण आयास अर्थात् अत्यायास, प्रत्येक कर्म का अतियोग।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२०) पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥
(वैद्यजीवन)

चिकित्सा में पथ्य का महत्त्व—पथ्य से रहने पर रोगी को औषधि-सेवन से क्या करना है ? और पथ्य से न रहने पर औषधि-सेवन से भी क्या होने वाला है ? ।

(२१) यद्यपथ्यं किमौषध्या, यदि पथ्यं किमौषधैः ॥

यदि अपथ्यसेवन होता हो तो फिर औषधिसेवन से क्या होने वाला है ? और यदि पथ्यसेवन होता हो तो फिर औषधियों के सेवन से क्या करना है ?

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों का तात्पर्य यह है कि व्यवहार में अधिकसंख्यक रोग ऐसे होते हैं कि जो विना औषधिके केवल आहार-विहार के पथ्यपालन से ठीक हो जाया करते हैं, तथा जो औषधि-साध्य रोग होते हैं उनमें भी अधिक संख्य ऐसे होते हैं कि जो विना पथ्यपालन के केवल औषधि से ठीक नहीं हो सकते हैं ।

(२२) यदपथ्यवतामायुर्यदनीतिमतां श्रियः ।
तदेतत्काकतालीयं तदेतच्च घुणाक्षरम् ॥

अपथ्य-सेवन करनेवालों की दीर्घायु और अनीतिमानों की संपत्ति केवल काकतालीय या घुणाक्षर न्याय से होती है ।

वक्तव्य—काकतालीयम्—कौवे का तालीपर बैठना और उसी समय उसका टूटना अथवा कौवे का आना और उसी समय ताल फल का गिरना, अर्थात् अनपेक्षितघटना तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसंभवम् ॥ चन्द्रालोक ॥ काकागमनतालपतनरूपो यः समागमः । अलंकार-चन्द्रिका ॥ घुणाक्षरम्—घुणोत्किरणाद्दैववशान्निष्पन्नमक्षरम् ॥ घुन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

लगी हुई लकड़ीपर अक्षरों का दिखाई देना। इसका तात्पर्य यह है। अगर कोई व्यक्ति अपथ्यसेवी तथा व्यसनी होने पर भी दीर्घायुषी दिखाई दे तो उसका दीर्घायुष्य अपथ्यसेवन का फल है या अपथ्य-सेवन करने पर भी सुख, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य प्राप्त हो सकता है इस प्रकार का अनुमान न करके अपथ्य-सेवन वर्ज्य करें।

(२३) नापथ्यसेविनं सद्यः प्रबाधन्ते तदामलाः।
प्रकोपं प्रतिविघ्नन्ति भिन्नैर्दूष्यादिभिर्यदा॥

(अष्टांग संग्रह)

जब दूष्यादि विरोधी होने से अपथ्यजन्य दोष-प्रकोप में बाधा डालते हैं तब अपथ्य सेवन करनेवाले के दोष तत्काल बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं।

(२४) कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा॥

(शिशुपालवध)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये पथ्यापथ्यविज्ञानीयो नाम
षट्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः



शत्रुओं द्वारा अपमानित होनेपर भी (उस समय) अपने मनो-विकार प्रकट न करके शत्रु दुर्बल होने के उचित समय पर (राजनीतिज्ञ पुरुष) उस प्रकार प्रकुपित हो (कर शत्रुओं का नाश करता) है जिस प्रकार अपथ्यसेवन करने पर भी उस समय असाध्य रोग प्रकट न होकर (रोगी दुर्बल होने के) उचित समय पर प्रकुपित (होकर उसका नाश करता) है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—कृतापचारः- (१) शत्रु ने जिसका अपकार किया है (२) रोगी ने जिस का अपथ्य सेवन किया है। प्राप्ते काले-(१) अपनी पूर्ण सिद्धता होनेपर, शत्रु संकट में फँसने पर या दुर्बल होनेपर- वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः। प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि ॥ महाभारत ॥ (२) रोगी का बल तथा कालादि अनुकूल होनेपर।

अपथ्य से रोग की उत्पत्ति होने के लिए अथवा शरीरगत रोग बढ़ने के लिए उसे बल-कालादि अनेक बातों की आवश्यकता होती है, केवल अपथ्य अपने बल पर रोग उत्पन्न नहीं कर सकता है। अतः कभी रोग तत्काल उत्पन्न होता है कभी कुछ काल या दीर्घकाल के पश्चात् उत्पन्न होता है, परन्तु होता है जरूर। अतः अपथ्यसेवन कदापि न करना चाहिए। 'न चिरात्प्राप्यते लोके' (पृष्ठ ३११) श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखें।

इति श्रीभास्करशर्मणा विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां पथ्यापथ्यविज्ञानीयो नाम
षट्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथातो भेषजविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) भेषजं नाम तद्यदुपकरणायोपकल्पते भिषजो धातु-साम्याभिनिर्वृत्तौ प्रयतमानस्य (चरक)

भेषजव्याख्या—(रोगी में) स्वास्थ्य उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न करने वाले चिकित्सक को जो भी उपकरण रूप होता है वह भेषज है ।

(२) वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥

(अत्रिसंहिता)

चिकित्सक जिस द्रव्य से रोगी की व्याधि का हरण करता है वह द्रव्य औषधि है ।

वक्तव्य—द्रव्यम्—साधारणतया द्रव्य से पांचभौतिक मूर्त पदार्थों का बोध होता है, परन्तु द्रव्य शब्द वैशेषिक दर्शन के अनुसार भौतिक-अभौतिकः मूर्त-अमूर्त सबके लिए प्रयुक्त हुआ है—क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम् । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि । वैशेषिक दर्शन ॥ क्योंकि मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ, जप-जाप्य, व्यायाम-विश्राम, लंघन, विचार, आश्वासन, विस्मरण, श्रद्धा, अचिन्तन इत्यादि भी औषध होते हैं । द्रव्य के अनेक अर्थ हैं । वैद्यक में इसलिए इसका अर्थ औषधि भी होता है—द्रव्यं भव्ये धने दमादौजन्तुद्रुमविकारयोः । विलेपे भेषजे रीत्याम् ॥ हैमकोशः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) ओषो नाम रसः सोऽस्यां धीयते यत्तदोषधिः ।
ओषादारोग्यमाधत्ते तस्मादोषधिरोषधः ॥

(काश्यपसंहिता)

भेषज पर्याय और उनकी निरुक्तियाँ—ओष का अर्थ है रस, वह जिसमें धारण होता है वह ओषधि है; ओष से आरोग्य का आधान होता है, इसलिए ओषधि ओषध है ॥

वक्तव्य—ओषधि-(१) रसयुक्त द्रव्य, जैसे कि प्रथमश्लोकार्ध में 'तथा—पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः' इस गीतावचन में अभिप्रेत है। (२) व्रीहि यवादि मर्यादित अर्थ में—ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ मनु ॥ (३) विशिष्ट अर्थ भेषज है और इसका रूप औषध होता है—ओषध्यो जातिमात्रे स्युरजातौ सर्वमौषधम् । अमरकोश ॥ ओषध्य इति फलपाकान्तानां व्रीह्यादीनां जातावेव ओषध्यः स्युः । ओषधिशब्दप्रयोगः स्यादित्यर्थः । यदा तु ओषधेः रोगहारित्वमात्रं प्रतीयते न त्वन्यत् तदा औषधशब्दप्रयोगः । ओषधेरजातावित्यण् । न केवलमोषधिरेवौषधशब्दवाच्या किन्तु रोगहरत्वेन घृतक्षौद्रत्रिफला-कल्कादि चौषध मितिसर्वमिति विशेषणाज्ज्ञेयम् । अमरटीका ॥

(४) भिषग्विज्ञाननेयत्वाद्भेषजं भिषजो विदुः ।
भिषग्जिते हितत्वाच्च भैषज्यं परिचक्षते ॥

(काश्यपसंहिता)

भिषग् के जानने योग्य होने से भिषग् इसको भेषज कहते हैं; वैसे ही भिषग् जित में हितकारी होने से भैषज्य भी कहते हैं ।

वक्तव्य—भिषग्जिते-(१) इसका रूढ वैद्यकीय अर्थ भेषज है—औषधं भेषजं पथ्यमगदं च भिषग्जितम् ॥ अष्टांग-निघण्टु ॥ आतंकपङ्कमग्नानां हस्तालंबो भिषग्जितम् ॥ अष्टांगहृदय ॥ परन्तु यहाँ पर भिषग्जित शब्द रूढार्थ में प्रयुक्त न होकर योगार्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इसलिए 'भिषजों का रोगों के साथ जो युद्ध होता है उसमें उनपर विजय प्राप्त करने में' यह इस शब्द का यहाँ पर अर्थ है। भेषज—भेषं रोगं जयति, भेषयति वा, भेषृ भये गतौ च। भैषज्यम्—भिषजः इदम्।

(५) अगदत्वं च युक्तस्य गदानामपुनर्भवात् ॥ (काश्यपसंहिता)

इसके प्रयुक्त करने से रोग फिर नहीं होते, इसलिए इसका अगदत्व है।

वक्तव्य—अगद–(१) स्वास्थ्य, नीरोगता—गदो रोगस्तस्याभावः, नैरुज्यम्–स्त्रीरुग्रुजा चोपतापरोगव्याधिगदामयाः ॥ अमरकोश ॥ (२) व्याधिहर औषधि, जैसे कि इस वचन में बताया है। ऊपर अष्टांगनिघंटु का वचन भी देखे। (३) विषहर, विषविरोधी, विषघ्न औषधि (Antidote) यह इसका विशेष वैद्यकीय अर्थ है जो अगदतन्त्र (Science of poisons and their antidotes) तथा अगद तन्त्रान्तर्गत विविध अगदों (Antidotes) में अभिप्रेत है। 'अ' उपसर्ग के अनेक अर्थ हैं–न अभावे निषेधे च स्वरूपार्थेऽप्यतिक्रमे। ईषदर्थे च सादृश्ये तद्विरुद्धतदन्ययोः ॥ मेदिनी ॥ प्रथम अर्थ में 'अ' अभाव के लिए और शेष दो अर्थों में विरोध के (Anti) लिए 'अ' उपसर्ग है। चरक में अगदतन्त्र का पर्याय 'विषगरवैरोधिकप्रशमनं' दिया है। इसकी टीका में चक्रपाणि 'वैरोधिकं संयोगविरुद्धम्' (संयोगिविषम् पाठभेद) ऐसा अर्थ करते हैं, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं। गर में संयोगि विष का समावेश होता है। वैरोधिक का सरल अर्थ विरोधी विषगर का प्रभाव नष्ट करने वाला ऐसा है। गद का अर्थ है विष, इसलिए विषविरोधी, विषघ्न अगद का अर्थ होता है।

(६) कण्ठस्य कर्षणात्प्रायो रोगाणां वाऽपि कर्षणात्।
कषायशब्दः प्राधान्यात् सर्वयोगेषु कल्प्यते ॥
(काश्यपसंहिता)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रायः गले में खिंचावट उत्पन्न करने के कारण अथवा रोगों का कर्षण करने के कारण संपूर्ण रोगहारक योगों में कषाय शब्द प्रयुक्त होता है।

वक्तव्य—कषाय-(१) षड्रसों में से एकरस-कषायस्तुवरः प्रोक्तः स तु पूगिफलादिषु। धन्वन्तरि निघण्टु ॥ (२) क्वाथ या काढा-शृतः क्वाथः कषायश्च निर्व्यूहः स निगद्यते ॥ शार्ङ्गधर ॥ (३) स्वरसादि पंच कषाय द्रव्य-पञ्चविधं कषायकल्पनमिति तद्यथा-स्वरसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टः कषाय इति। चरक ॥ (४) रोगहर औषधि जैसे कि यहाँ कहा है-यः कषायः कषायः स्यात् स वर्ज्यं 'स्तरुणज्वरे' इस चरक के वचन में प्रथम कषाय शब्द पंचकषायात्मक औषधि के लिए और दूसरा कसैले रस के लिए है। प्राचीन काल में काष्ठौषधियों द्वारा मुख्यतया चिकित्सा हुआ करती थी और वे पंचकषाय के रूप में प्रयुक्त होकर रोगों की चिकित्सा की जाती थी। इसलिए कषाय रोग-हर औषधिका पर्याय हो गया है। यह कथन सुश्रुत के 'क्षीरं रसः कल्क-मथो कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव चूर्णम्। कल्पाः षडेते खलु भेषजानां' इस वचन से और स्पष्ट होगा। कण्ठस्य कर्षणात्-यह कषाय रस की यथार्थतया निरुक्ति है, क्यों कि कण्ठ में कर्षण, स्तम्भन, शोषण उत्पन्न करना उसका स्वभाव है। आम कपित्थ तथा पूगीफल आदि कुछ द्रव्यों में यह कषायता इतनी अधिक हुआ करती है कि कभी-कभी इनका सेवन करने वाले कण्ठस्तम्भन और उससे श्वासावरोध हो कर मर जाते हैं। कषाय षड्रसों में से एक है और औषधियाँ षड्रसात्मक होती हैं। इसलिए 'नामैकदेशे नामग्रहणं' इस न्याय के अनुसार 'कण्ठस्य कर्षणात कषायः' यह निरुक्ति संपूर्ण औषधियों के लिए चल सकती है। रोगाणां वाऽपि कर्षणात्-'संपूर्ण रोगों का कर्षण (नाशन) करने के कारण कषाय' यह निरुक्ति औषधि पर्याय की है। सर्व-योगेषु-संपूर्ण औषधियों के लिए—योगोऽपूर्वार्थसंप्राप्तौ संगतिध्यान-युक्तिषु। वपुःस्थैर्ये प्रयोगे च विष्कंभादिषु भेषजे ॥ मेदिनी ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(७) चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम् ।
प्रायश्चित्तं प्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ (चरक)

चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन और हित (ये भी भेषज के पर्याय हैं)।

वक्तव्य—प्रायश्चित्तम्-प्रायश्चित्तमितिभेषजसंज्ञा प्रायश्चित्तवद्भेषजस्याधर्मकार्यव्याधिहरत्वेन ॥ चक्रपाणि ॥ धार्मिक अर्थ के लिए 'प्रायश्चित्तं चिकित्सां च' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ ४१०) देखें।

(८) विद्याद्भेषजनामानि, भेषजं द्विविधं हि तत् ।
स्वस्थस्योर्जस्करं किञ्चित्, किञ्चिदार्तस्य रोगनुत् ॥
(चरक)

द्विविध भेषज—ये (ऊपर के श्लोक में दिये हुए) भेषज के नाम हैं। यह भेषज द्विविध है-एक स्वस्थ में ऊर्जा उत्पन्न करने वाला और दूसरा रोगी में रोगहर।

वक्तव्य—ऊर्जस्कर--शरीर में ऊर्जा उत्पन्न करने वाला (Energising) 'यद्चेतनोऽपि' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ २७३) भी देखें।

(९) स्वस्थस्योर्जस्करं यत्तु तद् वृष्यं तद्रसायनम् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ (चरक)

रसायनगुण—स्वस्थ में जो ऊर्जस्कर होता है वही वृष्य और वही रसायन होता है। प्रशस्त रसादि (सप्तविध धातुओं) की प्राप्ति का उपाय रसायन है।

(१०) रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसमर्थं च ॥ (सुश्रुत)

रसायन वयःस्थापक, आयुर्मेधाबलकर और रोगहरण में समर्थ होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—वयःस्थापनम्-जरापहरणं, तारुण्यं बहुकालं स्थापयति ॥

(११) यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव तत्सर्वं वृष्यमुच्यते ॥ (चरक)

वृष्य—जो कुछ, मधुर, स्निग्ध, जीवनीय, पुष्टिकर, गरिष्ठ और मन में हर्षोत्पादक होता है वह सब वृष्य कहलाता है।

वक्तव्य— वृष्य-वाजीकर (Aphrodiasic) का यह पर्याय है और वाजीकर की-वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतः स्त्रियं (चरक) इस सार्थव्युत्पत्ति के समान 'वृषायते तेन परं मनुष्यः' (चरक) यह वृष्य की सार्थ निरुक्ति है।

(१२) मात्रावल्लघुपाकं च हृद्यं दोषप्रवाहणम् ।
अल्पपेयं महावीर्यं प्रीणनं बलरक्षणम् ॥

(१३) व्यापत्तावल्पदोषं च मन्दग्लापनमेव च ।
संस्कारगुणसंपन्नं राजार्हं भेषजं मतम् ॥

(काश्यपसंहिता)

उत्तम औषधिगुण—जिसके लिए (निश्चित) मात्रा है, अल्पकाल (या अल्प कष्ट) से परिपाचित होने वाली, हृदय को बल देनेवाली, दोषहारक, अल्पमात्रा में प्रयुक्त होनेवाली, अत्यन्त क्रियाशील, मन-प्रसन्नता करनेवाली, बलरक्षक ॥ विपर्यय होनेपर अल्प अपाय और ग्लानि करनेवाली, किये हुए संस्कार के गुणों से संपन्न ऐसी औषधि राजा को देने योग्य मानी जाती है।

वक्तव्य—औषधि के उत्तम गुणों में तृतीय श्लोकार्ध के गुण सबसे महत्त्व के होते हैं। सुश्रुत में भी 'दोषघ्नमग्लानिकरमविकारिविपर्यये' ऐसा इनका स्पष्ट निर्देश किया है। एकबार औषधि से लाभ न हो कोई आपत्ति नहीं परन्तु उससे अपाय न होना चाहिए और जीवितनाश कदापि न होना चाहिए यह औषधि के संबंध में भारतीयों की कल्पना

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है–किमाह सीता हनुमंस्तत्त्वतः कथयस्व मे। एतेन खलु जीविष्ये भेषजेनातुरो यथा। रामायण। आयुर्वेद की औषधियों में ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं। 'प्रयोगः शमयेत्' श्लोक देखें। आधुनिक वैद्यक की नयी नयी औषधियों में इनका दिनों दिन अभाव हो रहा है। ये औषधियाँ शीघ्र और निश्चित काम करने वाली जरूर हुआ करती हैं, परन्तु अत्यन्त तेज और विषैली होने के कारण जरासा विपर्यय होने पर और कभी कभी विपर्यय न होने पर भी रोगी की प्रकृतिप्रत्यात्मता (Idiosyncrasy) के कारण हानि किये बिना नहीं रहतीं और कभी कभी घातक हुआ करती हैं।

(१४) कक्षादपि औषधं गृह्यते ॥ (चाणक्यसूत्र)

तृण से भी औषधि ग्रहण की जाती है।

वक्तव्य—इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी द्रव्य से चिकित्सोपयोगी द्रव्य निकलता हो तो मूलद्रव्य तुच्छ या क्षुद्र होने पर भी निकला हुआ द्रव्य क्षुद्र नहीं होता है, उसका मूल्य उसकी उपयुक्तता पर अधिष्ठित रहता है। बालादपि सुभाषितम् ॥ मनु ॥ 'ऋषिप्रणीते' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ १५) देखें।

(१५) नानौषधिभूतं जगति किञ्चिद् द्रव्यमुपलभ्यते तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य ॥ (चरक)

योजकता का महत्त्व—विविध युक्तियों और प्रयोजनाओं की दृष्टि से जिसका औषधि के लिए प्रयोग हो नहीं सकता ऐसा कोई भी द्रव्य संसार में नहीं होता है।

वक्तव्य—मनुष्य में योजकता हो तो इस सृष्टि का प्रत्येक द्रव्य रोगनिवारण के लिए औषधि के रूप में प्रयुक्त हो सकता है। ब्रह्माजी ने सजीव-निर्जीव और प्राणी-वनस्पति सृष्टियों के समान औषधियों की कोई अलग सृष्टि निर्माण नहीं की है। जब कोई द्रव्य चिकित्सा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के लिए प्रयुक्त होता है तब वह उस अवस्था में औषधि कहलाता है। जैसे विविध धान्य, शाकफल स्वस्थावस्था में अन्न और रुग्णावस्था में औषध हो जाते हैं। 'न चाहारसमं किञ्चित्' श्लोक देखें।

(१६) अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः॥

कोई अक्षर अमन्त्र (शक्तिविरहित) नहीं होता, कोई जडी अनौषध नहीं होती, कोई मनुष्य (सर्वथैव) अयोग्य नहीं होता, इनके उचित उपयोग के लिए योजक नहीं मिलता।

वक्तव्य—अमन्त्रमक्षरम्–वर्णमाला के अक्षर और उनकी बारहखडी में स्वयम्भू शक्ति नहीं है, फिर भी ऋषिमुनियों ने उनसे अचिन्त्य-प्रभावी मन्त्र (पृष्ठ ४५१) बनाये। इससे यह स्पष्ट होता है कि योजक अपनी योजकता से मिट्टी की औषधि बना सकता है और उसके न होनेपर सोने की औषधि को मिट्टी कर सकता है।

(१७) कनकभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्त्रपुणि प्रतिबध्यते।
न स विरौति न चापि हि शोभते भवतियोजयितुर्वचनीयता॥

(पंचतन्त्र)

सुवर्ण के आभूषण में बैठाने योग्य मणि यदि राँगे (Tin) में बैठाया गया तो वह न आवाज कर सकता है न शोभादायक होता है, इससे योजक की ही बदनामी होती है।

वक्तव्य—ऊपर के श्लोक में यह बताया गया कि योजक अपनी कुशलता से सामान्य अनौषधि द्रव्य को औषधि बनाकर प्रशंसा का पात्र होता है। इसके विपरीत इस श्लोक में यह बताया है कि योजना कौशल्य न होने से अयोजक मनुष्य उत्तमोत्तम औषधियों को भी व्यर्थ बनाकर स्वयं निन्दास्पद होता है। चिकित्साव्यवसाय में आज-कल संसार भर प्रतिजीवियों (Antibiotics) का अन्धाधुन्ध होनेवाला

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उपयोग इसका उत्तम उदाहरण। 'स्रगियं यदि जीवितापहा' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(१८) अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः।

(दशकुमारचरित)

मणि, मन्त्र और औषधि (अथवा मन्त्रौषधि) इनका प्रभाव अचिन्त्य होता है।

वक्तव्य—प्रभाव-(१) यत्सोपपत्तिकं कार्यं न तत्प्रभावकृतम्। चक्रपाणि। औषधि के जिन गुणों की उपपत्ति नहीं बतायी जा सकती वे गुणधर्म प्रभाव हैं (Empirical action)। (२) सर्वातिशायी द्रव्यस्वभावः प्रभाव इत्याम्नातः। अष्टांगसंग्रह। विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य च स्मृतः॥ चरक॥ मणिमन्त्रौषधियों का सबसे प्रमुख तथा विशिष्ट गुणधर्म (Specific action)—मणिमन्त्रौषधीनां च यत्कर्म विविधात्मकम्। दर्शनाद्यैरपि विषं यन्नियच्छति चागदः। तच्च प्रभावजं सर्वमतोऽचिन्त्यः स उच्यते॥ अष्टांगसंग्रह॥ अचिन्त्यः-मानवी युक्तिबुद्धितर्क से परे-अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। प्रकृतिभ्यः परं यस्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥ महाभारत॥ इसका सोदाहरण विवरण देखिए-देव विचित्रेऽस्मिन् संसारे···स्वयमेवानेकप्रकारमुत्पद्यमानस्य तिष्ठतो विनश्यतो वा नियतवृत्तेः स्थावरजंगमस्य न कदाचिदवस्था सा या न संभवति। तत्कुतोयं देवस्यात्र वस्तुनि विमर्शः। यदि युक्तेर्विचारात् (अयं विमर्शः) कियन्त्यत्र युक्तिरहितान्यागमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतान्यपि संवादीनि दृश्यन्ते। मुद्राबन्धाद्ध्यानाद्वा विषप्रसुप्तस्योत्थापने कीदृशी युक्तिः। अयस्कान्तस्य वायसः समाकर्षणेभ्रमणे वा। मन्त्राणां वैदिकानामवैदिकानां वाऽनेकप्रकारेषु कर्मसु सिद्धौ। नानाविधद्रव्यसंयोगानां वा मरणमदनाद्युत्पादनापहरणवशीकरणविद्वेषणादिषु शक्तेः समुत्पादने अन्येषां बहुतराणामेवंविधानां च। कादंबरी॥ 'सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः' श्लोक वक्तव्य देखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१९) यथौषधं मन्त्रकृतं नरस्य प्रयुक्तमात्रं विनिहन्ति रोगान् ।
तथैव दत्ता कपिला सुपात्रे पापं नरस्याशु निहन्ति सर्वम् ॥
(महाभारत)

जैसे मन्त्रकृत औषधि प्रयुक्त करते ही मनुष्य के रोगों का नाश करती है, वैसे सत्पात्र को दिया हुआ कपिला गौ का दान दानी मनुष्य के सब पापों का नाश करता है ।

वक्तव्य—मन्त्रकृत औषधि—(१) स्वयं बहुत विचार करके तथा विशेषज्ञ से विचार विनिमय करके निश्चित की हुई । (२) मन्त्रौषधि, मन्त्रित जलादि ।

(२०) औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः ।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति, तपस्तेषां हि साधनम् ॥ (मनु)

(रोगहर) औषधि (विषहर) औषधि, विद्या, (स्वर्गादि) विविध दैवीस्थान तप से ही सिद्ध होते हैं, (क्योंकि) तप ही इनकी सिद्धि का साधन है ।

वक्तव्य—अगद—मन्वर्थमुक्तावली में 'गदाभावः । नैरुज्यमिति यावत्' ऐसा इसका अर्थ किया गया है। विषघ्न औषध ऐसा अर्थ अधिक उचित है । 'कण्ठस्य कर्षणात्' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ ४४५) देखें। प्रसिद्ध्यन्ति—मन्त्रौषधियों की सिद्धि प्रायः चिकित्सक के तपोबल पर अधिष्ठित हुआ करती है, अमन्त्रौषधियों में ऐसी कोई बात नहीं होती, फिर भी चिकित्सक तपोबलयुक्त होने पर उससे प्रदत्त औषधियों की सफलता में प्रकर्ष दिखाई देता है। असंख्य चिकित्सकों में कुछ इने-गिने ही चिकित्सक सिद्धहस्त होते हैं । इसके अनेक कारणों में व्यावसायिक, पूर्वजन्म की या इस जन्म की तपस्या एक प्रधान कारण होता है इसको ध्यान में रखें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने ।
अवधीरणा क्व कार्या, खलपरयोषित्परधनेषु ॥
(शंकराचार्य)

प्रयत्न कहाँ करें ? विद्याभ्यास में, उत्तम औषधि (प्राप्त करने) में, तथा दान (करने) में । उपेक्षा किसकी करें ? दुर्जन, परस्त्री और परधन की ।

(२२) धर्मो धनं च धान्यं च गुरुर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा यो न जीवति ॥
(वृद्धचाणक्य)

धर्म (का आचरण), धन (का अर्जन या व्यय), धान्य का संग्रहण, गुरुवचन (का पालन) और औषधि (का सेवन) भलीभांति करना चाहिए; अन्यथा वह भली भाँति जीवित नहीं रह सकता ।

वक्तव्य—न जीवति—मात्राकालानुसार विश्वसनीय औषधि का सेवन न करने से या तो रोग ठीक नहीं हो सकता, या उसका कोई नया रोग उत्पन्न हो सकता है या जीव के लिए धोखा भी हो सकता है ।

(२३) औषधार्थसुमन्त्राणां बुद्धेश्चैव महात्मनाम् ।
असाध्यं नास्ति लोकेऽत्र यद् ब्रह्माण्डस्य मध्यगम् ॥
(पंचतन्त्र)

औषधि, धन, मन्त्र और महात्माओं की बुद्धि इनके लिए ब्रह्माण्ड के भीतर विद्यमान् कोई भी असाध्य नहीं होता है ।

(२४) अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् (महाभारत)

जल, मूल, फल, दूध, हविर्भाग, ब्राह्मणों की इच्छा तथा गुरु के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वचन (के अनुसार किया हुआ कर्म या भक्षण किया हुआ द्रव्य) एवं औषध (का सेवन) ये व्रतनाशक नहीं होते।

(२५) इक्षुश्चापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम्।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥

(वृद्धचाणक्य)

गन्ना, पानी, दूध, (पिप्पली, पुष्कर, शूरण इत्यादि के) मूल, पान, फल और औषधि इनका सेवन करने पर भी स्नानदान (पूजा-पाठ) आदि धर्मकर्म करें।

(२६) पितृदेवादिशेषं च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया।
प्रोक्षितं चौषधार्थं च खादन् मांसं न दुष्यति॥

(मार्कण्डेय पुराण)

पितृदेवकार्य का अवशिष्ट, श्राद्ध में, ब्राह्मण की इच्छा से, प्रोक्षित और औषधि के लिए मांससेवन करने में कोई दोष नहीं होता।

वक्तव्य—प्रोक्षितम्—प्रोक्षणाख्यश्रौतसंस्कारसंस्कृतस्य पशोर्यागार्थस्याग्नीषोमीयादेर्हुतावशिष्टम्॥ मिताक्षरा॥ औषधार्थम्—इसके लिए मांससेवन की निर्दोषता केवल पुराणविहित नहीं, स्मृतिविहित भी है—प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया। यथाविधिनियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥ मनु॥ प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षिते द्विजकाम्यया। देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दोषभाक्॥ याज्ञवल्क्यस्मृति॥ यह मांसभक्षण जिह्वा के लिए नहीं, प्राणरक्षण के लिए है इसको ध्यान में रक्खें—अन्नाभावेन व्याध्यभिभवेन वा मांसभक्षणमन्तरेण यदा प्राणबाधा भवति तदा मांसं नियमेन भक्षयेत्॥ मिताक्षरा।

उपर्युक्त तीन वचनों का तात्पर्य यह है कि यदि कोई द्रव्य या कर्म अपने रोग की चिकित्सा के लिए चिकित्सक द्वारा उपदिष्ट हो तो व्रत-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

काल में, पूजापाठादि समाप्त करने से पूर्व तथा वैसे भी उनका भक्षण या सेवन करें या न करें इस प्रकार उनकी भक्ष्याभक्ष्यता, सेव्यासेव्यता, धर्म्याधर्म्यता, वर्ज्यावर्ज्यता इत्यादि के संबंध में विचार करने का कारण नहीं है। निःशंक होकर उनका सेवन करना रोगी का धर्म या कर्तव्य है। क्योंकि औषधि या रोगमुक्त होने के लिए जो भी भक्षण या सेवन करने पड़े वह परमेश्वर का ही सेवन ('अहं क्रतुरहं यज्ञं' इस श्लोक तथा उसके वक्तव्य देखिए) होता है, उसमें किसी प्रकार का पाप या अधर्म नहीं होता। और यदि कोई सनातनी (Orthodox) उसको अधर्म या पाप समझता हो तो वह बुद्धिभ्रम है। रोगग्रस्त मनुष्य नित्यविहित स्नानसंध्यादि कर्म तथा नैमित्तिक धर्मकर्म नहीं कर सकता, अर्थात् एक प्रकार से वह पाप ही करता रहता है। यदि औषधि के लिए किए गये, कुछ पाप से वह जल्दी रोगमुक्त हो जाय तो उसके कारण उससे जो अधिक धर्मकर्म होगा उस धर्मकर्म से औषधि के पाप की निष्कृति हो जायगी और उसके पल्ले कोई पाप नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त रोग पाप है और शत्रु भी— रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिः। न च व्याधिसमो रिपु ॥ अतः पापी शत्रु का नाश करने के लिए यदि पाप का ही उपयोग करने की आवश्यकता पड़े तो वह पापकर्म जरूर करना चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं माना जाता है—कृते प्रतिकृतिं कुर्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम्। न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दुष्टंसमाचरेत्॥ तात्पर्य, आपत्ति की अवस्था में जो कर्तव्य आवश्यक होता है वह सर्वसाधारण अवस्था में अधर्म्य होने पर भी, धर्म्य ही माना जाता है और उसको 'आपद्धर्म' कहते हैं। इस दृष्टि से विश्वामित्र का उदाहरण प्रसिद्ध है। 'न शास्त्रमस्ति' (पृष्ठ १०६) तथा 'नास्ति अभक्ष्यं क्षुधितस्य' इन वचनों के वक्तव्य (पृष्ठ १३६) देखिए।

(२७) देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ (पंचतन्त्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देवता, तीर्थ, ब्राह्मण, मन्त्र, ज्योतिषी, औषध और गुरू इनके संबंध में जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसी उसको फलप्राप्ति हुआ करती है।

वक्तव्य—चिकित्सा सफल होने के लिए वैद्य को उसकी तपस्या से सहायता मिलती है ('औषधान्यगदो' श्लोक पृष्ठ ४५२ पर देखें) वैसे रोगी को उसकी वैद्य तथा औषधि के ऊपर की श्रद्धा से सहायता मिलती है। अतः जिस चिकित्सापद्धति के ऊपर श्रद्धा न हो उससे चिकित्सा न करवायी जाय तथा जिस पद्धति से चिकित्सा कर रहे हो उस पर पूर्ण श्रद्धा रखकर करवायी जाय।

(२८) मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणो
हितैषिणः सन्ति न ते मनीषिणः।
सुहृच्च विद्वानपि दुर्लभो नृणां
यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम् ॥ (भोजप्रबन्ध)

जो विद्वान् होते हैं वे हितैषी नहीं होते, तथा जो हितैषी होते हैं वे विद्वान (विचारी) नहीं होते हैं। तात्पर्य, जैसे हितकर औषधि का मधुर होना दुर्लभ होता है वैसे विचारी पुरुष का मित्र या हितैषी होना दुर्लभ होता है।

(२९) अप्रियं च हितं स्निग्धमस्निग्धमहितं प्रियम्।
दुर्लभं तु प्रियहितं स्वादु पथ्यमिवौषधम् ॥
(सौन्दरानन्द)

हितकर, स्नेहयुक्त अप्रिय वचन तथा अहितकर, स्नेहरहित प्रियवचन सुलभ होते हैं; परन्तु जैसे मीठा और हितकर औषध दुर्लभ होता है वैसे हितकर और प्रियवचन दुर्लभ होता है।

वक्तव्य—स्निग्ध—स्नेहयुक्त अर्थात् मित्रोक्त—स स्निग्धोऽकुशलान्निवारयति यः ॥ अस्निग्ध—अमित्रोक्त।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३०) विद्विषोऽद्विषुरुद्वीक्ष्य तथाप्यासन्निरेनसः ।
अरुच्यमपि रोगघ्नं निसर्गादेव भेषजम् ॥

(शिशुपालवध)

उस (भगवान् श्रीकृष्ण) को देखकर शत्रु उसका द्वेष करने लगे, फिर भी वे निष्पाप हो गये; (ठीक ही है) औषधि अरुचिकर (अतएव द्वेष्य) होने पर भी स्वभाव से रोगनाशक हुआ करती है ।

वक्तव्य—निरेनस-निष्पाप तथा नीरोग । कड़वी औषधि को देखकर रोगी उसका द्वेष जरूर करता है, परन्तु औषधि उसका द्वेष न करके उसको नीरोग बनाती है ।

(३१) अनिष्टमप्यौषधमातुराय
ददाति वैद्यश्च यथा निगृह्य ।
तद्वन्मयोक्तं प्रतिकूलमेतत्
तुभ्यं हितोदर्कमनुग्रहाय ॥ (सौन्दरनन्द)

जैसे वैद्य परिणाम में हितकर परन्तु रोगी को पसंद न होनेवाली औषधि उसको निग्रह से देता है, वैसे तुम्हारे अनुग्रहार्थ परिणाम में हितकर यह प्रतिकूल वचन मैंने तुम से कहा है ।

वक्तव्य—पृष्ठ ४३४ पर अप्रियस्य च पथ्यस्य' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें ।

(३२) अनवरतपरोपकारव्यग्रीभवदमलचेतसां महताम् ।
आपातकाटवानि स्फुरन्ति वचनानि भेषजानीव ॥

(जगन्नाथपण्डित)

सदा सर्वदा परोपकार में रत रहनेवाले निर्मल हृदय के महात्माओं के वचन जिह्वा पर रखने पर कटु (परन्तु अन्त में पथ्यकर) प्रतीत

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होनेवाली औषधियों के समान (सुनने पर कटु परन्तु तदनुसार आचरण करने पर पथ्यकर) होते हैं।

वक्तव्य—आपातकाटवानि—'रसो निपाते द्रव्याणां' इस वचन के आधार पर रस में कटु परन्तु विपाक में मधुर। नीचे का श्लोक देखें।

(३३) द्रव्यं यथा स्यात्कटुकं रसेन तच्चोपयुक्तं मधुरं विपाके।
तथैव वीर्यं कटुकं श्रमेण तस्यार्थसिद्ध्यै मधुरो विपाकः॥
(सौन्दरनन्द)

जैसे औषधिद्रव्य रस की दृष्टि से कड़वा होने पर भी विपाक की दृष्टि से मधुर (हितकर) होने के कारण उपयुक्त होता है, वैसे वीर्य (पराक्रम) श्रम होने के कारण कटु (अप्रिय) होने पर भी अर्थसिद्धि की दृष्टि से विपाक में मधुर होता है।

वक्तव्य—वीर्य-वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। चरक। येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्। सुश्रुत॥ अर्थसिद्धि या कार्यसिद्धि के लिए किये जानेवाले विशिष्ट कर्म। विपाक—विपाकः कर्मनिष्ठया। चरक। जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥ अष्टांगहृदय॥

खाद्यद्रव्यों का पाचन प्रचूषण सात्म्यीकरण होनेपर मिलनेवाला फल।

(३४) अमितगुणोऽपि पदार्थो दोषेणैकेन निन्दितो भवति।
सकलरसायनमहितो गन्धेनैकेन लशुन इव॥
(जगन्नाथ पण्डित)

अनन्त गुण होते हुए भी एकाध दोष के कारण द्रव्य निन्दास्पद हो जाता है, जैसे एक दुर्गन्ध के कारण रसायनश्रेष्ठ लशुन।

वक्तव्य—दोषेणैकेन निंदितो भवति—जब दोष स्वल्प होता है तब वह गुणों में नष्ट होता है, जैसे, एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्ज-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' ॥ कुमारसंभव ॥ परन्तु 'एकोऽपि गरीयान्दोषः समग्रमपि गुणग्रामं दूषयति । बालरामायण ॥ जैसे कि इस श्लोक के द्वितीयार्ध में बताया है ।

सकलरसायनमहितः—सर्वरसायनों में अग्रणी । लशुन की उत्पत्ति भूमि पर गिरे हुए अमृत बिन्दुओं से हुई, इसलिए वह रसायनाग्रणी हो गया—साक्षादमृतसंभूतेर्ग्रामणीः स रसायनम् ॥ अष्टांगहृदय ॥ अमृत से उत्पत्ति होनेपर भी उस समय कुछ घटनाएँ ऐसी हुईं जिनके कारण उसमें दोष उत्पन्न हुआ । अमृत के बिन्दु सीधे भूमि पर नहीं गिरे । समुद्रमन्थन में अमृत निकलने पर राहु ने उसका सेवन किया । तब भगवान् विष्णु ने सुदर्शन से उसका कण्ठच्छेद किया और उससे अमृत के बिन्दु भूमि पर गिरे । अर्थात् वे राक्षसोच्छिष्ट होने के कारण उनसे उत्पन्न हुआ लशुन द्विजों के लिए निषिद्ध हो गया—राहोरच्युत-चक्रेण लूनार्धे पतिता गलात् । अमृतस्य कणा भूमौ ते रसोनत्वमागताः । द्विजा नाश्नन्ति तमतो दैत्यदेहसमुद्भवम् ॥ गदनिग्रह ॥ इसके अतिरिक्त जिस भूमि पर अमृतकण पहले-पहल गिर पड़े वह भूमि अपवित्र दूषित रहने से लशुन में दुर्गंध भी उत्पन्न हुई—स्थानदोषात्तु दुर्गन्धं भविष्यत्य-द्विजोपगम् ॥ काश्यपसंहिता ॥ तात्पर्य, रसायनाग्रणी होते हुए भी लशुन की उपयुक्तता इस दोष के कारण बहुत कुछ मर्यादित हुई । अनेक अच्छी-अच्छी औषधियाँ लशुन के समान किसी न किसी दोष से युक्त होती हैं । ये दोष दो भागों में बाँट सकते हैं । (१) आपात-दोष—औषधि सेवन के समय ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ये दोष रोगी को मालूम होते हैं । इनमें रुचिदोष सबसे महत्व का है और उसके पश्चात् गन्धदोष आता है । इन दोषों के कारण रोगी को औषधि सेवन में अनिच्छा होती है और कभी-कभी इस अनिच्छा का परिणाम औषधि की ओर विद्वेष पैदा होने में होता है । (२) विपाकदोष—ये दोष औषधि सेवन करने पर उनका पाचन होने के पश्चात् न्यूनाधिक काल पर प्रकट होते हैं । अतिग्राहिता (Hypersensitiveness) अत्यूर्जता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(Allergy), प्रकृतिप्रत्यात्मता (Idiosyncracy) विषालुता (Toxicity) इत्यादि इनके हेतु होते हैं। इनसे उत्पन्न होनेवाले परिणाम सौम्य से लेकर आत्ययिक तथा घातक स्वरूप के हो सकते हैं और अल्पकाल से दीर्घकाल तक और कभी-कभी आजीवन रह सकते हैं। कुछ औषधियों में प्रथम प्रकार के, कुछ औषधियों में दूसरे प्रकार के और कुछ औषधियों में दोनों प्रकार के दोष होते हैं। आयुर्वेद की औषधियों में प्रथम प्रकार के दोष बहुत हैं। इसका मुख्य कारण वे औषधियाँ मुख द्वारा सेवन की जाती हैं। परन्तु दूसरे प्रकार के दोष नगण्य होते हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य आधुनिक वैद्यक की औषधियों की स्थिति है। उनमें प्रथम दोष नगण्य हैं। इसका मुख्य कारण ऐसी औषधियाँ सूचिकाभरण से ही प्रायः दी जाती हैं। परन्तु दूसरे प्रकार का दोष उनमें पूर्णतया भरा है, यहाँ तक की खोज करने पर भी उनमें इस प्रकार का निर्दोषत्व पाना लगभग असंभव है।

(३५) भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः।

लशुन का भक्षण करने पर भी व्याधि शान्त नहीं हुई।

वक्तव्य—लशुन उत्कृष्ट गुणकारी औषधि, धार्मिकदृष्ट्या अभक्ष्य तथा मानसिकदृष्ट्या अप्रिय द्रव्य का प्रतिनिधि समझ सकते हैं। अतः यह वचन निम्न तीन अवस्थाओं में प्रयुक्त कर सकते हैं—(१) जब उत्तमोत्तम औषधि सेवन करने पर भी रोग ठीक नहीं होता। (२) जब अभक्ष्यभक्षण करने पर भी रोग ठीक नहीं होता। (३) जब रसगन्धादि के कारण अत्यन्त अप्रिय द्रव्य या औषधि सेवन करने पर भी रोग ठीक नहीं होता। इस वचन से व्याधिशान्ति के संबंध में निराशा और अभक्ष्यभक्षण के संबंध में पश्चात्ताप ये दोनों भावनाएँ भी अप्रत्यक्षतया सूचित होती हैं। यद्यपि यह वचन रोगशान्ति के संबंध में है तथापि सामान्यतया भी इस प्रकार की अन्य अवस्थाओं में इसका प्रयोग कर सकते हैं। इसका हिंदीपर्याय—तेली खसम (पति या स्वामी) किया और फिर भी सूखा खाया।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३६) इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थं गर्भाकृतिः
श्रोतॄणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात् कृता।
यन्मोक्षात् कृतमन्यदत्र हि मया तत् काव्यधर्मात् कृतं
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति॥

(सौन्दरानन्द)

(मोक्ष से) अन्यत्र मन होनेवाले पाठकों के ग्रहणार्थ मोक्ष के अन्तर्हेतु से लिखी गयी यह काव्यामृतरसमयी कृति मनःशान्ति के लिए ही है, न कि मनोरंजन के लिए। जैसे कड़वी औषधि ग्रहण करने के लिए प्रिय कैसी हो इस विचार से मधुयुक्त की जाती है, वैसे अन्यत्र मोक्षार्थ जो अप्रिय कृति की हुई है वही मैंने (पाठकों को प्रिय करने के लिए) काव्यालंकार से युक्त की है।

वक्तव्य—सदोष औषधि जबतक निर्दोष नहीं की जाती है तबतक वह हृद्य (मनःप्रिय तथा बलदायक) नहीं हो सकती है और अनेक बार व्यर्थ या हानिकारक हो सकती है। अतः औषधि निर्दोष होनी चाहिए। औषधि का रुचिदोष कैसे दूर किया जाय इसका उदाहरण इसमें बताया है। इसके साथ-साथ यह भी बताया है कि कठिन विषय के प्रतिपादन में उपमादृष्टांतादि की जो काव्यमय भाषा प्रयुक्त होती है वह जैसे विषय का काठिन्य दूर करके उसको हृदयंगम बनाने के लिए होती है, न कि पाठकों के मनोरंजन के लिए, वैसे सदोष औषधि के साथ जो मधुसम मधुरद्रव्य प्रयुक्त होते हैं वे औषधि को निर्दोष बनाने के लिए होते हैं न कि मधुर द्रव्य खिलाने के लिए। तात्पर्य, औषधियों के साथ दिये जाने वाले अनुपान द्रव्य औषधि की औषधि होती है। यह कथन द्वितीय प्रकार के (विपाक) दोषों को दूर करने के लिए प्रयुक्त द्रव्यों के सम्बन्ध में अधिक यथार्थ होता है तथा अधिक महत्व रखता है। इसका कारण यह है कि प्रथम दोष

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रोगी चाहे तो अपने मनोबल से दूर कर सकता है, परन्तु दूसरा दोष रोगी की प्रकृति का होने से वह उसको दूर नहीं कर सकता, उसे दूसरी विरोधी औषधि से ही दूर करना पड़ता है।

(३७) जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तु श्रुते समनुभूयते।
स्वयमेव यथा पीते नीरोगत्वं वरौषधे ॥ (योगवासिष्ठ)

उत्तम औषधि पीने पर जैसे आपसे-आप नीरोगत्व प्राप्त होता है वैसे इस (योगवासिष्ठ) के सुनने पर जीवन्मुक्तत्व आपसे-आप अनुभूत होता है।

(३८) परिणामसुखे गरीयसि
व्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे
बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ॥ (किरातार्जुनीय)

वीर्य—परिणाम में सुखकर, गंभीर, दुर्बल मनुष्य के मन में पीड़ा उत्पन्न करने वाले द्रौपदी के इस छोटे से भाषण में अत्यन्त वीर्यवान् औषधि की अल्पमात्रा के समान बहुत गुण दिखाई देते हैं।

(३९) वीर्यं परं कार्यकृतौ हि मूलं
वीर्याद्दृते काचन नास्ति सिद्धिः।
उदेति वीर्यादिह सर्व संप-
न्निर्वीर्यता चेत् सकलश्च पाप्मा ॥ (सौन्दरानन्द)

कार्यसिद्धि का श्रेष्ठ आधार वीर्य है, वीर्य के बिना कोई भी कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती, वीर्य से सर्वप्रकार की संपत्ति प्राप्त हो जाती है; अतः यदि वीर्य का अभाव हो तो सब आपत्तियाँ हैं।

वक्तव्य—वीर्य-इसके दो अर्थ हैं—(१) वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। चरक ॥ येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम् ॥ सुश्रुत ॥ येन रसेन वा विपा-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

केन वा प्रभावेण वा गुर्वादिपरत्वादिभिर्वा गुणैर्या क्रिया क्रियते तस्यां क्रियायां तद्रसादिवीर्यम् ॥ चक्रपाणिदत्त ॥ (२) रसवीर्यप्रभावातिरिक्ते प्रभूतकार्यकारिणिगुणे वीर्यमितिसंज्ञा ॥ आधुनिक द्रव्यगुण विज्ञान की दृष्टिसे एक को कार्यकारीतत्त्व (Active principle) और दूसरे को शक्ति (Potency) कह सकते हैं। पृष्ठ ४५ पर 'द्रव्यं यथा स्यात्' का वक्तव्य देखें।

(४०) यथाल्पमप्यौषधमुन्मदं गदं
यथामृतं स्तोकमपि क्षणाद् भयम्।
ध्रुवं तथैवाणुरपि स्तवः प्रभो
क्षणादघं दीर्घमपि व्यपोहति ॥

जैसे (वीर्यवान्) अत्यल्प औषधि महाव्याधि को अल्पकाल में नष्ट करती है, जैसे अल्प अमृत (मृत्यु) भय को नष्ट करता है वैसे हे प्रभो ! तुम्हारा अल्पस्तवन भी क्षणभर में निश्चित महापाप को नष्ट करता है।

(४१) यथाविषं यथाशस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतोपमम् ॥ (काश्यप संहिता)

औषधि विषामृतत्व—जैसे विष, शस्त्र, अग्नि और इन्द्रवज्र ये घातक होते हैं, वैसे अज्ञात औषधि घातक होती है और ज्ञात औषधि अमृत-सम (हितकर) होती है ॥

(४२) औषधं चापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं संपद्यते विषम्।
विषं च विधिना युक्तं भैषज्यायोपकल्पयेत् ॥
(काश्यप संहिता)

औषधि भी यदि ठीक प्रयुक्त न की जाय तो विष बनती है, (इसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विपरीत) विष यदि ठीक विधि से प्रयुक्त किया जाय तो औषधि के लिए उपयुक्त हुआ करता है।

(४३) स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥
(रघुवंश)

यह माला यदि प्राणघातक है तो हृदय पर रखने से मेरे प्राणों का नाश क्यों नहीं कर रही है ? (इसका मतलब यह है कि) ईश्वर-इच्छा से कभी-कभी विष (समघातक द्रव्य) अमृत (समप्राण-धारक) और कभी-कभी अमृत (समप्राणधारक द्रव्य) विष (सम प्राणघातक) हो जाता है।

वक्तव्य—विषमप्यमृतं, अमृतं वा विषम्—औषधियों की स्वतन्त्र सृष्टि नहीं होती है। स्थावरजंगमात्मक सामान्य सृष्टि के ही द्रव्य नैसर्गिक स्थिति में या भौतिक अथवा रसायनिक संस्कार करके चिकित्सार्थ प्रयुक्त होते हैं और इनका विषामृतत्व तीन बातों पर निर्भर होता है-(१) ज्ञान—औषधार्थ प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों के नाम-रूपादि का तथा उनके गुणधर्मों का यथार्थ ज्ञान। इसके होने से वे अमृतसम स्वास्थ्यकर और न होनेसे वे विषसम अस्वास्थ्यकर होते हैं। 'यथाविषं यथाशस्त्रं' इस श्लोक में इसका उल्लेख किया है। (२) योजना-केवल नामरूप गुणादि के ज्ञान से फल प्राप्त नहीं होता रोग और रोगी का ठीक परीक्षण करके उनकी योजना करनी पड़ती है। ठीक योजना करने से अमृतसम और अयुक्त योजना करने से विषसम फल मिलता है। इसका उल्लेख 'औषधं चापि दुर्युक्तं' इस श्लोक में किया गया है। (३) ईश्वरेच्छा—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर विष को अमृत और अमृत को विष सब कुछ कर सकता है इस विषय में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि ईश्वर तटस्थ या उदा-सीन रहकर किसी का कुछ भी नहीं करता। जिसको ईश्वरीशक्ति कहते

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हैं वह वास्तव में मनुष्यजीवनगत घटनाओं की दृष्टि से पूर्वजन्मकर्मों की या पूर्वकर्मों की शक्ति होती हैं—ईश्वरस्तु पर्जन्यवद् द्रष्टव्यः। यथा हि पर्जन्यो व्रीहियवादिसृष्टौ साधारणं कारणं भवति, व्रीहियवादिवैषम्ये तु तत्तद्बीजगतान्येवासाधारणानि सामर्थ्यानि कारणानि भवन्ति, एवमीश्वरो देवमनुष्यादिसृष्टौ साधारणं कारणं भवति, देवमनुष्यादिवैषम्ये तु तत्तज्जीवगतान्येवासाधारणानि कर्माणि कारणानि भवन्त्येवमीश्वरः सापेक्षत्वान्न वैषम्यनैर्घृण्याभ्यां दुष्यति ॥ 'वैषम्यनैर्घृण्ये' ब्रह्मसूत्र का शांकर भाष्य ॥ इसलिए यहाँ पर ईश्वरेच्छा का अर्थ दैवकार्य ऐसा है और इसी का उल्लेख 'स्रगियं' इस श्लोक में किया गया है। इन्दुमति में माला घातक होने का कारण उसका दैव ही रहा और उसका उल्लेख 'चरतः किल दुश्चरं तपः' इसमें तथा इसके पश्चात् और दो श्लोकों में किया गया है।

औषधियों से असंख्य रोगियों को स्वास्थ्यलाभ होता है तथा अनेकों की अकालमृत्यु टलती है इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इसके बल पर कुछ रोगियों में उनके द्वारा होनेवाली स्वास्थ्यनाशन और अकालमृत्यु की घटनाओं की ओर उपेक्षा की दृष्टि से न देखना चाहिए। औषधियों के दोष चिकित्सक के अज्ञान, अनवधान, अयुक्तयोजना इत्यादि के कारण रोगी में विविध दुर्घटनाओं के रूप में प्रकट होते हैं। अतः चिकित्साकाल में रोगी में चक्कर आना, शक्तिक्षय, हृदयदौर्बल्य, अकालमृत्यु इत्यादि में से कोई दुर्घटना उत्पन्न हो जाय तो उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से न देखें, किन्तु दुर्घटना होनेपर उसकी पूरी खोज करें और यदि चिकित्सक का कोई दोष न दिखाई दें तो दैव को दोषी समझें! तात्पर्य, 'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक् चेष्टाः' यह चतुरंग पूर्ण निर्दोष होने पर ही चिकित्सा की निष्फलता या दुर्घटना का कर्ता दैव मानें।

(४४) उचितो यस्य यो देशस्तज्जं तस्यौषधं हितम्।
देशेऽन्यत्रापि वसतस्तत्तुल्यगुणजन्म च ॥ (अष्टाङ्गसंग्रहः)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

देशज औषधि की श्रेयस्करता—जिसका जो देश अभ्यस्त है उसके लिए उस देश में तथा अन्य किसी दूसरे देश में निवास करने पर भी अपने अभ्यस्त देश में उत्पन्न हुई औषधि अथवा (यदि वह न मिल सके तो) अभ्यस्त देश के समान गुणधर्मवाले देश में हुई औषधि हितकर होती है।

वक्तव्य—'यस्मिन् देशे हि यो जातः' तथा 'यस्य देशस्य यो जन्तुः' ऐसे दो पाठभेद प्रथम श्लोकपाद के प्रचलित हैं। सबका तात्पर्य एक ही है और वह यह कि जिसमें मनुष्य ने जन्म लिया, संवर्धित हुआ एवं जिसके लिए मनुष्य अभ्यस्त हुआ वह देश। तज्जम्-जन्म-भूमि, सात्म्यभूमि या अभ्यस्तभूमि में उत्पन्न। तत्तुल्यगुणजन्म-यदि अभ्यस्त या जन्मभूमि की औषधि न मिल सके तो अर्थात् द्वितीयोत्तम (Second best)—यदि वा तज्जमौषधं न सम्भवति तदा तेनोचितेन तद्देशेन यत्समानगुणदेशान्तरं तज्जमौषधं हितम् ॥ शशिलेखा ॥ औषधम्-औषधि तथा आहार या अन्न (पृष्ठ २७२)। तज्ज या देशज औषधियों की श्रेयस्करता का संबंध आयुर्वेदीय स्वर्णमाक्षिकादि खनिज तथा सुवर्णपारदादि धातुज औषधियों से नहीं है। वैसे ही आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक की शुद्ध एव संश्लिष्ट (Synthetic) रसायनिक औषधियों से भी नहीं है। इसका मुख्य लक्ष्य वनस्पतिज और गौण लक्ष्य जीवज औषधियाँ हैं। आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक की मसूरियाँ (Vaccines) लसें (Serums) और लसिकाएँ (Lymphs) इनके लिए भी यह श्रेयस्करता लागू है। जैसे मसूरिका (Smallpox) प्रतिश्याय, फ्ल्यू इत्यादि रोगों के लिये प्रयुक्त लसिकाएँ तथा मसूरियाँ परदेशज की अपेक्षा देशज अधिक श्रेयस्कर हुआ करती हैं यह वस्तु-स्थिति है।

जैसे रोगी के लिए देशज औषधियाँ श्रेयस्कर वैसे स्वस्थों के लिए देशज अन्न श्रेयस्कर होता है। औषधियों से भी अन्न की श्रेयस्करता का प्रश्न अधिक व्यापक है। आजकल अन्न की कमी के कारण, पता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नहीं सही या गलत, भारतियों को स्वास्थ्यनाशक मिलावटी अन्न को सेवन करना पड़ रहा है, उसके साथ परदेशी अन्न भी। भारतियों के स्वास्थ्य पर इसका क्या परिणाम होनेवाला है? भविष्य ही इसका निर्णय कर सकता है।

(४५) वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः॥ (अष्टाङ्गहृदय)

वात, पित्त और कफ इनकी शान्ति के लिए क्रम से तैल, घृत और मधु पथ्यकर होते हैं इसको स्वयं ब्रह्माजी कहें या (सनत्कुमारादि) उनके पुत्र कहें (कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि) इस अमन्त्रक वचन में वक्ता के भेद से (औषधि की) शक्ति में कोई भेद नहीं हो पाता है।

वक्तव्य—निर्मन्त्रे–औषधियाँ दो प्रकार की होती हैं, मन्त्रौषधियाँ और द्रव्यौषधियाँ। इनमें मन्त्रौषधियों की सिद्धि साधारणतया, मान्त्रिक की तपस्या पर निर्भर हुआ करती है। 'अमन्त्रमक्षरं नास्ति' (पृष्ठ ४५०) तथा 'औषधान्यगदो' श्लोक तथा उनके वक्तव्य (पृष्ठ ४५२) देखें। इसके विपरीत द्रव्यौषधियों की सिद्धि स्वयम्भू होती है जो ब्रह्माजी के कहने से न बढ़ती है न घटती है। अतः यदि वे युक्ति-युक्त हों तो उनको कौन दे रहा है या कह रहा है इसका विचार करने की आवश्यकता नहीं। 'युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि। अन्य-त्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना'। योगवासिष्ठ॥

(४६) त्रिविधमौषधमिति, युक्तिव्यपाश्रयं, दैवव्यपाश्रयं
सत्त्वावजयश्च॥ (चरक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रिविधऔषध—दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्वावजय करके औषधियाँ तीन प्रकार की होती हैं।

वक्तव्य—युक्तिव्यपाश्रयम्–प्रशस्तो योगो युक्तिः, तं व्यपाश्रित्य कृतम्। रोग और रोगी का ठीक परीक्षण करके उसके अनुसार प्रयुक्त (Rational), यह त्रिविध औषध सब रोगों के लिए उपयुक्त होते हैं, परन्तु युक्तिव्यपाश्रय मुख्यतया शारीरिक रोगों के लिए और इतर दो मुख्यतया मानसिक विकारों के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। अब नीचे युक्तिव्यपाश्रय औषधि के तीन भेद दिये जाते हैं।

शरीरदोषप्रकोपे खलु शरीरमेवाश्रित्य प्रायशस्त्रिविधमौषधमिच्छन्ति–अन्तःपरिमार्जनं, बहिःपरिमार्जनं, शस्त्रप्रणिधानं चेति ॥ चरक ॥ शारीरिक दोषों का प्रकोप होने पर (चिकित्सक) शरीरपर त्रिविध औषधि प्रयोग करना चाहते हैं—अन्तःपरिमार्जन, बहिःपरिमार्जन और शस्त्रप्रयोग ॥

(४७) तत्रान्तःपरिमार्जनम्–यदन्तःशरीरमनुप्रविश्यौषधमाहारजातव्याधीन् प्रमार्ष्टि। यत्पुनर्बहिःस्पर्शनमाश्रित्याभ्यङ्गस्वेदप्रदेहपरिषेकोन्मर्दनाद्यैरामयान् प्रमार्ष्टि तद्बहिःपरिमार्जनम् ॥ (चरक)

अन्तःबहिःपरिमार्जन—जो औषध शरीर के भीतर प्रवेश करके आहारजन्य व्याधियों का परिमार्जन करता है वह अन्तःपरिमार्जन। फिर जो बाह्य त्वचा का आश्रय करके अभ्यंग, स्वेदन, प्रदेह, परिषेक, उन्मर्दन इत्यादि द्वारा रोगों का नाश करता है वह बहिःपरिमार्जन है।

वक्तव्य—अन्तःपरिमार्जन (Internal medication) मुख, गुद बस्ति, नासा इत्यादि के द्वारा शरीर के भीतर प्रविष्ट की हुई औषधियों की चिकित्सा। सूचिकाभरण =प्राचीन तथा अर्वाचीन के द्वारा की जानेवाली चिकित्सा (Injection treatment) इसी में समाविष्ट

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होगी। बहिःपरिमार्जनम्—(External medication) बहिःस्पर्शनम्—बाह्य स्पर्शनेन्द्रिय या त्वचा। मर्दनादि के विवरण के लिए पृष्ठ ४८४ पर 'इक्षुदण्डास्तिलाः' श्लोकका वक्तव्य देखें।

शस्त्रप्रणिधान के लिए ४६ वाँ अध्याय देखें।

(४८) तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ॥ (चरक)

जो आरोग्य प्राप्ति के लिए उपयुक्त होता है वही (वास्तव में) युक्तियुक्त भेषज है।

वक्तव्य—युक्त-व्यावहारिक दृष्ट्या वही औषधि या चिकित्सा वैज्ञानिक समझनी चाहिए जो रोगियों को रोगमुक्त कर सकती है या करती है। फिर विज्ञानवादी विज्ञान की दृष्टि से उसको वैज्ञानिक समझें या न समझें। आधुनिक शिक्षित लोक पाश्चात्य वैद्यक को वैज्ञानिक मानते हैं और आयुर्वेदादि अन्य वैद्यकों को अवैज्ञानिक कहते हैं। परन्तु तथा-कथित वैज्ञानिक पाश्चात्य वैद्यक से असंख्य रोगियों को आराम नहीं मिलता और उनमें से अनेक रोगियों को अवैज्ञानिक आयुर्वेदादि वैद्यक रोगनिर्मुक्त करते हैं यह वस्तुस्थिति है। इसलिए, पाश्चात्य वैद्यक से परित्यक्त रोगी, फिर वे संख्या में अल्प भी क्यों न हो, जब तक अन्य चिकित्सा पद्धतियों से रोगनिर्मुक्त होते हैं तब तक उनको अवैज्ञानिक कहना तथा जब तक पाश्चात्य वैद्यक संपूर्ण रोगियों को निरपवाद रोग-निर्मुक्त नहीं कर सकता है तब तक उसको वैज्ञानिक कहना कहनेवाले के विज्ञान संबंधी गाढ अज्ञान का द्योतक होता है। इसका कारण यह है कि कोई भी वैद्यक, फिर पाश्चात्य वैद्यक भी क्यों न हो, भौतिक विज्ञान के समान विज्ञान हो ही नहीं सकता यह विचार सत्य है—Medicine, can never be an abstract science and it should not attempt to become so. Bulletin of the National Association for prevention of Tuberculosis, Oct. 1965. इस वचन का उत्तरार्ध 'सचैव भिषजां श्रेष्ठो' पृष्ठ ४२७ पर देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४९) औषधं जान्हवीतोयम् ।

गंगाजलऔषधि—गंगाजल औषधि है ।

वक्तव्य—जान्हवीतोयम्—गंगाजल । प्राचीन वैद्यकशास्त्रानुसार तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्ट्या आन्तरिक्ष जल सब से शुद्ध होता है—आन्तरिक्षमुदकानाम ॥ चरक ॥ उसमें भी दो मास पानी बरसने के पश्चात् आकाश धूमकण, रजःकण और सूक्ष्म जीव इनसे विरहित होनेपर आश्विनमास में आन्तरिक्ष जल शुद्धतम होता है । ऐसे शुद्धतम जल को सुश्रुत में 'गंगा जल' कहा है—तत्रान्तरिक्षं, तत्पुनर्द्विविधम्—गाङ्गं सामुद्रंचेति । तत्रगाङ्गमाश्वयुजेमासि प्रायशोवर्षति ॥ तात्पर्य, काव्य-मय भाषा में शुद्धता की दृष्टि से गंगाजल 'उपमानस्यापि सखे प्रत्युप-मान' (विक्रमोर्वशीय) है । पवित्रता की दृष्टि से भी गंगाजल सर्वश्रेष्ठ माना गया है—सर्वशास्त्रमयी गीता, सर्वदेवमयो हरिः । सर्वतीर्थमयी-गंगा, सर्ववेदमयोमनुः ॥ महाभारत ॥ इसलिए रोगी को औषधि के सम्बन्ध में शुद्ध और पवित्र भाव रखकर उसका सेवन करना चाहिए। इस श्लोकपाद के दूसरे अर्थ के लिए 'शरीरेजर्जरीभूते' श्लोक का वक्तव्य देखें। इसका आगे का श्लोकपाद 'वैद्यो नारायणः स्वयं' ऐसा है ।

(५०) औषधे चिन्तयेद्विष्णुम् ॥

औषधि (सेवन करते समय) में विष्णु का चिन्तन करें ।

(५१) अहं क्रतुरहं यज्ञःस्वधाऽहमहमौषधम् ।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ (गीता)

इति श्री भास्करशर्मणागोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये भेषजविज्ञानीयो नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्रोतयज्ञ मैं हूँ; स्मार्त यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूं; मन्त्र मैं हूं; घृत मैं हूं; अग्नि मैं हूं; और आहुति भी मैं हूँ।

वक्तव्य—क्रतुः, यज्ञः—दोनों यज्ञ ही है, परन्तु शंकराचार्यजी ने क्रतु को श्रौत और यज्ञ को स्मार्त कहा है—अहं क्रतुःश्रौतकर्मभेदोऽहमेवाहं यज्ञःस्मार्तः ॥ शांकरभाष्य ॥ स्वधा—पितरों को श्राद्ध में दिया जानेवाला अन्न अथवा देवताओं को दिया हुआ हविर्दान—स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषट् वौषट् वषट् स्वधा ॥ अमरकोश ॥ औषधम्—रसयुक्त वनस्पतियाँ इसका मूलार्थ है। 'ओसोनामरसः' श्लोक (पृष्ठ ४४४) देखें। इसी के आधार पर इसके तीन अर्थ हो सकते हैं (१) यह श्लोक पूर्णतया यज्ञ से सम्बन्धित होने से यज्ञ में अग्नि उत्पन्न करनेवाली अग्निमन्थादि वनस्पति। 'वातादिना यद्यपि' श्लोक का वक्तव्य देखें। (२) अग्नि में आहुति देने का या मनुष्यों द्वारा सेवन करने का अन्न। (३) रसौषधियों से जैसे जीवनोपयोगी अन्न बनता है वैसे चिकित्सोपयोगी द्रव्य भी बनते हैं, उनकी कोई अलग सृष्टि नहीं होती। 'नानौषधिभूतं' वचन का वक्तव्य (पृष्ठ ४४६) देखें। अतः रोगहारक चिकित्सोपयोगी द्रव्य या औषधि। शंकराचार्यजी ने भी यह अर्थ किया है—अहमौषधं सर्वप्राणिभिर्यदद्यते तदौषधवाच्यम्; अथवा स्वधेति सर्वप्राणी साधारणमन्नम्; औषधमिति व्याध्युपशमनार्थं, भेषजम् ॥ शांकरभाष्य ॥ महाभारतान्तर्गत भीष्मयुधिष्ठिर संवाद में भगवान् विष्णु के जो सहस्रनाम दिये हैं उनमें औषध एक नाम है—औषधं जगतःसेतुःसत्यधर्मपरायणः ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां
वैद्यकरहस्यदीपिकायां भेषजविज्ञानीयो नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अथोतो युक्तिव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणःप्राच्याः ।

(१) युक्तिव्यपाश्रयम्-पुनराहारौषधद्रव्याणां योजना ॥ (चरक)

युक्तिव्यपाश्रयभेषज व्याख्या—आहार, औषधि तथा अन्य द्रव्यों की (व्याधिहरणार्थ) जो योजना होती है वह युक्ति व्यपाश्रय भेषज है ।

वक्तव्य—युक्ति-युक्तिश्च योजना या तु युज्यते। चरक ॥ दोषाद्यपक्षेया भेषजस्यसमीचीन कल्पना । चक्रपाणि ॥

(२) आ वात वाहिभेषजं विवातवाहि यद्रपः ।
त्वंहि विश्वभेषज देवानांदूत ईयसे ॥ (अथर्ववेद)

वायु—हे वायुः तू रोगनाशक भेषज को लेकर आओ और शरीर में जो दोष होंगे उनको लेकर निकल जाओ, तू विश्वभेषज हो और देवताओं का दूत होकर चलते हो ।

(३) आप इद्वा उभेषजीरापोअमी वचातनीः ।
आपो विश्वस्यभेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥

(अथर्ववेद)

जल—जल एक विश्वसनीय औषधि है, जल रोगनाशक है; जल विश्वभेषज है, वह जल तुम्हें क्षेत्रिय रोग से मुक्त करें ।

वक्तव्य—क्षेत्रिय-शारीरिक (Organic) रोग, असाध्य किंवा आनुवशिक । जल के गुण के लिए पृष्ठ ८४ पर श्लोक १६ और २१ देखें ।

(४) न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते ।
शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नरःकर्तुं निरामयः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) भेषजोनोपपन्नोऽपि निराहारो न शक्यते ।
तस्माद्भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते ॥

(काश्यपसंहिता)

अन्न—आहार के समान दूसरी कोई औषधि उपलब्ध नहीं है। केवल आहार से मनुष्य रोगमुक्त किया जा सकता है। परन्तु निराहार मनुष्य केवल औषधियों से रोगमुक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए वैद्यों द्वारा आहार महौषधि कहलाता है।

(६) अन्नाद्वै प्रजायन्ते या काश्चपृथिवीं श्रिताः ।
अन्नं भूतानां ज्येष्ठं, तस्मात् सर्वौषधमुच्यते ॥

(तैत्तिरीयोपनिषद्)

पृथिवी का आश्रय करके जो भी प्रजा होती है वह अन्न से उत्पन्न होती है। अन्न सब भूतों से ज्येष्ठ है, इसलिए वह सर्वौषध कहलाता है।

(७) यदा न पश्यन्ति तमोनिमर्दिनं
रविं जनास्तत् कथयन्ति दुर्दिनम् ।
धिनोति चाम्भोजततिं सरोगतां
धुनोत्यसौ देहभृतां सरोगताम् ॥ (विश्वगुणादर्श ॥

सूर्य—जब मनुष्य अन्धकारनाशक सूर्य को मेघाच्छन्न आकाश होने से नहीं देखते तब वे उसको दुर्दिन कहते हैं। वह (अपनी किरणों से) सरोवरगत कमलों को खिलाकर प्रसन्न करता है और शरीर धारियों की रुग्णता को नष्ट कर (के उन्हें भी प्रसन्न कर) ता है।

वक्तव्य—दुर्दिन—वातवर्षाकुल दिवस-मेघाच्छन्नेऽह्निदुर्दिनम् ॥ अमर कोश ॥ सरोगता—(१) सरो-गता (२) स-रोगता ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(८) औषधान्वेषणक्लेशैर्भृशमुत्क्लिश्यते कुतः ।
रुगब्धितरणे हेतुं तरणिं शरणीकुरू ॥ (सुश्लोकलाघव)

औषधियों के पीछे पड़ने के क्लेशों से क्यों दुःखी कष्टी होते हो ! रोगरूप महासागर को पार करने के लिए तरणि के समान तरणि की शरण में जाओ ।

वक्तव्य—तरणि नाव और सूर्य-द्युमणौ तरणिः पुँसि कुमारी नौकयोः स्त्रियाम्-रत्नकोश । वैदिक कालसे सूर्यदेवता स्थावर जंगम सृष्टि का आत्मा, वृष्टिकर्ता, अन्नदाता, स्वास्थ्यदाता, रोगहर्ता, जीवजन्तु नाशक माना गया है । स्वास्थ्यदान, रोगहरण और जीवाणुनाशन का काम सूर्य अपनी रश्मियों से करता है इसका भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है— 'प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्पितं च । वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च' ॥ सद्धर्म चिन्तामणि ॥ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋग्वेद ॥ सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति । मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः । इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके । संतेशीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधूः । उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥ उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः ॥ उत्पुरस्तात्सूर्यएति विश्वदृष्टो अदृहा । दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥ अथर्ववेद ॥ आदित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते । यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते । स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येपसूर्यः ॥ प्रश्नोपनिषद् ॥ सर्वं शुद्ध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुद्ध्यति । सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ॥ आपस्तम्बस्मृति ॥ 'आदित्यस्य नमस्कारं (पृष्ठ ४३)', 'अकालमृत्युहरणं', (पृष्ठ ४३) 'यथासूर्यांशुसंस्पृष्टं' (पृष्ठ ६५) तथा 'पंथानश्च-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विशुद्धयन्ति' (पृष्ठ ६५) इन वचनों को तथा उनके वक्तव्यों को देखें। सूर्यप्रकाश के प्रभाव से त्वचा में जीवनीय डी (Vitamin D) उत्पन्न होता है, इसलिए अस्थिमृदुता (Osteomalacia) फक्क (Rickets) जैसे रोग उत्पन्न नहीं होते और अगर उत्पन्न हुए हो तो सूर्यकिरणों का यथाविधि उपयोग करने से ठीक हो जाते हैं। जुकाम, खाँसी जैसे श्वसन संस्थान के रोग विशेषतया राजयक्ष्मा (Taberculosis) जैसे रोग में सूर्यप्रकाश बहुत ही उपकारक होता है। इसलिए आजकल इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा करने के लिए सूर्यरश्मिचिकित्सा (Helio therapy) करके एक स्वतन्त्र पद्धति विकसित हुई है और उसके अनुरूप सूर्यगृह (Solarium) भी बनाये गये हैं।

शुद्ध विपुल वायु, शुद्ध शीतल या उष्ण जल, पथ्यकर तथा सात्म्य अन्न और सूर्यप्रकाश ये नैसर्गिक विश्वौषध या विश्वभेषज है इसमें जरा भी संदेह नहीं। परन्तु स्वास्थ्यरक्षण और व्याधिहरण करने के लिए इनका उपयोग करने की जानकारी रखने वाले चिकित्सक तथा इन औषधियों द्वारा अपनी चिकित्सा करा लेने के लिए इच्छुक दोनों भी दुर्लभ होते हैं। परिणाम यह होता है कि जरा जरा सी बात के लिए लोगों को डाक्टर वैद्यों के पास जाकर महंगी औषधियों से चिकित्सा करनी पड़ती है।

(९) क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णं धनक्षये वर्धति जाठराग्निः।
आपत्सु मित्राणि परित्यजन्ति छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥

(पंचतंत्र)

दारिद्र्य—जहाँ पर एक बार चोट लग गयी है वहाँ पर बारबार चोट लगती है; दारिद्र्य में क्षुधा बढ़ती है; आपत्ति के समय (नाम-धारी) मित्र छोड़ जाते हैं। तात्पर्य, दुर्बलता में आपत्तियाँ बढ़ती हैं।

वक्तव्य—धनक्षये-कहाँ धनक्षय और कहाँ जठराग्निवर्धन, परन्तु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दोनों में घनिष्ठ संबंध होता है। धनी लोक चलेंगे तो मोटर में, बैठेंगे तो आराम खुर्सी पर और व्यवसाय करेंगे तो दीर्घकाल बैठने का। इससे शारीरिक परिश्रम न होने से उनकी जठराग्नि मंद रहती है। जब धननाश होकर दारिद्र्य आता है तब सब काम स्वयं करने की आवश्यकता रहने के कारण परिश्रम होने लगता है जिससे जठराग्नि तेज होती है। पृष्ठ ४६ का वक्तव्य देखें। मित्राणि—असन् मित्राणि। सन्मित्र आपत्काल में छोड़ते नहीं—आपद्गतं न च जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः। तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत्॥ नीतिशतक॥ छिद्र—इसका सामान्य अर्थ है छेद, सूराख, बिल या गडहा और विशेष अर्थ है दुर्बल स्थान या दुर्बलता, धृष्यस्थान या धृष्यता, अभिगम्य स्थान या अभिगम्यता (Weak point, vulnarable state); इस अर्थ में छिद्र के रन्ध्र, विवर ये सामान्य पर्याय भी प्रयुक्त होते हैं। 'छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति'—इसका पर्यायी सुभाषित है—रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः॥ शाकुन्तल॥ इसके राजकीय और वैद्यकीय दो अर्थ कर सकते हैं। (१) जब राजा मन्त्री इत्यादि राज्यांग (पृष्ठ ३७) दुर्बल रहते हैं तब राज्य की शासन क्षमता नष्ट होने से अन्तर्बाह्य अर्थात् देशज परदेशज अनेक आपत्तियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। इसका प्रत्यय प्रतिदिन नयी नयी आपत्तियों से मिल रहा है, इसलिए अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है। (२) जब यकृत् प्लीहा वृक्क इत्यादि शरीर के विविध अंग दुर्बल रहते हैं तब शरीर की व्याधिक्षमता नष्ट हो जाने से शरीर में अन्तर्बाह्य अर्थात् दोषज तथा आगन्तुक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। विशेष विवरण के लिए आत्मचिकित्सा का ४२ वाँ अध्याय देखें।

'क्षतेप्रहाराः, 'छिद्रेष्वनर्थाः', तथा 'रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः' इन संस्कृत कहावतों के लिए Miseries never come alone, misfortunes never come single समानार्थी करके ये अंग्रेजी पर्याय दिये जाते

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हैं। परन्तु ये ठीक समानार्थी पर्याय नहीं हैं। इसका कारण यह है कि संस्कृत कहावतों के अनुसार आपत्तियाँ स्वयं अपनी ओर से नहीं, परन्तु जिस पर आती हैं उस पर क्षत, छिद्र जैसे कुछ अभिगम्य स्थान देखकर आया करती हैं और अंग्रेजी कहावतों के अनुसार उनका अभिगमन होने के लिए किसी विशिष्ट स्थिति की आवश्यकता नहीं होती, वे जब आती हैं तब स्वयं, अपनी ओर से अपने स्वभाव से आया करती हैं—When sorrows come, they come not single spies, but in battalion. Hamlet, संस्कृत साहित्य सुभाषित रत्नों की महौषधि है। उसमें इन अँग्रजी कहावतों के 'दुःखं दुःखानुबंधी' (विक्रमोर्वशीय) और 'सत्योऽयं लोकवादः, यद्विपद् विपदमनुबन्धाति' (कादम्बरी) ये ठीक समानार्थी सुभाषित पाये जाते हैं।

(१०) प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥ (महाभारत)

साधारणतया धनवानों में (अच्छे पौष्टिक खाद्यद्रव्य खाने के लिए उपलब्ध होने पर भी परिश्रम न होने से जठराग्नि मन्द रहने के कारण उनका) उपभोग लेने की शक्ति नहीं होती। (इसके विपरीत) दरिद्र (परिश्रम से जठराग्नि तेज होने के कारण) लकड़ी (जैसे रूखे सूखे खाद्यों) को भी खाकर परिपाचित करता है।

(११) शक्तिं करोति संचारे शीतोष्णे मर्षयत्यपि।
दीपयत्युदरे वह्निं दारिद्र्यं परमौषधम् ॥

चलने फिरने के लिए शक्ति प्रदान करता है, सर्दी गर्मी बरदाश्त कराता है, पेट में जठराग्नि को प्रदीप्त करता है; तात्पर्य दारिद्र्य एक महौषधि है।

वक्तव्य—दारिद्र्यं परमौषधम्–दारिद्र्य का वर्णन सर्वत्र निंदास्पद तथा एक अभिशाप के रूप में मिलता है–दारिद्र्यमनंतकं दुःखम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निर्धनतासर्वापदामास्पदम् ।। सर्वशून्या दरिद्रता ।। मृच्छकटिक ।। सर्व-कष्टा दरिद्रता ।। चाणक्यशतक ।। दारिद्र्यान्मरणं वरम् ।। वैराग्य शतक ।। दारिद्र्यमेकं गुणकोटिनाशी ।। परन्तु कोई यह न समझे कि दारिद्र्य में गुण ही नहीं होते । इसमें कोई संदेह नहीं है कि दारिद्र्य समाज की दृष्टि से एक बड़ा भारी अभिशाप है, परन्तु व्यक्ति की दृष्टि से वह अंशतः वर दान भी होता है। इस कथन की यथार्थतां 'हे दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः। पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मांपश्यतिकश्चन', 'संपन्नतरमेवान्नं'(पृष्ठ १४८) 'केवा भुवि चिकित्स्यन्ते' तथा उपरिनिर्दिष्ट वचनों में दारिद्र्य के जो गुण वर्णन किये हैं उनसे स्पष्ट होगी। इनमें क्षुधादीपनादि जो गुण वर्णन किये हैं वे प्रत्यक्षतया दारिद्र्य के नहीं हैं, किन्तु 'भोरका मुर्गा बोला और पंछी ने मुँह खोला' तथा 'रोजकुआँ खोदना और रोज पानी पीना' इस प्रकार दरिद्र को प्रतिदिन सुबह से श्याम तक जो शारीरिक परिश्रम करने पड़ते हैं उनके गुण हैं। परिश्रम को ही शास्त्रीय भाषा में व्यायाम कहते हैं। 'शरीराया सजनकं' (पृष्ठ ३५) श्लोक देखिए। इसलिए 'प्रायेण श्रीमतांलोके', 'शक्ति करोति संचारे' इत्यादि उपरिनिर्दिष्ट वचनों में दारिद्र्य के जो गुण वर्णन किये हैं वे वास्तव में, व्यायाम या परिश्रम के हैं, दारिद्र्य के नहीं है जिससे दारिद्र्यं परमौषधं व्यायामः परमौषधं' हो जाता है। 'परिश्रमो मिताहारः' (पृष्ठ ४४) श्लोक देखें।

इस परिवर्तन की यथार्थता दारिद्र्यगुणवर्णन पर उपर्युक्त वचनों में 'दरिद्र' और 'दारिद्र्य' के स्थान में 'व्यायामी' और 'व्यायाम' शब्द रखने से तथा व्यायामगुणवर्णन पर सुश्रुत के निम्न वचनों में वैसा ही शब्द विपर्यय करने से भली भाँति स्पष्ट होगी—दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा। श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता ।। आरोग्यं चापि परमं व्यायामा (दारिद्र्या) दुपजायते ।। व्यायामं कुर्वतो नित्यं (सर्वकालं दरिद्रस्य) बिरुद्धमपि भोजनम् विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ।। तात्पर्य, दारिद्र्य या व्यायाम केवल अग्निमांद्या

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दि अनेक शारीरिक रोगों की ही महौषधि नहीं है, किन्तु स्वस्थावस्था में दीप्ताग्नित्वादि अनेक शारीरिकगुणों को प्रदान करनेवाला एक महा-रसायन भी है।

(१२) विचारात्तीक्ष्णतामेत्य धीः पश्यति परंपदम् ।
दीर्घसंसाररोगस्य विचारो हि महौषधम् ॥ (योगवासिष्ठ)

विवेकविचार—विचार से बुद्धि सूक्ष्मग्राही होकर परंपद को देखती है। अतः दीर्घकालीन संसाररूप रोग की विचार महौषधि है।

वक्तव्य—परंपदम्—संसार से मुक्ति, रोग से मुक्ति। दीर्घसंसार-रोग-दीर्घ काल चलनेवाली (Chronic) व्याधि, जैसे, हृद्रोग, मधुमेह, रक्तचाप, कुष्ठ इत्यादि। विचारः—विचारः परमं ज्ञानम् ॥ न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते ॥ योगवासिष्ठ ॥ हिताहित की दृष्टि से चिंतनशीलता। तीव्र (Acute) और चिरकारी (Chronic) करके रोग द्विविध होते हैं। तीव्र रोगी अनेक बार केवल औषधि सेवन करने पर ठीक हो जाते हैं, परन्तु जीर्ण रोगी आशावान् आत्मवान्, श्रद्धावान्, पथ्यसेवी हुए बिना ठीक होने की या कुछ काल बचने की सम्भावना बहुत कम होती है। ये गुण विवेक विचार से ही उत्पन्न हो सकते हैं—समुद्रस्यैव गांभीर्यं धैर्यं मेरोरिवस्थितम्। अन्तः शीतलता चेन्दोरिवोदेति विचारिणः ॥ योगवासिष्ठ ॥ इसलिये जीर्ण रोगियों को बाह्यौषधियों के अतिरिक्त विवेक विचार औषधि का भी सेवन करना जरूरी है।

(१३) सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमंतमः ॥

(१४) माबिभेन मरिष्यसि जरदष्टिंकृणोमित्वाम् ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥

(१५) अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ (अथर्ववेद)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

आश्वासन—हे न मरनेवाले, तू मरोगे नहीं, तू नहीं मरोगे। डरो मत वहाँ कोई मरते नहीं, न नरक के अन्धकार में जाते हैं। (जहाँ तुम आये हो) डरो मत तू मरनेवाला नहीं है, मैं तुमको वृद्धावस्था तक जिलाऊँगा, मैं तुम्हारे अंगों से यक्ष्मा को तथा अङ्ग ज्वर को निकाल दूँगा। यह मेरा हात (जो मैं तुम्हारे पर फेर रहा हूं) भाग्यवान् है, यह दूसरा हाथ उससे भी भाग्यवान् है, पहिला विश्वभेषज है और (दूसरा) कल्याणकारी है।

वक्तव्य—आश्वासन से हर्ष, उत्साह, धैर्य, आशा इत्यादि भाव उत्पन्न होते हैं, जिनको रोगी स्वयं अपने विवेक विचार से उत्पन्न कर सकता है। परन्तु रोगी जब यह कार्य अपने विवेक बल से करने में असमर्थ रहता है तब चिकित्सक तथा मित्रों को यह कार्य आश्वासन द्वारा करना चाहिए, क्योंकि मनोबल देने का काम औषधियों से नहीं, आश्वासन से ही हो सकता है—'आश्वासो बलकराणाम् ॥ अ. संग्रह ॥ आश्वासन की औषधि भाषा है और उसका प्रभाव तदन्तर्गत पदपंक्ति पर अधिष्ठित होता है।' रोगी को अभयदान देने का आश्वासन अनेक प्रकारों से दिया जा सकता है, परन्तु उपर्युक्त पदपंक्ति से दिये हुए आश्वासन से अधिक प्रभावी आश्वासन दूसरा हो नहीं सकता। तात्पर्य, रोगी को आश्वासित करने के लिए बहुत अधिक बकझक करने की आवश्यकता नहीं होती है, नपे तुले थोड़े शब्दों में सब कुछ हो जाता है। इसके लिए 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हनुमान्‌जी का एक उदाहरण दिया जाता है। हनुमान् जी सीता जी का पता लगाने के लिए लंका गये और पता लगाकर लौट आये। इधर रामचन्द्रजी सीताजी का हरण होने के कारण बराबर चिन्तित रहे और बहुत आतुरता से हनुमान्‌जी के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। हनुमान्‌जी ने लंका से लौटते ही रामचन्द्रजी को नमस्कार किया और अपनी 'अविस्तरमसंदिग्धमविलंबितमन्यथा' (रामायण) भाषा शैली में उसने दो शब्दों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

में और वैसे कहा जाय तो दो अक्षरों के प्रथम एक ही शब्द में रामचन्द्र की चिन्ता दूर करके उनको हर्षित किया—सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥ दृष्टा देवीति हनुमद्वदनादमृतोपमम् । आकर्ण्य वचनं रामो हर्षमाप सलक्ष्मणः ॥ रामायण । 'दृष्टा सीता' और 'सीता दृष्टा' इन दोनों में रामचन्द्रजी की चिन्ता हरण करने की दृष्टि से महान् अन्तर है, इसको सुज्ञ समझ सकते हैं ।

(१६) दयितजनविप्रयोगो वित्तवियोगश्च केन सह्याः स्युः ।
यदि सुमहौषधकल्पो वयस्यजनसंगमो न स्यात् ॥

(पंचतन्त्र)

सुहृद्—प्रिय मनुष्यों के तथा धन के वियोग किससे सहे जा सकते हैं, यदि उनमें महौषधिरूप समवयस्क सुहृद् का समागम न हो जाय ।

(१७) व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च ।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥ (पंचतन्त्र)

रोगग्रस्त, दरिद्र, परदेशवासी और शोकपीडित इनके लिए सुहृद्दर्शन एक औषधि है ।

(१८) अन्नेन धार्यते देहः, कुलं शीलेन धार्यते ।
प्राणा मित्रेण धार्यन्ते, क्रोधःसत्येन धार्यते ॥ (पद्मपुराण)

अन्न से शरीर का, शील से कुल का, मित्र से (व्याध्यादि आपत्तियों में फँसे हुए मनुष्यों के) प्राणों का और सत्य से क्रोध का धारण होता है ।

(१९) प्राणात्यये समुत्पन्ने यदि स्यान्मित्रदर्शनम् ।
तद् द्वाभ्यां सुखदं पश्चाज्जीवतोऽपि मृतस्य च ॥ (पंचतन्त्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्राणों का नाश होने के समय यदि सुहृद्दर्शन हो जाय तो वह मनुष्य जीवित रहे तो तथा जीवित न रहे तो, दोनों अवस्थाओं के लिए सुखावह (जीवित के लिए स्वास्थ्यप्रद और मृत के लिए शान्तिप्रद) होता है।

वक्तव्य—सुहृद्—मित्र, बन्धु, सखा, वयस्य ये सब इसके पर्याय हैं। कुछ सुभाषितकार इनमें इस प्रकार का सूक्ष्म भेद करते हैं—अत्यागसहनो बन्धु सदैवानुगतः सुहृद्। एकक्रियं भवेन् मित्रं, समप्राणः सखा मतः। परन्तु इसमें विशेष अर्थ नहीं है, आगे का वक्तव्य देखें। सुहृद्-गुण—स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ॥ रामायण ॥ सुहृदस्तु स्वयं दुःखिता अपि विस्मृत्यात्मदुःखं सुहृद्दुःखापनोदायैव यतन्ते ॥ कादम्बरी ॥ अप्रियाण्यपि पथ्यानि ये वदन्ति नृणामिह। त एव सुहृदः प्रोक्ता अन्ये स्युर्नामधारकाः ॥ पंचतन्त्र ॥ स सुहृद् व्यसने यः स्यात्! रति ने तो स्त्री जाति की ओर से यहाँ तक कहा है कि पुरुष का अपनी पत्नी के ऊपर का प्रेम चञ्चल होता है, परन्तु सुहृद् के ऊपर का प्रेम चञ्चल नहीं होता—दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥ कुमारसंभव ॥ उपर्युक्त गुणविवरण से यह स्पष्ट होगा कि सुहृद् आपद्ग्रस्त मनुष्यों के लिए एक महौषधि का काम जरूर कर सकता है, फिर वह आपत्ति व्याधि हो, वियोग हो, या अन्य कोई विपद् हो। सुहृद् औषधि द्वारा यह कार्य अनेक प्रकारों से हो सकता है जिनमें दो महत्व के हैं। (१) दुःखहरण-आपद्ग्रस्त मनुष्य अत्यन्त दुःखी होता है और जब तक उसे वह दुःख किसी को जी खोलकर कहने का मौका नहीं मिलता तब तक वह उससे परेशान रहता है और जब उसे वह मौका मिलता है तब वह जी खोलकर कहकर कुछ शान्ति अनुभव करता है। परन्तु यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति के सामने नहीं होता, केवल स्वजन, सुहृद् इनके सामने होता है, इसलिए दुःखी, कष्टी रोगी हमेशा मित्रों से मिलना चाहते हैं—स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वार-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मिवोपजायते ।। कुमारसंभव।। मित्रसंक्रामितःखलु सह्यो भवति संतापः ।। मल्लिकामारुत ।। सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्ये प्रियासु नारीषु । स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं जनः सुखीभवति ।। कस्य तावदिमं वृत्तान्तं निवेद्य सह्यवेदनमिव दुःखं करिष्यामि ।। प्रियदर्शिका ।। आवेदेयमस्मात्मीयं पुत्रदुःखं सुदुःसहम् । मयि संक्रान्तमेतत्ते येन सह्यं भविष्यति ।। नागानन्द।। पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया । शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरिव धार्यते ।। उत्तररामचरित ।। सुहृत्संचारितरहस्यं हि चेतः संविभक्तचिन्ताभारमिव लघूभवति ।। विद्धसालभञ्जिका ।। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ।। शाकुंतल ।। (२) आश्वासन-दुःखहरण का कार्य सुहृद् द्वारा अप्रत्यक्षतया होता है, परन्तु आश्वासन, मनोरञ्जन, उचित मार्ग दर्शन, धैर्यप्रदान, सान्त्वना ये कार्य सुहृद प्रत्यक्ष अपने भाषणादि से करता है—सुहृदो विक्षिपन्त्याशु कथाभिर्व्रणवेदनाः । आश्वासयन्तो बहुशस्त्वनुकूलाः प्रियंवदाः ।। सुश्रुत ।।

(२०) न च भार्यासमं किञ्चित् विद्यते भिषजांमतम् ।
औषधं सर्वदुःखेषु, सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।। (महाभारत)

पत्नी—पत्नी के समान (रोग तथा अन्य) सब दुःखों में दूसरी कोई औषधि नहीं है यह चिकित्सकों का मत, जो मैं कह रही हूँ, सत्य है।

(२१) नास्ति भार्यासमं किञ्चिन्नरस्यार्तस्य भेषजम् ।। (महाभारत)

भार्या के समान (व्याधि तथा अन्य आपत्तियों से) आर्त मनुष्य के लिए दूसरा कोई भेषज नहीं होता है।

वक्तव्य—सौहार्द्र, अनुराग, मधुरभाषिता, सेवावृत्ति ये गुण स्त्रियों में सहज होने से पुरुष सुहृद् की अपेक्षा स्त्री सुहृद् अधिक उपयुक्त होता है। इसलिए पुरुष को अपनी पत्नी से बढ़कर और कोई दूसरा सुहृद् हो नहीं सकता—नास्ति भार्यासमो बन्धुः । अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा ।। भार्या दैवकृतः सखा ।। महाभारत ।। पत्नी के ये

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गुण उनके विरह काव्यों में कवियों ने बहुत ही अच्छी तरह वर्णन किये हैं—गृहिणी सचिवा मिथः सखी प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥ दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त जाते याते च संप्रति दिवं प्रति बन्धुरत्ने। कस्मै मनः कथयितासि निजामवस्थां कः शीतलैः शमयिता वचनैस्तवाधिम् ॥ जगन्नाथ पंडित ॥ परिचर्या (Nursing) चिकित्सा का एक महत्व का अंग है। उसके बिना अनेक रोगों की चिकित्सा में सफलता असंभव होती है। पत्नी रूप भेषज की महत्ता को इसी दृष्टि से देखना चाहिए।

(२२) इक्षुदण्डास्तिलाः क्षुद्राः कान्ता हेम च मेदिनी।
चन्दनं दधि ताम्बूलं, मर्दनं गुणवर्धनम् ॥ (वृद्धचाणक्य).

मर्दन—ईख, तिल्ली, गँवार, स्त्री, सोना, भूमि, चन्दन, दही, पान इनमें मर्दन गुणवर्धक है।

वक्तव्य—मर्दन—यह अनेकार्थवाची शब्द है जो ईख और तिल्ली में पेरने के अर्थ में; गँवार और स्त्री में ताडन के अर्थ में; सोने में प्रहरण के अर्थ में; भूमि में जोतने के अर्थ में; चन्दन में घर्षण के अर्थ में; दही में मन्थन के अर्थ में और पान में चर्वण के अर्थ में है।

गुणवर्धनम्—प्रत्येक द्रव्य के साथ जो अर्थ बतलाया गया है वह जितना अधिक किया जाय उतना फल अधिक मिलता है; जैसे, ईख जितने अधिक बार कोल्हू में पेरा जाय उतना रस अधिक निकलेगा तथा भूमि जितनी अधिक जोती जाय उतनी अधिक फसल होगी—मेंढ़ बांधि दस जोतन दे, दस मन बीघा मोसे ले ॥ बीज पड़े फल अच्छा देत, जितना गहरा जोतै खेत ॥ इसी संस्कृत वचन का संक्षेप तुलसीदासजी की निम्न चौपाई में पाया जाता है—ढोर गँवार, सूद्र, पसु, नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

मर्दन का वैद्यकीय अर्थ घर्षण या रगड़ना है। मर्दन में आसानी हो और मर्दन से त्वचा में घाव या क्षत न हो इसलिए तेल का उपयोग

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

किया जाता है और इस सतैल मर्दन को अभ्यंग कहते हैं—तैलादिना शिरःसहितदेहमर्दनलक्षणमभ्यङ्गम् ।। मन्वर्थमुक्तावली ।। तैल के अतिरिक्त सस्नेह औषधि कल्क अथवा औषाध चूर्ण का भी उपयोग किया जाता है। उत्सादन, संवाहन, उद्वर्तन और उद्घर्षण करके इसके चार प्रकार होते हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में चौसठ कलाओं में मर्दन का उल्लेख 'उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्' करके किया है। संवाहन-हस्ताभ्यां यत्'''शेषांगेषु मर्दनं संवाहनम् ।। जयमंगलटीका ।। सुखकरस्पर्शः, अमितप्रभटीकाकारस्तु हस्ताभ्यां शनैः शनैराहननमिति वदति ।। डल्हणटीका। किसी कारण थकान उत्पन्न होने के पश्चात् अन्य व्यक्ति द्वारा हाथों से धीरे धीरे शरीर दबा लेना संवाहन या चप्पी है—अलसलुलितमुग्धान्यध्वसंजातखेदादशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।। उत्तररामचरित ।। उत्सादन (१) तत्र पादाभ्यां यन्मर्दनं तदुत्सादनमुच्यते ।। जयमंगलाटीका ।। इसमें मर्दन का कार्य जोर से और पैरों से भी होता है। इसका उपयोग मुख्यतया व्यायाम करने के पश्चात् किया जाता है—पादाघातं च युक्तितः ।। सुश्रुत ।। (२) सस्नेहकल्केनोद्घर्षणमुत्सादनम् ।। डल्हणटीका ।। उद्वर्तन—अभ्यंगमलापकर्षणपिष्टकादि। मन्वर्थमुक्तावलि। औषधि द्रव्यों से शरीर को रगड़ना—उद्वर्तनं हरिद्राद्यैः कण्डूवैवर्ण्यरौक्ष्यजित्। तिलेनोद्वर्तनं कण्डूरौक्ष्यत्वग्दोषनाशनम् ।। राजनिघंटु ।। उद्घर्षण—अस्नेहौषधचूर्णादिभिर्घर्षणम् ।। डल्हणटीका ।।

मर्दन से रक्तपरिसंचार तेज होकर मर्दित अंग की पुष्टि होती है। इसलिए थकने के पश्चात् संवाहन करने से थकावट दूर होती है और व्यायाम के पश्चात् उत्सादन करने से व्यायाम के गुण बढ़ते हैं—तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ।। सुश्रुत ।। मर्दन से रक्तपरिसंचार की तेजी और तज्जन्य शरीर के विविध अंगों को शुद्ध रक्त का अधिक प्रदाय (Supply) होने के अतिरिक्त तेल तथा सस्नेह कल्कादि का मर्दित स्थान से अवशोषण होकर स्थानिक तथा सार्वदेहिक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परिणाम भी होते हैं। जैसे स्वस्थावस्था में मामूली तेल की मालिश से लाभ होता है, वैसे रुग्णावस्था में नारायण, प्रसारणी, विषगर्भ इत्यादि अनेक तेलों की मालिश से लाभ होता है। नीचे का श्लोक देखें।

(२३) शयनं पित्तनाशाय, वातनाशाय मर्दनम् ।
वमनं कफनाशाय, ज्वरनाशाय लंघनम् ॥

लंघन—पित्तनाश के लिए शयन, वातनाश के लिए मर्दन, कफनाश के लिए वमन और ज्वरनाश के लिए लंघन (प्रशस्त होता है)।

वक्तव्य—वातनाशाय—ऊपर नारायणादि तेलों का जो निर्देश किया है वह वातरोग नाशन के लिए ही होता है। कफनाशाय—वमन का उपयोग मुख्यतया छोटे-छोटे बच्चों में कफनाश के लिए किया जाता है। लंघन—शरीर में लघुता उत्पन्न करने के कारण इसको लंघन कहते हैं—यत्किञ्चिल्लाघवकरं देहे तल्लंघनं स्मृतम् ॥ चरक ॥ लंघन का प्रथम तथा मुख्य अर्थ अनशन या उपवास है। अनेक रोगों की, विशेषतः ज्वरों और पचन संस्थान के अपचनादि रोगों की चिकित्सा का श्रीगणेश लंघन से ही किया जाता है—शान्तिरामाशयोत्थानां व्याधीनां लंघनक्रिया। ज्वरस्यैकस्य चाप्येका शान्तिर्लंघनमुच्यते ॥ चरक ॥ स्रस्तांगसंधौ विगताक्षपाटवे रुजा निकामं विकलीकृते रथे। आप्तेन तूर्णा भिषजैव तत्क्षणं प्रचक्रमे लंघनपूर्वकः क्रमः ॥ शिशुपालवध ॥ यद्यपि अनशन या उपवास लंघन का प्रधान उपक्रम है तथा वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य, केवल जल पीना, धूप सेवन, वायुसेवन, पाचक द्रव्यों का सेवन और व्यायाम ये भी इसके उपक्रम होते हैं—चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ। पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम् ॥ चरक ॥

(२४) अतनुज्वरपीडिताऽसि बाले तव सौख्याय मतो ममोपवासः ।
रसमर्पय वैद्यनाथ नाहं भवदावेदितलङ्घने समर्था ॥
(सुभाषितरत्नभाण्डागार)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(ज्वरपक्षे)—हे बाले ! तू तीव्रज्वर से पीडित हो, तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए (तुम्हें स्वयं) उपवास करना इष्ट है। (इस पर बाला कहती है) हे कविराज ! आप मुझे (ज्वरान्तक) रस ही दीजिए, मैं आप से उपदिष्ट उपवास करने में असमर्थ हूँ।

(कामपक्षे)—हे बाले ! तुम कामज्वर से पीड़ित हो, तुम्हारे सुख के लिए तुम्हें मेरे पास रहना ही इष्ट है। (तिसपर बाला कहती है) हे कविराज ! मैं आप से उपदिष्ट (गृहसीमा का) उल्लंघन कर (आपके पास सदैव रहने में असमर्थ हूँ, मुझे आप (इसी समय अंग-संगामृत रूप कामज्वरांकुश) रस दीजिए।

वक्तव्य—यह श्लोक श्लेषपूर्ण है। अतनुज्वर—(१) तनुज्वर-मन्दज्वर—त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः। मधुकोश में उद्धृत ॥ अतनुज्वर—तीव्र ज्वर। (२) तनु—शरीर, अतनु—शरीरहीन अर्थात् अनंग, कामदेव, कंदर्प। अतनुज्वर—कामज्वर, कंदर्पज्वर। अतनुज्वरपीड़ित के लक्षण—सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि। एतादृश्यत-नुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्स्वर्वैद्य प्रतिमप्रसीदसि न चेत् त्यक्तोन्य-थास्यन्तकः ॥ गीतगोविंद ॥ उपवास—(१) लङ्घन, अनशन, उपोषण। ज्वरनाशन का एक महत्व का उपचार। ऊपर के २३ वें श्लोक का वक्तव्य देखें। (२) सहवास, निकटवास, अंगसंग यह इसका यौगिकार्थ है जो कामपक्ष में उपयुक्त है। (३) पापकर्मों से निवृत्त होकर परमेश्वर, संत, सज्जन इनके पास चित्त ले जाना यह भी इसका पारमार्थिक अर्थ है—उपावृत्तस्य पापेभ्यः सहवासो गुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम्। चक्रपाणि टीका में उद्धृत ॥ रस—(१) रसौषधि, जैसे ज्वरांकुश रस। (२) कामज्वरान्तक अंगसंगरूप रस—स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदंगसंगामृतमात्रसाध्याम्। विमुक्तबाधां कुरुषे न राधा-मुपेन्द्रवज्रादपि दारुणोऽसि ॥ गीतगोविंद ॥ लंघन—(१) उपवास,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२) उल्लंघन, अतिक्रमण–लंघनं तूपवासे स्यात्क्रमणे प्लवनेऽपि च। मेदिनी।

(२५) धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं दद्याच्च कान्तिं दहनप्रदीप्तिम्।
अशेषरोगोपचयं निहन्याद् अभ्यस्यमानं जलबस्तिकर्म॥
(हठयोगप्रदीपिका)

बस्ति—जलबस्तिकर्म अभ्यास रखने से (रसरक्तादि) धातु, (श्रवणादि) इन्द्रियाँ और मन इनको प्रसन्न करता है, शरीरकान्ति को बढ़ाता है, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है और संपूर्ण रोगों का नाश करता है।

वक्तव्य—जलबस्ति–योगशास्त्र में जलबस्ति और स्थलबस्ति करके दो प्रकार का बस्ति होता है—जलबस्तिः शुष्कबस्तिर्बस्तिः स्याद् द्विविधा स्मृता। जलबस्तिं जले कुर्याच्छुष्कबस्तिं सदा क्षितौ॥ घेरण्ड-संहिता॥ अशेषरोगोपचयम्—नीचे का श्लोक देखिए।

(२६) आपादतलमूर्धस्थान् दोषान् पक्वाशये स्थितः।
वीर्येण बस्तिरादत्ते खस्थोऽर्को भूरसानिव॥ (चरक)

जिस प्रकार आकाश में स्थित सूर्य अपनी शक्ति से पृथ्वी के ऊपर के जलांश को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार पक्वाशय में स्थित बस्ति शिर से पैर तक (फैले हुए) सब दोषों को अपनी ओर खींच लेता है (और खींचने के पश्चात् अपने साथ उनको शरीर के बाहर ले जाता है)।

(२७) तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति
सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेके॥ (चरक)

अतः कुछ चिकित्सक उसको आधी चिकित्सा और कुछ तो संपूर्ण चिकित्सा भी कहते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—योग और वैद्यक दोनों में बस्तिकर्म है। परन्तु थोड़ा सा अन्तर है। योग में योगाभ्यासी गुदद्वार में नलिका रखकर द्रव्य स्वयं ऊपर खींच लेता है जो केवल जल होता है। वैद्यक की दृष्टि से योग-जलबस्ति केवल निरूह (Purgative) बस्ति होता है। वैद्यक में बस्तियन्त्र द्वारा बस्ति दिया जाता है, बस्ति द्रव्य में जल के अतिरिक्त औषधियों के काढ़े रहते हैं और निरूह के अतिरिक्त औषधि प्रदान के लिए भी बस्ति प्रयुक्त होता है। इस प्रकार अन्तर होने पर भी निरूह बस्ति के फल में कोई अन्तर नहीं होता। कोठे की अशुद्धि सर्वसाधारण रोगों की जड़ होने से और बस्ति द्वारा उसी की बढ़िया शुद्धि होने से बस्ति अनेक रोगों में प्रत्यक्ष और अनेक रोगों में अप्रत्यक्ष लाभदायक होता है। बस्तिकर्म लाभदायक होने पर भी औषधि के समान नित्य सेवन करने का नहीं है। नित्य सेवन से मलाशय की मलोत्सर्जन शक्ति निर्बल होकर फिर उसके बिना मलशुद्धि ठीक नहीं हो पाती।

(२८) शशिकुन्दसमुज्ज्वलशङ्खनिभं युवतीकरनिर्मितनिर्मथितम्।
घृतसैन्धवहिङ्गुयुतं मधुरं पिब तक्रमहो नृप रोगहरम्॥
(क्षेमकुतूहल)

तक्र—चन्द्र, दन्त और उज्ज्वल शङ्ख के समान (शुभ्र), तरुणियों से निर्मित और मथा हुआ, घी सैन्धव और हींग से संयुक्त सर्व रोगों का हारक तक्र हे राजन्! तुम पिया करो।

(२९) तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परम्।
उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम्॥ (क्षेमकुतूहल)

मट्ठा रूचि उत्पन्न करने वाला, जठराग्नि दीपक, अत्यन्त पाचक, उदर रोगों का नाशक और तृप्ति कारक होता है।

(३०) तक्रं वातहरं रूच्यं शूलाध्मानार्शसां हितम्।
अग्निसंजननं श्रेष्ठं कफपित्तनिबर्हणम्॥ (क्षेमकुतूहल)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मट्ठा वातपित्तकफ नाशक, रुचिकर, शूल (Colic), आध्मान Tympanitis) और गुदार्श (Piles) के लिए हितकर तथा अत्यन्त अग्निदीपक होता है।

(३१) वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं, स्वादु पित्ते सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम् ॥ (क्षेमकुतूहल)

वातविकार में मट्ठा कुछ खट्टा हो और सैन्धव के साथ लिया जाय, पित्तविकार में मट्ठा मधुर हो और शर्करा के साथ सेवन किया जाय; और कफ विकार में व्योष और क्षार के साथ सेवन किया जाय।

वक्तव्य—व्योष—पिप्पली काली मरिच और सोंठ—कटुत्रिकं तु त्रिकटु त्र्यूषणं व्योष उच्यते ॥ भावप्रकाश ॥

(३२) न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्
न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं
तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥

तक्र सेवन करने वाला कदापि रोगपीडित नहीं होता, तक्र (चिकित्सा) द्वारा नष्ट किये गये (उदर के) रोग फिर से उत्पन्न नहीं होते; जैसे, स्वर्ग में देवताओं को नीरोग रहने के लिए अमृत प्रधान होता है, वैसे इहलोक में मनुष्यों के लिए तक्र होता है।

(३३) पपात बिन्दुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिबतोऽमृतम्।
औषधीनां ततः श्रेष्ठा प्रादुर्भूता हरीतकी ॥
(आश्विनी हरीतकीकल्प)

हरीतकी—इन्द्र के अमृत पान करते समय उसका बिन्दु भूमि पर गिर पड़ा; उससे औषधियों में श्रेष्ठ हरीतकी उत्पन्न हुई।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—लशुन के समान हरीतकी की भी उत्पत्ति अमृत से हुई है, परन्तु राक्षस के बदले इन्द्र का सम्बन्ध होने से तथा भूमि पवित्र रहने से हरीतकी निर्दोष रसायन बन गयी। पृष्ठ ४५८ पर 'अमितगुणोऽपि' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(३४) हरस्य भवने जाता हरीता च स्वभावतः।
सर्वरोगांश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी॥

शंकर के भवन में जन्म होने से, स्वभावतः हरे रंग की होने से सर्वरोगहारक होने से यह हरीतकी नाम से प्रसिद्ध है।

(३५) ग्रीष्मे तुल्यगुडां, सुसैन्धवयुतां मेघावनद्धाम्बरे
साधं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे, वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः॥

ग्रीष्म ऋतु में समभाग गुड़ के साथ, प्रावृट् ऋतु में सैन्धव के साथ, शरद् ऋतु में शुभ्र शर्करा के साथ, वर्षा ऋतु में शुण्ठी के साथ, शिशिर ऋतु में पीपर के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ हरीतकी के सेवन से जैसे रोग नष्ट होते हैं वैसे हे राजन्! तुम्हारे शत्रु नष्ट हों।

(३६) यथा वैश्वानरो युक्तो बलवान् वायुना भवेत्।
तथा वीर्यसमापन्ना गुडेन स्याद्धरीतकी॥
(आ. हरी. कल्प)

जैसे अग्नि बलवान् वायु से युक्त होने पर वीर्यसमापन्न होती है। वैसे गुड़ से युक्त होने पर हरीतकी वीर्यसमापन्न होती है।

(३७) न सोऽस्ति रोगो भुवि मानवानां
हरीतकी यं न जयेत् प्रसह्य।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यशस्विनीं तामम्रृतप्रसूतां

प्रयोजयेत् सर्वत एव धीरः ॥ (आ. ह. कल्प)

जिसको हरीतकी अपने बल से जीत नहीं सकती ऐसा कोई रोग इस लोक में नहीं है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य उस अमृत से उत्पन्न हुई सफल हरीतकी को सब रोगों में प्रयुक्त करें।

(३८) हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी ।

कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥

हरीतकी माता के समान हितकारिणी होती है, माता भी कभी कभी बच्चों पर क्रुद्ध होती है, परन्तु (सेवन की हुई) उदरस्थ हरीतकी कदापि क्रुद्ध नहीं होती ।

(३९) हितं हयानां लवणं प्रशस्तं, जलं गजानां, ज्वलनं गवां च ।

हरीतकी श्रेष्ठतमा नराणां चिकित्सिते पङ्कजयोनिराह ॥

(नावनीतक)

औषधियों में घोड़ों के लिए नमक, गजों के लिए जल, गाय बैलों के लिए अग्नि, और मनुष्यों के लिए हरीतकी श्रेष्ठ होते हैं ऐसा ब्रह्माजी का कहना है ।

(४०) हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने दिने ।

मोक्षारोग्यतपःकामश्चिन्तयेद् भक्षयेज्जपेत् ॥

मोक्ष, आरोग्य और तप की इच्छा करने वाले को प्रतिदिन विष्णु, हरीतकी और गायत्री इनका क्रम से चिन्तन, सेवन और जप करना चाहिए ।

(४१) सर्वौषधीनाममृता प्रधाना, सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।

सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं, सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥

(वृद्धचाणक्य)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गुडूची—सर्व औषधियों में गिलोय प्रधान है; सर्व सुखो (त्पादक-साधनों) में भोजन प्रधान होता है; सब ज्ञानेन्द्रियों में नेत्र प्रधान होता है और सर्व अंगों में शिर श्रेष्ठ होता है।

वक्तव्य—अमृता—गुडूची। पृष्ठ २६५ भी देखें। गुडूची के अतिरिक्त अमृता से आँवला, हरड, तुलसी, दूर्वा, पींपर इनका भी ग्रहण होता है, और ये भी श्रेष्ठ औषधियाँ हैं। सर्वेषु गात्रेषु—पृष्ठ २७५ पर 'ब्राह्मणोऽपि' श्लोक देखें।

(४२) सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी, सद्यः प्रज्ञाकरी वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी, सद्यः शक्तिकरं पयः॥

(वृद्धचाणक्य)

तुण्डी और वचा—कुन्दरू तत्काल बुद्धिनाशक, वचा तत्काल बुद्धिवर्धक, स्त्री तत्काल शक्तिनाशक और दूध तत्काल शक्तिदायक होता है।

(४३) आषाढी कार्तिकी माघी, वचा शुण्ठी हरीतकी।
गयायां पिण्डदानेन पुण्या श्लेष्महराऽनृणी॥

वचा, शुण्ठी, हरीतकी—आषाढी, कार्तिकी माघी (एकादशी) पुण्यदायक होती है, वचा, सोंठ और हरड कफनाशक हैं और गया में पिण्डदान (मनुष्य को पितृ ऋण से) अनृणी करता है।

(४४) अहो प्रकृतिसादृश्यं श्लेष्मणो दुर्जनस्य च।
मधुरैः कोपमायाति कटुकेनैव शाम्यति॥

(सुभाषितावलि)

कफ (दोष) और दुर्जन इन दोनों का (आपस में दूर का भी सम्बन्ध न होते हुए) जो प्रकृतिसाम्य है वह बहुत ही आश्चर्यजनक है। दोनों मधुर से प्रक्षुब्ध होते हैं और कटु से शान्त होते हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मधुरैः—मधुर शब्दों से दुर्जन और बिगड़ता है और मधुर द्रव्यों से कफ और बढ़ता है। कटुकेन–कठिन शब्दों से दुर्जन तथा कटु द्रव्यों से कफ शान्त होता है—रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः। तत्राद्या मारुतंध्नन्ति त्रयस्तिक्तादयो कफम्। कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥ वाग्भट ॥ 'उच्छेद्यमपि' श्लोक देखिए।

(४५) कन्यान्तःपुरबाधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपं
द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतुः।
देवाकर्णय सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलं
स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः॥

(नैषध)

उशीर—जिसके आधिपत्य के कारण (परपुरुषों से होनेवाले व्यभिचारादि) दोष कन्यान्तःपुर को बाधा पहुँचाने में समर्थ न हुए ऐसे मन्त्रिप्रवर, तथा जिसके आधिपत्य के कारण वातादि दोषों से होने वाले रोग कन्या के शरीर में बाधा पहुँचाने में असमर्थ रहे ऐसे भिषग्वर ये दोनों एक समय पर और एक स्वर से बोले—

(मन्त्री)—देव, सुनिए, अन्तःपुर के गुप्रचरों से भली भाँति सुने हुए वचन के आधार पर मैं सब जानता हूँ कि नल को छोड़कर अन्य कोई भी दमयन्ती के ताप को शान्त करने के लिए समर्थ नहीं है।

(भिषग्वर)—देव सुनिए। चरक और सुश्रुत के वचनों के आधार पर मैं सब जानता हूँ कि उशीर छोड़कर अन्य कोई द्रव्य इसके ताप को शान्त करने में समर्थ नहीं है।

वक्तव्य—इस श्लोक में मन्त्री और वैद्य की दृष्टि से निम्न शब्दों में श्लेष है—अन्तःपुर—(१) जनानखाना (२) शरीर। दोष—(१)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जनापवाद। (२) रोगोत्पादक वातादि दोष। सुश्रुत—(१) सुश्रुश्रुतम्, अच्छी तरह सुना हुआ। (२) सुश्रुत संहिता। पृष्ठ १३ पर 'सुश्रुतं न श्रुतं येन' श्लोक देखें। चरक—(१) चार, गुप्तचर। (२)चरक संहिता। पृष्ठ १६ पर 'यतश्चर इवायातः' श्लोक देखें। नलद—(१) नल राजा का दान। (२) खस, उशीर, शरीरमनदाहनाशक श्रेष्ठ औषधि—लामज्जकोशीरं दाहत्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपनानाम्। चरक॥ अगदङ्कारः—नास्ति गदो रोगो यस्य; नीरोगः, अगदं करोति, इत्यगदंकारः-रोगहारोऽगदंकारो भिषग्वैद्यचिकित्सकः॥ अष्टांगनिघंटु।

(४६) छागं मांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम्।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत्॥

छाग—बकरे का मांस, बकरे का दूध, शर्करा के साथ उसका घी, उनके बीच में सोना और उनकी सतत सेवा ये कर्म यक्ष्मनाशक होते हैं।

(४७) तांबूलं कटुतिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितम्।
वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं दुर्गंधिनिर्णाशनम्॥
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनम्।
तांबूलस्य सखे त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः॥
(चाणक्य राजनीतिशास्त्र)

ताम्बूल—पान रस में कुछ कटु, तिक्त, मधुर, क्षारीय और कसैला, गरम, वातनाशक, कृमिनाशक, कफनाशक, दुर्गन्धनाशक, मुख का आभूषण, मुखशुद्धिकर और कामवर्धक है। इसके ये तेरह गुण स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं।

(४८) न गृहं गृहमित्याहुस्तुलसी गृहमुच्यते।
सदनं तुलसीहीनं श्मशानादतिरिच्यते॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तुलसी—गृह को गृह नहीं कहते, तुलसी को ही गृह कहते हैं। तुलसी हीन घर (अपवित्रतामें) स्मशान से भी परे होता है।

वक्तव्य—कफनाशन, कृमिनाशन और दुर्गंधनाशन ये तुलसी के मुख्य गुण हैं—हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशनः। पित्तकृत् कफवातघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा ॥ चरक ॥ कफनाशन के गुण के कारण तुलसी का स्वरस वमन, कास, श्वास, प्रतिश्याय इत्यादि रोगों में भीतर प्रयोग किया जाता है। कृमिनाशन के गुण के कारण उसका स्वरस छाजन (Eczema) दाद (Ringworm) कण्डू इत्यादि रोगों में तथा व्रणशोधन और रोहण के लिए बाहर से प्रयुक्त किया जाता है। गंधनाशन गुण के कारण उससे गृह का वातावरण शुद्ध होता है, विशेषतया मच्छरों को भगाने में, अतएव विषमज्वर (Malaria) के प्रतिबंधन में वह बहुत उपकारी होती है। अतः मकानों के अहाते में अन्य बेकार वनस्पतियों को लगाने की अपेक्षा इसको लगाना श्रेयस्कर होगा। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ बीसों बेकार क्षुप लगाये जाते हैं वहाँ तुलसी का एक भी क्षुप रहता नहीं। तुलसी केवल औषधि नहीं, पवित्र वनस्पति मानी गयी है और वह भगवान् विष्णु की प्रिय होने से 'विष्णुवल्लभा' कहलाती है और प्रति दिन उसकी पूजा करने के लिए कहा है। उद्देश्य यह कि इसके निमित्त प्रत्येक घर में तुलसी रहे।

(४९) रावणस्य सुतो हन्यान्मुखवारिजधारितः।

श्वसनं कसनं चापि तमिवानिलनन्दनः ॥ (वैद्यजीवन)

बहेड़ा—जिस प्रकार से अनिलनन्दन (हनुमान्) ने रावण के पुत्र (अक्ष) को नष्ट किया था उसी प्रकार रावणपुत्र (अक्ष-बहेड़ा) मुख में धारण करने पर श्वास तथा कास को नष्ट करता है ॥

(५०) शृङ्गवेररसो येन मधुना सह सेवितः।

श्वासकासभयं तस्य न कदाचित् कृशोदरी ॥ (वैद्यजीवन)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शृंगवेर—हे कृशोदरी ! आदरख का रस मधु के साथ जो सेवन करता है उसको श्वासकास का कदापि डर नहीं रहता ॥

(५१) क्षयोत्पत्तिविनाशाय सिंहास्यः सेव्यतां सदा ।
बहूनामस्य विश्वासो जातः कमललोचने ॥ (वैद्यजीवन)

वासा—हे मृगाक्षि ! क्षय की उत्पत्ति न हो तथा उसका विनाश हो इसके लिए वासक सदैव सेवन किया जाय ऐसा बहुतों को विश्वास हो गया है ।

(५२) भिन्दन्ति के कुञ्जरकुम्भपालीः, किमव्ययं वक्ति रते नवोढा ।
संबोधनं नुः किमु, रक्तपित्तं निहन्ति वामोरु वद त्वमेव ॥
(वैद्यजीवन)

हाथियों के गण्डस्थल को कौन विदीर्ण करते हैं ? (सिंहाः), नवविवाहित स्त्री रति काल में कौन सा अव्यय कहती है ? (न), नृ का संबोधन क्या है ? (नः), हे वामोरु ! तुम ही बताओ रक्तपित्त को कौन नष्ट करता है ? सिंहाननः (वासक) ।

वक्तव्य—प्रथम तीन प्रश्नों के उत्तरों को जोड़ने से चौथे प्रश्न का उत्तर मिलता है ।

(५३) पुलोमजावल्लभसूनुपत्नीतातात्मभूशेखरवाहनस्य ।
सौंदर्यदूरीकृतरामरामे कषायकः काससमीरसर्पः ॥ (वैद्यजीवन)

(१) पुलोमजा (शची) का पति इन्द्र, उसका पुत्र अर्जुन, उसकी पत्नी द्रौपदी उसका पिता द्रुपद, उसका पुत्र शिखंडी (सर्प, शिखण्ड-बर्हचूड़ा होने से उसका अर्थ साँप भी होता है), सर्प जिनके शिर का भूषण है वह महादेव, उसका वाहन वृष (अडूसा), उसका कषाय कासरूपी वायु को भक्षण करने वाला सर्प है (अर्थात् कासनाशक होता है) ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२) हे सौंदर्यातिशायी सुदर स्त्री ? शची के पति (इन्द्र) के छोटे भाई (सुनु) वासुदेव की पत्नी (लक्ष्मी) के पिता (समुद्र) के पुत्र (चन्द्र) जिसके सिर में होते हैं उस (महादेव) के वाहन (वृष) का कषाय कासरूपी वायु को भक्षण करने वाला सर्प है।

(५४) वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।

रक्तपित्ति, क्षयी, कासी किमर्थमवसीदति ॥ (वृन्दमाधव)

(वासा)—अडूसा उपलब्ध होते हुए तथा रोगी के बचने की आशा रहते हुए रक्तपित्त, क्षय और खाँसी इनके रोगी क्यों निराश होते हैं ?

वक्तव्य—रक्तपित्ती—रक्तस्रावी (Haemorrhagic) रोगों से पीड़ित।

(५५) रूपं कीदृक्कमलवदने नुःपरे सौ गिरेः स्यात्

संबुद्धिः काः मधुरवचने कोऽग्निबीजस्य षष्ठी ।

कस्य क्वाथः श्वसनशमनो वल्लभेनेति पृष्ठा

विद्वद्वन्द्या द्रुतमिदमदात्सोत्तरं नागरस्य ॥ (वैद्यजीवन)

नागरम्—हे कमलमुखी ? नृ शब्द का प्रथम (सु) विभक्ति में कैसा रूप बनता है ? (ना); गिरि के वाचक अग शब्द का संबोधन में क्या रूप है ? (अग); अग्निबीज 'र' अक्षर का षष्ठी में क्या रूप है ? (रस्य); किस औषधि का काथ श्वासनाशक होता है ? इस प्रकार पति से पूछी जाने पर उसकी विद्वद्वन्द्या पत्नी ने तुरन्त उत्तर दिया कि 'नागरस्य' (सोंठ के क्वाथ से श्वास नष्ट होता है)।

(५६) भगवान् भास्करक्षीर पामाऽहमभिवादये ।

यत्र देशे भवान् प्राप्तस्तद्देशे न व्रजाम्यहम् ॥ (वैद्यजीवन)

अर्कक्षीर—हे भगवन् अर्कक्षीर ! मैं पामा आपको अभिवादन करती हूँ। और कहती हूँ कि जहाँ पर आप रहेंगे वहाँ पर मैं नहीं जाऊँगी।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—आक त्वग्रोगों की विशेषतया खुजली (खर्जू) की खास औषधि है। इसलिए इसको 'खर्जूघ्न' भी कहते हैं। इसका दूधसमान रस प्रयुक्त होता है।

(५७) सोऽयं सुगन्धिमुकुलो बकुलो विभाति
वृक्षाग्रणिः प्रियतमे मदनैकबन्धुः।
यस्य त्वचैवचिरचर्वितयासुगाढं
दन्ता भवन्ति चपला अपि वज्रतुल्याः ॥ (वैद्यजीवन)

बकुल—हे प्रियतमे ! वृक्षों में श्रेष्ठ, कामोद्दीपक यह सुगंधी पुष्पों का बकुल वृक्ष बहुत शोभादायक होता है। इसकी छाल बहुत देर तक अच्छी तरह चबाने पर हिलने वाले दाँत वज्रतुल्य मजबूत हो जाते हैं।

(५८) सुदर्शनं चक्रमिवामरारीन् सुदर्शनं चूर्णमिदं रणाग्रे।
निहन्ति जीर्णज्वरमाशु पित्तजन्यारुजश्चूर्णयति प्रसह्य ॥
(जीवानंद)

सुदर्शनचूर्ण—जैसे देवताओं के शत्रुओं को सुदर्शन चक्र युद्ध के अगाड़ी में नाश करता है, वैसे यह सुदर्शन चूर्ण (रोग और औषधियों के) युद्ध की अगाड़ी में जीर्णज्वर तथा पित्तजन्य अन्य रोग इनको तुरन्त तथा बड़े जोर से नाश करता है।

वक्तव्य—सर्व ज्वरों का विशेषतया जीर्णज्वरों का यह शार्ङ्गधरोक्त प्रसिद्ध चूर्ण है। इसमें मुख्य द्रव्य चिरायता (Swertia chirata) है।

(५९) रसनात् सर्व धातूनां रस इत्यभिधीयते।
रसोपरसराजत्वाद् रसेन्द्र इति कीर्तितः॥

(६०) देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूत ततः स्मृतः।
रोगपङ्काब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

पारद—पारा सब धातुओं को (अपने भीतर) रस (द्रव) में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परिवर्तित करने से 'रसः'; रस उपरस इनमें राजा के समान शोभायमान होने से 'राजेन्द्र' ॥ शरीर की लोहमयसिद्धि प्रसूत होने से 'सूत' और व्याधिरूप कीचड़ के महासागर में फँसे हुए रोगियों को पार (ले जाने याने स्वस्थ करने का) दान करने से 'पारद' कहलाता है।

(६१) परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्वानाम्।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

परमात्मा में जैसे सब सत्वों का लय होता है वैसे सब (धातूपधातु आदि) का लय जिसमें होता है वह अकेला रसराज है। वह शरीर को अजरामर करता है।

(६२) आरोटो बलमाधत्ते मूर्च्छितो व्याधिनाशनम्।
बद्धेन खेचरीसिद्धिर्मारितेनाजरामरः ॥ (रसकामधेनु)

शुद्ध किया हुआ पारा बलप्रदान करता है, मूर्च्छित रोगनाशन करता है, बद्ध अन्तराल में गमन करने की सिद्धि प्रदान करता है और मृत पारा अजरामरत्व देता है।

वक्तव्य—आरोट्—सुशोधितो रसो सम्यगारोट इति कथ्यते ॥ रसरत्नसमुच्चय ॥

(६३) उपकारमेव कुरुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम्।
मूर्च्छां गतो मृतो वा रोगानपहरति पारदः सकलान् ॥
(जगन्नाथ पण्डित)

सद्गुणी मनुष्य जैसे अत्यधिक आपत्ति में होने पर भी उपकार ही करता है, वैसे पारद मृत या मूर्च्छित होने पर भी सब रोगों का हरण करता है।

(६४) असाध्यो यो भवेद्रोगो यस्य नास्ति चिकित्सतम्।
रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जो रोग असाध्य हो गया, जिसके लिए कोई औषधि नहीं रही ऐसे मनुष्य हाथी घोड़ों के रोग का पारा नाश करता है ।

(६५) अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधिभ्योऽधिको रसः ॥ (रसरत्नसमुच्चय)

अल्पमात्रा में प्रयुक्त होने से, (सेवन के समय तथा पश्चात् मुख में) अरुचि उत्पन्न होने की नौबद न आने से तथा शीघ्र आरोग्य प्रदान करने से काष्ठौषधियों से रस (तथा रस से बनाये हुए विविध योग) अधिक श्रेष्ठ होते हैं ।

(६६) शनैः शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्ते यथाबलम् ।
रसायनमिव प्राज्ञः स पुष्टिं परमां व्रजेत् ॥ (पंचतन्त्र)

अपनी शक्ति के अनुसार (उचित मात्रा में) तथा धीरे-धीरे (दीर्घकाल तक रसायन सेवन करने वाला बुद्धिमान् मनुष्य जैसे परम बलवान् बनता है, वैसे अपनी शक्ति के अनुसार राज्य का उपभोग लेने वाला बुद्धिमान् राजा परम बलवान् बनता है ।

(६७) शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वयं वित्तमुपार्जितम् ।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन ॥ (पंचतन्त्र)

बुद्धिमान् मनुष्यों को अपनी कमाई का उपभोग धीरे-धीरे दीर्घकाल तक रसायन के समान लेना चाहिए, कदापि चटपट नहीं ।

वक्तव्य—उपर्युक्त दोनों श्लोकों का तात्पर्य यह है कि यदि कोई मनुष्य रसायन से अधिक से अधिक स्वास्थ्यलाभ लेना चाहे तो उसको उसका सेवन अपने बल के अनुसार उचित मात्रा में दीर्घकाल तक करना चाहिए । शीघ्रता से लाभ उठाने के लिए अधिक मात्रा में उसका सेवन लाभप्रद के बदले हानिप्रद होगा । और शनैःशनैः क्यों सेवन करना चाहिए इसके लिए पृष्ठ ३९ देखिए ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६८) प्रतापलङ्केश्वर एष पञ्च्य प्रतापयत्यत्र निजप्रतापात् ।
गदान् धनुर्वातमुखानशेषान् लङ्केशवच्छत्रुभिरप्रसह्य ॥
(जीवानंद)

प्रताप लंकेश्वर—प्रताप लंकेश्वर (रस) को देखिए। रावण के समान शत्रुओं से अनाक्रम्य रहकर यह धनुर्वात प्रमुख सर्व रोगों को अपने प्रताप से नष्ट कर देता है।

वक्तव्य—धनुर्वात—इसको धनुस्स्तम्भ, धनुष्टंकार, धनुकबाई भी कहते हैं। मस्तिष्क-सुषुम्नापूर्वश्रृङ्गकोशिकाओं (Anterior horn cells) का यह रोग है। इसमें शरीर की आकोचक (Flexor) और प्रसारक (Extensor) पेशियाँ एक साथ उत्तेजित होती हैं जिससे शरीर तन कर कड़ा हो जाता है। इसलिए इस रोग का शास्त्रोक्त नाम 'अपतानक' (Tetanus) है और वही यथार्थ है—सोऽपतानक संज्ञोऽयः पातयत्यन्तरान्तरा ॥ सुश्रुत ॥ तन Teinein-To stretch. जब आकोचक और प्रसारक पेशियाँ सम बल से संकुचित नहीं होतीं तब धनु के समान शरीर कभी सामने (अन्तरायाम Emprosthotonus), कभी पीछे (बहिरायाम Opisthotonus) कभी पार्श्व में (पार्श्वायाम Pleurothotonus) टेढा हो जाता है और समबल संकुचित होने से शरीर डण्डे के समान (दण्डायाम Orthotonus) सीधा कड़ा होता है और कभी केवल जबड़े की पेशियाँ तनने से हनुस्तम्भ या दंतबंध (Lockjaw, Trismus) होता है। तात्पर्य, धनुस्तम्भ वास्तव में रोग नहीं, रोग की एक अवस्था है। परन्तु यही अवस्था अधिक दिखाई देने के कारण, इसकी विचित्रता के कारण 'नामैक देशे नाम ग्रहणं' इस न्याय के अनुसार इस रोग के लिए धनुर्वात या धनुष्टम्भ नाम रूढ हो गया है और 'शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी' इस न्याय से शास्त्रीय नाम पिछड गया।

प्रताप लंकेश्वर एक प्रसिद्ध रस है। रसयोगसागर में इसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दस पाठ दिये हैं। यहाँ पर उसके जो गुण कर्म वर्णन किये है उनके अनुसार यह योगरत्नाकर का पाठ मालूम होता है। यह पाठ सूतिका रोग के लिए तथा उससें उत्पन्न होने वाले धनुर्वात, हनुस्तम्भ, उन्माद इत्यादि वात रोगों के लिए तथा स्वतन्त्रतया इनके लिए बहुत लाभ प्रद है।

(६९) वसन्तकुसुमाकरः सरभसं विधत्ते रणं
सुवर्णरसभूपतिर्वशयते रूजां मण्डलम्।
प्रसहय वडवानलाभिधमिदं च चूर्णं जवाद्
विशोषयति सर्वतः प्रबलमग्निमान्द्यार्णवम्॥ (जीवानंद)

वसन्तकुसुमाकर—वसन्तकुसुमाकररस बहुत जोर से लड़ता है; सुवर्णभूपति रस सब रोगों को वश में लाता है; यह वड़वानल नामक चूर्ण बहुत शीघ्रता से अग्निमान्द्य नामक महासागर को बलात् सुखा देता है।

वक्तव्य—वसंतकुसुमाकर एक बहुत ही प्रसिद्ध रस है। इसके चार पाठ रसयोगसागर में दिये हैं, परन्तु मुख्य मुख्य द्रव्यों की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर इन पाठों में नहीं है। अतः गुणकर्म में भी कोई अन्तर नहीं। इसमें मोती, प्रवाल, सोना, अभ्रक, चांदी, नाग, वंग सबके भस्म पड़े हैं। इसलिये यह बहुत ही बल्य तथा वृष्य रसायन है।

सुवर्णभूपतिरस--इसका एक ही पाठ है। यह कोई विशेष प्रसिद्ध तथा प्रचलित रस नहीं है। वड़वानल चूर्ण—यह शार्ङ्गधरोक्त चूर्ण है और चव्यचित्रकादि अग्निदीपक द्रव्य होने से 'अत्यन्ताग्निकरत्वाद् वड़वानल संज्ञम्' है

(७०) षाड्गुण्युमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षः रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च॥

(शिशुपालवध)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(राज पक्ष में)—प्रभु शक्ति को चाहने वाले राजा को (संधि-विग्रहादि) षड्गुणी रसायन को सेवन करना चाहिए। इससे उसके (कोशदुर्गादि) अंग स्थिर तथा बलवान् (होकर शत्रु पीडन में समर्थ) हो जाते हैं।

मकरध्वज—शक्ति चाहने वाले मनुष्य को षड्गुण जारित (मकरध्वज चन्द्रोदय जैसे) रसायन को सेवन करना चाहिए। इससे उसके (हस्तपादादि) अंग स्थिर तथा बलवान् होते हैं।

वक्तव्य—षाड्गुण्यम्—संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यम् ॥ कौ—अर्थशास्त्र ॥ अंगानि—स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। कौ—अर्थशास्त्र ॥ षाड्गुण्य सेवन का 'विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत' यह कौटिल्य का सूत्र है, जिसको माघने अक्षरशः प्रथम श्लोकार्ध में ग्रहण किया और रसायन् शब्द रखकर षाड्गुण्य पर श्लेष उत्पन्न करके कौटिल्य सूत्र का अर्थ सुगम किया।

षाड्गुण्यम्—वैद्यकीय दृष्ट्या षड्गुण जारित पारद से बनाया हुआ। रसायन का यह विशेषण है। पारद का जितने अधिक बार गंधक के साथ जारण किया जाता है उतनी अधिक उसकी गुण कर्म वृद्धि हुआ करती हैं। प्रत्येक बार के गुण इस प्रकार हैं—तुल्ये तु गन्धके जीर्णे शुद्धाच्छत गुणो रसः। द्विगुणे गंधके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा ॥ त्रिगुणे गन्धके जीर्णे सर्वजाड्यविनाशनः। चतुर्गुणे तथा जीर्णे वलिपलितनाशनः ॥ गंधे पंचगुणेजीर्णे क्षयक्षयकरोरसः। षड्गुणे गंधके जीर्णे सर्वरोगहरोरसः ॥ आयुर्वेद प्रकाश। मकरध्वज या चन्द्रोदय एक सर्व परिचित, अति प्रयुक्त तथा बहुत ही प्रसिद्ध रसायन योग है। यह हृद्य (Heart tonic). हृदयोत्तेजक (Heart-stimulent) बल्य तथा वृष्य योग हैं। अतः आयुर्वृद्धि के साथ समुचित शरीर विकास न हुए बालों तथा युवकों में, अकाल वृद्ध युवकों तथा प्रौढों में, शारीरिक तथा मानसिक सर्व साधारण दौर्बल्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

से पीडितों में, हृदयदौर्बल्य तथा रक्तचापाल्पता में (Low blood-pressure), राजयक्ष्मा तथा अन्य शरीरशोषक विकारों में और स्वस्थ मनुष्यों को अधिक स्वस्थ तथा बलवान् बनाने में यह योग बहुत ही लाभ दायक होता है। 'स्थाने शमवतां' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ ३८) देखें।

(७१) नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता।
नारायणं भजत रे भवभीतिभीता
नारायणात् परतरं नहि किञ्चिदस्ति ॥ (वैद्यजीवन)

इति श्री भास्करशर्मणां गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय सुभाषित-
साहित्ये युक्तिव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयो नाम
अष्टत्रिंशोध्यायः समाप्तः।



नारायणमहौषधि—हे उदररोगपीड़ितो ! नारायण चूर्ण का सेवन करो; हे वातरोगपीड़ितो ! तुम नारायण तेल का अभ्यंग करो; हे संसारभयभीतो ? नारायण का भजन करो; तात्पर्य, (रोग कोई हो) नारायण से अधिक श्रेष्ठ कुछ भी (दूसरी कोई औषधि इस संसार में) नहीं है।

वक्तव्य—नारायण चूर्ण—अष्टांगहृदय चिकित्सा स्थान उदरचिकित्सित में यह चूर्ण दिया है—तक्रेणोदरिभिः पेयः ॥ नारायण तैल—शार्ङ्गधरोक्त प्रसिद्ध वातरोगों का तैल। नारायण नाम के संबंध में शार्ङ्गधरदीपिका में तीन कारण दिये हैं—नारायणसंज्ञा विष्णुकृतत्वात्, शतावरीसाधनाद्वा ज्ञेया नारायणीति शतावर्याः पर्यायोऽस्ति, यद्वा अत्रैवोक्तत्वात् 'यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्य विनाशनः। तथेदं वातरोगाणां

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ पक्षाघात (Hemiplegia) शैशवीय अंगघात (Infantile paralysis) तथा अन्य अंगघातों (Paralysis) में पेशीस्नायुओं का दौर्बल्य दूर करने के लिए इस तेल का बहुत उपयोग किया जाता है और इसके मर्दन से बहुत लाभ भी होता है ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां युक्तिव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयो नामः
अष्टत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

अथातो दैवव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ।

(१) दैवव्यपाश्रय—मन्त्रौषधिमणिमंगलबल्युपहारहोमनियमप्रा-
यश्चित्तोपवासस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि ॥ (चरक)

दैवव्यपाश्रय व्याख्या—मन्त्रौषधि, रत्न, मंगलकृत्य, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, शान्तिपाठ, देवताओं का पूजन, देवदर्शनार्थ तीर्थ यात्रा इत्यादि ।

(२) आधयोर्व्याधयोर्यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
तदेव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम् ॥

जिसके स्मरण से तथा नाम संकीर्तन से मानसिक तथा शारीरिक बाधाएँ तत्काल विनष्ट हो जाया करती हैं उस अनन्त को मैं प्रणाम करता हूँ ।

(३) अच्युतानन्दगोविंदनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्तिसकलारोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

अच्युत, अनन्त, गोविंद इनके नामोच्चारण रूप भेषज से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाया करते हैं यह मेरा वचन द्विवार सत्य है ।

(४) सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

सर्व रोगों का उपशमन करने वाला, सर्व उपद्रवों का नाश करने वाला और सर्व अरिष्टों की शान्ति करने वाला केवल हरिनाम संकीर्तन होता है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५) न सांब व्याधिजं दुःखं हेयं नान्यौषधिरपि ।
हरिनामौषधं पीत्वा व्याधिस्त्याज्यो न संशयः ॥

हे सांब ! व्याधियों का दुःख अन्य औषधियों से त्यक्त होने वाला नहीं है। हरिनाम रूप औषधि पीकर ही वह त्यक्त होती है इसमें संदेह नहीं।

(६) हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ (ऋग्वेद)

हे सूर्य ! मेरा हृदय का विकार तथा कामला रोग इनका नाश कर।

(७) अपचितः प्रपतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु ॥ (अथर्ववेद)

अपने निवास स्थान से जैसे गरुड़ तेजी से दूर भाग जाता है उसी प्रकार हे गण्डमाला ! तू (मेरे शरीर पर किये हुए अपने स्थान से तेजी से) भाग जा। भगवान् सूर्य उसकी औषधि करें और चन्द्रमा उसे दूर करें।

वक्तव्य—अपचितः—अपची या गण्डमाला (Scrofula)। बहुधा यह यक्ष्मज (Tuberculous) विकार होता है।

(८) आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सतं वेदविदोवदन्ति ।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविंददामोदर माधवेति ॥

वेदवेत्ताओं का कहना है कि गोविंद दामोदर और माधव ये नाम मनुष्यों के अत्यंत घातक रोगों का हरण करने वाला भेषज और संसार के (आधिभौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक इन) त्रिविध तापों का नाश करने वाला बीज मन्त्र है।

(९) विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति ॥ (चरक)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

संपूर्ण स्थावरजंगम सृष्टि के अधिपति, विश्वव्यापक, सहस्रशीर्ष होनेवाले विष्णु का स्मरण करने वाला मनुष्य ज्वरादि संपूर्ण रोगों को अपने शरीर से निकाल देता है।

वक्तव्य—सहस्रमूर्धानम्—सहस्रशीर्षः पुरुषः सहस्राक्षःसहस्रपाद॥ ऋग्वेद। नामसहस्र—महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम।

(१०) सत्येनाचारयोगेन रविमण्डलसेवया।
वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निवर्तते॥ (योगरत्नाकर)

सत्य, सदाचार, सूर्य की सेवा और वैद्य तथा ब्राह्मणों की पूजा इनसे राजयक्ष्मा का नाश होता है।

(११) भ्रमयति भवपित्तं चेद् भज भज नरसूतशेखरं कृष्णम्।
सद्गोरसेन सहसितमनुत्रुटिकं सर्वथा त्यज स्नेहम्॥
(सुश्लोकलाघव)

सूतशेखर—हे मानव ! यदि भवसागररूपपित्त तुमको चक्कर उत्पन्न करता हो तो तुम काला सूतशेखररस अच्छी गौके दूध में (घीसकर) खाण्ड और छोटी इलायची (के चूर्ण) के साथ सेवन किया करो तथा (तेल घी और अन्य) स्निग्ध द्रव्यों का पूर्णतया वर्जन करो।

दैवव्यपाश्रय—तुम संतों के उपदेश के साथ, हँसी खुशी से अर्जुन के श्रेष्ठ सारथी भगवान् श्रीकृष्ण का निरन्तर भजन करो और प्रापञ्चिक मायाममता छोड़ दो।

वक्तव्य—यह द्व्यर्थी श्लोक है। नर—(१) अर्जुन, (२) संबोधन, हे मानव ! सूतशेखर—(१) पित्त का प्रसिद्ध रस, (२) श्रेष्ठसारथी कृष्ण। सद्गोरस—(१) संतों के वचन, उपदेश (२) अच्छी गाय का दूध। सहसित—(१) स—हसित, हास्य के साथ (२) सह-सित—खांड़ के साथ। अनुत्रुटिकम्—(१) छोटी इलायची के साथ (२) प्रतिक्षण, निरन्तर—सूक्ष्मैलायां त्रुटिः स्त्री स्यात्कालेल्पे। अमरकोश।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्नेह—(१) प्रेम, माया—प्रेमाना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः। अमर-कोश ॥ (२) सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहोप्युक्तश्चतुर्विधः ॥

(१२) सुवर्णमालिनीं कृष्णामधुना भज चेद्भवः।
जीर्णज्वरो बाधते त्वां पिंडिकोद्वेष्टनादिभिः ॥

(सुश्लोकलाघव)

सुवर्ण वसंत मालती—जीर्णज्वर यदि तुमको पिण्डलियों में ऐंठन आदि लक्षणों से पीडा देता हो तो तुम पीपर और मधु के साथ सुवर्ण वसंत मालती का सेवन करो।

(*दैवव्यपाश्रय*)—भव सागर रूप जीर्ण ज्वर यदि तुम को अन्न वस्त्रादि के सम्बन्ध में पीडा देता हो तो तुम सुवर्ण मुकुट धारी दुर्गाजी का भजन करो।

वक्तव्य—यह श्लोक भी द्व्यर्थी है। सुवर्णमालिनी—(१) सुवर्ण मुकुट धारी (२) सुवर्ण मालिनी वसंत, जीर्ण ज्वर की प्रसिद्ध औषधि-गुञ्जाद्वयं क्षौद्रकमागधीभ्यां जीर्णं ज्वरे देयमिदं प्रशस्तम् ॥ कृष्णा मधुना—कृष्णाम्—अधुना। दुर्गादेवी। (२) पीपर और मधु के साथ ॥ पिण्डिकोद्वेष्टन—(१) पैर की पिंडिकाओं में ऐंठन। (२) पिण्डक, उद्वेष्टन—अन्न, वस्त्र ॥

(१३) अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम् ॥

अकाल मृत्यु नाशक और सर्व व्याधि निवारक सूर्यपादों का तीर्थ मैं सेवन कर रहा हूँ।

वक्तव्य—सूर्य नमस्कार का व्यायाम करने के पश्चात् उसका तीर्थोदक सेवन करते समय यह श्लोक बोला जाता है। सूर्य देवता का वर्णन प्रथम 'आदित्यस्य नमस्कारं' इस श्लोक में (पृष्ठ ४३) व्यायाम की दृष्टि से किया गया है। फिर 'औषधान्वेषणक्लेशैः' इस श्लोक में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(पृष्ठ ४७४) सूर्य किरणों के गुणों को किया गया है। अतः इन दोनों श्लोकों को तथा उनके वक्तव्यों को देखिए। यहाँ पर सूर्य का विचार एक पूजनीय देवता की दृष्टि से किया गया है। अपने यहाँ श्रद्धावानों के लिए कोटयवधि देवता हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुसार देवता का वरण करके पूजाअर्चा कर सकता है। परन्तु बुद्धिमानों का देवता केवल एक है और वह है भगवान् सूर्य नारायण ऐसा ऋषि मुनियों का कथन है, जिस को आधुनिक विज्ञान वादी भी मान सकते हैं—अग्नौ क्रियावतां देवो, दिवि देवो मनीषिणाम्। प्रतिमा स्वल्प बुद्धिनां योगिनां हृदये हरिः ।। पूजा प्रकाश ।। यद्यपि अपनी-अपनी इष्ट देवता की आराधना से स्वास्थ्य प्राप्ति और व्याधि निवारण हो सकता है तथापि वैदिक काल से इनकी अधिष्ठात्री देवता सूर्य ही मानी गयी है यह उपर्युक्त कुछ वचनों से तथा नीचे दिये हुए सूर्य स्तोत्रों की फल प्राप्ति के वचनों से स्पष्ट होगा। सूर्यप्रातःस्मरण स्तोत्रों में लिखा है—प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।। श्लोक त्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत्तुयः। सर्व व्याधिविनिमुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ।। सद्धर्मचिन्तामणि ।। कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम्। त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत् ।। सूर्य कवच ।। दद्रुस्फोटक कुष्ठानि मण्डलानि बिसूचिका। सर्वव्याधि महारोग भूत बाधास्तथैव च ।। ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वरातीसारकादयः। जपमानस्य नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम् ।। भविष्योत्तर पुराणोक्त आदित्य हृदय स्तोत्र ।। महाकवि बाण भट के श्वशुर मयूर भट्ट महा रोग से पीडित हुए तब आपने सूर्य की कड़ी आराधना की और उससे वे रोग निर्युक्त हो गये। उनका 'सूर्यशतक' प्रसिद्ध काव्य है।

(१३) भक्त्या मातापितॄणां च गुरूणां पूजनेन च।
ब्रह्मचर्येण तपसा सत्येन नियमेन च ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(१५) जपहोम प्रदानेन वेदानां श्रवणेन च ।
ज्वराद्विमुच्यते शीघ्रं साधूनां दर्शनेन च ॥ (चरक)

माता पिता की भक्ति करने से, गुरूओं की पूजा करने से, ब्रह्मचर्य पालन से, तपस्या करने से, सत्य भाषण से, नियमों का पालन करने से, ॥ जप होम तथा दान करने से, वेदों का श्रवण करने से और साधु संतों का दर्शन करने से रोगी ज्वर (रोग) से मुक्त होता है ॥

(१६) अश्रद्धा परमं पापं, श्रद्धा पापप्रमोचनी ।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णामिव त्वचम् ॥
(महाभारत)

श्रद्धा—अश्रद्धा महापाप है, श्रद्धा पापों से मोक्ष करने वाली है; जो श्रद्धावान् होता है वह साँप जैसे केंचुली को छोड़ देता है वैसे पापों को छोड़ देता है ।

वक्तव्य—जीर्णत्वक-निर्मोक, कञ्चुकी या केंचुली । पाप-व्याधि भी इसका अर्थ है ('रोगः पाप्मा' श्लोक देखिए) । इसके अनुसार 'अश्रद्धा महाव्याधि है, श्रद्धा व्याधिनिवारक है, जो श्रद्धावान् होता है वह साँप जैसे अपनी केंचुली रूप व्याधि से मुक्त होता है वैसे अपनी व्याधियों से मुक्त होता है ।

उपर्युक्त वचनों में दैवव्यपाश्रय भेषज वर्णित है । ये भेषज आस्तिक, श्रद्धावान् दुर्बल मन के, पाप भीरू, कातर (Nervous) रोगियों की चिकित्सा में बहुत उपकारक होते हैं, क्योंकि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का मुख्य अधिष्ठान श्रद्धा है । साधारणतया मनुष्य श्रद्धावान् होता है और जब उसपर आपत्ति आ जाती है तब वह अधिक श्रद्धावान् बनता है और जो अश्रद्धावान् होता है उसमें कुछ न कुछ श्रद्धा जरूर उत्पन्न होती है । 'आर्ता देवान् नमस्यन्ति' श्लोक (पृष्ठ ३८२) और उसका वक्तव्य देखिए । अतः रोगी की मनोवृत्ति तथा श्रद्धा का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अवलोकन कर उपर्युक्त भेषजों में से एकाध भेषज का उपयोग स्वतन्त्रतया या युक्तिव्यपाश्रय भेषजों के साथ करने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि इनके प्रयोग से किसी प्रकार का अपाय होने की आशंका नहीं होती। प्रत्युत अनेक रोगियों में युक्तिव्यपाश्रय भेषज चिकित्सा की सफलता में प्रकर्ष दिखाई देता है। 'देवेतीर्थे' श्लोक (पृष्ठ ४५५) देखिए। युक्तिव्यपाश्रय भेषज रोगानुसार होने से भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न अर्थात् रोगविशिष्ट होता है, इसके विपरीत दैवव्यपाश्रय भेषज रोगी की श्रद्धानुसार होने से भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न अर्थात् रोगीविशिष्ट होता है। इसलिए जब एक ही रोग से अनेक व्यक्ति पीड़ित हो जाते हैं तब दैवव्यपाश्रय भेषज प्रत्येक रोगी में भिन्न होते हुए युक्तिव्यपाश्रय भेषज रोगियों में एक ही हो सकता है। इसके विपरीत जब एक ही व्यक्ति समय-समय पर भिन्न-भिन्न रोगों से पीड़ित हो जाती है तब प्रत्येक समय युक्तिव्यपाश्रय भेषज भिन्न होते हुए भी दैवव्यपाश्रय एक ही रह सकता है। इससे इन दोनों का पार्थक्य स्पष्ट हो जायगा।

(१५) पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः ॥ (स्मृतिरत्नाकर)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय सुभाषित-
साहित्ये दैवव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयो नाम
एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः।



पूर्व जन्म में कृत पाप इस जन्म में व्याधि के रूप में पीड़ा देता है। उसकी शान्ति दान, तप, जप, होम, पूजापाठ इत्यादि (दैवव्य-पाश्रय) औषधियों से हुआ करती है।

CC-0 Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—व्याधि—ऐसी व्याधि को 'कर्मज' कहते हैं। पृष्ठ ३४१ पर 'वैद्या वदन्ति' श्लोक तथा पृष्ठ ३३५ का वक्तव्य देखिए। अल्प हेतु से महाव्याधि की उत्पत्ति और उचित चिकित्सा से ठीक सफलता न मिलना कर्मज व्याधियों के लक्षण होते हैं। औषधैः-युक्तिव्यपाश्रय औषधि जप होमादि के साथ अथवा जपहोमादि दैवव्यपाश्रय औषधि दोनों अर्थ कर सकते हैं। रोगी की श्रद्धा या इच्छा तथा कर्मज व्याधि ये दैवव्यपाश्रयभेषज प्रयुक्त करने के दो कारण होते हैं।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां दैवव्यपाश्रयभेषजविज्ञानीयो नाम
एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चत्वारिंशोऽध्यायः।

अथातः सत्वावजयभेषजविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) सत्वमुच्यते मनः। तच्छरीरस्य तन्त्रकमात्मसंयोगात्।
सत्वावजयः—पुनरहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनोनिग्रहः॥ (चरक)

सत्वावजय व्याख्या—सत्व को मन कहते हैं। वह मन आत्मा के साथ संयुक्त होकर शरीर के सब कार्यों का प्रेरक होता है। अहितकर अर्थों से मन का नियन्त्रण सत्वावजय होता है।

वक्तव्य—अहितेभ्योऽर्थेभ्यः—मनोनिग्रह का यह निषेधात्मक स्वरूप है। उसका विध्यर्थक भी स्वरूप होता है। परन्तु अहितकर अर्थों से विन्मुखता यही मनोनिग्रह की प्रधानता या कसौटी (Test) होने से केवल उसी का निर्देश किया गया है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय या अर्थ होते हैं और इन अर्थों का ग्रहण इन्द्रियों के द्वारा तब होता है जब मन उनके पीछे रहता, अन्यथा नहीं होता—मनःपुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति॥ चरक॥ चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा न तु चक्षुषा। मनसा व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति॥ महाभारत॥ अन्यत्र मना अभूवं नादर्शमन्यत्र मना अभूवं ना श्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति॥ बृहदारण्यकोपनिषद्॥ इस प्रकार अर्थग्रहण का कार्य मन से ही होने के कारण अहितकर अर्थों का वर्जन मन से ही अर्थात् मनोनिग्रह से ही हो सकता है।

(२) अनन्तस्यात्मतत्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मनः।
सङ्कल्पशक्तिरचितं यद्रूपं तन्मनो विदुः॥ (योगवासिष्ठ)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मनव्याख्या—अनंत सर्वशक्तिमान् महान् आत्मा की संकल्पशक्ति से रचित रूप को मन कहते हैं।

(३) आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ (कठोपनिषद्)

मन का महत्व—आत्मा को स्वामी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को प्रग्रह (लगाम) समझे।

(४) इन्द्रियाणि हयान्याहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ (कठोपनिषद्)

विचारी लोग इन्द्रियों को (शरीररूपी रथ के) घोड़े, विषय उनके मार्ग (जिनपर सेन्द्रिय शरीररूपी रथ चलता है) और मन एवं इन्द्रिय सहित आत्मा को भोक्ता कहते हैं।

(५) यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ (कठोपनिषद्)

निग्रहयुक्त मन से जो विज्ञानी होता है उसकी इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा सारथि के अच्छे घोड़े के समान वश में रहती हैं।

(६) यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥ (कठोपनिषद्)

अनिग्रहयुक्त मन से जो अज्ञानी होता है उसकी इन्द्रियाँ सदा-सर्वदा सारथि के खराब घोड़े के समान वेबस हुआ करती हैं।

(७) तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति॥ (योगवासिष्ठ)

वृक्ष भी जीवित रहते हैं तथा प्राणी और पक्षी भी जीवित रहते हैं (परन्तु इस जीवित में कुछ भी अर्थ नहीं) वस्तुतः वही जीवित है जिसका मन (हिताहित, पथ्यापथ्य, धर्म्याधर्म्य इत्यादि के विषय में)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मनन करता हुआ (तथा तदनुसार अपना निग्रह करता हुआ) जीवित (जागरूक) रहता है।

(८) चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् ।
यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत्सनातनम् ॥

चित्त ही संसार है, अतः उस (के गुणावगुणों) का संशोधन करना चाहिए। (सात्विक, राजस, तामस) जैसा भी मन होता है वैसा मनुष्य (का व्यवहार) होता है यह सनातन गुह्य है।

(९) मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम् ।
मनोऽनुरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः ॥ (नारदपञ्चरात्र)

मनुष्यों के सब कर्मों का आदि कारण मन ही होता है। अतः मन के स्वरूपानुसार मनुष्य का भाषण होने से भाषण से मन (का स्वरूप) स्पष्ट होता है॥

(१०) आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ (मनु)

मनोज्ञान के बाह्य लक्षण—स्वरूप, इङ्गित, गति, चेष्टा, भाषण, नेत्र-विकार, मुखविकार इन (के सूक्ष्म परीक्षण) से भीतर के मन का पता लग जाता है॥

(११) बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम् ।
स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥ (मनु)

(इसलिए) स्वर, वर्ण, इङ्गित, स्वरूप, नेत्रविकार, चेष्टा इत्यादि बाह्य लक्षणों से मनुष्यों के अन्तर्गत (मानसिक) भावों को जान लेना चाहिए॥

(१२) आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ (रामायण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

छिपाने का प्रयत्न करने पर भी मुखाकृति छिप नहीं सकती, वह मनुष्यों के अन्तर्गत (मानसिक) भाव न चाहने पर भी प्रकट किया करती है।

वक्तव्य—नेत्र वक्त्रादि के ऊपर प्रकट होने वाले लक्षणों से भीतरी प्रकृति विकृति का (अर्थात् मन का) पता लगाने का एक शास्त्र है जिसको इङ्गितविज्ञान (Physiognomics) कहते हैं। उत्कृष्ट स्वास्थ्य का प्रधान लक्षण 'प्रसन्नात्मेन्द्रियमनस्कता' (पृष्ठ २७ पर 'समदोषः' श्लोक देखिए) और रोग या दोषवैषम्य के प्रारम्भ का मुख्य लक्षण 'अप्रसन्नेन्द्रियता' है—दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत्। अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलोभिषक ॥ सुश्रुत ॥ इनके आधार पर प्रारम्भ में ही रोग का पता लगाने का काम, जो रोगनिर्मूलन की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त होता है, केवल इङ्गितज्ञ (Physiognomist) वैद्य ही कर सकता है। इसके अतिरिक्त न बोलने वाले बालकों के रोगों के निदान में, बड़े रोगियों में मद्य-मांससेवन, अति व्यवाय, वेश्यागमन इत्यादि रोग के हेतु, जिनको बताने में रोगी स्वयं झिझकते हैं, परन्तु इनके सम्बन्ध में विचारणा करने पर जो नेत्रवक्त्रविकारों से तथा उनके भाषण से अनुमानित किये जा सकते हैं, मालूम कर लेने में, आत्महत्या-परहत्यादि के लिए विष-प्रयोगादि का पता लगाने में इङ्गितविज्ञान बहुत उपयोगी होता है—इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः। विद्याद्विषस्य दातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ सुश्रुत ॥ इसलिए अपने व्यवसाय में अधिक सफलता प्राप्त होने की दृष्टि से चिकित्सक को रोगविज्ञान के साथ इङ्गित-विज्ञान का भी अच्छा परिचय कर लेना चाहिए। बलात्—भीतरी भाव को दबाने का प्रयत्न करने पर भी उसको विफल करके।

मुखाकृति से भीतरी भाव जानना दिलीप, रामचन्द्र जी जैसे अलौकिक पुरुषों में अशक्य होता है—तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकार-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ङ्गितस्य च। रघुवंश॥ आहुतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥ रामायण। लुच्चे-लफंगे, छद्मरोगी रूढापराधी इनमें भी मुखाकृति से भाव जानने में जरा कठिनाई होती है।

(१३) अपश्यन्काष्ठरन्ध्रस्थवृषणाक्रमणं यथा।

कीलोत्पाटी कपिर्दुःखमेतीदं हि तथा मनः॥ (योगवासिष्ठ)

लकड़ी के दरार में गये हुए वृषण पर आनेवाले आक्रमण को न देखकर उसके भीतर की पच्चर को उखाड़ने (का अव्यापारेषु-व्यापार करने) वाला बंदर जैसे दुःखित होता है वैसे मन (कहीं न कहीं अव्यापारेषु व्यापार करके) दुःखित होता है।

वक्तव्य—कीलोत्पाटी—अव्यापारेषु व्यापारो यो नरः कर्तुमिच्छति। स एव निधनं याती कीलोत्पाटीव वानरः॥ पंचतन्त्र॥

(१४) मनः प्रमादाद्वर्धन्ते दुःखानि गिरिकूटवत्।

तद्वशादेव नश्यन्ति सूर्यस्याग्रे हिमं यथा॥ (योगवासिष्ठ)

मनोनिग्रह में मन का महत्व—मन के प्रमादों से पहाड़ों के समान दुःख बढ़ते हैं और उसी के निग्रह से सूर्य के सामने जैसे बर्फ वैसे वे नष्ट हो जाते हैं।

(१५) संसारस्यास्य दुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः।

उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहः॥ (योगवासिष्ठ)

सर्वप्रकार से उपद्रव देनेवाले इस संसार के दुःख (निवारण) का एकमात्र उपाय अपने मन का निग्रह है।

(१६) मनो, मधुकरो, मेघो, मानिनी, मदनो, मरुत्।

मा, मदो, मर्कटो, मत्स्यो मकारा दश चञ्चलाः॥

दश चञ्चल मकार—मन, भृङ्ग, मेघ, मानिनी स्त्री, मदन, वायु, लक्ष्मी, मद, बंदर और मछली ये दश चञ्चल मकार हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मा—लक्ष्मी—इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा । अमरकोश ।। मद—पागलपन या नदी ।

(१७) चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।। (गीता)

हे कृष्ण ! मन चञ्चल, कष्टदायक और (वश में लाने में) अत्यन्त कठिन है । उसका निग्रह करना वायु के निग्रह के समान दुष्कर है ।

(१८) रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः ।
रसो बद्धो मनोबद्धं किं न सिद्ध्यति भूतले ।। (हठयोगप्रदीपिका)

पारद और मन दोनों स्वभाव से अत्यन्त चञ्चल होते हैं । परन्तु जब पारद और मन बद्ध (करने में मनुष्य सफल) होता है तब इस संसार में क्या नहीं साध्य हो सकता ?

(१९) असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।। (गीता)

हे महाबाहो कौन्तेय ! मन निःसंशय निग्रह के लिए कठिन तथा चञ्चल है परन्तु अभ्यास और वैराग्य से उसका निग्रह होता है ।

वक्तव्य—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। योगसूत्र ।।

(२०) मन एव समर्थं वो मनसो दृढनिग्रहे ।
अराजा कः समर्थः स्याद् राज्ञो राघव निग्रहे ।। (योगवासिष्ठ)

मन का दृढ़ नियन्त्रण करने में केवल मन ही समर्थ होता है । हे राघव ! राज्य करना जो नहीं जानता वह दूसरे राजा का नियन्त्रण कैसे कर सकता है ।

वक्तव्य—इस श्लोक में 'कण्टकेनैव कण्टकम्' 'Diamond cut diamond' यह राजनीति का सिद्धान्त बतलाया है—गजानां पङ्कमग्नानां गजा एव धुरंधराः ।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२१) मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयासंगि मोक्षे निर्विषयं मनः ॥ (अमृतबिन्दूपनिषद्)

मनुष्यों के बन्धमोक्ष के लिए मन ही कारण है, बन्ध के लिए विषयासक्त और मोक्ष के लिए अनासक्त मन कारण होता है।

(२२) मनो हि जगतां कर्तृ, मनो हि पुरुषः परः ।

मनःकृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम् ॥ (योगवासिष्ठ)

मन ही जगत् का कर्ता है, मन ही परम पुरुष है, अतः इस लोक में मनुष्य के द्वारा किया हुआ कर्म मनःकृत होता है, शरीरकृत नहीं।

वक्तव्य—शास्त्रदृष्ट्या परम पुरुष या आत्मा कर्ता होता है, मन नहीं; मन केवल क्रियावान् होता है—चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते। अचेतनत्वाच्च मनः क्रियावदपि नोच्यते ॥ चरक ॥ परन्तु ऐहिक व्यवहार की दृष्टि से मन ही कर्ता है यह व्यावहारिक तत्व इस श्लोक में बताया है।

(२३) मनसैव कृतं पापं न शरीरकृतं कृतम् ।

येनैवालिंगिता कान्ता तेनैवालिंगिता सुता ॥

मन से ही किया हुआ पाप पाप होता, शरीर से किया हुआ नहीं होता; जिस (शरीर) से कान्ता आलिंगित होती है उसी से कन्या भी।

वक्तव्य—मनसैवकृतम्—कायिक, वाचिक व मानसिक त्रिविध कर्म करने से पहले उसका संकल्प प्रथम मन में होता और तदनुसार कर्म होते हैं। इसलिए कायिक पाप का उत्तरदायित्व काय के ऊपर न होकर मन पर ही होता है—कायेन कुरुते पापं मनसा संप्रधार्य तत् ॥ रामायण ॥

(२४) अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहिताऽन्यथा ।

अन्यथैव सती पुत्रं चिन्तयेदन्यथा पतिम् ॥ (पद्मपुराण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एक भाव से कान्ता को आलिंगन दिया जाता है, कन्या को दूसरे भाव से दिया जाता है। वैसे ही सती एक भाव से पुत्र का और दूसरे भाव से पति का चिन्तन करती है।

वक्तव्य—भाव—कान्ता को आलिंगन देते समय पति के मन में और पति का चिन्तन करते समय पत्नी के मन में कामुक भाव होता है और कन्या को आलिंगन देते समय पिता के मन में और पुत्र का चिन्तन करते समय माता के मन में वात्सल्य भाव होता है। इसलिए कायिक तथा मानसिक कर्म एक होते हुए भी पाप-पुण्य की दृष्टि से उनके फल भिन्न हुआ करते हैं।

(२५) भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु।
मनसा भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ॥ (पद्मपुराण)

मनुष्य द्वारा किये जानेवाले सर्व कर्मों में मनोभावना की पवित्रता सर्वश्रेष्ठ पवित्रता का प्रमाण होता है। क्योंकि कर्म करने की वस्तु एक होने पर भी प्रत्येक कर्म के समय उसके पीछे की भावना मन के कारण भिन्न-भिन्न हो सकती है।

वक्तव्य—अभिन्नेष्वपि वस्तुषु—पिता द्वारा कन्या को दिया हुआ आलिंगन और माता द्वारा पुत्र का किया हुआ चिन्तन जब मन में वात्सल्य भाव रखकर होता है तब वह कर्म निष्पाप और जब कामुक भाव रखकर होता है तब वह पाप होता है।

मनुष्य अपनी ज्ञान तथा कर्म की इन्द्रियों द्वारा जो भी कर्म किया करता है उन कर्मों की धर्म्याधर्म्यता उनके स्वरूप (जैसे, आलिंगन और चिन्तन) पर जितनी अधिष्ठित है उसकी अपेक्षा उनके करने के पीछे जो मनोभावना रहती है उस पर अधिक अधिष्ठित होती है यह तत्व स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्ध के दो उदाहरण देकर उपर्युक्त वचनों में प्रतिपादित किया है; और सीताशुद्धि के लिए रावण के अन्तःपुर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

की सब स्त्रियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवाले महावीर हनुमान् जी के निम्न वचन से व्यावहारिक दृष्ट्या उसकी पुष्टि हो जाती है।

(२६) मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥ (रामायण)

हनुमान् जी कहते हैं--शुभ तथा अशुभ सब अवस्थाओं में सब इन्द्रियों का प्रेरक मन ही होता है और वह मेरा मन सुनिग्रहयुक्त है।

वक्तव्य—सुव्यवस्थितम्--सुनियन्त्रित, अतएव स्त्रियों को देखते हुए भी कामुकता-विरहित, अतएव निष्पाप ॥

अशोक वन में रावण की स्त्रियों की ओर देखते समय मैं पाप तो नहीं कर रहा हूँ इस प्रकार की शंका उनके मन में उत्पन्न हुई उसकी सफाई वे ऊपर के वचन से दे रहे हैं। पुरुष प्रायः कामुक दृष्टि से स्त्रीसमुदाय की ओर देखते हैं। परन्तु बिलगा हुआ बालक स्त्रीसमुदाय में जाकर माता को ढूंढने के लिए उनकी ओर जिस दृष्टि से देखता है उसी दृष्टि से हनुमान् जी माता जानकी को ढूंढने के लिए रावण की स्त्रियोंकी ओर देखते रहे। इसलिए अन्य पुरुषों की और हनुमान् जी की देखने की क्रिया एक होने पर भी हनुमान् जी निष्पाप रहे।

(२७) चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः संभवन्ति ॥
(अवधूतगीता)

धातुनिर्मित शरीर चित्ताधीन होता है और चित्त (स्वास्थ्य) का नाश होने पर धातुनिर्मित शरीर का भी नाश होता है। इसलिए सर्वदा चित्त का रक्षण करना चाहिए। चित्त स्वस्थ होने पर धातु भी स्वस्थ होते हैं।

(२८) हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च।
अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥ (मुक्तिकोपनिषद्)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हाथ से हाथ को दबाकर, दाँतों से दाँतों को पीसकर और अंगों से अंगों को आक्रान्त कर सर्वप्रथम मन को जीत लेना चाहिए।

वक्तव्य—हस्तं हस्तेन—इस अलंकारिक वर्णन का अर्थ 'प्रयत्न की पराकाष्ठा करके' ऐसा है, अन्यथा हाथ दबाने से दाँत पीसने से या अन्य किसी भी शारीरिक क्रिया से, वह कितनी भी बलवान् क्यों न हो, मन वश में आनेवाला नहीं है। यह श्लोक योगवासिष्ठ में भी मिलता है। उसका अन्तिमपाद 'जयेच्चेन्द्रियशात्रवान्' ऐसा है। इन्द्रियशत्रुओं को जीतने का काम मन से ही होता है। अतः एक मन को जीतने से सब इन्द्रियों को जीतने का काम होता है।

(२९) न शक्यते मनो जेतुं विना युक्तिमनिन्दिताम्।
अङ्कुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः॥ (मुक्तिकोपनिषद्)

जैसे मदमत्त गज अंकुश के बिना जीतना अशक्य होता है वैसे शास्त्रविहितयुक्ति (रूप अंकुश) के बिना मन को जीतना अशक्य होता है॥

वक्तव्य—युक्ति—मन का निग्रह शक्ति से नहीं होता, युक्ति से होता है। उनको नीचे के वचन में बतलाया है।

(३०) अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसङ्गतिरेव च।
वासना संपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्
एतास्तु युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल॥

(मुक्तिकोपनिषद्)

मनोनिग्रहयुक्तियाँ—अध्यात्मविद्या का अभ्यास, सज्जनसङ्गति, वासना परित्याग और प्राणायाम ये चार बलवान् युक्तियाँ चित्तजय में उपयुक्त होती हैं।

वक्तव्य—वासना परित्याग—मलिन वासनाओं का त्याग—वासना-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा। मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी। मुक्तिकोपनिषद् ॥

(३१) चित्तमिन्द्रियसेनाया नायकं तज्जयाज्जयः।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः ॥ (योगवासिष्ठ)

जैसे चमड़े का जूता पहनने से सर्वभूमि चर्मावृत हो जाती है वैसे इन्द्रियसेना का नायक होने से मन को जीतने से सब इन्द्रियों पर जीत हो जाती है।

(३२) जिते मनसि सर्वत्र विजिता इन्द्रियावलिः।
शीर्यते च यथा तन्तौ दग्धे मौक्तिकमालिका ॥ (योगवासिष्ठ)

मन को जीतने पर सब इन्द्रिय सेना पर जीत हो जाती है, जैसे माला के तन्तु जल जाने पर संपूर्ण माला के मोती शीर्ण हो जाते हैं।

वक्तव्य—इस वचन का तात्पर्य यह है कि 'यथा राजन् हस्तिपदे पदानि संलीयन्ते सर्वसत्वोद्भवानि' (महाभारत) तथा एक मन के निग्रह में सब इन्द्रियों का निग्रह हो जाता है, प्रत्येक इन्द्रिय का अलग-अलग निग्रह करने की आवश्यकता नहीं होती।

(३३) श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ (मनु)

जितेन्द्रियव्याख्या—(स्तुति या निंदा) सुनकर, (मृदु या कठिन, शीत या तप्त) स्पर्श अनुभव कर, (सुरुप या कुरुप) देखकर, (मीठे या कड़वे खाद्य) खाकर, (सुगंध या दुर्गंध) सूँघकर जो मनुष्य हर्षित या दुःखित नहीं होता वही जितेन्द्रिय या सत्वावजयी होता है।

(३४) तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान्।
न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ (भागवत)

जितेन्द्रियत्व की कसौटी जिह्वाजय—अन्य सब इन्द्रियों को जीतने-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वाला मनुष्य जब तक रसनेन्द्रिय को नहीं जीतता है तब तक वह जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता; उसके जीतने पर ही सब (इन्द्रियों पर) जीत है (अन्यथा नहीं) ।।

वक्तव्य—अन्य इन्द्रियों की तुलना में रसनेन्द्रिय को जीतना अधिक कठिन कर्म है। इसलिए जितेन्द्रियत्व प्राप्त करने के लिए जैसे रसनेन्द्रिय या जिह्वा पर जय प्राप्त करना आवश्यक होता है वैसे जितरोगत्व अर्थात् रोगमुक्ति प्राप्त करने के लिए जिह्वालौल्य पर जय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(३५) जिह्वे ! प्रमाणं जानीहि भोजने भाषणेऽपि च ।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी ॥

जिह्वा का महत्व—हे जिह्वे ! भोजन तथा भाषण में भी प्रमाण का ज्ञान रख। क्योंकि अतिभोजन तथा अतिभाषण दोनों तत्काल प्राणहारक हो (सक) ते हैं ॥

(३६) विषामृतयोराकरी जिह्वा ॥ (चाणक्यसूत्र)

जिह्वा विष और अमृत दोनों (को प्राप्त करने) की खान है।

(३७) जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ (चाणक्यसूत्र)

(मनुष्यों का) उत्कर्ष और विनाश (दोनों उनकी) जिह्वा के अधीन होते हैं ॥

(३८) जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्‌बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ (भागवत)

जैसे (जिह्वालौल्य के कारण) काँटियों में फँसकर मछली मर जाती है वैसे रसों के लालच में फँसा हुआ दुर्बुद्धि मनुष्य खाने-पीने में अत्याचार करनेवाली जिह्वा के द्वारा मर जाता है।

(३९) जिह्वालौल्यप्रसक्तानां जलमध्यनिवासिनाम् ।
अचिन्तितो वधोऽज्ञानां मीनानामिव जायते ॥ (पंचतन्त्र)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जल के भीतर निवास करनेवाली जिह्वालौल्यप्रसक्त मछलियों का (काँटियों में फँसकर) जैसे अनपेक्षित (या अकस्मात्) नाश हो जाता है वैसे जिह्वा की इच्छा के अनुसार अनापसनाप खाने में आसक्त मूर्ख मनुष्यों का (अनेक रोगों में फँसकर) अकस्मात् (अकाल में) नाश होता है।

(४०) संतोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यो दाने तपसि पाठने ॥ (वृद्धचाणक्य)

स्त्री (समागम), अन्न (सेवन), और धन (अर्जन) इनमें सदैव संतोष से काम लेना चाहिए। (इसके विपरीत) दानधर्म, तपाचरण और अध्ययन-अध्यापन इनमें कदापि संतोष न करना चाहिए।

(४१) धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु।
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥
(वृद्धचाणक्य)

(यदृच्छया प्राप्त) धन, ऐहिक जीवन, स्त्रीसेवन और अन्नसेवन इनसे जो सदैव असंतुष्ट रहे वे (दुःखी कष्टी होकर अकाल में इस संसार से) चलते भये, चलते रहेंगे और चलते जा रहे हैं।

वक्तव्य—उपर्युक्त वचनों का तात्पर्य यह है कि दीर्घजीवी और स्वस्थ रहने के लिए स्वस्थ मनुष्य को तथा रोगमुक्त होने के लिए रोगी को स्त्रीसेवन और अन्नसेवन में मनोनिग्रह से काम लेना चाहिए।

(४२) गृहरूपं मनोऽस्माकं स्वच्छं शान्तं भवेद्यथा।
तत्परेण मनुष्येण प्रयत्नः क्रियतां तथा ॥

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीयसुभाषित-
साहित्ये सत्वावजयभेषजविज्ञानीयो नाम
चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गृहरूप हमारा मन जिस प्रकार स्वच्छ और शान्त हो इस प्रकार मनुष्य को तत्पर होकर प्रयत्न करना चाहिए।

वक्तव्य—स्वच्छं शान्तम्—मनका निग्रह किये बिना मन स्वच्छ और शान्त नहीं होता। अतः मनोनिग्रह का प्रयत्न करना चाहिए।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां सत्वावजयविज्ञानीयो नाम
चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथातः शस्त्रप्रणिधानविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) शस्त्रप्रणिधानं पुनश्छेदनभेदनव्यधनदारणलेखनोत्पाटन-
प्रच्छनसीवनैषणक्षारजलौकसश्चेति ॥ (चरक)

शस्त्रप्रणिधान—छेदन, भेदन, व्यधन, दारण, लेखन, उत्पाटन, प्रच्छन, सीवन, एषण (Probing) क्षारकर्म (अग्निकर्म Cautery) और जलौका (इनका यथास्थान उपयोग) शस्त्रप्रणिधान है।

(२) असाध्यमन्यथा दोषं परिच्छिद्य शरीरिणः।
यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति ॥ (महावीरचरित)

शारीरिक रोग अन्य उपायों से असाध्य हैं इसका निर्णय कर चुकने पर जैसे वैद्य हाथ में शस्त्र ले (कर उसकी चिकित्सा कर) ता है वैसे (शत्रु सामसाध्य नहीं है इसका निर्णय कर चुकने पर) राजा शस्त्रधारण (करके शत्रु को ठीक) करता है।

(३) स्वहस्तोऽपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ (चाणक्यसूत्र)

हाथ (या अन्य अंग) अपना होने पर भी यदि वह विषाक्त हो जाय तो काटना ही श्रेयकर होता है।

वक्तव्य—विषदिग्ध—जैसे, सर्पदष्ट, शुष्क या आर्द्रकोथ (Gangrene) युक्त।

(४) विषदिग्धस्य भक्तस्य, दन्तस्य चलितस्य च।
अमात्यस्य च दुष्टस्य मूलादुद्धरणं सुखम् ॥ (हितोपदेश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चलदन्तचिकित्सा—विषदूषित अन्न, (बहुत) हिलनेवाला दाँत, और दुष्ट अमात्य इनके निर्मूलन में ही सुख है।

वक्तव्य—जब मसूढ़े ढीले होने के कारण दाँत कुछ ढीले होते हैं तब बकुल-बब्बुलादि के चर्वण से (पृष्ठ ४६६ पर 'सोयंसुगन्धिमुकुलो' श्लोक देखिए) वे ठीक हो सकते हैं। परन्तु जब मसूढ़ा ठीक है और दाँत बहुत हिलता है तब उसको निकाल देना चाहिए।

(५) निपीडिता वमन्त्युच्चैरन्तसारं महीपते।

दुष्टव्रणा इव प्रायो भवन्ति हि नियोगिनः ॥ (हितोपदेश)

व्रणचिकित्सा—हे राजन्! मन्त्री दुष्टव्रण के समान होते हैं, जो दबाने पर बहुत अन्तःसार को बाहर निकालते हैं।

वक्तव्य—अन्तःसार—(१) राजा की दृष्टि से धन अन्यायोपार्जित। (२) व्रण की दृष्टि से पूय पूयजनकजीवाणुजनित। दुष्टव्रणाः—पूय-जनक जीवाणुओं (Pyogenic bacteria) के उपसर्ग से शुद्ध व्रण दुष्ट या पूतिक (Septic) हो जाता है और वह 'पूतिपूयपूर्ण' तथा 'पूतिपूयास्रावी' (सुश्रुत) बनता है। 'मक्षिका व्रणमिच्छन्ति' श्लोक का वक्तव्य देखिए।

(६) मुहुर्नियोगिनो बाध्या वसुधारा महीपते।

सकृत् किं पीडितं स्नानवस्त्रं मुञ्चेद् द्रुतं पयः॥ (हितोपदेश)

ऐसे धन धारण करने वाले मन्त्रियों को बार बार दबाना चाहिए। स्नान के समय भीगा हुआ वस्त्र एक बार निचोडनेसे तुरन्त सर्व जल क्योंकर छोडेगा।

वक्तव्य—वसुधारा— वसु धनं धारयन्तीति—वसु तोये धने मणौ॥ वैजयन्ति। बाध्याः—बोध्याः ऐसा भी पाठ है। प्रथम के अनुसार बार बार उनको दबाना चाहिए जिससे यदि कोई धन संचित हुआ हो तो वह निकल आवे। पाठ भेद के अनुसार बीच बीच में उनके धन संचय के संबंध में निर्धारण (Ascertaining) करना चाहिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उपर्युक्त दो वचनों में अन्यायोपार्जित धन से दूषित हुए मन्त्रियों तथा अधिकारियों को दोष रहित करने के लिए जो चिकित्सा बतलायी है वह दूषित व्रण चिकित्सा पर अधिष्ठित है। अन्याय से धनापहरण करना मनुष्यों का स्वभाव है। सामान्य मनुष्यों को इसके मौके बहुत कम मिलते हैं, परन्तु बड़े-बड़े अधिकारियों और मन्त्रियों को इसके अनन्त मौके मिलते हैं और पानी में रहनेवाली मछली के पानी पीने के समान ये लोग कब, कितना और कैसे जनता को लूटते हैं इसका पता नहीं चलता—मत्स्या यथाऽन्तस्सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः। युक्तास्तथाकार्यविधौ नियुक्ताःज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥ कौ० अर्थशास्त्र ॥ अतः इनको समय समय पर दबाकर तथा समय समय पर इनके ऊपर ध्यान देकर ठीक रखना चाहिए—आस्रावयेच्चोपचितान् विपर्यस्येच्च कर्मसु। यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥ कौ० अर्थशास्त्र ॥ वर्तमान काल में यह कितना जरूरी है कहने की आवश्यकता नहीं। व्रण को निर्दोष करने का ठीक यही कर्म होता है। अधिकारियों के समान व्रण कब दूषित होगा इसका पता नहीं चलता, क्योंकि उसको दूषित करनेवाले जीवाणु अति सूक्ष्म होते हैं। अतः इसके ऊपर सदैव ध्यान देना चाहिए, यदि पूय हुआ तो उसको दबा दबा कर निकालना चाहिए और जब तक पूय निकलता है तब तक प्रतिदिन यह कार्य करना चाहिए और शरीर खड़े होने की स्थिति में व्रणमुख ऊपर हो और उसका आशय (Pocket) नीचे हो तो उसको अधोमुख करके पूय निकालना चाहिए (विपर्यस्येच्च कर्मसु) तथा उसी स्थिति में रख सके तो रखना चाहिए जिससे पूयस्रवण (Drainage) अच्छी तरह हो जाय।

(७) सदवनमसदनुशासनमाश्रितभरणं च राजचिह्नानि।

अभिषेकः पटबन्धो वालव्यजनं व्रणस्यापि ॥ (सभातरंग)

राजचिह्न—सज्जनों का रक्षण (सदवनम्), दुर्जनों का नाशन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(असदनुशासनम्), आश्रितों का उदरंभरण, अभिषेक, छत्र (पटबन्ध) और चामर ये राजा के चिह्न व्रण के भी होते हैं।

व्रणकर्म—व्रण के आसपास के स्वस्थ धातुओं का रक्षण, जीर्ण-शीर्ण धातुओं को काटना, आशय में ओषधि या वर्ति को भरना, स्वच्छ करने के लिए धावन (Lotion) से धोना, पट्टी बांधना और मक्षिका-निवारणार्थ चँवर ऊपर हिलाना ये राजा के समान व्रण चिकित्सा के कर्म हैं।

वक्तव्य—पट्टबन्धन—जैसे पट्टबन्धन (Bandaging) किया जाता है वैसे सिरपर साफा या पगड़ी बांधी जाती है। इसलिए राजा की दृष्टि से इसका अर्थ साफा या पगड़ी भी कर सकते हैं। बालव्यजन—बालव्यजनमौजस्यं मक्षिकादीनपोहति ॥ सुश्रुत ॥

(८) परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं
स्वदेहजोऽप्यामयवत् सुतोऽहितः।
छिन्द्यात्तदंगं यदुतात्मनोऽहितं
शेषं पुनर्जीवति यद्विवर्जनात् ॥ (भागवत)

अंगोच्छेदन—पराया बालक यदि औषधि के समान सुखदायक हो तो उसको अपत्य समझ (कर अपनाना) चाहिए और अपना पुत्र यदि व्याधिसम दुःखदायक हो तो उसको अहितकर समझ (कर वर्ज्य करना) चाहिए। अपने लिए जो अंग हानिकर हो उसको काट (कर त्याग देना) चाहिए जिससे शेष शरीर सुख से जीवित रहता है।

वक्तव्य—अहित-दुर्घटित, पिच्चित, कुथित (Gangrenous), कर्कपीडित (Cancerous) सर्पदष्ट ('द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टः' श्लोक देखिए) इत्यादि भाग अंगोच्छेदन योग्य होते हैं। शेष-उच्छेदन योग्य उपर्युक्त भाग इतने काटने चाहिएँ कि शेष भाग में उनका अल्पांश भी दोष रहने न पावे। इस वचन में अंगोच्छेदन (Amputation) किस अवस्था में और कितना करना चाहिए इसका सूत्र बतलाया है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) राजन् न भेतव्यम् । रोगो निर्गतः । किन्तु कुत्रचिदेकान्ते त्वया भवितव्यम् । ततोराज्ञाऽपि तथा कृतम् । ततस्तावपि राजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरःकपालमादाय तत्करोटिकापुटे स्थितं शफरकुलं गृहीत्वा कस्मिंश्चिद्भाजने निक्षिप्य संधानकरण्या कपालं यथावदारचय्य संजीविन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तद्दर्शयताम् ॥ (भोजप्रबंध)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय
सुभाषित-साहित्ये शस्त्रप्रणिधानविज्ञानीयो नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



कपालशस्त्रकर्म—(Cranial operation)—हे राजन् ! डरोमत, रोग गया ही समझो । परन्तु किसी एकान्त स्थान में होना उचित है । राजा ने वैसा ही किया । तब उन्होंने राजा को मोहचूर्ण से मोहित करके सिर के कपाल को निकाल कर करोटी पुट में स्थित मछली को निकाल कर एक पात्र में रख के संधानकरणी औषधि से निकाले हुए कपाल को पूर्ववत् संधित करके संजीवनी से राजा को जीवित कर उसे मछली दिखा दी ।

वक्तव्य—मोहचूर्ण—संज्ञाहरण (General anaesthesia) करने वाली औषधि का चूर्ण । संधानकरणी—कटे हुए अंग को ठीक जोड़ने वाली औषधि । संजीवनी—मूर्छित, बेहोश, अचेतन हुए प्राणी को फिर से जीवित करनेवाली औषधि । मृतसंजीवनी, संजीवकरणी भी इसे कहते हैं । पाश्चात्य शस्त्रकर्म संभार में संज्ञाहरण के लिए एक से एक बढ़कर औषधियाँ हैं, परन्तु संधानकरण और संजीवन के लिए कोई इस प्रकार की औषधि मालूम नहीं होती ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इस वचन में कापालिक शस्त्रकर्म संक्षेप में वर्णित है और उसके साथ शस्त्रकर्म में अत्यन्त उपयुक्त तीन औषधियों का उल्लेख है। यह शस्त्रकर्म भूलोक के किसी शस्त्र चिकित्सक से नहीं, स्वर्ग के अश्विनी कुमारों से (पृष्ठ १७) किया गया है। अतः ये औषधियाँ उस समय व्यवहार में नहीं थीं ऐसा मालूम होता है। इनमें से सञ्जीवनी का उल्लेख संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों में मिलता है—संजीवनौषधिरसोनुहृदि प्रसिक्तः ॥ उत्तररामचरित ॥ संजीवनौषधिविपर्य्यतिकरमालोकतिमिरसंभेदम् ॥ मालतीमाधव ॥ किं कौमुदीः शशिकलाः सकला विचूर्ण्य संयोज्य चामृतरसेन पुनः प्रयत्नात्। कामस्य घोरहरहुंकृतिदग्धमूर्तेः संजीवनौषधिरियं विहिता विधात्रा ॥ शार्ङ्गधरपद्धति ॥ परन्तु इन वचनों से संजीवनी औषधि उस समय प्रत्यक्ष व्यवहार में थी इसको समझने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण साहित्य में उपलब्ध नहीं है; इसके विपरीत वह उस समय उपलब्ध नहीं थी इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—सर्वतः करवीरादीन् सूते सागरमेखला। मृतसंजीवनी यत्र मृग्यमाणदशां गता ॥ संकल्पसूर्योदय ॥ तथापि मृतसंजीवनी की कल्पना इतनी अद्भुत रही की चिन्तामणि उपलब्ध न होते हुए भी जैसे कवि उसका उपयोग अपने काव्य में करते रहे वैसे संजीवनी अनुलब्ध होते हुए उसका उपयोग काव्य में होता रहा। वैद्यक में भी संजीवनी नाम के अनेक योग मिलते हैं, परन्तु इनमें न संजीवनी औषधि है, न संजीवनी औषधि से उनका कोई संबंध है, क्योंकि वैद्यक की संहिताओं में तथा निघण्टुओं में जहाँ संजीवनी औषधि का नाम तक नहीं है वहाँ इनमें कहाँ से आ जायगा ? अतः काव्यनिर्माता कवियों ने जैसे अपने काव्य में संजीवनी शब्द सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया है वैसे औषधिनिर्माता वैद्यों ने भी सामान्य अर्थ में संजीवनी या तत्समशब्द का प्रयोग अपने योगों के लिए किया है—वटी संजीवनीनाम्ना संजीवयति मानवम् ॥ शार्ङ्गधरसंहिता ॥ ऊपर के वचनों में 'संजीवनौषधि' शब्द

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

का अर्थ 'मृतप्राय को जिलाने वाली कोई भी औषधि योग' ऐसा है, संजीवनी करके जो विशिष्ट औषधि नीचे रामायण के आधार पर वर्णित है वह नहीं।

परन्तु इससे संजीवनी आदि औषधियाँ निरंकुश कवि कल्पना की सृष्टि है, भारतीय औषधिसंभार में वे कदापि नहीं रहीं ऐसा न समझें। राम-रावण युद्ध में इन्द्रजित के अस्त्र से तथा रावण की शक्ति से जब वानरसेना और लक्ष्मण हताहत और मूर्च्छित हुए तब रामसेना के महा-शल्य चिकित्सक (Surgeon General) सुषेण के कहने पर दो बार इन औषधियों का उपयोग किया गया और दोनों बार वानरसेना तथा लक्ष्मण पुनर्जीवित हो गये। युद्ध की इन दोनों घटनाओं के विवरण में महर्षि वाल्मीकि ने इन औषधियों का परिचय दिया है। इन औषधियों के लिए 'औषधीनां परा भूमिर्हिमवान् शैलसत्तमः' के ऋषभ और कैलास शिखरों के बीच का स्थान बतलाया है तथा 'भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च' इस प्रकार की वे दीप्तिमान् होती हैं यह भी कहा है—तयोःशिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्। सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्यौ-षधिपर्वतम्॥ तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्निसंभवाः। द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्तीर्दिशो दश॥ मृतसंजीवनीं चैव विशल्यकरणीं तथा। सवर्णकरणीं चैव संधानीं च महौषधीम्॥ संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्य त्वमानय॥ रामायण॥ इन औषधियों का अवचारण (Adminis tration) नासा द्वारा किया जाता था यह भी बताया है—ततः संक्षोदयित्वा तामोषधी वानरोत्तमः। लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहद्युतिः॥ सशल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा। विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन् महीतलात्॥ रामायण॥ आमोदमाघ्राय महौष-धीनां सौमित्रिरुन्मीलितपद्मनेत्रः॥ बालरामायण॥ फिर दिनभर परिश्रम करके थका हुआ मनुष्य रात में गाढ़ी नींद लेकर प्रातःकाल में जैसे प्रसन्नचित्त और पूर्ण स्वस्थ होकर उठता है वैसे इन औषधियों

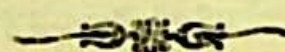
CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के प्रभाव से हताहत तथा मूर्च्छित मनुष्य प्रसन्नचित्त और स्वस्थ होकर प्रबोधित होते हैं ऐसा भी इन औषधियों की कार्य करने की पद्धति का विवरण किया है—गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः ।। रामायण ।।

केवल रोगचिकित्सा के लिए नहीं, रोग प्रतिबन्धन के लिए इन औषधियों का उपयोग किया जाता था। रामचन्द्र जी जब वनवास में चले तब माता कौसल्या ने विशल्यकरणी औषधि अभिमन्त्रित करके रामचन्द्रजी के हाथ में बांधी थी जिससे उनके ऊपर हताहत और मूर्च्छित होने की आपत्ति न आ सके—औषधीं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणीं शुभाम्। चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रैरभिजजाप च ।। रामायण ।।

उपर्युक्त वचनों से यह सिद्ध होता है कि रामायण काल में ये औषधियाँ उपलब्ध थीं और वैद्यों तथा अन्यों द्वारा चिकित्सा के लिए इनका उपयोग किया जाता था। 'राक्षसी मानुषी दैवी' श्लोक का वक्तव्य देखें।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविन्दात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्यदीपिकायां शल्यकर्मप्रणिधानविज्ञानीयो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ।।



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथात आत्मचिकित्साविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः ॥

(१) निसर्गतो ये रिपवो हि रोगा
वातादिभिस्तज्जनकैः समन्तात् ।
अधिष्ठितेऽस्मिन् कुटिलैः प्रकृत्या
स्वायत्तता हन्त कथं पुरे नः ? ॥ (जीवानन्द)

जो रोग स्वभाव से शरीर के शत्रु होते हैं उनको उत्पन्न करनेवाले प्रकृति से कुटिल वातादि दोषों के द्वारा यह शरीर सर्व प्रकार से अधिष्ठित हो जाने पर इस शरीर में (उन रोगों से मुक्ति पाने की) स्वतन्त्रता कैसी हो सकती है ?

(२) वातादिजा यद्यपि सर्वरोगांस्तथापि तानेव विनाशयन्ति ।
यथारणेर्वह्निरुदर्चिरुद्यन् दहत्ययत्नादरणिं तमेव ॥ (जीवानन्द)

यद्यपि सर्व रोग वातादि दोषों से उत्पन्न होते हैं तथापि (उनसे उत्पन्न हुए) ये सब रोग उन्हीं दोषों का नाश करते हैं, जैसे अरणि काष्ठ से उत्पन्न हुई अग्नि अपनी ज्वालाओं से उसी अरणिकाष्ठ को अनायासेन नष्ट कर देती है ।

वक्तव्य—अरणिः—अग्नेर्योनिः । इसको तर्कारी, अगेथु कहते हैं । इस वृक्ष की लकड़ी का घर्षण या मन्थन करने से अग्नि शीघ्र उत्पन्न होती है । इसलिए इसको 'अग्निमन्थ', 'वह्निमन्थ' कहते हैं और यज्ञ में इसका उपयोग होने से हविर्मन्थ भी कहते हैं—अग्निर्मथ्यते अनेन । निर्मन्थ्यदारुणि त्वरणिर्द्वयोः ॥ अमरकोश ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) अपन्थानं त्विति न्यायादात्मद्रोहिषु तेष्वमी ।
आत्मजेष्वपि न स्नेहमातन्वन्त्यधुना प्रभो ॥ (जीवानन्द)

'अपन्थानं तु गच्छन्तं' इस न्याय से वातादि दोष अपने ही उत्पन्न हुए परन्तु अपना ही द्रोह करने वाले इन रोगों के प्रति स्नेह नहीं करते हैं ।

वक्तव्य—अपन्थानम्-यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् । अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥ अनर्घराघव ॥

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम् । अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥ प्रबोधचन्द्रोदय ॥

व्याधिपीडित होने पर शरीर आप से आप व्याधिनिर्मुक्त हो सकता है या नहीं ऐसा प्रश्न प्रथम श्लोक में करके पश्चात् दो वचनों में उसका अस्त्यात्मक उत्तर काव्यमय भाषा में बहुत अच्छी तरह दिया गया है। यह कैसे होता है इसका व्यावहारिक और वैज्ञानिक विवरण आगे के वचनों में किया गया है ।

(४) के वा भुवि चिकित्सयन्ते रोगार्तान् मृगपक्षिणः ।
श्वापदानि दरिद्रांश्च, प्रायो नार्ता भवन्ति ते ॥ (महाभारत)

पशुपक्षी, जंगली श्वापद तथा दरिद्र प्रायः रोगग्रस्त नहीं होते, और जब कभी रोगग्रस्त होते हैं तब उनकी चिकित्सा कौन करता है ? (कोई चिकित्सा करता नहीं, फिर भी वे फिर से रोगमुक्त हो जाते हैं ।)

वक्तव्य—इस संसार के असंख्य पशुपक्षी अपने जीवन में प्रायः स्वस्थ ही रहा करते हैं और जब कभी अस्वस्थ हो जाते हैं तब बिना कुछ किये फिर से कुछ काल के पश्चात् नीरोग हो जाया करते हैं। वैसे ही स्थिति असंख्य मनुष्यों की, विशेषतया दरिद्र, जंगली तथा आदिवासी मनुष्यों की हुआ करती है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणियों के शरीर में ऐसा सहज या स्वाभाविक गुणधर्म है कि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जिसके बल पर प्राणियों का स्वास्थ्य बना रहता है तथा जब कभी बिगड़ता है तब कुछ किये बिना फिर से प्राप्त होता है। इस गुणधर्म को 'व्याधिक्षमता' (Immunity) कहते हैं। इसके कार्य की तीन अवस्थाएँ होती हैं- (१) शरीर के स्वास्थ्य को रोगोत्पादक कारण विद्यमान् होते हुए भी स्थिर रखना। इसको 'स्वास्थ्यरक्षण क्षमता' या दोषसाम्यस्थिरीकरण' (Haemostasis) कहते हैं। (२) जब रोगोत्पादक कारण कुछ बलवान् होते हैं तब परिस्थिति के अनुसार शरीर में कुछ परिवर्तन करके शरीर को स्वस्थ रखना। इसको अनुकूलन शीलता (Adaptability) या 'अनुकूलनक्षमता' कहते हैं। (३) जब कारण अधिक बलवान् होते हैं तब शरीर रोगग्रस्त होने पर उसको बिना किसी बाह्य उपचार के यथापूर्व नीरोग बनाना। इसको आत्मचिकित्सा (Autotherapy) कहते हैं। उपर्युक्त वचनों में इसी आत्मचिकित्सा का ही वर्णन काव्यमय आलंकारिक प्रश्नोत्तरी में किया गया है।

(५) व्याधिक्षमत्वं व्याधिबलविरोधित्वं व्याध्युत्पादप्रतिबन्धकत्वमिति यावत् ॥ (चक्रपाणिदत्त)

व्याधिक्षमता—शरीर में उत्पन्न हुई व्याधि के बल का विरोध कर (के शरीर को फिर से नीरोग बनाना) तथा शरीर में व्याधि, उत्पन्न ही न हो इस प्रकार उसका प्रतिबन्धन करना इसको व्याधिक्षमता कहते हैं।

वक्तव्य—प्राणियों के शरीरों में व्याधिक्षमता जन्म से ही विद्यमान रहती है। इसको नैसर्गिक (Natural) क्षमता कहते हैं। यह क्षमता सामान्य या अविशेष (Nonspecific) स्वरूप की हुआ करती है। पथ्यकर आहारविहारादि से यह बनी रहती या बढ़ती है और अपथ्यकर आहारविहारादि से यह घटती है या नष्ट हुआ करती है। प्रत्येक मनुष्य का आहारविहार रहनसहन पथ्यापथ्यादि की दृष्टि से भिन्न

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भिन्न होने के कारण व्याधिक्षमता की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है जिसमें कुछ व्यक्तियों में वह बहुत अधिक और कुछ व्यक्तियों में वह नगण्य हो सकती है—न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति । शरीराणि चातिस्थूलान्यतिकृशान्यनिविष्टमांसशोणितास्थीनि दुर्बलान्यसात्म्याहारोपचितान्यल्पाहाराण्यल्पसत्त्वानि च भवन्त्यव्याधिसहानि; विपरीतानि पुनर्व्याधिसहानि ।। चरक ।। जब वह बहुत बलवान् होती है तब शरीर प्रायः नीरोग रहता है, यदि रोग हो जाय तो जल्दी ठीक हो जाता है और इस कारण से उनकी आयु दीर्घ हुआ करती है । इसके विपरीत जिनमें वह दुर्बल या नगण्य होती है उनमें शरीर बार बार रोगग्रस्त होता है, रोग जल्दी ठीक नहीं होते और इस कारण से उनकी आयु अल्प या मध्यम हुआ करती है ।

व्याधिक्षमता प्रत्येक रोग के लिए होती है, परन्तु विकारी सूक्ष्म-जीव, जन्तु, कृमि (Pathogenic bacteria etc) इत्यादि से उत्पन्न होनेवाले औपसर्गिक (Infectious) रोगों में उसका विशेष स्थान तथा महत्व हुआ करता है । जब किसी विकारी जीवाणु से शरीर में रोग उत्पन्न होता है तब ज्वरादि बाह्य परिवर्तनों के साथ रसरक्तादि धातुओं में आभ्यन्तरीय परिवर्तन हुआ करते हैं । ये बाह्याभ्यन्तर परिवर्तन मिलकर उस विकारी जीवाणु से उत्पन्न होनेवाला विशिष्ट रोग होता है । ये बाह्याभ्यन्तर परिवर्तन कारणभूत जीवाणुओं तथा उनके विष का नाश करके पश्चात् स्वयं नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार शरीर नीरोग हो जाता है, यह आधुनिक विज्ञान से सिद्ध वस्तुस्थिति है । उपर्युक्त 'वातादिजा' श्लोक में यही वस्तुस्थिति अपने विशिष्ट ढंग से काव्यमय भाषा में वर्णित है ।

औपसर्गिक रोगों से मुक्त होने के पश्चात् शरीर में सर्वसाधारण व्याधिक्षमता के अतिरिक्त जिस रोग से मुक्ति हुई केवल उसी रोग के लिए उपयुक्त ऐसी विशिष्ट व्याधिक्षमता भी मिलती है । इसको

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रोगार्जित (Acquired) व्याधिक्षमता कहते हैं। यह क्षमता मसूरिका (Smoll-pox) जैसे कुछ रोगों में आजीवन रहती है और प्रतिश्याय जैसे कुछ रोगों में अत्यल्पकालिक होती है। आजकल विशिष्ट व्याधि-क्षमता बलात् उत्पन्न भी की जाती है जिसको कृत्रिम (Artificial) कहते हैं।

(६) क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ (महाभारत)

(रूढार्थ)—क्षमारूपी शस्त्र जिसके हाथ में होता है उसको दुर्जन क्या कर सकता है ? न जलनेवाले पदार्थों में पड़ा हुआ अग्नि स्वयं ठण्ढा होता है। (वैद्यकीय)—क्षमता रूपी शस्त्र जिसके पास होता है उसको विकारी जीवाणु क्या कर सकते हैं ? (द्वितीय श्लोकार्ध का अर्थ ऊपर के समान)।

वक्तव्य—क्षमा-सहिष्णुता, वैद्यकीय अर्थ क्षमता, क्षमा और क्षमता दोनों शब्द क्षमधातु से ही निकले हैं। वैद्यक में व्याधिक्षमता के लिए व्याधिसहता ही पर्याय है। ऊपर के वक्तव्य में चरक का वचन देखिए। दुर्जनः—दुष्ट मनुष्य, वैद्यकीय अर्थ दुष्ट या विकारी जीवाणु। दोनों का उद्देश्य दूसरों को कष्ट देने का ही होता है। अतृण—अग्नि के लिए जो इन्धन का कार्य नहीं कर सकता ऐसा द्रव्य। अग्नि को स्वयं जीवित रहने के लिए जैसे इन्धन की आवश्यकता होती है, उसके न मिलने से वह नष्ट हो जाती है वैसे विकारी जीवाणुओं को स्वयं जीवित रहने के लिए अव्याधिक्षम-जीवों की आवश्यकता होती है, उनके न मिलने से वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं, कुछ भी नहीं कर सकते। तात्पर्य विकारी जीवाणुओं की रोगोत्पादक शक्ति व्याधिक्षम जीवों के ऊपर 'नपादपोन्मू-लनशक्तिरंहः शीलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य' ॥ रघुवंश ॥ इस प्रकार बेकार होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(७) असहायः समर्थोऽपि तेजस्वी किं करिष्यति ।
निर्वाते ज्वलितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ (पंचतन्त्र)

तेजस्वी समर्थ होने पर भी सहायता न मिलने पर क्या कर सकता है ? वातहीन स्थान में चलती हुई आग अपने आप शान्त होती है ॥

वक्तव्य—'अतृणे पतितो' और 'निर्वाते ज्वलितो' ये दो श्लोकार्ध समान मालूम पड़ते हैं परन्तु दोनों में शास्त्रदृष्ट्या बहुत अन्तर है। तृण अग्नि का खाद्य है जिसको खाकर (जलाकर) अग्नि जीवित (ज्वलित) रहता है। वायु अग्नि का खाद्य नहीं, सहायक है जिसकी सहायता से तृणादि को जलाकर वह जीवित रहता है। इसलिए खाद्य न मिलने पर जैसे वह नष्ट होती है वैसे सहायक वायु भी न मिलने पर वह शान्त होती है—वायुना धूयमानो हि वनं दहति पावकः ॥ महाभारत ॥

विकारी जीवाणुओं की स्थिति भी अग्नि के समान होती है। व्याधि अक्षम शरीर उनका खाद्य है और उसपर निर्वाह कर वे उसमें रोग उत्पन्न करते हैं। परन्तु केवल तृण मिलने से जैसे अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, उसे वायु सहायता की भी आवश्यकता हुआ करती है वैसे केवल अक्षम शरीर मिलने से ही विकारी जीवाणु रोग उत्पन्न नहीं करते हैं उन्हें शरीर में प्रवेश मार्ग, मिलने वाला स्थान, तथा परिस्थिति इत्यादि अनेक बातों की सहायता आवश्यक हुआ करती है; इनकी सहायता के बिना जीवाणु कितने भी उग्र या विषैले क्यों न हो, रोग उत्पन्न नहीं कर सकते। विसूचिका वक्राणु (Cholera vibrio) अपतानक दण्डाणु (Tetanus bacillus) और पूयजनक मालागोलाणु (Streptococci) बहुत तेज जीवाणु हैं। परन्तु विसूचिका के जीवाणु आन्त्र मार्ग से प्रवेश करने पर ही विसूचिका उत्पन्न कर सकते हैं। आन्त्रेतर मार्ग से नहीं; मालागोलाणु त्वचा से प्रवेश करने पर ही रोग उत्पन्न कर सकते हैं, आन्त्र मार्ग से नहीं और अपतानक दण्डाणु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्रणों से शरीर में प्रवेश करने पर ही परन्तु प्राण वायुहीन परिस्थिति मिलने पर रोग उत्पन्न कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

(८) वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः।

स एव दीपनाशाय, कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥ (हितोपदेश)

जंगल जलाने वाले दावाग्नि के लिए जो वायु मित्र बनती है वही वायु दीप (की अग्नि) के लिए नाशक होती है; दुर्बल के साथ किसका मित्रत्व होता है?

वक्तव्य—कृश—(१) निर्धन—यः कृशाश्वः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः। स वै राजन् कृशो नाम, न शरीरकृशः कृशः ॥ महाभारत ॥ (२) दुर्बल, अप्रतिकारी। (३) अव्याधिक्षम। कृशे कस्यास्ति सौहृदम्—शरीर बलवान् व्याधिक्षम होने पर रोगोत्पादक आहारादि हेतु रोगोत्पत्ति में समर्थ नहीं होते हैं, अर्थात् वास्तव में शत्रु होने पर भी व्यवहार में मित्र हो जाते हैं। इसके विपरीत जब शरीर दुर्बल कृश अव्याधिक्षम होता है तब रोगोत्पादक आहार विहार रोग उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। तात्पर्य बलवान् स्थिति के मित्र निर्बलावस्था में शत्रु बन जाते हैं।

इसका स्पष्टीकरण जीवाणुओं के उदाहरण से अच्छी तरह होता है। हमारे शरीर पर तथा भीतरी कुछ अंगों में अनेक प्रकार के असंख्य जीवाणु रहते हैं। जबतक शरीर बलवान् व्याधिक्षम स्वस्थ रहता है। तब तक ये कुछ भी उपसर्ग नहीं करते, मित्र के समान रहते हैं। इनको सहभोजी (Commensals) जीवाणु कहते हैं। वास्तविक विकारी जीवाणु हमारे शरीर में नहीं रहते परन्तु महामारी के समय ये शरीर में प्रवेश करते हैं। जिनका शरीर बलवान् व्याधिक्षम रहा उनके शरीर में ये या तो मर जाते हैं या अविकारी सहभोजी याने मित्र बनकर रहते हैं और जो शरीर दुर्बल अव्याधिक्षम होते हैं उनमें ये रोग उत्पन्न करते हैं। तात्पर्य—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(९) सर्वं बलवतां पथ्यं, सर्वं बलवतां शुचि ।
सर्वं बलवतां धर्मः, सर्वं बलवतां स्वकम् ॥ (महाभारत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय
सुभाषितसाहित्ये आत्मचिकित्सा विज्ञानीयो नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



बलवानों के लिए सब पथ्यकर, सब पवित्र, सब धर्म्य और सब अपने मित्र हुआ करते हैं ।

वक्तव्य—उपर्युक्त दोनों वचनों का तात्पर्य इस दोहे में है—सब ही सहाय सबल के कोई न निबलसहाय । पवन जगावत आग को दीप ही देत बुझाय ।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यक-
रहस्यदीपिकायामात्मचिकित्साविज्ञानीयो नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथातश्चिकित्सासिद्धान्तविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः॥

(१) विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य॥

(शाकुन्तल)

रोगज्ञान के पूर्व चिकित्सा नहीं—रोग का यथार्थ ज्ञान न होने पर चिकित्सा का अनारम्भ (ही उचित होता) है।

वक्तव्य—परमार्थतोऽज्ञात्वा—रोग और रोगी के सम्बन्ध में दोष-दूष्यादि जो दशद्वादश बातें परीक्षण (पृष्ठ ४१३, ४४८) करने की आवश्यकता होती है उनका परीक्षण करने से पूर्व या परीक्षण करने पर भी यथार्थ निदान (Diagnosis) होने से पूर्व। 'प्रयोगः शमयेद् व्याधिं' श्लोक का पृष्ठ ५४८ पर वक्तव्य देखें। प्रतीकारः—रोग की चिकित्सा—चिकित्सा रुक्प्रतिक्रिया॥ अमरकोश॥ अनारम्भः—यह कथन रोग की विशिष्ट (Specific) औषधि या चिकित्सा के लिये लागू है। निदानपरिवर्जन, लंघन, विरेचन इत्यादि सर्वसामान्य चिकित्सा को प्रारम्भ करने में कोई आपत्ति नहीं है।

(२) ज्ञानपूर्वकं हि कर्मणां समारम्भं प्रशसंति कुशलाः॥ (चरक)

ज्ञानोत्तर चिकित्सा प्रारम्भ—कुशल चिकित्सक ज्ञानपूर्वक रोगों की चिकित्सा प्रारम्भ करने पर उसकी प्रशंसा करते हैं।

वक्तव्य—कालिदास ने ऊपर के वचन में निषेध के रूप में जो चिकित्सा सिद्धान्त बतलाया है उसी को चरकाचार्य ने इस वचन में विधि के रूप में निर्दिष्ट किया है और दोनों का तात्पर्य यह है कि रोग की ठीक जानकारी प्राप्त करने पर ही उसकी विशेष चिकित्सा करे,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसके पूर्व नहीं। यह कथन आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा और औषधियों के लिए विशेषतया लागू है।

(३) यथा भिषक् पित्तकफानिलानां य एव कोपं समुपैति दोषः।
शमाय तस्यैव विधिं विधत्ते व्याधत्त दोषेषु तथैव बुद्धः॥
(सौन्दरनन्द)

जिस प्रकार चिकित्सक (ठीक परीक्षण करके) वातपित्तकफ इनमें से जो दोष प्रकुपित मालूम होता है उसको शान्त करने के लिए उपचार-विधि प्रयुक्त करता है उस प्रकार भगवान् बुद्ध ने प्रकुपित हुए मानस दोषों में उपचार किये।

वक्तव्य—दोष-चिकित्सक की दृष्टि से वातपित्तकफ इनमें से कोई एक (२) भगवान् बुद्ध की दृष्टि से रजस्, तमस् में से कोई एक मानस दोष—रजस्तमश्चमनसौ द्वौ च दोषावुदाहृतौ ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ कोप—विकृतावस्था या विषमावस्था। इसकी क्षयवृद्धि करके दो और प्रत्येक की उत्कृष्ट, मध्यम और अल्प करके तीन, इस प्रकार दोष का पूर्ण निदान करके।

निदान के आधार पर चिकित्सा तीन प्रकार की होती है—(१) निदानपूर्वक—ठीक निदान होनेपर तदनुरूप विशेष औषधियों द्वारा की जानेवाली चिकित्सा। (२) अज्ञात निदानपूर्वक—रोग का जब ठीक निदान हो नहीं पाता और चिकित्सक इस को अच्छी तरह जानता है तब रोगी के संतोष के लिए या उसको कुछ आराम देने के लिए सर्व साधारण औषधियों द्वारा की हुई चिकित्सा। (३) भ्रान्त निदानपूर्वक—रोग का ठीक निदान नहीं हुआ है, परन्तु चिकित्सक अपना निदान ठीक है समझकर तदनुरूप उससे विशेष औषधियों द्वारा की जाने वाली चिकित्सा। इनमें प्रथम चिकित्सा सर्वोत्कृष्ट तथा श्रेयस्कर, द्वितीय मध्यम तथा अभयावह और तृतीय निकृष्ट तथा भयावह होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निदान के पश्चात् प्रयुक्त होनेवाली आयुर्वेद की औषधियाँ लक्ष्य-वेधी अर्थात् उस रोग में विशेष लाभदायक होते हुए भी आजकल जिनको विशिष्ट या खास (Specific) कहते हैं उस प्रकार की नहीं होतीं, क्योंकि वे अन्य अनेक रोगों में भी अंशतः लाभदायक हुआ करती हैं। आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक की अधिकसंख्यक औषधियों की स्थिति प्रायः इससे विपरीत हुआ करती है। वे प्रायः पूर्ण विशिष्ट स्वरूप की होती हैं जिससे ठीक निदानपूर्वक उनका प्रयोग आयुर्वेदीय औषधियों से भी अधिक लाभदायक होता है, परन्तु भ्रान्त निदान में वे वैसी ही हानिकारक होती हैं। अतः इनका प्रयोग करने वालों को रोगनिदान के ऊपर औरों से भी अधिक ध्यान देना आवश्यक होता है।

(४) या ह्युदीर्णं शमयति, नान्यं व्याधिं करोति च।
सा क्रिया, न तु या व्याधिं हरन्त्यन्यमुदीरयेत् ॥ (सुश्रुत)

शुद्ध चिकित्सा—जो उत्पन्न रोग को शान्त करें किन्तु (अपना नया) दूसरा रोग उत्पन्न न करें वही (शुद्ध) चिकित्सा कर्म है; न कि (विद्यमान्) व्याधि को हरण करता हुआ नयी अन्य व्याधि को उत्पन्न करने वाला।

(५) प्रयोगः शमयेद् व्याधिं, योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥ (चरक)

चिकित्सा प्रयोग वर्तमान व्याधि का शमन करें; जो (विद्यमान् व्याधिका शमन करते हुए) दूसरी नयी व्याधिको उत्पन्न करता है वह शुद्ध नहीं (कहा जा सकता); शुद्ध तो वही है जो (विद्यमान् व्याधि को) शान्त करें परन्तु (अन्य नयी व्याधि को) उत्तेजित न करें।

वक्तव्य—चिकित्सा की औषधियाँ ऐसी हों कि जो अपना रोग उत्पन्न न कर सके। इस दृष्टि से आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक की औष-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

धियों की अपेक्षा आयुर्वेद, युनानी, होमिओपाथी इत्यादि अन्य चिकित्सा पद्धतियों की औषधियाँ निःसंशय श्रेष्ठ होती हैं। आयुर्वेद में रोग चिकित्सा के लिए रोग निदान के साथ-साथ रोगी के 'दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः। सत्त्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः' इन बातों का पूर्ण विचार करके औषधि-योजना की जाती है, औषधियाँ अग्लानिकर तथा अविकारी (पृष्ठ ४४७ पर 'मात्रावल्लघु' श्लोक देखें) होती हैं जिससे रोगी का वर्तमान रोग एकाध बार ठीक भले ही न हो, परन्तु रोगी में नया रोग उत्पन्न होने की संभावना नगण्य होती है। पाश्चात्य आधुनिक वैद्यक की स्थिति इसके पूर्णतया विपरीत होती है। उसमें औषधी योजना करते समय रोगी की अपेक्षा रोग पर अधिक ध्यान दिया जाता है; औषधियाँ प्रायः अत्यन्त तेज, विषैली, ग्लानिकर तथा विकारी होती हैं; उनके प्रयोग में औषधि और रोग, न कि औषधि और रोगी, इनका समीकरण रहता है; प्रायः सूचिकाभरण से दी जाने के कारण तुरन्त कार्य करती हैं जिससे जरा-सा विपर्यय हो जाने पर रोग काबू में लाने से पहले वे अपना ही रोग उत्पन्न किया करती हैं।

(६) कच्चिच्छारीरमाबाधमौषधैर्नियमेन वा।
मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थापकर्षसि॥ (महाभारत)

चिकित्सा का द्विविध अधिष्ठान—हे अर्जुन! शारीरिक व्याधियों को औषधियों के सेवन से अथवा (आहार विहार आचार विचारादि के) नियमों के पालन से और मानसिक आधियों को वृद्धजनों की सेवा से नित्य निवारण करते हो?

वक्तव्य—वृद्धसेवा—ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, धर्मवृद्ध इत्यादि वृद्धतज्ज्ञों की सेवा। आगे के श्लोक के वक्तव्य में 'तद्विद्यसेवा' पर ध्यान दें।

(७) प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्॥ (महाभारत)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

बुद्धि (के सारासार विचार) से मानसिक और औषधियों से शारीरिक रोगों का नाश होता है। चिकित्साविज्ञान में यह (शारीर तथा मानसिक रोगों का नाश करने का) सामर्थ्य है। (अतः इनसे पीडित होनेपर बुद्धिमानी से काम लेकर स्वयं उनसे मुक्त हो जाओ) बच्चों के समान उनसे पीडित मत रहो।

वक्तव्य—दोनों का आयुर्वेदीय चिकित्सासूत्र—प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो (शारीर) दैवयुक्तिव्यपाश्रयैः। मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः। मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम्। तद्विद्यसेवाविज्ञानमात्मादीनां च सर्वशः॥ चरक॥

(८) श्रोत्रियो नृपतिर्वृद्धो नदी वैद्यश्च पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न वासस्तत्र कारयेत॥ (महाभारत)

चिकित्सास्थान—श्रोत्रिय, राजा (शासक), वृद्धलोग, नदी और वैद्य, ये पाँच जहाँ पर नहीं होते वहाँ पर वास न करना चाहिए।

वक्तव्य—श्रोत्रिय-विद्याविभूषित वृद्ध, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभवी जिनसे लोगों को मार्गदर्शन हो सके—(पृष्ठ १६४ पर वक्तव्य भी देखें) श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत्। धृत्या द्वितीयवान् भवति बुद्धिमान् वृद्धसेवया॥ महाभारत॥ नदी—अच्छा प्रवाह युक्त पानीवाली। पृष्ठ ६४ पर वक्तव्य देखें।

(९) इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।
गत्वा निरौषधस्थानं सरुजः किं करिष्यति (योगवासिष्ठ)

जो नरकरूप व्याधि की चिकित्सा इह लोक में नहीं करता है वह जहां औषधियां ही अप्राप्य होती हैं ऐसे स्थान में जाकर उसकी क्या चिकित्सा कर सकता है।

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों का तात्पर्य यह है कि जहाँ पर चिकित्सक, औषधि इत्यादि चिकित्सोपयोगी साधन सामग्री प्राप्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

होती है वह स्थान चिकित्सा करने कराने के लिए योग्य होता है। ये स्थान दो प्रकार के हो सकते हैं। स्वगृह-रोगी नगर में अपने घर में रहता है और आवश्यकतानुसार वैद्य को बुलाकर और औषधियों को लाकर चिकित्सा कर लेता है। सर्वसाधारण रोगों और रोगियों के लिए स्वगृहचिकित्सा ठीक होती है। (२) वैद्यगृह—इसमें वैद्य सदा आसन्न रहता है और औषधादि साधन-सामग्री सदैव सन्निहित तथा सिद्ध रहती है। दुर्बल, रोगग्रस्त, जराजर्जर रोगी, दुर्घटना से हताहत मनुष्य इत्यादि मनुष्यों में चिकित्सा के लिए ऐसे ही स्थान सर्वोत्तम तथा श्रेयस्कर होते हैं।

आयुर्वेद में विविध चिकित्साकर्मों के लिए ऐसे ही तत्तद्विशिष्ट साधन-सामग्रीसंपन्न-स्थान बनवाने के लिए कहा है, जैसे कायचिकित्सा के लिए रोगीगृह या वैद्यगृह, शल्यचिकित्सा के लिए व्रणितागार, प्रसूति के लिए सूतिकागार, बच्चों के लिए कुमारागार इत्यादि। तद्यथा—निवातं प्रवातैकेदेशं सुखप्रविचारं—धूमातपजलरजसामनभिगमनीयं वर्चःस्थानस्नानभूमिमहानसं प्रशस्तं गृहमेव तावत पूर्वमुपकल्पयेत् । ततः शीलशौचाचारानुरागदाक्ष्यप्रादक्षिण्योपपन्नानुपचारकुशलान्···परिचारकान् , गां दोग्ध्रीं···अनातुरां जीवद्वत्सां,··· शयनासनादीनि···सुप्रयुक्तास्तरणोत्तरप्रच्छदोपधानानि,···शस्त्राणि चोपकरणार्थानि,···नानाविधानि च स्नेहस्वेदोपकरणानि द्रव्याणि,··· संग्रहणीयदीपनीयपाचनीयोपशमनीयवातहरादिसमाख्यातानि चौषधानि; यच्चान्यदपि किञ्चिद्व्यापदः परिसंख्याय प्रतिकारार्थमुपकरणं विद्यात्; यच्च प्रतिभोगार्थं तत्तूपकल्पयेत् ॥ चरक ॥ इस संक्षिप्त किये हुए वैद्यगृह के वर्णन से मूल विस्तृत वैद्यगृह की तथा अन्य आगारों की उचित कल्पना आ जायगी। इससे यह कह सकते हैं कि विविध स्वरूप के आधुनिक परिचर्यागृह (Nursing homes) इन प्राचीन आगारों के देशकालानुरूपपरिवर्तित नवीन रूप हैं। परन्तु दोनों में एक महत्व

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

का अन्तर जरूर है। प्राचीन गृह धनी रोगियों द्वारा केवल अपने लिए बनाये जाते थे, इसलिए उनका स्वरूप पूर्णनिजी (Private) था। इसके विपरीत आधुनिक परिचर्यागृह उनका क्रय देनेवाले सब रोगियों के लिए होते हैं। इसलिए इनका स्वरूप सार्वजनिक होता है। प्राचीन काल में आधुनिक सार्वजनिक धर्मार्थ अस्पतालों के समान अस्पताल भी थे जिनको 'आरोग्यशाला, (Hospital, sanitorium) कहते थे। आरोग्यशाला बनाना और चलाना बहुत पुण्यप्रद माना जाता था, इसलिए धनी लोग इनको चलाते थे—आरोग्यशालां यः कुर्यान्महावैद्यपुरस्कृताम्। सर्वोपकरणोपेतां तस्य पुण्यफलं शृणु॥ स्कन्द-पुराण॥ सम्यगारोग्यशालायामौषधैः स्नेहपाचनैः। व्याधिनं विरुजी-कृत्य अप्येकं करुणायुतः। प्रयाति ब्रह्मसदनं कुलसप्तकसंयुतः॥ नन्दी-पुराण॥ अब इसके पश्चात् चिकित्सा के विविध उपाय बतलाये जाते हैं।

(१०) संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्। (सुश्रुत)

चिकित्सोपाय (१) निदानवर्जन—(दोषोत्पादक तथा रोगोत्पादक) हेतुओं का (सर्व प्रकार से) परित्याग करना यही संक्षेप में (चिकित्सा का उचित) क्रियायोग होता है।

वक्तव्य—राजनीति में राज्यशत्रुओं के साथ व्यवहार करने के जैसे विविध उपाय पाये जाते हैं, वैसे वैद्यक में देहशत्रु व्याधियों का प्रतीकार करने के लिए अनेक उपाय मिलते हैं। इन राजकीय और वैद्यकीय उपायों में परस्पर कोई संबंध या सामञ्जस्य होगा इस ओर प्रारम्भ में ध्यान नहीं जाता, परन्तु सूक्ष्म विचार करने पर दोनों का सम्बन्ध और सामञ्जस्य स्पष्ट हो जाता है और वैद्यकोक्त उपायों को समझने और समझाने में बहुत सहायता हुआ करती है। निदानपरिवर्जनम्—प्रत्येक रोग के लिए कुछ न कुछ कारण जरूर होता है। और नित्यशः होनेवाले अधिकसंख्यक रोगों में मनुष्यों को

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसका पता भी लग जाता है। ये कारण रोग के खाद्यरूप या सहायक रूप होते हैं और जैसे रोग उत्पन्न करते हैं वैसे उत्पन्न रोगों का बल बढ़ाते हैं। दानापानी की रसीद तोड़ना यह राजनीति में शत्रु के साथ व्यवहार करने का एक उपाय होता है—विषमस्थस्य मुष्टिं शस्यं वा-हन्याद् वीवधप्रसारौ च। कौ० अर्थशास्त्र॥ इससे शत्रु का कर्शन और प्रकृति क्षय होता है—प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिशस्य वधादपि। वमनाद् गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः॥ कौ० अर्थशास्त्र॥ और वह उसी से ही ठीक हो जाता है, अथवा न हुआ तो रसीद टूट जाने के कारण दुर्बल होने से निम्नोक्त अन्य उपायों द्वारा जल्दी ठीक किया जा सकता है। निदानपरिवर्जन ठीक इसी प्रकार से कार्य करता है। इसलिए रोग उत्पन्न होते ही निदान का परिवर्जन करना रोगी का और परिवर्जन कराना चिकित्सक का प्रथम कर्तव्य होता है। जैसे, अतिभोजन से उत्पन्न हुए विकार में लंघन, अतिव्यवाय से उत्पन्न रोग में ब्रह्मचर्य, अतिपरिश्रम से उत्पन्न रोगों में विश्राम, सर्दी से उत्पन्न रोग में उष्णगृहवास, आतप से उत्पन्न रोग में हिमगृहवास इत्यादि रोग की दृष्टि से पथ्यकर आहार विहार का सेवन और अपथ्यकर आहारादि का असेवन इसी में आता है।

(११) साम्नैव हि प्रयोक्तव्यमादौ कार्यं विजानता।
सामसिद्धानि कार्याणि विक्रियां यान्ति न क्वचित्॥
(पंचतन्त्र)

(२) *संशमन*—बुद्धिमान् को प्रथम सौम्य उपायों को ही अपनाना चाहिए। सौम्य उपायों से सिद्ध कार्य कदापि विकृत नहीं होते हैं।

(१२) साम्नैव यत्र सिद्धिर्न तत्र दण्डो बुधेन विनियोज्यः।
पित्तं यदि शर्करया शाम्यति कोऽर्थः पटोलेन॥ (पंचतन्त्र)

सौम्य उपायों से जहाँ सिद्धि (की आशा) होती है वहाँ विचारी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मनुष्य को तीव्र उपायों को प्रयुक्त न करना चाहिए। पित्त यदि शर्करा से ठीक हो जाय तो पटोल (जैसे कडवी औषधि) से क्या मतलब ?

(१३) सामसाध्येषु कार्येषु यो दण्डं योजयेद् बुधः ।
स पित्ते शर्करासाध्ये पटोलं कटुकं पिबेत् ॥ (हितोपदेश)

सौम्य उपायों से साध्य कार्यो में जो विचारी मनुष्य तीव्र उपायों को काम में लाता है वह शर्करा से ठीक होनेवाले पित्त में कडवी पटोल का सेवन करता है।

वक्तव्य—साम—राजनीति में शत्रु के साथ व्यवहार करने के लिए जो चतुर्विध या सप्तविध उपाय बतलाये हैं उनमें यह प्रथम है, क्योंकि शत्रु के साथ प्रथम व्यवहार इसी से करना श्रेयस्कर होता है ऐसा नीतिविदों का मत है। इसमें सब व्यवहार मृदुता मधुरता से किये जाते हैं—तत्र सामं पञ्चविधं—गुणसंकीर्तनं, सम्बन्धोपाख्यानं, परस्परोपकारसंदर्शनं, आयतिप्रदर्शनं, आत्मोपनिधानमिति ॥ कौ० अर्थशास्त्र ॥ इस व्यवहार में न कोई कटुता उत्पन्न होती है, न किसी प्रकार की हानि होने की संभावना रहती है। इसलिए प्रथम इसका उपयोग करने के लिए कहा है। वैद्यक में इसका प्रतिनिधि संशमनोपाय है और उसके भी यही लाभ होते हैं। इसलिए निदानपरिवर्जन से काम न बना या बनने की आशा न हो तो उसके साथ इसका उपयोग करना चाहिए। इसमें लङ्घन, दीपन, पाचन, व्यायाम, इस प्रकार के सौम्य उपचार किये जाते हैं—न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा। पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्व्यायामातपमारुताः ॥ अष्टांगसंग्रह ॥

(१४) चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति ॥ (शिशुपालवध)

(३) संशोधन—केवल चौथे उपाय से ठीक होने वाले शत्रु के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

साथ साम (समझौता) का व्यवहार करना अपकारक होता है। कौन बुद्धिमान् वैद्य स्वेदन से ठीक होनेवाले आमज्वर (पीड़ित) को जलसिंचन (करके ठीक करने का प्रयत्न) करेगा ?

वक्तव्य—सान्त्वम्—सामोपाय। चतुर्थोपाय—साहस या दण्ड का उपाय। साम प्रथम और दण्ड चौथा उपाय है—सामदाने भेददण्डा-वित्युपायचतुष्टयम् । साहसं तु दमो दण्डः सामसान्त्वमथो समौ ॥ अमरकोश ॥ इन चार उपायों में साम और दण्ड दो ही महत्व के माने गये हैं—सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः । सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ मनु ॥ आमज्वर—बहुत दिनों तक जारी रहने वाले संतत स्वरूप (Continuous) के ज्वर का प्रथम सप्ताह का ज्वर। इसको तरुणज्वर या नवज्वर भी कहते हैं। इसमें रोगी को पसीना नहीं आता—आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥ चक्रपाणि-दत्तसंग्रह ॥ स्रोतसां संनिरुद्धत्वात् स्वेदं ना नाधिगच्छति। स्वस्थाना-त्प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्तरुणज्वरे ॥ चरक ॥ स्वेद्य—स्वेदार्ह, स्वेदन कर्म या स्वेदल औषधियों से स्वेद निकल जाने पर ठीक होने वाला ज्वर। अम्भसा परिषिंचति—पृष्ठ ५५६ पर विपरीत चिकित्सा देखें।

इस वचन में शत्रु पर दण्ड प्रयोग कब किया जाय इसको बताया गया है। दण्ड में धनधान्यादिहरण से शत्रु को कष्ट पहुँचाया जाता है और सैन्य से आक्रमण करके उसको नष्ट किया जाता है—वधः परिक्लेशोऽर्थहरणं दण्ड इति ॥ कौ० अर्थशास्त्र ॥ वैद्यक में इसका प्रतिनिधि संशोधनोपाय है। जैसे साम से ठीक न होने वाले शत्रु पर दण्डोपाय किया जाता है वैसे संशमनोपायों से ठीक न हुए या ठीक न होने वाले रोगों में संशोधन का प्रयोग किया जाता है—यदीरयेद्बहिर्दोषान् पञ्चधा शोधनं हि तत्। निरूहो वमनं काय-शिरोरेकोऽस्रविस्रुतिः ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ दण्ड के समान संशोधन भी द्विविध होता है। एक में वमनविरेचनादि तीव्र उपायों द्वारा दोष

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

निर्हरण किया जाता है और दूसरे में शस्त्रकर्म से दोष निकाले जाते हैं—शोधनं द्विविधमाचक्षते, बहिराश्रयं शस्त्रक्षाराग्निप्रलेपादयः; अभ्यन्तराश्रयं वमनविरेचनास्थापनशोणितमोक्षणं च ॥ शार्ङ्गधर-दीपिका ॥ इस वचन में अभ्यन्तराश्रयी संशोधन का विवरण है। जलसिंचन संशामक उपाय है उससे ताप या दाह शान्त होता है परन्तु तापोत्पादक दोषों का निर्हरण नहीं होता। इसके विपरीत स्वेदन कुछ काल करने से शरीर के दोष स्वेदद्वारा उत्सर्गित होते हैं और रोग का नाश होता है। इसलिए आमज्वर में स्वेदल (Sudorific) औषधियों का उपयोग करने के लिए कहा है, जल सिंचन नहीं।

(१५) आयुधनिषेध्यो रिपवो न सामसाध्याः ॥ (बालरामायण)

शस्त्रकर्म—केवल शस्त्रप्रयोग से साध्य शत्रु साम से साध्य नहीं होते हैं।

(१६) धातूनां व्यापदि यत्र भेषजं नैव सिद्ध्यति।

आमये दुस्तरे तस्मिन् शस्त्रमेव विधीयते ॥ (महानिलतन्त्र)

धातुओं की विकृति में जब औषधि सफल नहीं होती तब उस दुस्तर विकृति में शस्त्रकर्म ही उचित होता है।

वक्तव्य—इसमें बहिराश्रयी संशोधन का उपयोग कब किया जाय इसको बताया है। इसका तात्पर्य यह है कि, जब निदानपरिवर्जन, संशमन तथा अंतराश्रयी संशोधन से रोग ठीक होने की आशा नहीं होती तब शस्त्रकर्म का उपयोग करना चाहिए। जैसे, सामोपाय से ठीक किया हुआ शत्रु फिर से बलवान् बनने की संभावना होती है, परन्तु शस्त्रबल से पराजित किया शत्रु फिर से बलवान् बनने की संभावना प्रायः नहीं रहती, वैसे संशमनोपायों से शान्त किया हुआ रोग फिर से उत्पन्न होने की संभावना होती है, परन्तु अन्तर्बाह्य संशोधन से ठीक किया हुआ रोग फिर से उत्पन्न होने की संभावना प्रायः नहीं होती—दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः। ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पुनरुद्भवः ॥ अष्टांगहृदय ॥ पाश्चात्य वैद्यक में Conservative और Radical करके जो दो चिकित्सापद्धतियाँ हैं उनके चिकित्सा सिद्धान्त आयुर्वेदीय संशमनात्मक तथा संशोधनात्मक चिकित्सा के समान हैं।

(१७) अग्निर्हिमस्य भैषज्यम् ॥ (महाभारत)

(४) *विपरीत चिकित्सा*—अग्नि शीत की औषधि है।

(१८) इदं चेदं न प्रत्यक्षम् , यदनातुरेण भेषजेनातुरमुपचरामः, कृशं दुर्वलमाप्याययामः, स्थूलं मेदस्विनमपतर्पयामः, शीतेनोष्णाभिभूतमुपचरामः, शीताभिभूतमुष्णेन, व्याधीन् मूलविपर्ययेणोपचरन्तः सम्यक् प्रकृतौ स्थापयामः ॥ (चरक)

यह सब हम लोगों से प्रत्यक्ष है कि रोगी को हम उसके विपरीत गुण वाली औषधि से उपचारित करते हैं, कृशदुर्बल का हम संतर्पण करते हैं, स्थूल मेदस्वी का अपतर्पण करते हैं, ताप से पीड़ित हुए को शीत से और शीत से पीड़ित हुए को ताप से उपचारित करते हैं और इस प्रकार हेतु या व्याधि से विपरीत उपचार करके हम व्याधियों को ठीक करके व्याधितों को फिर प्रकृति संपन्न करते हैं।

(१९) वह्निरेव वह्नेर्भेषजम् ॥ (बालरामायण)

विपरीतार्थकारीचिकित्सा—अग्नि ही अग्नि(दग्ध)की औषधि होती है।

(२०) विषं विषेण व्यथते, वज्रं वज्रेण भिद्यते ।
गजेन्द्रो दृष्टसारेण गजेन्द्रेनैव वध्यते ॥

विष विषप्रयोग से ही ठीक होता है, वज्र वज्र से ही कटता है, और गजेन्द्र दूसरे बलवान् गजेन्द्र से ही पकड़ा जाता है।

(२१) यथा नरेन्द्रोपहतस्य कस्यचिद्
भवेत्प्रसादस्ततएवनान्यथा ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ध्रुवं तथा मद्यहतस्य देहिनो
भवेत्प्रसादस्तत एव नान्यथा ॥ (सुश्रुत)

जैसे राजा से पीड़ित मनुष्य की प्रसन्नता राजा को छोड़कर अन्य किसी से नहीं हो सकती, वैसे मद्य से पीड़ित मनुष्य की प्रसन्नता मद्य के बिना दूसरे किसी द्रव्य से नहीं हो सकती।

(२२) उच्छेद्यमपि विद्वांसो वर्धयन्त्यरिमेकदा ।
गुडेन वर्धितो श्लेष्मा यतो निःशेषतां व्रजेत् ॥ (पंचतन्त्र)

जिसका नाश करना है उस शत्रु को भी राजनीतिज्ञ एक बार बढ़ने का अवसर देते हैं, इसलिए कि गुड़ देकर बढ़ा हुआ श्लेष्मा आगे निःशेष हो जाता है।

वक्तव्य—जैसे संशमन और संशोधन करके चिकित्सा के दो प्रकार होते हैं वैसे विपरीत या विपर्यस्त तथा विपरीतार्थकारी या विपर्यस्तार्थकारी करके चिकित्सा के दो प्रकार होते हैं। फिर हेतु, व्याधि और हेतुव्याधि के आधार पर प्रत्येक के तीन प्रकार किये जाते हैं, इस प्रकार छः प्रकार की चिकित्सा हो जाती है—हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् । औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ अष्टांगहृदय॥ इस षड्विध चिकित्सा का विवरण विस्तार के साथ नीचे दिया जाता है।

(१) हेतुविपरीत—इसमें रोग के हेतु के विपरीत चिकित्सा होती है। 'अग्निर्हिमस्य भेषज्यम्' इसका उत्तम उदाहरण है। तथा शीतजन्य व्याधि में उष्ण औषधि अन्न इत्यादि। दिवास्वप्न से उत्पन्न कफ विकार में जागरण।

(२) व्याधिविपरीत—इसमें व्याधि से विपरीत औषधान्नविहार से चिकित्सा की जाती है। अतिसार में स्तम्भक औषधि, स्थूलता में अपतर्पण, कृशता में संतर्पण, अतिज्वर में शीतल जलप्रोञ्छन या शीतावेष्टन, सर्दी में उष्ण सेवन इत्यादि।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३) हेतुव्याधिविपरीत—जैसे वातशोथ में वातहर और शोथहर दशमूल का प्रयोग।

(४) हेतुविपरीतार्थकारी—निदानसमानधर्मी, परन्तु प्रभाव से रोग प्रशमन करनेवाली औषधि। इसके उदाहरण १६ से २१ तक ऊपर दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त ये भी उदाहरण हैं—विषस्य विषमौषधम् ॥ प्रसन्नराघव ॥ शत्रु के साथ व्यवहार करने की दृष्टि से इसके ये उदाहरण हैं—पिशाचानां पिशाचभाषयैवोत्तरं देयम् ॥ संकल्पसूर्योदय ॥ ननु वञ्चनस्य वञ्चनैव प्रतिक्रिया ॥ मल्लिकामारुत ॥ शत्रुमुन्मूलयेत प्राज्ञस्तीक्ष्णं तीक्ष्णेन शत्रुणा। व्यथाकरं सुखार्थाय, कण्टकेनैव कण्टकम् ॥ पञ्चतन्त्र ॥ उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत। पादलग्नं करस्थेन, कण्टकेनैव कण्टकम् ॥ चाणक्यशतक॥ समानधर्मी द्रव्य कैसे प्रशमन करता है। इसके लिए पृष्ठ ८२ के अन्त में दिया हुआ भामती टीका का उद्धरण देखिए।

(५) व्याधिविपरीतार्थकारी—व्याधिसमानधर्मी, व्याधि बढ़ानेवाली परन्तु आगे चलकर व्याधि का उपशम करनेवाली। जैसे, उलटी होती हो तो उलटी करनेवाला मदन फल। इसका दूसरा उदाहरण ऊपर के २२वें वचन में देखिए। इस वचन के पूर्वार्थ में शत्रु के साथ व्यवहार करने की जो नीति बतलायी है उसको 'कूटयुद्धविकल्प' कहते हैं—पूर्वभङ्गप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात्। दूष्यामित्राटवैर्बलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात्। दूष्यबलेन वा स्वयं भंगं दत्त्वा जितमिति विश्वस्तमविश्वस्तं सत्रापाश्रयोऽभिहन्यात्। फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात् ॥ कौ० अर्थशास्त्र ॥ इसमें शत्रु के साथ कटु तथा कड़ा व्यवहार न करके मृदु-मधुर व्यवहार किया जाता है जिसमें उसकी बराबर जीत होती रहे। इससे वह जितं मया समझकर अविचार से आगे बढ़ता है और इस प्रकार बढ़ने पर स्वयं नष्ट होता है या नष्ट किया जा सकता है। शत्रु

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

के साथ व्यवहार करने की इसनीतिं के आधार पर रोगरूप, शत्रु के साथ जो व्यवहारनीति प्रयुक्त होती है उसको 'गुडश्लेष्मन्याय' कहते हैं। कफ दोष से पीडित होनेपर कफकर या कफवर्धक गुड़ का प्रयोग करके उसका उपशम किया जाता है। होमिओपाथी की औषधियाँ इसी स्वरूप की अर्थात् व्याधिविपरीतार्थकारी हुआ करती हैं। इसके विपरीत आधुनिक पाश्चात्य की अधिकसंख्यक औषधियाँ हेतुविपरीतार्थकारी स्वरूप की होती हैं।

(६) *हेतुव्याधिविपरीतार्थकारी*—इसका उत्तम उदाहरण मद्यजन्य मद विकार में मद्य का प्रयोग है जो ऊपर श्लोक २० में दिया गया है। विष जन्य विकार में विषका प्रयोग इसी स्वरूप की चिकित्सा है। सर्प चिकित्सा में विष का प्रयोग इसी तत्व पर किया जाता है। 'विषे प्रति विषं योज्यं' श्लोक का वक्तव्य देखें। अग्निदग्ध में अगुरु जैसे उष्ण द्रव्य का लेप इसी तत्व पर किया जाता है और उससे लाभ भी होता है—अग्निना प्लुष्टे गुर्वादिना लेपः, उष्णं हि हेतावग्नौ व्याधौ च दाहेऽनुगुणं प्रतिभाति ॥ चक्रपाणिदत्त ॥

(२३) विकारेऽल्पे महत्कर्म, क्रिया लघ्वी महागदे ।
द्वयमेतदकौशल्यं, कौशल्यं युक्तकर्मता ॥ (वृन्दमाधव)

उचित उपचार का महत्व—सौम्य विकार होने पर (संशमनात्मक चिकित्सा न करके, तीव्र विषैली औषधियाँ, वमनविरेचन, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म के समान) बड़ी चिकित्सा करना और रोग बड़ा होने पर (संशोधनात्मक चिकित्सा न करके दीपन पाचन के समान) सौम्य चिकित्सा करना दोनों कर्म चिकित्सक के अकौशल्य के सूचक होते हैं; यथास्थान दोनों का उपयोग करना चिकित्साकौशल्य है।

(२४) कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम् ।
महानत्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः ॥ (योगवासिष्ठ)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उचितकालका महत्व—(उचित) समय पर किया हुआ अल्प (उपचार) कार्य (रोगी के लिए) अत्यन्त उपकारी होता है। इसके विपरीत अकाल में किया हुआ महान् उपकारी कार्य भी व्यर्थ होता है।

(२५) उपकारः कृतः काले सुफलो न तथेतरः ।
तोयमल्पमपि ग्रीष्मे पादपानां सुपुष्टिदम् ॥

उचित समय पर किया हुआ उपकार (उपचार) जितना फलदायक होता है उतना इतर समय पर किया हुआ नहीं होता। गर्मियों में (जब की पेड़ों को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती है) दिया हुआ अल्प जल भी बहुत पुष्टिदायक होता है।

वक्तव्य—तोयमल्प—इसका स्पष्टीकरण जगन्नाथ पण्डित के निम्न श्लोक से बहुत अच्छी तरह हो जायगा—तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः। सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन ॥

उपर्युक्त तीन वचनों का तात्पर्य यह है कि उचित काल पर प्रारम्भ की हुई चिकित्सा अल्पव्ययी और बहुगुणी होती है—A stitch in time saves nine! इसके विपरीत कालातिक्रम हो जाने पर वह उत्तरोत्तर अधिकाधिक अपव्ययी और अल्पगुणी होती जाती है और एक काल के पश्चात् वह व्यर्थ होती है। आयुर्वेद में दोषवैषम्य की संचयादि छ अवस्थाएँ (पृष्ठ ३७७) बतायी हैं और उनके अनुसार चिकित्सा के लिए संचय का प्रथम काल, प्रकोप का द्वितीय क्रियाकाल, प्रसर का तृतीय क्रियाकाल, स्थानसंश्रय का चतुर्थ, व्यक्ति का पंचम क्रियाकाल और भेद का षष्ठ क्रियाकाल होता है। इनमें संचय का सर्वोत्कृष्ट और भेद का अतिनिकृष्ट काल होता है। फिर भी इसमें चिकित्सा प्रारम्भ करने से सफलता की कुछ आशा कर सकते हैं। इसके पश्चात् रोग असाध्य हो जाने से चिकित्सा व्यर्थ होती है—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तत्राप्रतिक्रियमाणोऽसाध्यतामुपयान्ति ॥ सुश्रुत ॥ (पृष्ठ ३७६ पर) 'जातमात्रं न यः शत्रुं' श्लोक तथा उसका वक्तव्य देखें।

(२६) तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा।
भेषजं प्रतिकुर्वीत य इच्छेत्सुखमात्मनः ॥ (चरक)

अतः जो अपना स्वास्थ्य (खराब न होवे ऐसा) चाहता है उसको रोग (प्रकट होने) से पूर्व या उसकी नवीनावस्था में उचित चिकित्सा करनी चाहिये।

वक्तव्य—प्रागेव रोगेभ्यः—रोग का रूप धारण करने से पहले अर्थात् संचय काल में। इस का उत्तम उदाहरण कर्क (Cancer) या कर्कार्बुद (Carcinoma) का है। शरीर में यह अर्बुद स्तन, गर्भाशय, स्वरयन्त्र, जिह्वा इत्यादि अंगों में प्रथम अपनी जड़ जमाता है और पश्चात् वहाँ से अन्य अंगों में फैलता है। फैलने पर वह घातक होता है। इसलिए शरीर के किसी अंग में उसकी जड़ जमने का पता लगते ही उसको निकाल देना उससे बचने का मार्ग है—संचयेऽपहता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतीः । ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ सुश्रुत ॥ प्रकोपकालीन चिकित्सा अपरोत्कृष्ट (Next best) होती है।

(२७) सहसैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः।
अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥
(बृहत्स्तोत्ररत्नाकर)

भुजंग रूपी पाश से जब तक मुझे यमराजजी ने मजबूत पकड़ा नहीं है तब तक शिवजी, मुझे अभयदान दीजियेगा। (उनके पाश में) जीव के (फँस) जाने पर औषधियों से क्या होने वाला है ?

वक्तव्य—इस वचन में यह बतलाया है कि षष्ठ काल तक भी यदि चिकित्सा की जाय तो सफलता की कुछ आशा की जा सकती है। रोग असाध्य होने पर अर्थात् यमराज के पाश में फँसने पर चिकित्सा करना न करने के समान है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२८) अप्राप्ते वा क्रियाकाले, प्राप्ते वा न कृता क्रिया ।
क्रिया हीनातिरिक्ता वा साध्येष्वपि न सिद्धयति ॥ (सुश्रुत)

क्रिया काल प्राप्त होने से पूर्व तथा क्रिया काल प्राप्त होने के पश्चात् की हुई और आवश्यकता से न्यून या अधिक की हुई क्रिया साध्य रोगों में भी सिद्ध नहीं होती ।

वक्तव्य—यद्यपि सब रोगों को चिकित्सा के लिए सर्वसाधारण उत्कृष्ट काल रोगपूर्व या रोग होते ही होता है तथापि उसके कुछ कर्मों के लिए विशिष्ट काल अपेक्षित होता है । उसके पहले या उसके पश्चात् वह कर्म हानिकर होता है । इसका उत्तम उदाहरण विद्रधि (Abscess) है, जिसमें शस्त्रकर्म एक चिकित्सा है जो उसके पक्व होने पर ही करनी पड़ती है, उसके पहले या पश्चात् नहीं—तत्र आमच्छेदे मांससिरास्नायवस्थिसंधिव्यापादनमतिमात्रं शोणितातिप्रवृत्तिर्वेदनाप्रादुर्भावः । पक्वमप्यपक्वमिति मन्यमानश्चिरमुपेक्षते व्याधिं तदा गंभीरानुगतोपूयो नाडीं जनयित्वा कृच्छ्रसाध्यो भवति ॥ सुश्रुत ॥ मोतियाबिंद (Cataract) का भी ऐसा ही है । उसके पक्व होनेपर ही शस्त्रकर्म से उसको निकाल सकते हैं, उसके पहले नहीं ।

(२९) ऋणशेषं व्याधिशेषं चाग्निशेषं तथैव च ।
पुनःपुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥ चाणक्यशतक ॥

रोगनिर्मूलन का महत्त्व—ऋण, व्याधि और अग्नि इनका अल्प भी शेष रह जाय तो बारबार बढ़ता है; इसलिए ऋण (को चुकाते समय) व्याधि (को मिटाते समय) और अग्नि (को बुझाते समय इस पर ध्यान दे कि उनका) अल्पांश भी शेष न रहे ।

वक्तव्य—रोग जब तक कष्टदायक होता है तब तक मनुष्य स्वेच्छा से या अनिच्छा से उसकी चिकित्सा करता है या करा लेता है और आराम मिलने पर वह प्रायः चिकित्सा बन्द करता है । परन्तु आराम मिलना रोगनिर्मूलन का लक्षण नहीं होता, रोग कष्ट देने योग्य बलवान्

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नहीं रहा इसका निदर्शक होता है। इसलिए आराम मिलने पर भी पूर्णस्वस्थ (पृष्ठ २७ पर 'समदोषसमाग्निश्च' श्लोक देखें) होने तक चिकित्सा का अनुबंध जारी रखना चाहिए।

(३०) उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत्।

पश्यतो बकमूर्खस्य नकुलैर्भक्षिताः प्रजाः ॥ (हितोपदेश)

चिकित्सा में सावधानता—उपाय का विचार करते समय (उससे होनेवाले) अपायों का चिन्तन भी सूज्ञचिकित्सक को करना चाहिए। (ऐसा न करने से ही) मूर्खबक के आँखों के सामने नेवलों ने (जैसे) उसकी प्रजा को खा डाला (वैसे वैद्य के सामने उपाय रोगी को खा जायेगा)

(३१) उपायसंदर्शनजां च सिद्धमपायसंदर्शनजामसिद्धिम्।

मेधाविनो नीतिविदः प्रयुक्ताः पुरः स्फुरन्तीमिव दर्शयन्ति ॥

(पंचतन्त्र)

बुद्धिमान् चिन्तनशील शास्त्रज्ञ (अपने द्वारा किये जाने वाले) उपायों की सिद्धियाँ तथा (तदुत्पन्न) अपायों की हानियाँ पहले ही अन्तःस्फुरण से देख लेते हैं।

वक्तव्य—इन वचनों का तात्पर्य यह है कि जो चिकित्सक रोगियों की चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले सोच विचार करके उपायों को चुनते हैं, जहाँ तक हो सके अनपायी उपायों को व्यवहार में लाते हैं, अपाय की संभावना हो तो उसके प्रतिकारार्थ सावधान तथा सम्बद्ध रहते हैं और अपने उपायों द्वारा रोगियों को हानि नहीं पहुँचाते हैं वे 'प्राज्ञ' होते हैं। ये अपने उपायों से होने वाले अपायों को तुरन्त भाँप जाते हैं। यह प्राज्ञता चिन्तनशीलता, ज्ञाननिष्ठा, सावधानता, प्रतिकार-सिद्धता इत्यादि से प्राप्त होती है। इसके विपरीत जो अपने उपायों के संबन्ध में जरा-सा भी विचार नहीं करते और उसके कारण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपने 'स्वसुत' सम रोगियों को हानि पहुँचाते हैं वे 'मूर्खबक' सम होते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा में पहले की अपेक्षा बहुत तेज, विषैली औषधियाँ, सूचिकाभरण, शस्त्रकर्म इत्यादि प्रयुक्त हुआ करते हैं। ये उपाय दुधारी शस्त्र के समान जैसे अधिक तथा शीघ्र लाभकारी होते हैं वैसे अधिक तथा शीघ्र हानिकर भी होते हैं। सुई लगाने का उपाय लीजिये। शीघ्र लाभ होने के कारण आजकल औषधि प्रदान करने का यही प्रधान मार्ग हो गया है। इसके आधार पर आधुनिक कायचिकित्सक (पृष्ठ ४०५ पर 'जाठरः प्राणिनामग्निः' श्लोक देखें) को 'सूची चिकित्सक' कहना ही उचित है। सुई लगाने से पहले सिरादि जिस प्रत्यंग में सुई लगानी होती है उस अंग की दृष्टि से स्थान पसंद करना पड़ता है और सुई लगाते समय वह ठीक उसी अंग में लग रही है या नहीं इस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। परन्तु अनेक चिकित्सक इसमें लापरवाही करते हैं। परिणाम यह होता है कि कभी-कभी सुई पेशी के बदले सिरा में और कभी कभी सिरा के बदले पेशी में या नाड़ी (Nerve) में चली जाती है और नाड़ीशूल, अंगघात, सिराशोथ, स्तब्धता (Shock) और कभी कभी अकस्मात् मृत्यु (पृष्ठ ४०६ पर 'चितां प्रज्वलितां दृष्ट्वा' श्लोक का वक्तव्य देखें) तक उपद्रव हो जाते हैं। सुई का निर्जीवाणुकरण (Sterilization) ठीक न करने से त्वक्शोथ (Dermatitis) विद्रधि, पेशीशोथ (Myositis) अपतानक या धनुष्टम्भ (Tetanus) इत्यादि उपसर्ग उत्पन्न होते हैं। वर्तमान काल में धनुर्वात की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो अनुसंधान चल रहा है उससे यह निष्कर्ष निकला है कि दुर्घटनाओं के कारणों को छोड़कर धनुर्वात उत्पन्न होने का प्रधान कारण सूचिकाभरण है। इसलिए आजकल की तीव्र औषधियों से चिकित्सा करते समय उनसे संभवनीय छोटे मोटे सब अपायों के लिए सावधान तथा संनद्ध रहकर चिकित्सा करनी चाहिए। जो इस

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रकार विचार करके चिकित्सा नहीं करते हैं उनके ऊपर मूर्ख बक के समान अपनी ही औषधियों से अपने ही रोगी मरते हुए देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

(३२) उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमादतः।

हन्ति नोपाशयस्थोऽपि शयालुर्मृगयुर्मृगान् ॥ (शिशुपालवध)

चिकित्साकाल में सावधानता—जैसे, उपशय में छिपकर बैठा हुआ शिकारी (मृगों का शिकार करने की दृष्टि से उचित उपाय का अवलंबन करने पर भी) उसमें नींद लेने (का प्रमाद करने) पर मृगों का शिकार नहीं कर सकता, वैसे उचित उपाय करने वाले (चिकित्सक) के भी ईप्सितार्थ बीच में जरा सा प्रमाद करने पर नष्ट हो जाते हैं।

वक्तव्य—प्रमाद—प्रमादोऽनवधानता ॥ अमरकोश ॥ मृगयु—शिकारी—व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकश्च सः ॥ अमरकोश ॥ उपशय—छिपने का स्थान—उपशेरतेऽस्मिन्नित्युपशयो मृगमार्गस्थायिनो व्याधस्यात्मगुप्तिस्थानं गर्तविशेषः ॥ मल्लिनाथ ॥ इस वचन का तात्पर्य यह है कि चिकित्सा में आदि से अन्त तक सावधानता आवश्यक होती है, एकाध बार जरा सा अनवधान होने पर सब गुड़ गोबर हो सकता है।

(३३) त्रातुं पतिं नौषधयः स्वशक्त्या

मन्त्रेण विप्राः क्षयिणं न शेकुः।

एनं पयोधिर्मणिभिर्न पुत्रं

सुधाप्रभावैर्न निजाश्रयं वा ॥ (नैषध)

चिकित्सानिष्फलता हेतु—औषधियाँ स्ववीर्यद्वारा अपने पति को, द्विज मन्त्रोंद्वारा अपने स्वामी को, समुद्र मणियोंद्वारा अपने पुत्र को और अमृत प्रभावद्वारा अपने आधार को क्षय से न बचा सके।

वक्तव्य—इस श्लोक के चारों पाद चन्द्र से ही सम्बन्धित हैं,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क्योंकि औषधीश, द्विजराज, समुद्रपुत्र और सुधाश्रय ये चन्द्र के ही नाम हैं। पुत्र—समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसको समुद्र-पुत्र कहा है। चन्द्र समुद्रमन्थन के समय निकले हुए चौदह रत्नों में से एक है—लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजा रम्भादिदेवाङ्गनाः। अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधे रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मङ्गलम् ॥ नीचे का श्लोक भी देखें।

(३४) लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातसहजः सूनुः सुधाम्भो निधे-
देवेन प्रणयप्रसादविधिना मूर्ध्ना धृतः शम्भुना।
अद्याप्युज्झति नैव दैवविहितं क्षैण्यं क्षपावल्लभः
केनान्येन विलङ्घ्यते विधिगतिः पाषाणरेखासखी ॥

(भोजप्रबन्ध)

लक्ष्मी, कौस्तुभ, पारिजात, आदि का बन्धु, सुधासागर का पुत्र तथा शंकरजी से प्रेम से सिर पर धारण किया हुआ रजनीवल्लभ दैवविहित क्षय को अभीतक छोड़ता नहीं, फिर पाषाणरेखासम न मिटने वाली विधिगति को दूसरा कौन उल्लङ्घित कर सकता है।

वक्तव्य—पाषाणरेखा—न मिटनेवाला अथवा शाश्वत—असद्भिः शपथेनोक्तं जले लिखितमक्षरम्। सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम् ॥

(३५) अयममृतनिधानं नायकोप्यौषधीनां
शतभिषगनुयातः शम्भुमूर्ध्नोऽवतंसः।
विरहयति न चैनं राजयक्ष्मा शशाङ्कं
हतविधिपरिपाकः केन वा लङ्घनीयः ॥ (नीतिशतक)

चन्द्र अमृत का भाण्डार, औषधियों का पति, शतभिषगों (शतता-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रका नक्षत्र) से अनुगत, शंकरजी के मस्तक पर अवस्थित, फिर भी उसको राजयक्ष्मा छोड़ता नहीं है। निन्द्य विधिपरिपाक किससे लंघनीय है ?

वक्तव्य—विधि—कर्म। ये कर्म पूर्वजन्म के या इस जन्म के हो सकते हैं। इस जन्म के कर्म को 'प्रत्युत्पन्न कर्म' और पूर्व जन्म के कर्म को 'पूर्व कर्म' कहते हैं। 'कर्म जा हि शरीरेषु' श्लोक का वक्तव्य (पृष्ठ ३३५) देखें। हतविधिपरिपाक—निन्द्य कर्म का विपाक या फल। केनवालंघनीयः—कृतकर्मों के फल चाहे पूर्वजन्म के हों, चाहे इस जन्म के, कोई टाल नहीं सकता। अच्छे कर्मों के फल अच्छे होने के कारण उनको टालने का प्रश्न ही मनुष्य के सामने खड़ा नहीं होता, परन्तु बुरे कर्म के फल बुरे होने के कारण उनको टालने का प्रयत्न मनुष्य किया करता है, परन्तु उससे वे कदापि टाले नहीं जा सकते, भोगने ही पड़ते हैं—प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षयः।

उपर्युक्त तीनों वचनों में 'विधिपरिपाक' चिकित्सा में निष्फलता उत्पन्न होने का एक कारण होता है इसको चन्द्र के उदाहरण से बतलाया है। चिकित्सा गुणसंपन्न होने पर भी जब रोगी में निष्फल हो जाती है तब उस निष्फलता को वैद्यकीय दृष्ट्या महत्व दिया जाता है। चन्द्र में यह गुणसम्पन्नता [अव्वल दर्जे की रही यह उपर्युक्त वचनों के परिशीलन से स्पष्ट होगा। तिस पर भी उसको सफलता न मिली, इसलिए चन्द्र का उदाहरण दिया गया है। इस विषय के अधिक विवरण के लिए नीचे का वचन और उसका वक्तव्य देखें।

(३६) ओषधीशोऽमृतकरः सन्नपीन्दुः क्षयार्दितः।

न हि प्रतिक्रियासंपत्तिसिद्धिर्दोषाकरे भवेत् ॥ (सुश्लोक लाघव)

स्वयं औषधियों का राजा और अमृत वर्षा करनेवाला होते हुए भी चन्द्र क्षय से पीडित रहा (क्योंकि) दोषाकर में चिकित्सा सम्पदा को (भी) सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—प्रतिक्रिया संपत्—चिकित्सासंपत्-चिकित्सा रुक्प्रतिक्रिया ।। अमरकोश ।। उत्तम चिकित्सक, उत्तमोत्तम औषधियाँ तथा परिचारकादि अन्य अनुकूल परिस्थिति को चिकित्सासंपत् कह सकते हैं। दोषाकरे—दोषाकरशब्द में द्व्यर्थी श्लेष है—(१) दोषा रात्रिस्तस्य करो दोषाकरश्चन्द्रः—दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि। चन्द्र अत्यन्त कामासक्त और स्वास्थ्यरक्षा की परवा न करनेवाला होने से उसमें क्षय की चिकित्सा व्यर्थ हुई और वह बराबर क्षयपीडित रहा—रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः। आजगामाल्पतामिन्दोर्देहः स्नेहपरिक्षयात् ।। चरक ।। (२) दोषाणामवगुणानामाकरः खनिः, दोषाकरः तस्मिन् रोगिणि। चिकित्सा संपन्न होनेपर भी उसमें सफलता प्राप्त होने के लिए रोगी में कुछ गुणों की आवश्यकता हुआ करती है। 'दृष्टदोषमपि' (पृष्ठ ३८५) 'तं प्रमत्तमपि' (पृष्ठ ३३६) 'मावेदि यदसावेको' (पृष्ठ ३६१) इन श्लोकों के वक्तव्यों को देखें। जिसमें रोगी के गुण नहीं होते बल्कि इसके विपरीत व्यवहार करने के अवगुण रहते हैं वह दोषाकर रोगी होता है। चन्द्र सम्बन्धी उपर्युक्त सब वचनों का तात्पर्य यह है कि चिकित्स्य रोगी अवगुणी होने पर चिकित्सासंपत् कितनी भी गुणवती क्यों न हो, वह सफल नहीं हो सकती और यह सत्य इस वचन के उत्तरार्ध में अर्थान्तरन्यासालंकार से प्रदर्शित किया गया है।

(३७) नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे, सा तु तथैव संस्थिता।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ।। (रघुवंश)

अज राजा की विसंज्ञता (तो पानी छिड़कना) पंखा करना इत्यादि (उपायों) से दूर हो गयी, परन्तु वह (इन्दुमति) वैसे ही (विसंज्ञ) रह गयी। आयु शेष होनेपर ही रोगप्रतीकारार्थ किये गये उपचार सफल हुआ करते हैं।

(३८) शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्, छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो, दण्डेन गोगर्दभौ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥
(वैराग्यशतक)

अग्नि का निवारण पानी से, सूर्य की धूप का छत्री से, मदोन्मत्त हाथी का तेज अंकुश से, गाय गधे का डण्डे से, व्याधि का विविध औषधियों के ग्रहण से और विष का मन्त्रों से शक्य होता है। (तात्पर्य, इस संसार में) सबके लिये शास्त्रोक्त प्रतिक्रिया है, परन्तु मूर्ख के लिए कोई नहीं है।

वक्तव्य—मूर्ख—इसके व्यावहारिक तथा आलङ्कारिक दो अर्थ होते हैं। (१) मूढ़, दुर्विदग्ध, गर्विष्ठ, दुराग्रही यह इसका व्यावहारिक अर्थ है। ऐसे मनुष्य को ब्रह्मा तक कोई अपने उपदेश से ठीक नहीं कर सकता—ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥ नीतिशतक ॥ कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्य ह्यात्मा न शक्यते जेतुम्। मूर्खस्य शंकितस्य विषादिनो वा कृतघ्नस्य ॥ शंकराचार्य ॥ पृष्ठ २५३ पर 'प्रहारितोऽपि मार्जारः' श्लोक देखिए। (२) जिस पर बोलने का उपदेश का कोई असर नहीं होता उसको आलङ्कारिकदृष्ट्या गतायुष कह सकते हैं। वैद्यक में भी जब उचित चिकित्सा निष्फल होती है तब उस रोगी को गतायुष ही समझते हैं—चिकित्स्यमानःसम्यक्च विकारो योऽभिवर्धते। प्रक्षीण-बलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥ सुश्रुत ॥ अतः मूर्ख के लिए कोई औषधि चिकित्सा न होने के कारण यहाँ पर आलङ्कारिक दृष्ट्या मूर्ख का दूसरा अर्थ गतायुष कर सकते है। श्रीशंकराचार्य जी ने मूर्खता मृत्यु है यह स्पष्ट कहा है—किं मरणं मूर्खत्वम्।

(३९) यावदुच्छ्वसिति प्राणी यावद् भेषजमत्ति च।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या दैवस्य कुटिला गतिः ॥
(रसरत्नसमुच्चय)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चिकित्सा की पराकाष्ठा—जब तक प्राणी अपनी साँस ले रहा है तथा औषधि सेवन कर सकता है तब तक (उसको बचाने के लिए) चिकित्सा करनी चाहिए, क्योंकि दैव की गति बहुत विचित्र होती है।

वक्तव्य—उच्छ्वसिति—श्वसन और स्पन्दन ये दो जीवितावस्था के प्रधान लक्षण होते हैं। जब तक साँस और नाड़ी ये दोनों या इनमें से एक भी लक्षण विद्यमान है तबतक प्रयत्नपराकाष्ठा करनी चाहिए। भेषजमत्ति—जब तक अन्न पान और औषधियों को रोगी सेवन करता है। क्योंकि इनके बिना चिकित्सा कर नहीं सकते। परन्तु अब रोगी मुख से अन्नादि सेवन करने में असमर्थ होने पर भी ये द्रव्य सूचिका-भरण से उसको दिये जा सकते हैं। अतः औषधि सेवन की असमर्थता असाध्यता की या चिकित्सा बन्द करने की सूचक नहीं होती। दैवस्य कुटिला गतिः—मनुष्य के भाग्य में क्या है यह कोई जानता नहीं, जो होनहार है वह टलता नहीं और जो होनहार नहीं है वह होता नहीं। ऐसी अवस्था में रोगी में या दुर्घटनाग्रस्त में रिष्ट या असाध्य लक्षण दिखाई देने पर भी उसके जीवित के सम्बन्ध में निराश होकर चिकित्सा में प्रयत्न पराकाष्ठा करने का कार्य बंद न होना चाहिए, क्योंकि दैव की गति कुटिल होने से कभी 'कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति', कभी स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा लीलयैव विदधाति तद्विधिः, और कभी—'विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया' इस न्याय से मरणोन्मुख मालूम होनेवाला मनुष्य बच भी सकता है।

मृत्यु या कालमृत्यु एक एवं अपरिहार्य घटना है और उसके लिए कोई चिकित्सा या प्रतिक्रिया उपलब्ध नहीं है न होगी। अतः उसकी चिकित्सा करने में प्रयत्नपराकाष्ठा करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसके विपरीत अकालमृत्यु असंख्य होते हुए भी परिहार्य हैं। इसलिए जब कभी अकालमृत्यु-जनक घटनाओं से मनुष्य ग्रस्त हो जाय तो 'जब तक साँस तब तक आस' इस आत्मविश्वास पर उसको

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपमृत्यु की चिकित्सा करके उससे बचाने का प्रयत्न करना चाहिए ऐसा इस वचन का अर्थ है। तात्पर्य, यह वचन अपमृत्यु चिकित्सा के सिद्धान्त से संबंधित है। इस प्रकार का प्रयत्न आघात, अभिघात, गिर पड़ना, पानी में डूबना, जलना, स्थलमार्ग, जलमार्ग, वायुमार्ग के वाहनों की दुर्घटना इत्यादि से पीड़ितों में, फुफ्फुसपाक (Pneumonia), रोहिणी (Diphtheria), विसूचिका (Cholera), तन्द्राभ (Typhoid) इत्यादि तीव्र तथा आशुकारी रोगों से पीड़ितों में विशेषतया बाल, जवान, अधेड़ उम्र के मनुष्यों में जरूर करना चाहिए। इसके विपरीत जब मनुष्य अत्यन्त वृद्ध, जराजर्जर, दोषधातुमल क्षीण, दीर्घकाल से रोगग्रस्त, असाध्य स्थिति में पहुँचा हुआ, सर्वप्रकार की चिकित्सा निष्फल हुआ ऐसी स्थिति में अर्थात् कालमृत्यु के पाश में फँसा हुआ रहता है तब क्या करना चाहिए इसका सिद्धान्त नीचे के वचनों में बतलाया है।

(४०) असाध्य इति वैद्येनातुर इव स्वैरं मुक्तो भवांस्तत्र भवत्या।

(विक्रमोर्वशीय)

चिकित्सा की उपेक्षा—वैद्य के द्वारा जैसे असाध्य स्थिति में पहुँचा हुआ रोगी खानपानादि के बारे में स्वैर छोड़ दिया जाता है वैसे उर्वशी द्वारा तुम भी स्वैर छोड़ दिये गये हो।

वक्तव्य—स्वैरं मुक्तः—जब तक रोगी रोगमुक्त होने की वैद्य को आशा होती है तबतक वैद्य उस पर आहार विहार पथ्य औषधि इनके सेवन के सम्बन्ध में निर्बंध रखता है। परन्तु जब एक बार रोग असाध्य है या हो गया है इसका निर्णय हो जाता है तब रोगी के ऊपर के सब निर्बंध हटाये जाते हैं और उसको सब स्वतन्त्रता दी जाती है और ऐसा ही होना उचित है। 'सर्वत्र मैत्री करुणातुरेषु' श्लोक में पृष्ठ ४२६ पर 'मनस्युपेक्षापकृति व्रजत्सु' का वक्तव्य देखिए। ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए इसके लिए नीचे के श्लोक देखिए।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मृत्यून्मुखां धरां ज्ञात्वा न चिकित्सेद् गदातुरम् ।
रामनामौषधं तत्र कारयेत्पारलौकिकम् ॥

(रावणकृत नाडीपरीक्षा)

नाड़ी (परीक्षण करने पर यदि) मृत्युदर्शक मालूम हो तो रोग ग्रस्त रोगी की (लौकिक साधन सामग्री से) चिकित्सा न करें, किन्तु परलोक में उपयुक्त रामनाम रूपी औषधि (की चिकित्सा) करें।

वक्तव्य—रामनामौषधम्—(पृष्ठ ३६२ पर) 'इदं शरीरं शतसंधिजर्जरं' श्लोक और उसका वक्तव्य देखें।

(४२) शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे ।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ॥

शरीर अत्यन्त जराजर्जर और व्याधिग्रस्त होनेपर गंगाजल (सर्वोत्तम) औषधि और हरि नारायण (सर्वोत्तम) वैद्य होता है।

वक्तव्य—रोगी की स्थिति चिन्ताजनक हो जाने पर नित्य के चिकित्सक के अतिरिक्त नये-नये और बड़े-बड़े चिकित्सक बुलाये जाते हैं। ये चिकित्सक प्राय: व्यवसायी होने के कारण तथा बुलाये जाने के कारण रोगी को बचने की आशा है या नहीं इसको विशेष महत्व न देकर, रोगी से शुल्क लेना है अत: कुछ भी न कहना या करना ठीक नहीं दिखेगा इस कल्पना से आत्ययिकता (Emergency) में रोगी को बचाने के लिए जिस प्रकार के उपचार किये जाते हैं उस प्रकार के उपचार बतलाते हैं तथा कराते हैं। वर्तमान कालीन उपचार, रोगी बचने योग्य हो तो जरूर उसको बचाने में सफल हो सकते हैं इसमें संदेह नहीं, परन्तु वे मरणोन्मुख रोगी में व्यर्थ होते हैं इसको भी न भूलना चाहिए। अत: यदि अतिवृद्धता, अतिजराजर्जरता, अतिरोगग्रस्तता, अतिशक्तिक्षीणता, अतिहृद्दुर्बलता इत्यादि के कारण घरवालों को रोगी बचने की आशा मालूम न हो तो वे नये-नये

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चिकित्सकों के तथा उनसे बताये गये नये-नये उपचारों के पीछे पड़कर अपनी शक्ति और लक्ष्मी का अपव्यय न करें और चिकित्सक का भी यह कर्तव्य होता है कि यदि रोगी मरणोन्मुख मालूम हो तो उसकी आत्मा को दुःख होता रहे तथा उसकी अन्तिम यमयातना की कालावधि बढ़ने पावे इस प्रकार की कोई चिकित्सा न करें।

एक बार एक आठ दस साल की लड़की आन्त्रिक (Enteric) ज्वर से पीडित हुई। अच्छे चिकित्सक से चिकित्सा करवायी, परन्तु सफलता न मिली। अन्त में जब उसकी स्थिति खराब हो गयी तब चिकित्सकने उसको त्वचाके नीचे कई जगह सुई से लवण-जल (Saline) देने के लिए कहा। उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर उसका विरोध किया गया जो चिकित्सक ने मान लिया और लवण-जल देना बंद किया। उसके घण्टे भर के पश्चात् उस लड़की का सुख से देहान्त हुआ।

इसके विपरीत स्थिति महाराष्ट्र के नट-सम्राट की हुई। दो मास पहले उनकी मृत्यु हुई। उस समय उनकी उम्र अस्सी के लगभग रही और अर्धांग के कारण वे बरसों से शय्याग्रस्त रहे। जब उनकी स्थिति अधिक चिन्ताजनक हुई तब चिकित्सकों ने उनको बचाने के लिए प्रयत्न की पराकाष्ठा की, विदेश से औषधियाँ तक मंगवायीं। किन्तु उससे न उनकी बेहोशी दूर हो सकी, न वे स्वस्थ बन पाये। केवल कुछ दिनों के बदले पूरे नब्बे दिन इसी जन्म में यमयातना भोगने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ और यमयातना भुगताने का श्रेय चिकित्सकों को मिला। अशुभस्य कालहरण करके यमधानी के सुखास्वाद को इसी जन्म में दीर्घ काल चखाने वाली इस स्वरूप की चिकित्सा को मनुष्यता की दृष्टि से मानुष (Human), अमानुष (Inhuman) या अतिमानुष (Superhnman) क्या कहा जाय?

उपर्युक्त तीन वचनों का सार यह है कि रोग असाध्य और रोगी के मरणोन्मुख होने पर, फिर वह स्थिति अकाल में उत्पन्न हुई हो या

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उचित काल में, चिकित्सक रोगियों की विशेष चिकित्सा की ओर ध्यान न दें, उनके ऊपर के निबंध शिथिल करें, फाँसी चढ़ने वाले व्यक्ति को अपनी इच्छापूर्ति के लिए जैसे स्वतन्त्रता दी जाती है वैसे रोगियों को खानपान इत्यादि के सन्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रा दें, और उन्हें रामनामग्रहण या श्रवण और गंगाजल सेवन के भरोसे छोड़कर सुख से शान्ति से और अपने ही नैसर्गिक मृत्यु से, न कि अपने द्वारा किये गये उपचारसे, मरने दे। इह लोक में अवतीर्ण हुए प्राणियों के लिए इहलोक से बिदा होनेका या बिदा करने का यही नैसर्गिक अत एव सर्वोत्तम मार्ग है।

(४३) जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः।
प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता॥ (भागवत)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय सुभाषित-
साहित्ये चिकित्सासिद्धान्तविज्ञानीयो नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः।



मृत्यु की अचिकित्स्यता—जिसने जन्म ग्रहण किया वह कहीं भी जाय, उसके लिए मृत्यु निश्चित होता है, इह लोक में उसकी चिकित्सा उपलब्ध नहीं है।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्ममेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां चिकित्सासिद्धान्तविज्ञानीयो नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कीटकश्वापदसर्प संबंधी

चतुर्थो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।

अथातः कीटश्वापदसर्पोपसर्गविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) मक्षिका मशको वेश्या मूषको याचकस्तथा।
ग्रामणीर्गणकश्चैव सप्तैते परभक्षकाः॥ (प्रसंगरत्नावलि)

परजीवी—मक्षिका, मच्छर, वेश्या, मूषक, याचक, ग्रामनेता और ज्योतिषी (जोशी) ये सात परभक्षक होते हैं।

वक्तव्य—परभक्षक—दूसरों के ऊपर अपनी जीविका चलानेवाले अर्थात् परजीवी (Parasites)। इनमें मक्षिका, मच्छर, मूषक और वेश्या ये चार परजीवी वैद्यकीय दृष्ट्या महत्व के हैं। मक्षिकाएँ दंशाक (Biting) और अदंशाक (Nonbiting) करके दो प्रकार की होती हैं। अदंशाक घरेलु मक्खी है और दंशाक में मशक महत्व के हैं। अदंशाक हमारे खाद्य, पेय, मल, मूत्र, थूक, खुले पड़े हुए रसरक्तादि धातु इन पर और दंशाक हमें काट कर हमारे रक्त पर निर्वाह करती हैं। वेश्या—'सुखतः क्रियते रामाभोगः' श्लोक (पृष्ठ २२०) देखें।

(२) मक्षिका व्रणमिच्छन्ति, धनमिच्छन्ति पार्थिवाः।
नीचाः कलहमिच्छन्ति, शान्तिमिच्छन्ति साधवः॥

(चाणक्यनीतिशास्त्र)

मक्षिका—मक्खियाँ व्रण की, राजा धनकी, दुर्जन झगड़ा करने की और सज्जन शान्ति की इच्छा करते हैं।

(३) अतिरमणीये काव्येऽपि पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
अतिरमणीये वपुषि व्रणमिव मक्षिकानिकरः॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

काव्य अतिरमणीय होने पर भी खल उसके दोषों को ही खोजते रहते हैं, जैसे शरीर अतिरमणीय होने पर भी मक्खियाँ उसके व्रण को देखती हैं।

वक्तव्य—मक्षिका व्रणमिच्छन्ति—रक्तरस, मांसरस, मक्खियों का खाद्य होता है। अतः जब आघात, अभिघात (Trauma), त्वग्विकार इत्यादि से त्वचा में खुले व्रण या क्षत होते हैं तब मक्खियाँ उनके रस को भक्षण करने के लिए उन पर आकर बैठती हैं और अपने पैर सूँड़ इन पर होनेवाले पूयजनक जीवाणु (Pyogenic bacteria), कृमियों के अण्डे इनसे उनको उपसृष्ट (Infected) करती हैं। इससे व्रण दूषित या पूतित (Septic) होता है और उसमें शोथ (Inflamation) होकर पूय, इल्लियाँ (Maggots) इत्यादि का आस्राव (Discharge) होने लगता है—अबद्धो दंशमशकशीतवातादिपीडितः। दुष्टि भवेत्। अष्टांगहृदय॥ मक्षिका व्रणमागत्य निक्षिपन्ति यदा कृमीन्। श्वयथुर्भक्षिते तैस्तु जायते भृशदारुणः॥ सुश्रुत॥ इससे व्रणों का रोहण (Healing) ठीक और शीघ्र नहीं होता है। इसलिए व्रणों की रक्षा मक्खियों से मरहमपट्टी द्वारा सदैव करनी चाहिए। पृष्ठ ५७६ पर वक्तव्य देखिए।

(४) त्यक्त्वाऽपि निजप्राणान् परहितविघ्नं खलः करोत्येव।
कवले पतिता सद्यो वमयति मक्षिकाऽन्नभोक्तारम्॥

अपने प्राणों की आहुति देकर भी दुर्जन दूसरों के हित में बाधा डालते हैं, जैसे, अन्न (पर बैठने के पश्चात् मृत होने से उसी) में गिरी हुई मक्खी उस अन्न का सेवन करने वाले को तत्काल वमन कराती है (और उस प्रकार) उसके भोजन सुख में बाधा डालती है।)

(५) एकः खलोऽपि यदि नाम भवेत्सभायां
मोघीकरोति विदुषां निखिलप्रयासम्।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एकोऽपि पूर्णमुदरं मधुरैः पदार्थै-
रालोड्य रेचयति हन्त न मक्षिका किम् ॥

अकेला दुर्जन भी यदि सभा में हो तो वह सज्जनों के सर्व प्रयत्नों को विफल करता है। रुचिकर भोज्य द्रव्यों से पूर्णतया भरे हुए जठर को क्या अन्न के साथ सेवन की गयी अकेली मक्खी बहुत तेजी से खाली नहीं कर देती ?।

वक्तव्य—कवले पतिता—जो द्रव्य हमारे खाद्य होते हैं वे मक्षिका के भी खाद्य होते हैं। इसलिए मक्खियाँ हमारे खुले खाद्य द्रव्यों पर बराबर बैठा करती है। परन्तु केवल हमारे खाद्य द्रव्य उसके खाद्य नहीं होते, हमारे मल मूत्र थूक भी उसके खाद्य हुआ करते हैं। इसलिए वे जितने प्रेम से हमारे खाद्य द्रव्यों पर बैठती हैं उतने ही प्रेम से वह हमारे मल द्रव्यों पर बैठा करती हैं। इससे उनके पैर, पंख, सूँड़ मलगत विकारी सूक्ष्म जीवों से तथा कृमियों के अण्डों से दूषित रहा करते हैं और जब वह हमारे अन्न पर, विशेषतया, ठण्ढे या बासी, बैठती हैं तब उसको उपसृष्ट किया करती हैं। ऐसे दूषित अन्न के सेवन से विसूचिका (Cholera), प्रवाहिका (Diarrhoea), अतिसार (Dysentery), आन्त्रिक ज्वर (Enteric fever) तथा विविध कृमिरोग उत्पन्न हुआ करते हैं।

बरसात के दिनों में मक्खियाँ बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न हुआ करती हैं और बहुत अधिक संख्या में हमारे अन्न पर भिनभिनाया करती हैं। बरसाती मक्खियाँ बहुत कमजोर होने से वे हमारे आँखों के सामने अन्न पर बैठे-बैठे उसी में लुढ़क कर मर जाती हैं। यदि इस पर ध्यान न गया तो वे अन्न के साथ पेट में जाकर वमन कराती हैं। इसलिए खाद्य द्रव्य सदैव मक्खियों से सुरक्षित स्थान में रक्खें तथा भोजन के समय वे भोजन स्थान में न आने पावे या भोजन पर न बैठने पावे इस दृष्टि से जालीदार कमरे का या पंखे का उपयोग करें।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मक्खी वामक (emetic) है इसको सब लोक जानते हैं और कुछ लोग इसके अनुभवी भी होंगे।

(६) प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठमासं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥ (हितोपदेश)

मच्छर—खल सामने पैरों पर गिरता है, पीठ पीछे (चुगल खोरी कर) काटता है, कान के पास आकर (स्तुतिस्तोत्रों का) विचित्र गुंजारव करता है और कहीं छिद्र अर्थात् दुर्बल स्थानादि दिखाई देने पर निशंक होकर आक्रमण करता है, मच्छर भी यह सब खल चरित्र किया करता है।

वक्तव्य—इस श्लोक में साहित्यिक दृष्ट्या खल और मशक इनका साधर्म्य बहुत ही सुन्दरता से चित्रित किया है। परन्तु दोनों में एक बड़ा भारी वैधर्म्य भी होता है। खल में 'एकस्य दशति श्रोत्रमन्यः प्राणैर्वियुज्यते' इस प्रकार का चमत्कार करने का सामर्थ्य होता है, परन्तु मशक में यह सामर्थ्य नहीं होता। इस विषय में मशक का वर्णन इस श्लोकार्ध से कर सकते हैं—यस्यैव दशति श्रोत्रं स वै प्राणैर्वियुज्यते' (स्वकृत)।

खादति पृष्ठमांसम्—मच्छर मनुष्यों के पैर, पीठ और कानों के पास अधिक इकट्ठा होते हैं। कानों के पास उनसे किया जाने वाला गुंजारव और कर्णछिद्र में कूद पड़ने का उनका धाष्ट्र्य इनसे सब परिचित हैं। ये सर्प बिच्छु के समान अपनी छेड़खानी करने वालों को (पृष्ठ ६०२ पर 'रक्षो वधान्तो' श्लोक का वक्तव्य देखें) विषदंश करनेवाले दंशक जीव नहीं है, किन्तु अपने भक्ष्य के लिए काटने वाले अर्थात् परजीवी (पृष्ठ ५७७) दंशक जीव है। दंश में ये अपना विष छोड़ते हैं जिससे रक्त पतला रहकर चूसने में उन्हें आसानी हो जाती हैं। यदि दष्ट मनुष्य के रक्त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

में रोगाणु रहे तो वे चूसे हुए रक्त के साथ मच्छरों के पेट में चले जाते हैं। इनमें विषमज्वर के कीटाणु मच्छर के शरीर में रूप-परिवर्तन करते हैं और शेष रोगों के केवल संख्यावृद्धि करते हैं। इस प्रकार से उपसृष्ट मच्छर जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को दंश करता है तब दंशकालीन विष के साथ ये उस मनुष्य के रक्त में चले जाते हैं और कुछ काल के पश्चात् रोग उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार विषमज्वर (Malaria), श्लीपदज्वर (Filarial fever), श्लीपद (Elephantiasis), दण्डकज्वर (Dengue), पीतज्वर (Yellow fever) उत्पन्न होते हैं। और मच्छर इन रोगों का वाहक (Carrier) कहलाता है।

(७) बहुनिष्कपटद्रोही बहुधान्योपघातकः।
रन्ध्रान्वेषी च सर्वत्र दूषको मूषको यथा ॥

मूषक—खल के समान चूहा वस्त्रालंकार द्रोही, अनेक प्रकार से दूसरों का घात करने वाला तथा रन्ध्रान्वेषी होता है।

वक्तव्य—बहुधान्योपघातकः—(१) बहुत धान्य का नाश करने वाला। (२) बहुधा-अन्योपघातक। अपने विष से दूसरों का घात करने वाला। चुगलखोरी यह खल का विष और शरीर गत रोगाणु चूहे का विष। नीचे देखें।

(८) शुक्रेणाथ पुरीषेण मूत्रेणापि नखैस्तथा।
दंष्ट्राभिर्वा क्षिपन्तीह मूषकाः पञ्चधाविषम् ॥ (आलंबायन)

शुक्र, मल, मूत्र, नख, दन्त इन पाँचों के द्वारा चूहे अपना विष उत्सर्गित करते हैं।

वक्तव्य—मूषकविष—चूहे शाकाहारी हैं। वे हमारे वस्त्र धान्यादि के भक्षक तथा नाशक हैं। इसलिए वे सबसे बड़े परभक्षक होते हैं। इसके अतिरिक्त मच्छर के समान वे अपने शरीर में अनेक रोगों के विषाणुओं का वहन भी किया करते हैं। चूहे काटनेवाले जीव नहीं हैं।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परन्तु कभी-कभी वे अपने दाँतों से तथा नखों से मनुष्यों को विशेषतः उनके पादतलों को कुतरते हैं। इससे मनुष्यों में मूषकदंशजज्वर (Rat bite fever) उत्पन्न होता है। चूहे के मूत्र से भी एक विष उत्सर्गित होता हैं। अतः मूत्रदूषित भूमिवस्त्रादि का त्वचा से विशेषतः गीली त्वचा से सम्बन्ध होनेपर अथवा मूत्रदूषित खाद्य खाने पर मनुष्यों में औपसर्गिक रक्तस्रावी कामला (Infectious haemorrhagic jaundice) उत्पन्न होती है। कुछ विष उनके रक्त में होता है और यूका तथा पिस्सू के दंश से मनुष्यों में मूषक तन्द्रिक (Murine typhus) उत्पन्न करता है। इन तीनों रोगों का विष मूषकों के शरीर में रहते हुए वे स्वयं उनसे पीडित नहीं रहते हैं। प्लेग भी इसी प्रकार होता है, परन्तु उसका विष चूहों में प्लेग उत्पन्न करता है और उससे वे मर जाते हैं।

(९) मेघात्यये भवति कः समदः, सुभगं च किं, कमधरन्मुरजित् ।
कटुतैलमिश्रितगुडो नियतं विनिहन्ति कं त्रिगुणसप्तदिनैः ॥

कुत्ता—वर्षा ऋतु समाप्त होनेपर कौन मदोन्मत्त होता है ? (श्वा), देखने में सुन्दर क्या होता है ? (सरः); मुरारि ने किसको (अपने अंगुलि से) धरा ? (अगम्, गोवर्धन पर्वत); सरसों के तेल के साथ सेवन किया हुआ गुड तीन सप्ताह में किस रोग का नाश करता है ? (श्वासरोगम्)।

वक्तव्य—मेघात्यये भवति कः समदः—श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्तका इव ॥ कुमारसंभव ॥ सुभगं च किम्—इसमें भी 'मेघात्यये भवति' लगता है। प्रथम श्लोकार्ध में तीन प्रश्न हैं जिनके उत्तर जोड़ने से दूसरे श्लोकार्ध के प्रश्न का उत्तर मिलता है। यह बहिरालाप का उदाहरण है।

(१०) हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकाद्
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृतम् ॥ (उत्तररामचरित)

रावण गृह में वास करने का सीता का दूषण (अग्नि दिव्यादि) अद्भुत उपायों से (उसी समय) शान्त किया गया था। परन्तु हा धिक्! मेरे दुर्भाग्य से जैसे अलर्कविष (अग्निदाहादि स्थानिक उपाय करने पर भी) दंश स्थान से सर्वत्र शरीर में फैलता है वैसे सीता का पर-गृहवास दोष सर्वत्र राज्य में फैल गया है।

वक्तव्य—आलर्क विष—अलर्क (Rabies) कुत्ता, शृगाल, लोमड़ी भेड़िया जैसे प्राणियों का रोग है। परन्तु कुत्ता मनुष्यों में रहने से तथा उनका पालतु प्राणी होने से उसका महत्व औरों से अधिक है। जो कुत्ते इससे उपसृष्ट (Infected) रहते हैं उनकी लाला में इस रोग का विष होता है जिसमें इस रोग के विशिष्ट विषाणु (Virus) रहते हैं। ऐसे कुत्ते वर्षा ऋतु में रोग पीड़ित होते हैं। उन्मत्तता या पागलपन इस रोग की विशेषता है जिसके कारण ये बेतहाशा और कुत्तों को तथा मनुष्यों को काटते जाते हैं। मनुष्यों में इनके काटने से जल-संत्रास (Hydrophobia) रोग उत्पन्न होता है। पागल कुत्ते के काटने पर तत्काल दाहादि स्थानिक उपचार करने पर भी रोगोत्पत्ति रोकने में अनेक बार सफलता नहीं मिलती। इसी वस्तुस्थिति के आधार पर रामचन्द्रजी ने ऊपर का वचन कहा है।

(११) वर्जनीयो मतिमता दुर्जनः सख्यवैरयोः।
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ॥

मित्रता तथा शत्रुता दोनों के लिए विचारवानों को दुर्जन वर्ज्य करने चाहिएँ। कुत्ता चाहे (प्रेम से) चाटे चाहे (क्रोध से) काटे, अपकार के लिए (कारण) होता है।

वक्तव्य—अपकाराय—कुत्ते से मनुष्यों में होने वाला सबसे भयानक

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रोग जलसंत्रास है उसके लिए। लिहन्—इस रोग से उपसृष्ट तथा पागल कुत्ते की लाला में रोग का विष (अर्थात् विषाणु Rabies virus) रहता है। ऐसा कुत्ता काटने पर रोग होने की निश्चिति होती है, परन्तु यदि वह सव्रण स्थान पर चाट ले तब भी रोग उत्पन्न हो सकता है। पागल कुत्ते का तो पता चलता है परन्तु पागल होने से पहले उसके उपसृष्ट रहने का पता नहीं चलता। इसलिए, कुत्ता ज्ञात तथा पालतु भी क्यों न हो, उसके लांगूल चालन में फँस कर उसे न चाटने, न दाँत लगाने देना चाहिए।

(१२) मौलौ सन्मणयो, गृहं गिरिगुहा, त्यागः किलात्मत्वचो
निर्यत्नोपनतैश्च वृत्तिरनिलैरेकत्रचर्येदृशी ।
अन्यत्रानृजुवर्त्मता द्विरसना वक्त्रे विषं वीक्षणं
सर्वामङ्गलसूचकं कथय भो भोगिन् सखे किं त्विदम् ॥

सर्प—हे सर्प ! सिर में दिव्यमणि, गिरिगुहा में निवास, आत्मत्वचा का दान तथा अयत्न लभ्य वायुसेवन से तुम्हारा जीवन इस प्रकार एक तरफ महात्माओं के समान तुम्हारी चर्या और दूसरी तरफ वक्रगामिता, द्विजिह्वता, मुख में विष और अमंगलसूचक तुम्हारी दृष्टि इस प्रकार दुरात्माओं के समान तुम्हारा व्यवहार हे मित्र ये सब क्या है ?।

वक्तव्य—गिरिगुहा—वल्मीक रन्ध्र—सर्पाः सन्तु परे शतं प्रतिदिनं वल्मीकरन्ध्रं गताः श्रेणीभूतपिपीलिका जलधरा हारा धरामण्डले॥ आत्मत्वचात्याग—अपने शरीर के त्वचादि धातुओं का त्याग उदारता की परम कोटी मानी गयी है—कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः। ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्॥ निर्यत्नोपनतैश्च वृत्तिः—हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रामरुत्कल्पितं व्यालानाम्॥ वैराग्यशतक॥ अनृजुवर्त्मता—टेढ़ी चाल के कारण सर्प को जिह्मग, भुजग,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

भुजंग, भुजंगम ये नामाभिधान प्राप्त हुए हैं—'परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं' श्लोक (पृष्ठ ५८८) देखें। इस श्लोक के पूर्वार्ध में साँप के महात्मासम गुणों का और उत्तरार्ध में दुरात्मासम दोषों का बहुत सुन्दर सूत्ररूप वर्णन किया है।

(१३) अदः सुरेन्द्रस्य कृतापराधान् प्रक्षिप्य दैत्याँल्लवणांबुराशौ।
वायव्यमस्त्रं शरधिं पुनस्ते महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम्॥
(विक्रमोर्वशीय)

सर्पावास—इन्द्र के अपराधी दैत्यों को लवण-समुद्र में फेंक कर तुम्हारा वायुदेवताधिष्ठित बाण, जैसे सर्प अपने बिल में वैसे अपने शरधि में प्रविष्ट हुआ।

(१४) सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते।
उषित्वा तत्र सौख्येन भूयोऽन्यत्तादृशं व्रजेत्॥ (स्कन्दपुराण)

सर्प दूसरों के घर में प्रवेश करके सुखी होता है और वहाँ पर (कुछ काल) रहकर फिर वैसे दूसरे घर में चला जाता है।

वक्तव्य—सर्प बिल में रहने वाला प्राणी है, इसलिए उसको 'बिलेशय' भी कहते हैं—दर्वीकरो दीर्घपृष्ठो दंदशूको बिलेशयः॥ अमरकोश॥ परन्तु वह स्वयं बिल नहीं बना सकता, वह बने बनाये विवरों पर अपना कब्जा कर लेता है। पृष्ठ ६०३ पर 'यस्मै ददाति विवरं' श्लोक देखें। इस दृष्टि से चूहों के बिल और चीटियों की बांबी (वल्मीक) इनके प्रिय स्थान होते हैं—तदिदं दर्वीकराद्गीतस्य वल्मीकवासोपदेशः॥ मल्लिका मारुत॥ परन्तु जब प्राणों पर आपत्ति आ पड़ती है तब ये किसी भी रन्ध्र में शरण लेते हैं। पृष्ठ ५८४ पर 'गिरिगुहा' का वक्तव्य देखें।

(१५) तत्र यावधिपती मखद्विषां तौ शरव्यमकरोत् स नेतरान्।
किं महोरगविसर्पिविक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते॥
(रघुवंश)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सविषनिर्विषसर्प—वहाँ पर रामचन्द्रजी ने यज्ञनाश करने वाले राक्षसों के जो (मारीच सुबाहु करके) दो सेनापति थे उन पर लक्ष्य वेध किया। (ठीक ही है) बड़े बड़े सर्पों पर आक्रमण करके उनका नाश करनेवाला गरुड़ राजिल सर्पों की ओर आक्रमण करने के लिए प्रवर्तित नहीं होता।

(१६) अहयः सविषाः सर्वे, निर्विषा डुंडुभाः स्मृताः।

(कथासरित्सागर)

सर्व सविष सर्प अहि और सर्व निर्विष सर्प डुण्डुभ कहलाते हैं।

वक्तव्य—अहिः—आहन्ति इति अहिः। जो घातक होता है वह। डुण्डुभ—राजिल–समौ राजिलडुण्डुभौ ॥ अमरकोश॥ निर्विष सर्प। संस्कृत में सर्पों के लिए बहुतेरे नाम हैं। इनमें अधिकसंख्यक नाम सर्प के शरीर, रहनसहन, चलनवलन, खानपान से संबन्धित होते हैं। अहि के समान घातकता या सविषता बतानेवाले बहुत कम हैं; जैसे आशीविष, विषधर, दंदशूक इत्यादि। सविष और निर्विष करके सर्पों के दो वर्ग हैं। सविष से निर्विष अधिक हैं। भारतवर्ष में सर्पों की ४०० जातियाँ पायी जाती हैं। इनमें केवल ४० जाति के सर्प सविष है और उनमें केवल २४ जाति के (Species) सर्प प्राणघातक होते हैं। परन्तु इनके कारण मनुष्यों के मन में संपूर्ण सर्पों के संबंध में आतंक बना हुआ है।

(१७) राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।

व्याघ्रीगात्रपरिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्॥ (कुवलयानन्द)

जरायुसर्प या व्याल—राजा की सेवा मनुष्यों के लिए असिधारा पर जिह्वा रगड़ने के समान, शेरनी को आलिंगन देने के समान तथा साँपिन के मुख का चुम्बन करने के समान (भयानक) होती है।

वक्तव्य—व्याल—इसके अनेक अर्थ होते हैं—व्यालो दुष्टगजे सर्पे

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

खले श्वापदसिंहयोः ॥ विश्वमेदिनी ॥ इनमें दो अर्थों का अपना वैशिष्ट्य होता है। (१) दुष्ट गज—याति यन्तुः प्रमादेन गजो व्याल-त्वमाप्नुयात् ॥ मुद्राराक्षस ॥ अनेक बार व्यालशब्द संज्ञा के बदले विशेषण के रूप में गज के साथ लगाया जाता है और उसका वही अर्थ होता है—यन्ता गजं व्यालमिवापराद्धः। किरातार्जुनीय ॥ (२) सर्प–पहिले की अपेक्षा इस अर्थ में व्यालशब्द का प्रयोग अधिक होता है। 'मुद्गदाली गदव्याली' (पृष्ठ १०१), 'हिंसाशून्यं यत्नलभ्यमशनं', 'असन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही', 'वक्रोऽपि पङ्कजनिताऽपि' इन वचनों को देखें। 'व्यालं बालमृणालतन्तुभि' इस श्लोक में इसके दोनों अर्थ हैं।

साँपिन अण्डे देती है और पश्चात् अण्डों से बालसर्प उत्पन्न होते हैं यह बात सब जानते हैं और इसी का ही निर्देश किया जाता है। 'त्यजेत् क्षुधार्ता महिला स्वपुत्रम्' श्लोक (पृष्ठ १३४) देखें। परन्तु कुछ साँप साँपिन के अण्डे से न निकलकर सीधे बच्चे होकर ही उसके शरीर से निकलते हैं। प्रथम को अण्डज (Oviparous) और दूसरे को जरायुज (Viviparous) कहते हैं। संसार के सब साँप नौ कुलों में (Families) विभक्त किये गये हैं। इनमें आठ कुलों के साँप अण्डज हैं और एक के जरायुज अर्थात् बच्चे होकर निकलते हैं। इस कुल को वायपरीडी (Viperidae) और साँपों को वायपर कहते हैं। तात्पर्य, अधिकसंख्यक सर्प अण्डज होने से साँपों के अण्डों का ही उल्लेख किया जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में साँपों के अण्डज और जरायुज दोनों भेद मिलते हैं और व्यालों का उल्लेख जरायुज में किया हुआ है—पशवश्च मृगा-श्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः। रक्षांसि च पिशाचश्चमनुष्याश्च जरायुजाः ॥ अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रामत्स्याश्च कच्छपाः ॥ मनु ॥ तत्र पशुमनुष्य-व्यालादयो जरायुजाः। खगसर्पसरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः। सुश्रुत ॥ श्वापद-व्याघ्रसिंहादि व्याल का अर्थ है जरूर, परन्तु उपर्युक्त मनु तथा सुश्रुत के वचनों के पशुमृग शब्द में इनका समावेश हो सकने के कारण,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्वापदादि अर्थ करने से कोई विशेष उपयुक्त अर्थसिद्धि न होने के कारण तथा जरायुज सर्पों का ज्ञान होने के कारण इन बचनों में व्याल का अर्थ जरायुजसर्प ही है इसमें किसी प्रकार का सन्देह करने का कारण नहीं है। डल्हण ने भी अपनी टीका में एकीय मत से इस अर्थ को स्वीकार किया है—व्यालादय इति व्याला हिंस्रपशुव्याघ्रादयः, अन्ये तु पशुग्रहणादेव हिंस्रपशूनामपि ग्रहणमिति व्यालशब्देन, सर्पविशेष-माहुः। तदुक्तं—सर्पजातिषु अहिपताका जरायुजाः। संक्षेप में, आधुनिक परिभाषा की दृष्टि से व्याल 'वायपर' और व्यालकुल 'वायरीडी' होते हैं। व्याल अत्यन्त विषालु होते हैं। चुम्बन कर्म के औचित्य के लिए व्याल का स्त्रीलिंग व्याली शब्द प्रयुक्त किया गया है।

(१८) परस्यमर्माविधमुज्झतां निजं
द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।
तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः
कुलैर्न भेजे फणिनां भुजङ्गता ॥ (शिशुपालवध)

सर्पशारीर (१) *द्विजिह्वता*—उस उग्रस्वरूप रावण को प्रसन्न करने के लिए (रावणराज्य में) सर्पगणों ने दूसरे के मर्मभेदनरूप अपने द्विजिह्वतादोष को छोड़कर (टेढ़ी के बदले) सीधी चाल चल कर और (कर्णहीनता के बदले) कर्णयुक्त बनकर अपने सर्पत्व को ग्रहण नहीं किया।

वक्तव्य—रावण के भय से उसके राज्य में पिशुन (दुर्जन) अपने अवगुणों को छोड़कर कैसे सज्जन बने थे इसका वर्णन पिशुन और सर्प समान होने के कारण सर्पों के विशेषणोंद्वारा समासोक्ति अलंकार से किया गया है—विशेषणानां साम्येन यत्र प्रस्तुतवर्तिनाम्। अप्रस्तु-तस्य गम्यत्वं सा समासोक्तिरिष्यते (कुलयानन्द)

मर्मावित्—मर्माणि विध्यति भिनत्तीति; सर्प की दृष्टि से दंश से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्राणघातक और पिशुन की दृष्टि से दिल को चुभनेवाली बात करनेवाला-मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ।। उत्तररामचरित ।। द्विजिह्वता-साँप की जिह्वा मूल में एक ही होती है परन्तु आगे वह, ऊपर और नीचे दो जिह्वाओं में विभिक्त होती हैं, इसलिए उसको 'द्विजिह्व' कहते हैं-जिह्वैकेव सतामुभे फणवतां स्रष्टुश्चतस्रश्च ताः ।। पिशुन एक स्थान और समय पर एक बात और दूसरे स्थान और समय पर दूसरी पहले से बिल्कुल भिन्न बात करता है, इसलिए उसको भी द्विजिह्व कहते हैं—द्विजिह्वौ सर्प-सूचकौ ।। अमरकोश ।। अजिह्मगामी—जहाति सरलः मार्गः जिह्मः । न जिह्मः अजिह्मः । अजिह्मं गच्छति अजिह्मगामी । सर्प को पैर न होने से स्वभाव से ही टेढ़ा चलना पड़ता है । इसलिए सर्प को 'जिह्मग' कहते हैं और पिशुन भी सदैव टेढ़ी चाल से बर्ताव करने के कारण जिह्मग के समान होता है—विषमा मलिनात्मानो द्विजिह्वा (पिशुना) जिह्मगा इव ।। सकर्णक—कर्णाभ्यां सह वर्तन्ते ते सकर्णकाः । साँप को श्रवणेन्द्रिय है नहीं, इसलिए वह शब्द सुन नहीं सकता । आगे के वचन में 'चक्षुःश्रव' देखिए । और पिशुन कान होते हुए भी लोगों की हितकर बात नहीं सुनता । अतः दोनों अकर्णक ही हैं । परन्तु रावण राज्य में पिशुन लोगों की हितकर बात सुनते रहे । इसलिए सकर्णक कहा है । भुजंगता—भुजैर्गच्छति, भुजः कुटिलीभवन् सन् गच्छतीति वा भुजंगः, तस्य वृत्तिर्भुजङ्गता ।।

(१९) तमाशु चक्षुःश्रवसां समूहं मन्त्रेण तार्क्ष्योदयकारणेन ।
नेता नयेनेव परोपजापं निवारयामास पतिः पशूनाम् ।।

(किरात)

(२) *चक्षुःश्रवता*—जैसे राजनीतिज्ञ राजनीति कौशल्य से शत्रुकृत राजद्रोह का निवारण करता है, वैसे पशुपति शिवजी ने गारुड़मन्त्र से सर्पों के समूह का तत्काल निवारण किया ।

वक्तव्य—चक्षुःश्रव—सर्पों को श्रवणेन्द्रिय नहीं होता । सुनने का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

काम वे जमीन से आनेवाली आहट से और बहुत कुछ आँखों से देखकर कर लेते हैं। अतः सर्प को 'चक्षुःश्रव' कहते हैं। मन्त्रेणतार्द्योदय-कारणेन—'चारुचन्द्रकलयोपशोभितं' श्लोक का (पृष्ठ ५६६) वक्तव्य देखें।

(२०) यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, एणकानां गीतव्यसनं, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः ॥

(कादम्बरी)

(३) *फणा*—वहाँ महाभारत में शकुनिवध रहा (आश्रम में शकुनिवध नहीं होता था), वायुजन्य प्रलाप पुराण में रहा (आश्रम में झंझावातादि उपद्रव नहीं होता था); बुढ़ापे में दाँतों का पतन होता था (आश्रम के द्विजों का अधःपात नहीं होता था); उपवन के चन्दन वृक्षों में स्थूलता आती थी (आश्रमवासियों में बुद्धि की जड़ता नहीं आती थी); मृगों में गायन का व्यसन रहा (आश्रमवासियों में नहीं); मयूरों में नृत्य करते-करते पंखों का पात होता था (परन्तु आश्रम-वासियों में नृत्य का प्रेम न रहा), भोग साँपों में रहा (आश्रमवासियों में नहीं); वानर श्रीफल (बेल फल) के अभिलाषी रहे (आश्रमवासी लक्ष्मी के फलों के अभिलाषी नहीं रहे), और वृक्षों के मूलों की अधोगति होती थी (आश्रमवासी जनो की नहीं)।

वक्तव्य—भोग—मनुष्यों की दृष्टि से सुखोपभोग और साँप की दृष्टि से फणा—भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः ॥ अमरकोश ॥ इसी को फण, स्फटा, फटा, फन, फट कहते हैं। सर्प मुख के नीचे हमारे फुफ्फुसयुक्त वक्ष के समान फैलने वाला यह एक छोटा सा शरीर का अंग होता है। प्रत्येक साँप में यह अंग होता है। क्रुद्ध होने पर जब साँप जोर से साँस लेने लगता है, फूत्कार करने लगता है

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तब यह अंग फूलता है और इस फूले हुए अंग को फणा कहते हैं। नाग (Cobra) में यह अंग अधिक विकसित रहने से उसकी फणा क्रुद्ध होने पर बहुत ही स्पष्ट और प्रव्यक्त हुआ करती है। इसलिए फणी का विशेष अर्थ नाग है। जैसे फण होने से सर्प को 'फणी' कहते हैं वैसे भोग होने से 'भोगी' भी कहते हैं। एणकानां गीतव्यसनम्—प्राचीन काल में ब्राह्मणादि के लिए संगीत वर्ज्य था, केवल शूद्रों के लिए ही वह विहित माना गया था—ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत्। गोपथब्राह्मण। ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित्। शिक्षेद् हरिणाद्बुद्धान्मृगयागीतमोहितात्॥ भागवत॥ निर्ब्रह्मणो निराभूतः शूद्राचारो भविष्यति॥ नाट्यशास्त्र॥

(२१) निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्तव्या महती फटा।
विषो भवतु वा मा भूत फटाटोपो भयंकरः॥ (पञ्चतंत्र)

(२२) निर्विषोऽपि यथा सर्पो फटाटोपैर्भयंकरः।
तथाऽऽडम्बरवान् राजा न परैरभिभूयते॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

विष हो या न हो, निर्विष सर्प को भी बड़ी फणा निकालनी चाहिये, क्योंकि फण का आडंबर भयोत्पादक होता है॥ निर्विष सर्प जैसे फणा के आडंबर से भयोत्पादक होता है, वैसे (जलस्थलवायु इत्यादि के सेना के) आडंबर का प्रदर्शन करने से राजा शत्रुओं द्वारा आक्रान्त नहीं होता।

वक्तव्य—फटाटोप-फण को बहुत फुलाना या फैलाना। गम्भीर साँस लिए बिना फणाटोप नहीं होता। इसलिए, फणाटोप के साथ साँप बहुत जोर से फूत्कार करता रहता है। ये दोनों कर्म देखनेवालों पर आतंक उत्पन्न करते हैं। फटाटोप और फूत्कार आत्मरक्षण और शत्रु को भगाने का साधन है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२३) ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतपन्नगः फणां कुरुते ।

प्रायः स्वमहिमानं क्रोधात्प्रतिपद्यते जन्तुः ॥ (शाकुन्तल)

इन्धन हिलाने पर अग्नि ज्वालायुक्त होता है, छेड़खानी करने पर साँप फणा को निकालता है। तात्पर्य, क्रोधाविष्ट होने पर जीव अपनी स्वाभाविक महत्ता (या विशेषता) को प्रकट करता है।

(२४) भोगिनः कञ्चुकाविष्टाः क्रूराः कुटिलगामिनः ।

सुदुष्टा मन्त्रसाध्याश्च राजानः पन्नगा इव ॥ (पंचतन्त्र)

(४) कञ्चुक—जैसे सर्प फणायुक्त, केंचुली से आवृत, क्रूर, टेढ़ी चाल से चलने वाले, अत्यन्त दुष्ट और मन्त्रादि से वश्य या साध्य होते हैं, वैसे राजा लोग सुखोपभोगासक्त, शरीररक्षक वर्म से आवृत, क्रूर, कुटिल व्यवहार करने वाले, अत्यन्त दुष्ट और राजनीति की मन्त्रणा से वश्य होते हैं।

वक्तव्य—कञ्चुक—(१) राजा की दृष्टि से, शरीररक्षक वर्म या कवच—कञ्चुको वारबाणोऽस्त्री। अमरकोश ॥ (२) साँप की दृष्टि से, सर्प के संपूर्ण शरीर से समय समय पर बहुधा सालभर में एक बार निकलने वाली छिलकेदार झिल्ली या खोल। इसको केंचुली, कञ्चुक या निर्मोक कहते हैं—समौ कञ्चुकनिर्मोकौ। अमरकोश॥ सर्प हरा, काला, गेहुँवां चाहे जिस रंग का हो केंचली केवल सफेद रंग की तथा अत्यंत हलकी हुआ करती है—विषधरनिर्मोकपरिलघुनि धवले परिधाय धौतेवाससि। कादंबरी॥ केंचुली छोड़ना सर्प का शरीर धर्म है। इसलिए सर्प को 'कंचुकी' भी कहते हैं।

(२५) कृत्वा शरीरपरिणाहं सुखप्रवेशं

शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम् ।

गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो

निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ (चारुदत्त)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कञ्चुक से मुक्ति पाने के लिए भूमि पर परिसर्पण के साथ पृष्ठपार्श्वों को घसीटनेवाले जीर्णशरीर सर्प के समान मैं अपने शिक्षाप्राप्त कौशल्य से तथा बल से चोरी के लिए बनाये हुए कर्म-मार्ग (सेंध) में भूमि पर परिसर्पण और पृष्ठपार्श्व के घर्षण के साथ शरीर परिणाह को सुखप्रवेश बनाकर भीतर जाता हूँ।

वक्तव्य—जीर्णतनुः—जब सर्प के शरीर पर कञ्चुक बनने लगता है तब उसकी चुस्ती घटती जाती है, जब कञ्चुक पूर्णतया बनता है तब जराजीर्ण जीव के समान वह अत्यन्त सुस्त बनता है। उसके पश्चात् शरीर परिसर्पण और पार्श्वघर्षण से वह कञ्चुक में से निकल कर यथापूर्व चुस्त हो जाता है।

(२६) दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥ (चाणक्यशतक)

(५) *सर्पमणि*—विद्याविभूषित होने पर भी दुर्जन को दूर ही रखना चाहिए। क्या मणिविभूषित होने पर सर्प भयंकर नहीं होता ?

वक्तव्य—मणिना भूषितः—सर्प की फणा में मणि होता है ऐसी कल्पना है। इसके कारण फणा को 'मणिद्वीप' और मणि को 'सर्पफणिज' कहते हैं। यह मणि बहुत ही देदीप्यमान होता है और सर्प उसको निकाल सकता है ऐसी कल्पना है।

(२७) त्रस्तेन तार्क्ष्यात् किल कालियेन मणिं विसृष्टं यमुनौकसा यः।
वक्षस्थलव्यापिरुचं दधानः सकौस्तुभं ह्रेपयतीव कृष्णम् ॥
(रघुवंश)

गरुड़ से भयभीत होकर यमुना में निवास किये हुए कालियक द्वारा दिये हुए संपूर्ण वक्षव्यापि शोभादायक मणि को वक्षस्थल पर धारण करने वाला सुषेण राजा कौस्तुभ धारण करने वाले श्रीकृष्ण को लजाता रहा।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(२८) सर्पस्य रत्ने, कृपणस्य वित्ते, सत्याः कुचे, केसरिणश्च केशे।
मानोन्नतानां शरणागते च मृतौ भवेदन्यकरप्रचारः॥

सर्प का मणि, कृपण का धन, सती के कुच, सिंह की आयाल और मानधनों की शरणागति इनकी प्राप्ति में दूसरे का हस्तक्षेप मरणप्रद होता है।

वक्तव्य—तात्पर्य, इस मणि को प्राप्त करना मृत्यु से टक्कर लेना है। परन्तु यदि संयोगवश यह मणि-प्राप्त हुआ तो वह सर्प की रामबाण-औषधि होती है ऐसा कहते हैं।

(२९) हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं
व्यालानां, पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाःस्थलीशायिनः।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥

(वैराग्यशतक)

सर्पखाद्य (१) *वायु*—सृष्टिकर्ता ने साँपों के लिए हिंसा और प्रयत्न की जिसमें आवश्यकता नहीं ऐसा वायुरूप खाद्य रक्खा; पशु (धरित्री माता पर निसर्गतः उत्पन्न होने वाले) तृणांकुर भोजी तथा धरित्री माता पर शयन करने वाले बनाये; परन्तु भवसागर पार (करके मोक्ष प्राप्ति) करने का बुद्धिसामर्थ्य रखने वाले मनुष्यों का उदरभरण ऐसा (कठिन) किया है कि उसके लिए साधन ढूँढ़ने में उसके सर्वगुणों का अन्त हो जाता है।

(३०) अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात्।
भक्ष्याशयाऽहिमञ्जूषां दृष्ट्वाऽऽखुस्तेन भक्षितः॥ (कुवलयानन्द)

(२) चूहे—इष्टार्थ की प्राप्ति के पीछे पड़ने पर (उसकी प्राप्ति होना तो दूर रहा) अनिष्ट की प्राप्ति होना (विषमालंकार होता है)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

जैसे, भक्ष्यप्राप्ति की आशा से साँप की पेटिका (को कुतर कर उस) के भीतर गये हुए चूहे का (भीतरी साँप से) भक्षित होना।

वक्तव्य—चूहे साँपों का सामान्य भक्ष्य है। परन्तु कुछ सर्प चूहों को अधिक खाते हैं उन्हें मूषकसर्प (Rat snakes) कहते हैं। धामन और उसके कुल (Zameinis) के अन्य सर्प इस प्रकार के हैं।

(३१) अनेके फणिनः सन्ति भेकभक्षणतत्पराः।
एक एव हि शेषोऽयं धरणीधरणक्षमः॥ (भोजप्रबंध)

(३) *मेंढक*—मेंढकों को खाने में तत्पर बहुत सर्प होते हैं, परन्तु पृथ्वी का धारण करने में समर्थ केवल एक शेषनाग ही है।

(३२) द्वावेव ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥ (महाभारत)

(४) *बिलेशय अन्य प्राणी*—जैसे सर्प बिलेशय प्राणियों को खा जाता है वैसे भूमि शत्रु का प्रतीकार न करने वाले राजा का और प्रवास न करने वाले ब्राह्मण का नाश करती है।

वक्तव्य—भेक-सर्प का नैसर्गिक भक्ष्य-भक्षक संबंध होता है। इसको जो वाचक जानता है वही कालिदास के ग्रीष्म वर्णन के इन श्लोकों का रसास्वाद ले सकता है—विवस्वतातीव्रतरांशुमालिना सपंकतोयात्सरसोऽभितापितः। उत्प्लुत्य भेकस्तृषितस्य भोगिनः फणातपत्रस्य तले निषीदति॥ रविप्रभाभिन्नशिरोमणिप्रभो विलोलजिह्वाद्वयलीढमारुतः। विषाग्निसूर्यातपतापितः फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः॥ ऋतुसंहार॥ सर्प बिलेशयी होने से वह मूषकादि बिलेशयी प्राणियों को अधिक भक्षण करता है और उन्हीं के पीछे पड़ कर मकानों में आता है, अन्यथा उसे मकानों में आने का कोई कारण नहीं होता, वह मनुष्यों से डरता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३३) संवर्धितोऽपि भुजगः पयसा न वश्य-
स्तत्पालकानपि निहन्ति बलेन सिंहः ।
दुष्टः परैरुपकृतस्तदनिष्टकारी
विश्वासलेश इह नैव बुधैर्विधेयः ॥

(५) दूध—दूध पिलाकर पालन पोषण किया हुआ सर्प वश्य नहीं होता है, पाला हुआ सिंह बल से अपने पालक को मारता है; दुर्जन उपकार करनेवाले को अपकार करता है; अतः विचारी मनुष्यों को ऐसे जीवों पर विश्वास न करना चाहिए ।

(३४) पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ।
उपकारो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ॥ (हितोपदेश)

साँपों का दुग्ध सेवन केवल विषवर्धक ही होता है, वैसे मूर्खों को किया हुआ उपदेश उनके प्रकोप के लिए कारण होता है, न कि शान्ति के लिए ॥

वक्तव्य—दूध साँपों का नैसर्गिक खाद्य नहीं है, वह पालतु साँपों का खाद्य जरूर है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि नैसर्गिक खाद्य न होते हुए भी साँप उसको भली भाँति सेवन करता है और यह कहा जाता है कि धामन दुधार जानवरों की पीछे की टांगों में अपने को लपेट कर उनके थनों से दूध पीती है। आधुनिक संशोधकों की दृष्टि से यह कथन सत्य नहीं है।

(३५) उरगा इव घर्मपीडिताः क्रतुशत्रुव्यथिता तपस्विनः ।
उपयान्त्युपतापनाशनं विपुलं तद्भुजचन्दनद्रुमम् ॥
(जानकीहरण)

सर्पप्रिय वृक्ष (१) चंदन—जैसे सर्प गरमी से पीड़ित होने पर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तापनाशक बड़े चन्दन वृक्ष का आश्रय लेते हैं, वैसे यज्ञशत्रु राक्षसों से पीड़ित तपस्वी चन्दन सम तुमारे महाभुजों का आश्रय लेते हैं।

वक्तव्य—चन्दन सर्पों का एक अत्यन्त प्रिय आश्रय है इसका उल्लेख संस्कृत साहित्य में असंख्य स्थानों में मिलता है—आमूलयष्टेः फणिवेष्टितानां सचन्दनानां जननन्दनानाम् ॥ राजशेखर ॥ भोगीवेष्टन-मार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्। रघुवंश ॥ अपि संतापशमनाः शुद्धाः सुरभिशीतलाः। भुजङ्गसंगाद् जायन्ते भीषणाश्चन्दनद्रुमाः ॥ सुभाषित-नीवी ॥ विकृतिं नैव गच्छन्ति दुष्टसंगेन साधवः। आवेष्टितो महासर्पैश्चन्दनः किं विषायते ॥

(३६) वक्रोऽपि पङ्कजनितोऽपि दुरासदोऽपि
व्यालाश्रितोऽपि विफलोऽपि सकण्टकोऽपि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकपुष्पजेन
ह्येको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान् ॥

(वृद्धचाणक्य)

(२) केतकी—टेढ़ा होने पर भी, कीचड़ में उत्पन्न होने पर भी, दुष्प्राप्य होने पर भी, सर्पों द्वारा वेष्टित होने पर भी, निष्फल होने पर भी, काँटेदार होने पर भी, हे केतकी ! पुष्पज सुगन्ध के कारण तुम (सबका) मित्र हो गया है। (ठीक ही है) एक (बड़ा) गुण सब अवगुणों का नाश करता है।

(३७) राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेयो यथोरगान् ॥ (रामायण)

सर्पशत्रु (१) गरुड़—जैसे, गरुड़ साँपों का तत्काल नाश करता है, वैसे रामरूपी महागरुड़ राक्षसेन्द्ररूपी महासर्पों का तत्काल नाश करेगा ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(३८) केकी कर्णामृतं ते सकुसुमकबरीकान्तिहाराः कलापाः
कण्ठच्छाया पुरारेर्गलरुचिरुचिरा सौहृदं मेघसंघैः ।
विश्वद्वेषी द्विजिह्वः स्फुरदुरुपिशितैर्नित्यमाहारवृत्तिः
कैः पुण्यैः प्राप्तमेतत्सकलमपि सखे चित्रवृत्तं मयूर ॥
(शार्ङ्गधरपद्धति)

(२) *मयूर*—तुमारी वाणी कर्णामृत है, तुमारा कलाप फूलों की वेणियों का शोभायमान हार है, तुमारी कण्ठच्छाया शंकरजी के नीलकण्ठ के समान मोहक है, तुम्हारा मित्रत्व मेघों के साथ है, तुम्हारी दैनिक आहारवृत्ति विश्वद्वेषी साँपों के बढ़िया मांस से होती है; अतः हे सखे मयूर ! ये सब चित्रविचित्र जीवन तुमने किन-किन पुण्यकर्मों से प्राप्त किया है ।

(३९) अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजाहंसोऽपि नागाननम् ।
इत्थं यत्र परिग्रहस्य घटना शम्भोरपि स्याद् गृहे
तत्रान्यस्य कथं न भावि, जगतो यस्मात् स्वरूपं हि तत् ॥
(पंचतन्त्र)

विषालु सर्प गणपति के वाहन मूषक को खाना चाहता है, उस सर्प को कार्तिकेय का मयूर खाना चाहता है, पार्वती का हंस गणपति को खाना चाहता है । शंकरजी के घर में भी जब आपस की इस प्रकार की घटना है तब दूसरे (सामान्य मनुष्यों) के घर में क्यों नहीं होगी ? संसार का स्वरूप ही ऐसा है ।

वक्तव्य—इसमें साँप का भक्ष्य और साँप का शत्रु दोनों का उल्लेख है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४०) चारुचन्द्रकलयोपशोभितं भोगिभिः सह गृहीतसौहृदम् ।
अभ्युपेतघनकालशात्रवं नीलकण्ठमतिकौतुकं स्तुमः ॥

(स्तुतिकुसुमांजलि)

नीलकण्ठ शिव जी मनोहर चन्द्रकला से (चारुचन्द्रकलया) शोभित होते हैं (परन्तु नीलकण्ठ मयूर चारुचन्द्रक (मनोहर चन्द्रयुक्त पंख) के लय से शोभित नहीं होता); नीलकण्ठ शिव जी सर्पों के साथ मित्रता रखते हैं (परन्तु नीलकण्ठ मयूर सर्पों के साथ मित्रता नहीं रखता), नीलकण्ठ शिव जी यमराज (घनकाल) के साथ शत्रुत्व करते हैं (परन्तु नीलकण्ठ मयूर वर्षाकाल (घनकाल) के साथ शत्रुत्व नहीं करता है) ऐसा अत्यन्त कौतुकास्पद शिवरूप मयूर की हम स्तुति करते हैं।

वक्तव्य—इस लोक में सभंगशब्दश्लेष के द्वारा शिवरूप नीलकण्ठ की मयूररूप नीलकण्ठ से विलक्षणता बतलायी गयी है। गरुड़ और मयूर दोनों सर्पभक्षक जीव हैं। अतः दोनों के लिए पन्नगाशन, भुजंगभुक्, भुजंगभोजी, नागांतक, भुजगरिपु, भुजगाशन ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं—गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यः सुपर्णः पन्नगाशनः॥ मयूरो-बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजंगभुक्॥ अमरकोश॥ सर्पों का नाश करने के लिए प्राचीन काल में इसलिए गरुडास्त्र का उपयोग किया जाता था, 'तमाशु चक्षुःश्रवसां समूहं' श्लोक (पृष्ठ ५८६) देखिए। मयूर और सर्प का स्वाभाविक भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध मालूम होनेपर ही वाचक कालिदास के निम्नश्लोक का रसास्वाद ले सकते हैं—हुताग्निकल्पैः सवितुर्मरीचिभिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः। न भोगिनं घ्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम्॥ रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांशुभिः। अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति॥ (ऋतुसंहार)।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४१) विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी स्वकुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥ (वासवदत्ता)

(३) नकुल—विषैले साँप से भी दुर्जन अधिक दुष्ट होता है यह विद्वानों का कथन मिथ्या नहीं प्रतीत होता, क्योंकि साँप नकुलद्वेषी किन्तु खल स्वकुल द्वेषी होता है।

वक्तव्य—नेवला साँप का तीसरा जन्मजात शत्रु है। दो जीवों के बीच में जन्मजात वैर प्रदर्शित करने के लिए प्राचीन काल से नेवला और साँप का ही निर्देश किया जाता है—अहिनकुलयोर्वैरं वुन् ॥ (पाणिनि)।

नकुलद्वेषी—(१) 'नेवले का द्वेष करनेवाला' यह इसका व्यावहारिक अर्थ है। (२) परन्तु दुर्जन से श्रेष्ठता दिखाने के लिए 'न कुलद्वेषी' अपने कुल का जात भाइयों का द्वेष न करनेवाला इसका अर्थ होता है।

(४२) दृष्ट्वाऽलिर्गृहगोधिकां, वृकपतिं मेषः, फणी पक्षिपं
गौर्व्याघ्रं, द्विरदश्च सिंहमसुरो देवं सुराधीश्वरम्।
जायन्ते विकलेन्द्रिया हतधियः सद्यो यथाऽलिपिष्टनं
दृष्ट्वाऽभूद् विकलेन्द्रियो हतमतिर्विप्राधिपोऽसौ तथा ॥

(शिवकाव्य)

शत्रु के सामने सर्प की स्थिति—छिपकली को देखकर जैसे बिच्छु, भेड़िया को देखकर जैसे भेड़, गरुड़ को देखकर जैसे सर्प, व्याघ्र को देखकर जैसे गाय, सिंह को देखकर जैसे हाथी, सुराधिपति इन्द्रदेव को देखकर जैसे असुर विकलांग और मूढ़ हो जाते हैं वैसे एल्फिस्टन को देखकर बाम्हणश्रेष्ठ द्वितीय बाजीराव (विकलेन्द्रिय और मूढमति हो गये)।

वक्तव्य—जीवसृष्टि में कुछ जीवों का परस्पर वैमनस्य तथा भक्ष्य-भक्षक-संबंध इतना नैसर्गिक होता है कि पहले पहल देखने पर भी ये

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जीव एक दूसरे पर टूट पड़ते हैं और भक्ष्य-जीव भक्षक के सामने निश्चेष्ट, निर्बल और निर्जीवसा होकर पड़ा रहता है। इसका देखने योग्य उदाहरण बिच्छु और छिपकली का है। जो बिच्छु अपनी कुण्डलाकार पूँछ ऊपर उठाकर डौल से चलता रहता है छिपकली को देखते ही पूँछ के साथ धराशायी हो जाता है।

(४३) व्याघ्रे च महदालस्यं सर्पे चैव महद्भयम्।
पिशुने चैव दारिद्र्यं, तेन जीवन्ति जन्तवः॥

सर्पस्वभाव—शेर में आलस्य, सर्प में जीवित का भय, दुर्जन में दरिद्रता ये अवगुण होने से मनुष्य (सुख से) जीवित रहा करते हैं।

वक्तव्य—सर्पों में मनुष्यों के लिए बड़ा भारी डर रहता है, इसलिए वह मनुष्य को देखकर या उसकी आहट पाकर भागता है। अतः साँप को देखकर डरना न चाहिए। वह अकारण मनुष्य पर आक्रमण भी नहीं करता। पृष्ठ ५६२ पर 'ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निः' श्लोक देखिए।

(४४) सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम्।
अभिप्राया न सिद्ध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्॥ (पंचतन्त्र)

सर्प, खल तथा अन्य सब दुष्ट-स्वभावी लोगों की जो इच्छाएँ होती हैं वे सब सफल नहीं होती है; इसलिए यह संसार (सुचारुरूप से) चल रहा है।

(४५) कौर्मं संकोचमादाय प्रहारानपि मर्षयेत्।
प्राप्ते काले च मतिमानुत्तिष्ठेत् क्रूरसर्पवत्॥

(कामंदकीनीतिसार)

कछुवे के समान अपना संकोच करके (शत्रु के) प्रहारों को सहन करें और उचित काल प्राप्त होने पर क्रूर सर्प के समान बुद्धिमान् उठाव (करके शत्रु पर आक्रमण) करें॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—साँप जब चारों ओर से घेरा जाता है और भाग जाने के लिए असमर्थ होता है तब वह गेंडली के रूप में अपने लंबे शरीर को संकुचित करके फणा निकाल कर फूत्कार करता हुआ सिर ऊँचा करके सावधान रहता है और जब ठीक मौका देखता है तब छेड़खानी करने वाले के ऊपर टूट पड़ता है। कौर्म संकोचम्—कूर्मोऽगानीव सर्वशः ॥ गीता ॥

(४६) रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासो व्यर्थः सवैरप्रतिमोचनाय।
अमर्षणः शोणितकाङ्क्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः ॥

(रघुवंश)

रावण वध के अन्त तक मैंने जो प्रयत्न किया वह (सीताहरण करके उसने मेरी जो अप्रतिष्ठा की) उस वैर के बदले में रहा, अकारण नहीं था; पैरों से कुचलने वाले को (पादाहति) सहन न करने की मनोवृत्ति से सर्प काटता है, न कि रक्तचूषण की इच्छा से ॥

वक्तव्य—शोणितकांक्षया—मनुष्य या अन्य बड़े प्राणी साँपों का भक्ष्य नहीं है। अतः रक्त चूषण के लिए सर्प मनुष्यों को नहीं काटता, किन्तु दंश से उन्हें भयभीत व पीड़ित कर आक्रमण करने में असमर्थ बनाने की दृष्टि से तथा तद् द्वारा अपनी रक्षार्थ काटता है। साँप चाहे सविष हो या निर्विष, जैसे फटाटोप करता है वैसे आवश्यकता पड़ने पर काटता भी है। इससे प्रायः उसका जीवरक्षा करने का उद्देश्य सफल हो जाता है और यदि वह सविष रहा तो दष्ट मनुष्य का घात भी होता है।

(४७) तक्षकस्य विषं दन्ते, मक्षिकाया विषं शिरः।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे, सर्वांगे दुर्जनस्य च ॥

(वृद्धचाणक्य)

सर्पविषदन्त—सर्प का विष उसके विषदंष्ट्राओं में, मक्खियों का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विष उनके सिर में, बिच्छू का विष उसके पुच्छ में और दुर्जन का विष उसके सर्वांग में होता है।

वक्तव्य—तक्षक-सविषसर्प—तक्षको नागवर्धक्योः ॥ अमरकोश ॥ मक्षिकाविष—मधुमक्षिका जैसे दंशक मक्षिका का विष सिर में होता है इसको सब समझ सकते हैं परन्तु अदंशक घरेलु मक्खी का सिर अर्थात् मुख भी विषैला रहता है, क्योंकि वह दूषित विषैले द्रव्यों को खाती है और उसी से मनुष्यों का खाद्य विषैला करती है। पृष्ठ ५८६ देखें।

(४८) यस्मै ददाति विवरं भूमिः फूत्कारमात्रभीतेव ।
आशीविषः सदैवद्डौम्बकरण्डे स्थितिं सहते ॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

केवल फूत्कार से डरकर जिसको भूमि विवर प्रदान करती है ऐसा विषैला साँप सँपेरे की पेटिका में लाचार होकर पड़ा रहता है।

वक्तव्य—आशीविषः-विषैला साँप–आशीर्यतेऽनया, आशी; आश्यां विषं यस्य, आशीविषः; 'आशीस्तालुगता दंष्ट्रा'। आशी-तालुके विषदंत (Frangs) या दंष्ट्रा। इसलिए साँप को 'दंष्ट्राविष' भी कहते हैं। साँपों के ऊपर के जबड़े में दाँतों की चार पंक्तियां होती हैं, दो किनारे के पास और दो बीच में। सविष सर्पों में किनारे की पंक्ति में साधारण दाँतों के स्थान में अंकुशसम नालीदार लंबे बड़े नोकीले प्रायः एक-एक क्वचित् दो-दो या तीन-तीन दाँत होते हैं। ये ही आशी, विषदन्त या विषदंष्ट्रा होते हैं। साँप के मुख में आँखों के नीचे और पीछे प्रत्येक ओर विष की थैली होती है जिसके साथ प्रत्येक ओर के विषदन्त लगे रहते हैं। जैसे चिकित्सक नालीदार सूचिका द्वारा त्वचा का भेदन करके तत्सम्बन्धित पिचकारी के भीतर की द्रवौषधि रोगी के शरीर में प्रविष्ट कराता है, वैसे सर्प नालीदार विषदंष्ट्रा द्वारा त्वचा का भेदन करके उनसे सम्बन्धित विषाशय के विष को प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट कराता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४९) पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः, सरश्च जलहीनम् ।
सर्पश्चोदघृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च ॥ (मृच्छकटिक)

पंखहीन पक्षी, सूखा हुआ वृक्ष, जलहीन तालाब और विषदन्त हीन सर्प इनके समान संसार में दरिद्र (की स्थिति होती) है।

(५०) दंष्ट्राविरहितो सर्पो, मदहीनो यथागजः ।
सर्वेषां जायते वश्यो, दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥ (हितोपदेश)

विषदन्तहीन सर्प और मदहीन गज जैसे सबके वश में हो जाता है, वैसे दुर्गहीन राजा (भी शत्रु के वश में जा सकता है) ।

वक्तव्य—सर्पविष त्वचा पर लगने से या पेट में जाने से प्रभाव नहीं करता, किन्तु व्रणों द्वारा रक्त में जाने से प्रभावी होता है—विषमाहेयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः । रक्तमण्वपि तु प्राप्तं वर्धते तैलबिन्दुवत ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ विष दंष्ट्राओं के द्वारा, न कि अन्य दाँतों के द्वारा, सर्प रक्त में अपना विष पहुँचा सकता है और तद् द्वारा मनुष्य पशुओं का नाश करता है। विषदन्त निकाल देने पर रक्त में विष पहुँचाने का साधन नष्ट होने से, सर्प सविष होने पर, उसके विषाशय में विष होने पर भी तथा उसके काटने पर भी वह निर्विष सर्प के समान निरुपद्रवी अतएव सबके बश में रहने वाला हो जाता है। सँपेरे के पास ऐसे दाँत निकाले हुए ही विषैले साँप हुआ करते हैं।

(५१) शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम् ।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः ॥

(विक्रमोर्वशीय)

सर्पविष की उग्रता—बच्चा होने पर भी गन्धगज अन्य गजों का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दमन करता है; शिशु होने पर भी सर्प का विष अत्यन्त उग्र होता है; बाल होने पर भी राजा राज्य की रक्षा करने में समर्थ रहता है; तात्पर्य, अपना कार्य करने की योग्यता (तेजस्वियों में) वयोवृद्धि से नहीं उत्पन्न होती, किन्तु जन्म से ही उपस्थित रहती है ।

वक्तव्य—गन्धद्विप—यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः । स वै गन्धगजो नाम नृपतेर्विजयावहः ।। पालकाप्य ।। वेगोदग्रं विषम्—वेगेन उद्गतम् अग्रं यस्य। वेग से जिस विष की विषालुता परमावधि तक पहुँच जाती है। बड़े सर्प से दंश में जो विष की मात्रा उत्सर्गित होती है वह मनुष्यों के लिए कई गुना अधिक घातक होती है। इसलिए सर्प शिशु होने पर भी उसके द्वारा उत्सर्गित विष घातकता की दृष्टि से कम नहीं हो सकता। भुजंगशिशु—मनुष्य के लिए गोनस (Russels Viper) विष की जो घातक मात्रा होती है उससे दुगुनी राशि गोनस दंश में उत्सर्गित करता है और नागविष की जो घातक मात्रा होती है उससे पंद्रह गुनी राशि नागदंश में उत्सर्गित हो सकती है। इस श्लोक के प्रथम पाद में गंधद्वीप और तृतीय पाद में राजा होने से द्वितीय पाद में इनकी श्रेणि में बैठने योग्य सर्प होना उचित है, किसी ऐरगैर के लिए वहाँ स्थान नहीं हो सकता। अतः भुजंग का अर्थ यहाँ पर सर्पों का राजा नाग है। नागपंचमी के दिन उसी को देवता मान कर पयःपान और पूजन किया जाता है । 'पयःपानं भुजंगानाम्' यह वचन इसी से संबंधित है और इसमें भी भुजंग शब्द नाग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। नाग अर्थ करने पर ही उसके शिशु के विष की उदग्रता स्पष्ट हो जाती है। न खलु वयसा जात्यैव—तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः कश्चित्कचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके। बुद्धचरित ।। तेजोविज्ञानीय अध्याय के वचन भी देखिए ।

(५२) अहो खलभुजंगस्य विपरीतो वधक्रमः ।
अन्यस्य दशति श्रोत्रमन्यः प्राणैर्वियुज्यते ।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सविष सर्पदंश—देखिए, दुर्जन और भुजंग इनका वधक्रम एक दूसरे से पूर्णतया विपरीत होता है। खल एक के कान में दंश करता है और उससे दूसरे की मृत्यु होती है।

वक्तव्य—विपरीत-सर्पदंश से विपरीत। सर्पदंश में दष्ट की मृत्यु हुआ करती है। वधक्रमः—मृत्यु केवल सविष दंश से ही हो सकती है। इसमें ऊपर के जबड़े का जहाँ पर सम्बन्ध आया वहाँ पर एक दो या चार दन्तपद दिखाई देते हैं, उनमें रक्त जमने नहीं पाता, यदि प्रारम्भ में कुछ रक्त जमकर स्कन्द (Clots) बने हों तो वे टूट जाते हैं और रक्तस्राव बराबर होता रहता है; हरानीलापन तथा अन्य प्रकार का वैवर्ण्य उत्पन्न होता है; सूजन जलन पीड़ा होती है। इन स्थानिक लक्षणों के अतिरिक्त शरीरकंप, संताप, तन्द्रा इत्यादि सार्वदैहिक लक्षण होते हैं और यदि विष मारकमात्रा में रहा तो मृत्यु होती है—नन्वेते द्वे दन्तपदे (इति दंशं दर्शयति)। सिमिसिमायन्ति मेऽङ्गानि (इति विषवेगं रूपयति) मालविकाग्निमित्र ॥ 'वैवर्ण्यं वेपथुर्दाहः फेनः स्कन्दस्य भञ्जनम्। दुःखं जाडयं मृतिश्चेति विषवेगाः स्युरष्टधा' ॥ कुमारगिरिराजीय टीका ॥

(५३) अविषोऽपि कदाचिद्दंशो भवेत् ॥ (मालविकाग्निमित्र)

निर्विषदंश—कभी कभी सर्पदंश निर्विष भी होता है।

वक्तव्य—विदूषक ने जब दंशस्थान के दन्तपदों को दिखाया और 'अहो, पापेन मृत्युना गृहीतोऽस्मि' ऐसा कहा तब राजा ने उसको धीरज देने के लिए यह वचन कहा। अभय आश्वासन की दृष्टि से यह वचन जितना धैर्यप्रद, आश्वासनकारी है सर्प विषविज्ञान की दृष्टि से यह उतना ही वस्तुस्थिति-निदर्शक है।

अविषोऽपि—(१) पूर्णतया निर्विष दंश। निर्विष साँपों की संख्या कई गुना अधिक होने से सविष साँपों में काटने की प्रवृत्ति अधिक होने पर भी निर्विषदंश बहुत अधिक होते हैं। पृष्ठ ५८६ पर 'अद्वयः सविषाः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सर्वे' श्लोक का वक्तव्य देखें। निर्विष दंशस्थान में दाँतों के बहुतेरे नन्हे-नन्हे निशान चार पंक्तियों में दिखाई देते हैं। अनेक बार ये निशान आँखों से देखे नहीं जा सकते इतने सूक्ष्म होते हैं। यदि त्वचा कट गयी हो तो दन्तपदों में रक्त जमेगा और घाव बंद हो जायगा और उसमें जरासी पीड़ा होगी। परन्तु रक्तस्राव, जलन, सूजन, वैवर्ण्य इनमें से कुछ भी नहीं होगा तथा जाड्यादि सार्वदैहिक लक्षण भी नहीं होंगे— अशोफमल्पदुष्टासृक्प्रकृतिस्थस्य देहिनः। पदं पदानि वा विद्यादविषं तच्चिकित्सकः ॥ सुश्रुत ॥ (२) अल्पविष या अघातक दंश—सगर्तव्याल (Pit Viper), प्रवाल सर्प (Coralsnakes) सविष होते हुए भी उनसे उत्सर्गित विष की राशि अघातक अर्थात् अल्प होने से उनके दंश अल्पविष होते हैं। नाग, कैरात (करेत Krait), अगर्त (Pit less) व्याल इनके दंश घातक होते हैं। 'शमयति गजान्' श्लोक का वक्तव्य देखें। परन्तु इनके दंश भी इन्हें जीभर के काटने के लिए सुअवसर न मिलने से, काटने से अल्पकाल पूर्व दूसरे किसी प्राणी या मनुष्य को काटने से, दंश-स्थान पर धोती, साड़ी या अन्य आवरण रहने से अल्पविष हो सकते हैं। इससे घातक सविष सर्पों के भी आधे दंश अघातक हो जाते हैं। तात्पर्य, सर्पों के दंशों में ६० प्रतिशत दंश अविष या अल्पविष हुआ करते हैं। इस प्रकार सर्पदंश के सविष, अल्पविप और अविप करके तीन प्रकार होते हैं और इन्हीं को सुश्रुत में सर्पित, रदित और अविष कहा है—सर्पितं रदितं चापि तृतीयमथ निर्विषम् ॥ सुश्रुत ॥

(५४) सविपश्वसनोद्धतोरुधूमव्यवधिम्लानमरीचिपन्नगानाम् ।
उपरागवतेव तिग्मभासा वपुरौदुम्बरमण्डलाभमूहे ॥
(शिशुपालवध)

फूत्कारविष—सर्पों के विषैले फूत्कारों से निकले हुए विपुल धूएँ के

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

द्वारा किरण आच्छादित होने से सूर्य का रूप ताम्रपिण्डसम तथा राहुग्रस्त सम म्लान हो गया।

वक्तव्य—श्वसन—फूत्कार। उरु—वड्रोरुविपुलम्॥ अमरकोश॥ उपराग—उपरागो ग्रहो राहुग्रस्ते त्विंदौ च पूष्णि च॥ अमरकोश॥ औदुम्बर—औदुम्बरं भवेत् ताम्रे फलादौ यज्ञशाखिनः। अजयकोश॥ तिग्मभास्—सूर्य। तिग्मं तीक्ष्णं खरम्। अमरकोश।

शिशुपाल ने श्रीकृष्णजी के नाश के लिए नागास्त्र का प्रयोग किया। इससे असंख्य सर्प उत्पन्न हुए। उनका रौद्ररूप इस श्लोक में वर्णन किया है। नागास्त्र से उत्पन्न होने के कारण ये दिव्य सर्प थे और इनका विष फूत्कार में भी रहा—दृष्टिनिश्वासविषा दिव्याः, भौमास्तु दंष्ट्राविषाः। सुश्रुत॥ आफ्रिका में रिंघाल (Ringhal) जैसे कुछ भौमसर्प जब दष्टव्य जीव समीप नहीं होता तब फूत्कार के साथ छः-छः आठ-आठ फूट तक अपने विष को तुषारों के रूप में प्रक्षेपित किया करते हैं और इस प्रकार अपने रौद्र रूप से शत्रु को डराते हैं।

(५५) स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजंगमः।
हसन्नपि नृपो हन्ति, मानयन्नपि दुर्जनः॥ (हितोपदेश)

स्पर्शविष—केवल स्पर्श करके हाथी, सूँघ करके सर्प, हास्यमुद्रा से राजा और आदर सत्कार से दुर्जन घातक हो सकता है।

वक्तव्य—जिघ्रन्—(१) उपर्युक्त स्वरूप का विषैला फूत्कार करके। परन्तु इस प्रकार के सर्प भारतवर्ष में न होने से यह अर्थ उतना व्यावहारिक नहीं हैं। (२) शरीर को स्पर्श करके नाक से सूंघने का काम करके। इसमें मनुष्य को सर्प का नासास्पर्श होने के समय तक उसका पता नहीं चलता और जब वह उसको अपने पास देखता है तब बहुत डरता है। इस घबराहट से एकाध बार मृत्यु तक हो सकती है, विशेषतः डरपोक मनुष्य में। इसको 'सर्पांगाभिहत' कहा है—सर्पस्पृष्टस्य भीरोर्हि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भयेन कुपितोऽनिलः। कस्यचित् कुरुते शोफं सर्पांगाभिहतं तु तत् ॥ सुश्रुत ॥ आगे के श्लोक का वक्तव्य देखें।

(५६) दुरन्धकारे दष्टस्य केनचिद्विषशङ्कया।
ग्लानिर्मोहोऽतिसारश्चाप्येतच्छंकाविषं मतम् ॥ (चरक)

शंकाविष—अत्यन्त अन्धकार में किसी से दष्ट या विद्ध हुए मनुष्य में सर्पविष की आशंका होने से ग्लानि, मूर्च्छा, अतिसारादि लक्षण हुआ करते हैं। उसको शंकाविष कहते हैं।

वक्तव्य—केनचित्—इसमें कीलकण्टकादि से विद्ध होना तथा सर्प एवं अन्य कीटकादि द्वारा दष्ट होना सबका समावेश होता है। दुरन्धकारे दष्टस्य—'विद्धस्य' ऐसा भी पाठ है। अन्धेरे रात्रि में, अन्धेरे स्थान में तथा अन्य वस्तुओं के आड़ में होने से प्रकाश होने पर भी दिखाई न देनेवाली स्थिति में दष्ट या विद्ध। शंकाविष—नेत्रत्वचादि ज्ञानेन्द्रियों पर प्रत्यक्ष अधिष्ठित न हो सकने के कारण जो केवल मनमानी शंका पर अधिष्ठित है। डल्हण ने सर्पांगाभिहत को शङ्काविष समझा है—सर्पस्पृष्टस्येत्यादि। तुशब्दस्यार्थे, तेन कीटकादिविद्धेऽपि शंकाविषं भवति ॥ निबंधसंग्रह ॥ परन्तु, सर्पांगाभिहत में सर्पस्पर्श स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है और दर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष भी हो सकता है, वहाँ शंका के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत शंकाविष में दंश स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष जरूर है परन्तु उसका दंशन न दर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष है न स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष है। इसलिए डल्हण का यह कथन ठीक नहीं है। अष्टांगसंग्रह में ये दोनों भिन्न-भिन्न दिये हैं।

ऊपर सविष, अविष, सर्पांगाभिहत और शंकाविष करके सर्प सम्बन्धी जो चार अवस्थाएँ वर्णित हैं उनमें प्रथम दो में सर्प है और दंश है, तीसरे में सर्प है परन्तु दंश नहीं है और चौथे में दंश है, परन्तु सर्प नहीं है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(५७) चिकित्सितमिदं तस्य कुर्यादाश्वासयन् बुधः।
पानं समन्त्रपूताम्बु प्रोक्षणं सान्त्वहर्षणम्॥ (चरक)

शङ्काविषचिकित्सा—मन्त्रपूत जल का पान, (उसी का शरीर पर) प्रोक्षण, सान्त्वना, हर्षोत्पादन इनके साथ आश्वासन देते हुए बुद्धिमान् मनुष्य शंकाविष-पीडित की चिकित्सा करें।

वक्तव्य—आश्वासयन्—'सोऽरिष्टं न मरिष्यसि' वचन और उसका वक्तव्य (पृष्ठ ४७६) देखें। यहाँ पर बतायी हुई चिकित्सा शुद्ध मानसिक है। शंका के कारण उत्पन्न हुई विषण्णता दूर करने के लिए वह बहुत उचित है, परन्तु यदि उसमें विष का कोई सम्बन्ध हो तो वह निरर्थक है। इसलिए इसका प्रयोग करने से पूर्व दंशस्थान तथा दष्टस्थान दोनों का ठीक अवलोकन करके रोगी शंकाविष से ही पीड़ित है इस विषय की निश्चिति कर लें। यदि जरा भी सन्देह हो तो इसके साथ निम्नोक्त सर्पदंश की चिकित्सा भी प्रारम्भ करें।

(५८) शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः॥ (कर्पूरमञ्जरी)

सिर पर (दंश करने के लिए) सर्प बैठा है और विषवैद्य दूर देश में है।

(५९) उपरिघनं घनरटितं दूरे दयिता किमेतदापतितम्।
हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः॥ (मुद्राराक्षस)

सिरपर घने बादलों ने घेरा डाल रक्खा है और प्रिया तो दूर है; क्या यह आपत्ति आ पड़ी है, जैसे सिर पर सर्प और उसकी दिव्यौषधियाँ हिमालय पर।

(६०) शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः॥ (मुद्राराक्षस)

सिरपर भय सवार है और उसके प्रतिकार साधन दूर हैं।

वक्तव्य—सर्प बहुत भयानक प्राणी है और उसका दंश प्राणघातक भी होता है। इसलिए, सर्प दिखाई देने पर, दंश न करने पर भी,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

उसको तुरन्त मार डालने का कार्य करना चाहिए, ताकि न बाँस रहे न आगे चलकर बाँसुरी बजे। इसमें जरा सा विलंब होनेपर सर्प सही-सलामत भाग सकता है या घर में ही छिपकर सदा के लिए भयस्थान हो सकता है। 'भुजंगमे वेश्मनि दृष्टनष्टे' श्लोक (पृष्ठ ३१२) देखें। वैसे ही, सर्पदंश होनेपर तुरन्त उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। इसमें भी जरा सा विलंब होनेपर दष्ट मनुष्य के मरने की संभावना हुआ करती है। परन्तु सर्प दिखाई देते ही उसको मारनेवाला तथा दंश होते ही उसकी चिकित्सा करनेवाला तत्काल मिलना प्रायः अशक्य होता है और मनुष्यों को साँप सही सलामत भागते हुए और दष्ट को मरते हुए देखने की नौबत आती है। अतः सिरपर सवार हुई भयानक आपत्तियों में जब लाचारी की परिस्थिति उत्पन्न होती है तब इन वचनों का उपयोग किया जाता है।

(६१) सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात्क्रूरतरः खलः।
मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते ॥ (चाणक्यशतक)

सर्पचिकित्सा—सर्प और खल दोनों क्रूर हैं, परन्तु सर्प से खल अधिक क्रूर है, क्योंकि सर्प मन्त्र और औषधि इनसे बस में आ जाता है, परन्तु खल का निवारण किससे करें ?

वक्तव्य—मन्त्रौषधिवशः—इससे सर्प को द्विविध-चिकित्सा बतलायी गयी है। (१) मन्त्रचिकित्सा-भैरवतन्त्रोक्त उदकुम्भ विधान से यह चिकित्सा की जाती थी। इसका उल्लेख मालविकाग्निमित्र में है—ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति। उदकुम्भविधानेन सर्पमुद्रितं किमपि कल्पयितव्यम्। इसमें विशिष्ट विधि से महासर्पशत्रु गरूड़स्तुति के मन्त्र से जल मन्त्रित करके वह जल सर्पदष्टस्थानपर सौबार छिड़काया जाता है। इसके समान 'नागमुद्राविधान' (रसरत्नावलि) भी इसी स्वरूप की मन्त्रित जल छिड़कने की विधि है। 'मुद्राबंध' करने की भी एक विधि है:जिसका उल्लेख कादंबरी में ('अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः' वचन का वक्तव्य पृष्ठ ४५१ पर देखें) है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इसमें विष-मूर्च्छित मनुष्य के शरीर पर अंगुलियों द्वारा स्वस्तिकादि आकृतियाँ चित्रित की जाती हैं—विषमूर्च्छितं विषहारिणो मान्त्रिकाः मन्त्रेण मुद्राबन्धं नाम किमपि यन्त्रं कृत्वा उत्थापयन्ति। तत्र केचिद्विष-सुप्तस्य पार्श्वे गरुडादिध्यानेन मण्डलास्थितास्तमुत्थापयन्ति। अर्जुन पण्डित कादंबरीटीका। प्राचीन काल में सर्पदंश की यही महत्व की चिकित्सा थी और निर्मन्त्र या औषधि चिकित्सा से भी अधिक शीघ्रता से सफल होती थी ऐसा पूर्वाचार्यों का अनुभव रहा—देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मन्त्राः सत्यतपोमयाः। भवन्ति नान्यथा, क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम्॥ विषं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः। यथा निवार्यते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः॥ सुश्रुत॥ मान्त्रिक के लिए कुछ पथ्यपालन की भी आवश्यकता रही—मन्त्राणां ग्रहणं कार्यं स्त्रीमांसमधुवर्जिना। मिताहारेण शुचिना कुशास्तरणशायिना॥ गन्धमाल्योपहारैश्च बलिभिश्चापि देवताः। पूजयेन्मन्त्रसिद्ध्यर्थं जपहोमैश्च यत्नतः॥ सुश्रुत॥ प्राचीन काल में इस प्रकार का पथ्यपालन करने वाले ऋषितुल्य मान्त्रिक रहे जिससे उनकी चिकित्सा बराबर सफल होती रहीं और मन्त्र चिकित्सा का प्राधान्य भी बना रहा। आगे चलकर मान्त्रिकों की परम्परा जारी रहने पर भी उनकी योग्यता की परम्परा घटती गयी जिससे अनेक बार मन्त्रचिकित्सा निष्फल होती रही—केनचित्तरूलग्नेन कालभोगिनाऽह मदंशि। ततो विषमविषज्वालावलीढावयवासा धरणितले न्यपतत्। दयाविष्टहृदयोऽहं मन्त्रबलेन विषव्यवस्थामपनेतुमक्षमः समीपकुञ्जेष्वौषधिविशेषमन्विष्य प्रत्यागतः। दशकुमारचरित। आधुनिक काल में प्राचीन काल के योग्य मान्त्रिक बहुत ही दुष्प्राप्य होने से चिकित्सा-जगत में मान्त्रिकों का तथा मन्त्रचिकित्सा का स्थान लगभग नष्ट हो गया है। तथापि आज भी कहीं कहीं और कभी कभी मान्त्रिक और मन्त्रचिकित्सा का अस्तित्व उनके द्वारा किये गये चमत्कारों से सिद्ध होता है। 'अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः', 'वाते पित्ते श्लेष्म

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शान्तौ च पथ्यं', 'औषधान्यगदो विद्या' इत्यादि वचन तथा उनके वक्तव्य देखिए।

(६२) ऊर्ध्वस्रोतोनुगे क्ष्वेडे न मन्त्रा नौषधिक्रिया।
हिता वेगोदयस्तस्मात्पुमान् सद्यो जहात्यसून् ॥
(वैद्यचन्द्रोदय)

सर्पदंश में तत्काल चिकित्सा का हेतु—सर्पविष ऊर्ध्वस्रोतों में फैलने पर न मन्त्र हित कर सकते हैं, न अन्य औषधियाँ; क्योंकि (विष शरीर में फैलने से) विषावेग (उत्पन्न होने) के कारण (मन्त्र या औषधि का प्रभाव पड़ने से पहले) मनुष्य का प्राणोत्क्रमण हो जाता है।

वक्तव्य—इस वचन का तात्पर्य यह है कि सर्पविष जब तक दंश स्थान में ही है तब तक उसकी चिकित्सा सफल होती है, जब एक बार वह शरीर में फैल जाता है तब मन्त्र या औषध कितने भी प्रभावी क्यों न हो, कुछ भी नहीं कर सकते। 'छेदो दंशस्य दाहो वा' श्लोक का वक्तव्य देखें।

(६३) एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च ॥ (मृच्छकटिक)

अरिष्टाबंधन—इस (जनेऊ) से चोर चोरी करते समय दीवाल पर चौर्य कर्म करने के स्थान (सेंध) को नापते हैं, आभूषणों के बंधन इससे छुड़ाये जाते हैं; यन्त्र से दृढ़ किये हुए किवाड़ों को यह खोलने वाला होता है और (विषैले) कीट या सर्प से दष्ट अंग के (ऊपर बांधने के) लिए यह परिवेष्टन भी होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—शर्विलक ब्राह्मण ने 'यज्ञोपवीतं नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्' इस प्रकार भूमिका बांधकर इस श्लोक में उसके विविध उपयोग बतलाये हैं। इनमें अन्तिम उपयोग जीवदान देनेवाला होने से सर्व श्रेष्ठ हैं। उसी का नाटक उसने प्रेक्षकों को निम्न वचनों से दिखलाया—धिक्कष्टम्; अहिना दष्टोऽस्मि। [यज्ञोपवीतेनाङ्गुलिं बद्ध्वा विषवेगं नाटयति, चिकित्सां कृत्वा] स्वस्थोऽस्मि।

परिवेष्टनम्—बंधन। सूत्र, वेणी, रज्जु, वस्त्र इत्यादि से सर्पदंश के ऊपर जो बंधन बांधा जाता है उसको वैद्यकीय परिभाषा में 'अरिष्टाबंधन' कहते हैं—अरिष्टेति मन्त्रसूत्रवेणिकाया नाम। इन्दु॥ हाथ पैर के दंशों में इसका उत्तम उपयोग होता है। एक बंधन दंश के ऊपर और यदि दंश अंगुलि में हो तो अंगुलि मूल में तत्काल लगाया जाय और दूसरा हाथ में होने पर कोहनी के ऊपर बाहु में और पैर में होने पर जानु के ऊपर ऊरु में लगाया जाय। बंधन न बहुत शिथिल हो न बहुत तंग हो। इससे शरीर में विषसंचरण नहीं हो पाता और स्थानिक तथा प्रतिविष चिकित्सा के लिए निश्चिन्त होकर प्रयत्न किया जा सकता है—सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः। दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाचतुरंगुले॥ प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनाऽन्यतमेन वै। न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम्॥ सुश्रुत॥ बन्धो देशानुसारेण नातिगाढश्श्लथो हितः। दंशपूतित्वशोफादीन् कुरुते ह्यतिपीडितः। अशक्तः शिथिलो रोद्धुं विषं देशान्तरं व्रजेत्॥ अष्टांगसंग्रह॥ अरिष्टाबंधन 'अम्बुवत्सेतुबन्धेन बन्धेन स्तभ्यते विषम्' (अष्टांगसंग्रह) इस प्रकार से विषस्तम्भक होने से सविष-निर्विष, सर्प-सर्पेतर कोई भी दंशक जीव हो दंश होते ही काम में लाना चाहिए। परन्तु इसके लिए जिस सूत्र सुतली की आवश्यकता होती है वह ढूँढ़े बिना नहीं मिल सकती और इसमें समय नष्ट हो सकता है। परन्तु जिसके पास जनेऊ है वह दष्ट या उसका साथी क्षणभर में दंश के ऊपर अरिष्टाबंधन करके वस्तुतः मृत्यु को रोक सकता है। परलोक के जीवन में यज्ञोपवीतधारण से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क्या लाभ होता है वह परमेश्वर जाने, परन्तु, जैसे कि शर्विलक ने कहा है, यज्ञोपवीत धारण करने वालों के ऐहिक जीवन में 'कोः कालः फलदायकः' इस अर्थ में वह वास्तव में 'महदुपकरण' है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

(६४) छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः॥

(मालविकाग्निमित्र)

स्थानिक चिकित्सा—छेदन, दहन, दंशस्थान से रक्तमोक्षण ये दंश होते ही जीव बचाने के उपक्रम होते हैं।

वक्तव्य—छेदः—नीचे का श्लोक देखिए। दाह—इसके लिए तप्त लोह, रजत, सुवर्ण आदि धातु, जलती हुई लकड़ी, दहकता हुआ कोयला प्रयुक्त कर सकते हैं—प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा॥ अष्टांगसंग्रह॥ सिल्वरनैटेट, सल्फ्यूरिक, कार्बोलिक जैसे तीव्र अम्लों का भी उपयोग कर सकते हैं। दहन में दोष यह है कि गहराई में गत विष पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता और त्वचादि धातु जल जाते हैं। पोटाशियम परम्यांगेनेट के तीव्र घोल (Strong solution) का भी उपयोग होता है। रक्तमोक्षण—यह कार्य दंशस्थान तथा उसके चारों ओर शस्त्र से प्रच्छान, उत्कर्तन कर (चीरे लगा) ने से होता है। दंशस्थान में गिरे हुए विष को स्थानिक रक्त से पतला (Dilute) बनाना और उसी से उसको धुला कर बाहर निकालना यह उसका उद्देश्य होता है। दबाने से, तुम्बी, सींग या चपक (Cup ping) लगाने से इसमें सहायता होती है—प्रच्छनसींगजलौकाव्यधनैः स्राव्यं ततो रक्तम्॥ चरक॥ मुख से दंशस्थान को चूस कर भी यह कार्य कर सकते हैं। मुख में व्रण या छाले होने से चूसने वाले के ऊपर सर्पविष कार्य कर सकता है। इसको टालने के लिए मुख में वस्त्र,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

यवचूर्ण, बांबी की मुलायम मिट्टी इत्यादि भरकर आचूषण करने के लिए कहा है। मुख में थोड़ा तेल या घी लेकर भी चूस सकते हैं। चूसने के पश्चात् प्रत्येक समय रक्तादि थूकना चाहिए—आचूषेत्पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः । प्रच्छायान्तररिष्टायां मांसलं तु विशेषतः ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ दष्टमात्राणाम्—दष्टः एव दष्टमात्रः । सर्पदंश होते ही। सर्पविष अत्यंत उग्र है जो अल्पकाल में दंशस्थान से रक्त में मिलकर शरीर को विषाक्त करता है। इसलिए सर्पदंश की चिकित्सा अविलंबेन अधिक से अधिक दस मिनिट के भीतर करनी चाहिए—मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः । देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयन् ॥ एतस्मिन्नन्तरे कर्म दंशस्योत्कर्तनादिकम् । कुर्याच्छीघ्रं यथा देहे विषवल्ली न रोहति ॥ अष्टांगसंग्रह ॥ इससे अधिक विलंब होने पर चिकित्सा की सफलता के संबंध में संदेह होता है।

(६५) द्वेष्योऽपि संमतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम् ।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीदंगुलीवोरगक्षता ॥

(मालविकाग्निमित्र)

अंगुलिच्छेदन—रोगी के लिए जैसे (आरण्य अर्थात् परायी) औषधि (हितकर होने से) मान्य होती है वैसे उस दिलीप राजा के लिए पराया भी शिष्ट होने पर मान्य होता था, इसके विपरीत, जैसे सर्पदष्ट अंगुलि (अपनी होने पर भी पराये के समान) त्याज्य होती है वैसे उसके लिए अपना भी दुष्ट होने पर (पराये के समान) त्याज्य होता था।

वक्तव्य—अंगुलीवोरगक्षता—सर्प बहुधा काम करते समय हाथ पैरों को काटता है। 'रक्षोवधान्तो न च मे प्रयासः' श्लोक (पृष्ठ ६०२) देखिए। हाथ पैरों में भी जीभर के काटने के लिए अंगुलियाँ बहुत अच्छी होने के कारण हाथ पैरों के बहुतेरे दंश अंगुलियों में हुआ करते हैं। अंग-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

च्छेदन सर्पदंश का एक उपचार है जो मुख्यतया अंगुलियों के लिए उपयुक्त है। यदि अंगुलि में दंश होते ही दंशस्थान काटकर फेंक दिया जाय तो फिर विष का निर्मूलन होने से दूसरे किसी उपचार की आवश्यकता ही नहीं होती—तरुरिव मूलच्छेदाद्दंशच्छेदान्न वृद्धिमेति विषम् ॥ चरक ॥ इस श्लोकगत शिष्ट, दुष्ट, द्वेष्य और प्रिय शब्दों को यथार्थतया जानने के लिए 'परोऽप्यपत्यं हितकृच्चथौषधं' तथा 'परोऽपि हितवान् बन्धुः' इन श्लोकों को (पृष्ठ ३७२, ५३२) देखें।

(६६) हन्त भोः, तदिदमनर्थान्तरम् । (विमृश्य) अथवा विषस्य
विषमौषधं भविष्यति ॥ (प्रसन्नराघव)

प्रतिविषचिकित्सा—ओहो, यह तो और दूसरी आपत्ति आ गयी। (विचार करके, कोई बात नहीं) विष की औषधि विष ही होती है।

वक्तव्य—सीता स्वयंवर में रावण का आना एक आपत्ति रही। उसके बाद जब बाणासुर आया तब यह उद्गार निकला हुआ है।

(६७) चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि, विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः, प्रत्यगेतु त्वा विषम् ॥ (अथर्ववेद)

अन्तश्चिकित्सा—हे सर्प ! तेरे तेज को मैं तेज से नष्ट करता हूँ, तेरे विष को विष से नष्ट करता हूँ, तू मरजा, मत जीवित रह तेरा विष तेरे पर ही लौटे।

वक्तव्य—विषेण हन्मि ते विषम्—प्राचीनकाल से सर्पदंशचिकित्सा के लिए दंश-स्थान पर तथा आभ्यंतर विष का प्रयोग किया जाता है—क्षीरक्षौद्रघृतैर्युक्तं द्विगुञ्जं पाययेद्विषम् । विषेण लेपयेद्दंशं कालदष्टोऽपि जीवति ॥ कामरत्न ॥ यह विष बहुधा अतिविष या वत्सनाभ था—साक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी वालकं सर्षपाह्वयम् । वत्सनाभं च कर्मण्यं विषं स्निग्धं घनं गुरु । न जात्वन्यत् प्रयोक्तव्यम् ॥ अष्टांगसंग्रह ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(६८) विषे प्रतिविषं योज्यं मन्त्रतन्त्रैरसिध्यति ॥ (अष्टांगसंग्रह)

मन्त्रतन्त्र निष्फल होनेपर विष में प्रतिविष प्रयुक्त करना चाहिए।

वक्तव्य—इन वचनों में अन्तर्बाह्य प्रतिविष के प्रयोग से सर्प विष की चिकित्सा का सिद्धान्त बतलाया है। प्रतिविष—(१) जो द्रव्य विष (Antidote) का नाश करता है वह द्रव्य। इसके विषालु-वर्ग के होने की आवश्यकता नहीं है। सुवर्ण इसका उत्तम उदाहरण है। प्राचीन काल में इसका उपयोग सर्पविष तथा अन्य विषों में विषनाशन के लिए किया जाता था—हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति। न सज्जते हेमपांगे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ॥ चरक ॥ आधुनिक वैद्यक में भी सुवर्ण (Gold chloride) का उपयोग सूचिकाभरण द्वारा स्थानिक तथा सार्वदैहिक बिषनाशन के लिए किया जाता था। (२) विषनाशक विष द्रव्य, जैसे अतिविष। ऊपर के वचन का वक्तव्य देखें। अतिविष को प्रतिविषा भी कहते हैं—विश्वा विषा प्रतिविषाऽतिविषोपविषाऽरुणा ॥ अमरकोश ॥ चरकसंहिता में सर्पविष के जो चौबीस उपाय बतलाये हैं उनमें प्रतिविष एक उपाय है—प्रतिसारणं प्रतिविषं संज्ञासंस्थापनं लेपः ॥ प्राचीन काल में उपर्युक्त दो स्वरूप के ही प्रतिविष सर्पदष्ट में प्रयुक्त किये जाते थे। (३) आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार बनाया हुआ प्रतिविष (Antitoxin)। विविध जातियों के सर्पों के विषों के लिए आजकल एक संयुक्त प्रतिविष बनाया जाता है जिसको बहुसंयोजी सर्प प्रतिविष (Polyvalent Antis-nake Venom) कहते हैं। सूचिकाभरण से यह प्रतिविष सिरा द्वारा दिया जता है। और गोनस (Russel's Viper) जैसे कुछ सर्पों के दंश में दंशस्थान के आसपास भी सुई से प्रविष्ट किया जाता है। प्राचीन विष या प्रतिविष सर्पदंश में कहाँ तक प्रभावी थे इनका कहना कठिन है, परन्तु यह आधुनिक प्रतिविष, जैसे कि इस वचन में कहा है, मन्त्रतन्त्र निष्फल होने पर

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भी प्रभावी होता हैं। अतः सर्पदंश होते ही अरिष्टाबन्धन करके यदि समीप यह प्रतिविष मिलने का स्थान हो तो मन्त्रतन्त्र के पीछे न पड़ के सर्पदष्ट को तुरन्त वहाँ पर ले लिया जाय। यदि यह सुविधा न हो तो दंशस्थान में प्रच्छान लगाकर खून निकाला जाय और परम्यांग्यानेट के घोल से धोकर रोगी को बिस्तरे पर लिटाकर रक्खा जाय।

(६९) अमन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही, मत्तमतंगजाधिरोही,
लब्धाधिकारो जितकाशी राजसेवक इत्येते त्रयोऽवश्यं
विनाशमनुभवति ॥ (मुद्राराक्षस)

व्यालग्राही—सर्पदंश के मन्त्रों और औषधियों को न जानकर सर्प पकड़ने वाला, मदोन्मत्त हाथी पर सवारी करने वाला और अधिकार प्राप्त घमंडी राजसेवक ये तीनों अवश्य विनाश का अनुभव प्राप्त करते हैं।

वक्तव्य—साँप पकड़ने की एक कला है। अतः कलावान् मनुष्य सविष सर्प को, बिना दष्ट हुए, पकड़ सकता है। परन्तु केवल कला-कुशलता पर सर्प पकड़ने का कार्य करने में धोखा है। अतः व्यालग्राही को मन्त्रौषधि-कुशल बनकर और पकड़ते समय उनसे सिद्ध होकर वह काम करना चाहिए।

(७०) जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितं मण्डलमभिलिखन्ति ।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति ॥
(मुद्राराक्षस)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकीय-
सुभाषितसाहित्ये कीटश्वापदसर्पोसर्गविज्ञानीयो
नाम चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

राजसेवक—जो राजतन्त्र की युक्तिओं को जानते हैं, जो राजमण्डल के कर्म को समझते हैं; तथा जो राजमन्त्रणाओं के गोपन की सिद्धि कर सकते हैं वे ही राजाओं की सेवा कर सकते हैं।

मान्त्रिक—जो सर्प विष के औषधि-प्रयोगों को जानते हैं, जो मन्त्र पढ़कर सापों के चारों ओर मण्डल खींच (कर उसमें उसको बंद कर) सकते हैं; तथा जो सर्पसम्बन्धी मन्त्रों के रक्षण में तत्पर रहते हैं वे ही साँपों का उपचार कर सकते हैं।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां कीटश्वापदसर्पोपसर्गविज्ञानीयो नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कालाकालमृत्युसम्बन्धी

पंचमो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथातः कालाकालमृत्युविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुर्मनीषिणः प्राच्याः।

(१) जगति जातेष्वजातमृतयः के नाम ! (गद्यचिन्तामणि)

मृत्यु की अपरिहार्यता—इस संसार में जन्म के साथ जिनकी मृत्यु उत्पन्न नहीं हुई है ऐसे (महाभाग) कौन हैं ?

(२) मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।

अद्यवाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥ (भागवत)

(वसुदेव कंस जी को कहते हैं)—हे वीर ? जन्मे हुए प्राणियों के देह के साथ मृत्यु भी उत्पन्न होती है। वह आज या सौ वर्ष के पश्चात् प्राणियों के लिए अटल है।

वक्तव्य—मरण जन्म का जुड़वा भाई है जो जन्मे हुए प्राणियों को छोड़ता नहीं। अद्य-अकालमृत्युसूचक। अब्दशतान्ते-कालमृत्यु सूचक॥ 'मरणं प्रकृतिः' श्लोक देखें॥

(३) एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।

तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषा आगन्तवः स्मृताः॥ (सुश्रुत)

मृत्यु की असंख्येयता—अथर्ववेद वेत्ताओं का कहना है कि (मनुष्य के जीवन में एक सौ एक (बार) मृत्यु होने (की नौबत) आती है। उनमें एक काल मृत्यु और शेष अकाल मृत्यु होती है।

वक्तव्य—एकोत्तरशतम्—(१) श्रुति-स्मृति-पुराणों में मनुष्यों का आयुर्मान सौ वर्ष का बतलाया है और एक वर्ष गर्भावस्था का। इस प्रकार गर्भावस्था से वृद्धावस्था के अन्त तक जीवन के वर्षों की संख्या एकसौ एक होती है। मनुष्य की मृत्यु गर्भावस्था के वर्ष से प्रत्येक वर्ष में हो सकती है और इस कल्पना पर मृत्युओं की संख्या एक सौ एक मानी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गयी है। (२) गर्भाधान के क्षण से जीव की मृत्यु प्रत्येक क्षण पर हो सकती है। अतः शतशब्द गणितसंख्यावाचक न होकर असंख्येयता वाचक भी होता है—विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।। नीतिशतक ।। तत्र गर्भवर्षेण सहैकोत्तरवर्षशतैरेकोत्तरशतं मृत्यवः पूर्यन्ते, इति केचिन्मन्यन्ते, अपरे ब्रुवते, शतशब्दोऽत्रासंख्यावाचकः, तेनासंख्या मृत्यवः । डल्हण ।। इन दोनों अर्थों में प्रथमार्थ काल्पनिक और द्वितीयार्ध व्यावहारिक है। अथर्वाणः—अथर्ववेद में एकोत्तरशत मृत्युओं का उल्लेख 'एकशत' शब्द से—ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः । मुञ्चन्तु तस्मात्-वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि' इस मन्त्र में किया गया है। काला-

कालमृत्यु—जन्म लिये हुए जीव के लिए मृत्यु निश्चित होती है इसके लिए कोई मतभेद नहीं है। परन्तु प्रत्येक म्रियमाण जीव केवल काल मृत्यु से ही मरता है या उन में कुछ जीव अकाल मृत्यु से भी मृत हुआ करते हैं इसके सम्बन्ध में जरूर मतभेद दिखाई देता है। कुछ मनीषियों का मत है कि मृत्यु असंख्य होती नहीं, केवल एक ही होती है और जब कभी मनुष्य मरता है तब उसी से मरता है और वही काल-मृत्यु होती है। इनका कथन है कि जन्मग्रहण के समय ही पूर्व जन्म कर्मानुसार प्रत्येक जीव की जीवनरूपरेखा बनकर तैयार होती है और उसके अन्त में उसका मृत्यु-काल भी रहता है—आयुःकर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च। पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ।। हितोपदेश ।। इसलिए मृत्यु-काल के पूर्व उसपर आयी हुई व्याध्यादि आगन्तुक आपत्तियों से वह शरीर रक्षण के लिये विशेष परिश्रम न करते हुए भी बच जाता है और जब वह काल आता है तब विशेष परिश्रम करने पर भी वह उनसे बच नहीं सकता तथा यदि ऐसी कोई घातक आपत्ति न आ पड़े तो पुष्पमालाप्रसंग के समान (पृष्ठ ४६४ पर 'स्रगियं' श्लोक देखें) क्षुद्र प्रसंग भी घातक हो जाते हैं—निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात्पतितस्य च। तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति ।। नाकाले

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

म्रियते जन्तुर्विद्धः शरशतैरपि । कुशाग्रेणैव संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ॥ हितोपदेश ॥ नाकाले म्रियते कश्चिद्विद्धः शरशतैरपि । प्राप्तकालस्य कौन्तेय वज्रायन्ते तृणान्यपि ॥ नाकाले म्रियते कश्चिन्नास्ति मृत्युरकालजः । यो यस्मिन् म्रियते काले मृत्युकालः स तस्य हि ॥ डल्हण टीका ॥ इस मत में कुछ तथ्य जरूर है और उसका प्रत्यय भूकंप, झंझावात आदि नैसर्गिक प्रलयंकारी तथा विमान, जहाज आदि की संहारी दुर्घटनाओं से बचे हुए मनुष्यों की ओर देखने से मिलता है, क्योंकि इनके बचने के स्पष्टीकरणार्थ दूसरी कोई सयुक्तिक उपपत्ति दिखाई नहीं देती। परन्तु इस प्रकार की दुर्घटनाएँ सब कुछ नहीं है, सर्व सामान्य दैनिक ऐहिक जीवन कुछ और है और उसमें जीवन-मरण-संबंधी जो अनुभव आते हैं उनका स्पष्टीकरण इससे ठीक हो नहीं सकता। अतः कुछ मनीषियों का यह मत है कि मृत्यु एक नहीं होती, काल और अकाल करके दो प्रकार की होती है। इनमें काल मृत्यु एक है, वह अवश्यंभावी या अटल जरूर है, परन्तु उसका समय निश्चित नहीं है। इसलिए अनागत विधान से (पृष्ठ ३९५ उसका काल बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत अकालमृत्यु असंख्य है परन्तु वे अवश्यंभावी नहीं है, पूर्णतया परिहार्य हैं। इसलिए सावधानी से, अनागतविधान से वे पूर्णतया टाली जा सकती हैं। व्याधि अकाल-मृत्यु का एक प्रधान कारण है। आवश्यकतानुसार उचित समय पर उसका प्रतिबंधन (prevention) या उपशमन (Cure) करने से व्याधित अपमृत्यु से बच जाता है यह प्रत्यक्ष है। तात्पर्य वैद्यक शास्त्र अपमृत्यु को सिद्ध करता है। यदि अपमृत्यु न होती तो वैद्यक शास्त्र की कोई आवश्यकता न थी—कालः सुरैरपि हि वञ्चयितुं न शक्यो वद्ये विधानमपमृत्युविनाशनाय। मृत्युर्भवेद्यदि कथंचन नापमृत्युर्व्यर्थास्तदा चरकसुश्रुतवाग्भटाद्याः ॥ डल्हण टीका ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(४) श्रूयतामग्निवेश ! यथा यानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणै-रुपेतः सर्वगुणोपपन्नो वाह्यमानो यथाकालं स्वप्रमाणक्षया-देवावसानं गच्छेत्, तथाऽऽयुः शरीरोपगतं बलवत् प्रकृत्या यथावदुपचर्यमाणं स्वप्रमाणक्षयादेवावसानं गच्छति, स मृत्युः काले । (चरक)

कालमृत्यु—हे अग्निवेश ! सुनिये, जैसे उत्तम धुरा बनने के लिए जो रूपगुण उपयुक्त होते हैं उनसे युक्त गाड़ी का धुरा गाड़ी अच्छी तरह चलने चलाने पर (घीस घीसकर) अत्यन्त क्षीण होने से टूटता है, वैसे जब शरीर की खूब प्रयत्न करके यथाविधि उपचार की हुई आयु अपना नैसर्गिक प्रमाण क्षीण होते होते समाप्त होती है तब वह काल मृत्यु है ।

(५) यथा च स एवाक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वाद्विषमपथादपथादक्ष-चक्रभङ्गाद्वाह्यवाहकदोषादणिमोक्षादनुपाङ्गात् पर्यसनाच्चा-न्तराऽवसानमापद्यते, तथाऽऽयुरप्ययथाबलमारम्भादयथा-ग्न्यभ्यवहरणाद्विषमाभ्यवहरणाद्विषमशरीरन्यासादतिमैथुना-दसत्संश्रयादुदीर्णवेगविनिग्रहाद् विधार्यवेगाविधारणाद् भूतविषवाय्वग्न्युपतापादभिघातादाहारविवर्जनाच्चान्तराऽव-सानमापद्यते, स मृत्युरकाले; तथा ज्वरादीनप्यातङ्कान्मि-थ्योपचारितानकालमृत्यून् पश्यामः ॥ (चरक)

अकालमृत्यु—जैसे वही धुरा गाड़ी में अतिबोझ डालने से, ऊबड़ खाबड़ तथा खराब मार्ग पर चलने से, पहिया टूटने से, गाड़ी के बोझ तथा चालक के दोष से, कील निकल जाने से, (समय समय पर) रोगन न करने से, गाड़ी उलट जाने से उचित समय के पहले बीच में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ही टूट जाता है, वैसे आयु भी शक्ति से अधिक काम करने से, पाचकाग्नि का विचार न करके न्यूनाधिक या अकाल में भोजन करने से, शरीर को अस्तव्यस्त फेंकने से, अतिमैथुन से, जीर्ण (गिरने वाले) गृह में वास करने से, मलमूत्रादि के अविधार्य वेगों का विधारण करने से, विधार्य वेगों का विधारण न करने से, भूत (जीवाणु, रोगाणु) विष द्रव्य, झंझावात, अग्नि इनके उपसर्ग से, अभिघात (Trauma) से, आहारवर्जन करने से उचित काल के पहले समाप्त होती है उसे अकाल मृत्यु कहते हैं; वैसे ही ज्वरादि रोग भी ठीक चिकित्सा न करने से अकालमृत्यु (के कारण) होते हैं ।

वक्तव्य—यथाकालम्—किसी प्रकार का आघात प्रत्याघात या दुर्घटना न होते हुए घीस घीस कर क्षीण होने के लिए जो उचित काल लगेगा उतने उचित काल में । अपथ—उच्च नीच ऊबड़ खाबड़ मार्ग । अणिमोक्षात्—पहिया अक्ष से न निकल पावे इसलिए लगाया हुआ कील निकल जाने पर । अनुपांग—तेल या रोगन न देना । पर्यसन—गाड़ी का फेंका जाना या उलट जाना ।

जैसे कालाकाल मृत्यु के संबंध में मतभेद हैं वैसे कालमृत्यु किसे कहा जाय और अकालमृत्यु किसे कहा जाय इसके संबंध में भी मतभेद हो सकते हैं । ये मतभेद इन अधिष्ठानों पर अधिष्ठित हैं— (१) आयुर्मान—युगानुसार कलियुग में शास्त्रोक्त आयुर्मान सौ या उससे कुछ अधिक बताया (पृष्ठ २६७) गया है । जो मृत्यु सौ साल में या उसके पश्चात् हुई वह कालमृत्यु होती है फिर वह आगन्तुक कारण से भी क्यों न हो जाय । और जो मृत्यु सौ साल से पहले हो वह अकालमृत्यु है फिर वह शरीर जरा जर्जर तथा क्षीण होने से भी क्यों न हो । (२) वयोवस्था—बत्ती तथा तैल से परिपूर्ण दीपज्योति धीरे धीरे जलते जलते तैल समाप्त होने पर जैसे बुत जाती है, वैसे गर्भावस्था से मनुष्य की जो छः अवस्थाएँ (पृष्ठ २८३) होती हैं उनमें

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

से यथाक्रम होते होते छठी वृद्धावस्था प्राप्त होने के पश्चात् शरीर धीरे धीरे जरा-जर्जर और क्षीण होने से जब देहज्योति बुत जाती है, फिर वह सौ साल से पहले भी क्यों न हो, वह कालमृत्यु और जब दीप में तैल रहते हुए झंझावात से नष्ट होने वाली दीपज्योति के समान छठी वृद्धावस्था प्राप्त होने से पहले किसी आगन्तुक कारण से देहज्योति नष्ट हो जाती है तब वह अकालमृत्यु होती है। (३) प्रयत्न पराकाष्ठा—कालमृत्यु अपरिहार्य होती है, परन्तु अकाल में आने वाली सब मृत्युएँ परिहार्य होती हैं। इसलिए मनुष्यों को जीवन भर सावधानता से वैद्यकोक्त अनागतविधानानुसार (पृष्ठ ३२३) चलकर दोषज तथा आगन्तुक रोगों से तथा दुर्घटनाओं से बचकर रहना चाहिए और यदि संयोगवश या अभाग्यवश कोई रोग या दुर्घटना हो जाय तो बचने के लिए प्रयत्न पराकाष्ठा करनी चाहिए। यदि इस प्रकार रहने और करने पर भी मृत्यु हो जाय तो वह कालमृत्यु है और इस प्रकार न रहने पर जो मृत्यु होती है वह अकालमृत्यु है।

प्रथम प्रकार की काल मृत्यु सौ वर्ष पर अधिष्ठित होने से आदर्श मृत्यु है। ऐसी आदर्श मृत्यु से मरने वाले भाग्यवान् पहले भी रहे आज भी हैं और भविष्य में भी रहेंगे, परन्तु कुल आबादी की संख्या के अनुपात में इसकी संख्या हमेशा अत्यल्प रहती है पृष्ठ ६३६ पर 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणां' श्लोक का वक्तव्य देखें। दूसरे प्रकार की काल मृत्यु निसर्ग प्रक्रिया पर अधिष्ठित होने से इसको नैसर्गिक काल मृत्यु कह सकते हैं। इस से मरने वाले पहले प्रकार की अपेक्षा अधिक होते हैं। होने के कारण तीसरे प्रकार की काल मृत्यु मनुष्य के दैनंदिन व्यवहार पर अधिष्ठित इसको व्यावहारिक कालमृत्यु कह सकते हैं। अधिकसंख्य मृत्यु इस प्रकार की होती है।

(६) अनभ्यासाच्च वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।

आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥ (मनु)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अकालमृत्युहेतु—विद्याभ्यास न करने से, सदाचार का परित्याग करने से, आलसी बनने से, दोषयुक्त आहार सेवन करने से मृत्यु (अकाल में) बुद्धिजीवियों का नाश करती है।

(७) प्राप्ते प्रसवकाले च भयमुत्पद्यते यतः।

अस्मिन्नेकः स्थितः पादो भवेदन्यो यमक्षये ॥ (काश्यप)

प्रसव काल प्राप्त होनेपर (प्रसवोन्मुख स्त्री के मन में मृत्यु का) डर उत्पन्न होता है, क्योंकि उसका एक पैर इहलोक में और दूसरा यमलोक में रहता है।

वक्तव्य—यमक्षय-यमालय-निलयापचयौ क्षयो ॥ अमरकोश ॥ इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि प्रसव स्त्रियों में अकालमृत्यु का एक कारण होता है। प्रसव स्त्री के शरीर का सहज धर्म है—प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः। मनु ॥ परन्तु स्त्री का अस्वास्थ्य, गर्भ की विकृताकृति, श्रोणी गुहा की तथा अपत्यपथ की संकीर्णता तथा विकृति, गर्भ का गर्भाशय में विषमासन, सूतिका तथा गर्भिणी का अज्ञान इत्यादि अनेक कारणों से इस सहज धर्म में बाधाएँ उत्पन्न होकर स्त्रियों में अनेक व्याधियाँ तथा अनेक बार अकाल मृत्यु उत्पन्न हुआ करती है। इनमें से कुछ कारण अदृष्ट तथा अपरिहार्य होते हैं। अतः प्रसव से कुछ स्त्रियों के लिए अकालमृत्यु अटल होती है। परन्तु बहुतेरे कारण परिहार्य होते हैं जिनका परिहार करने से असंख्य स्त्रियों की अकालमृत्यु का परिहार हो जाता है। (पृष्ठ ३१७ पर) 'वर्जयन्ति यथारण्यं' श्लोक और उसका वक्तव्य देखिए। रामराज्य जैसे अनेक बातों में आदर्श था वैसे इसमें भी आदर्श रहा। रामराज्य के वर्णन में महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि उसमें स्त्रियों पर प्रसव के कारण कोई आपत्तियाँ नहीं आती थीं—अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तश्च मानवाः ॥

(८) जलमग्निर्विषं शस्त्रं स्त्रियो राजकुलानि च।

अकालमृत्यवो ह्येते तेभ्यो बिभ्यति पण्डिताः ॥ (डल्हण)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जल (में डूबना), आग (में जलना), विष (का सेवन), शस्त्र (का आघात) स्त्री (पृष्ठ २१६ पर 'सुखतः क्रियते रामाभोगः' श्लोक देखिए), राजकुल (पृष्ठ ६३१ 'राजमूला महाबाहो' श्लोक देखिए) ये सब अकालमृत्यु (के कारण) होते हैं । इसलिए विचारी मनुष्य इनसे डरकर दूर तथा सावधान रहते हैं ।

(९) जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुद् व्याधिः पतनं गिरेः ।
निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणान् विमुञ्चति ॥ (हितोपदेश)

पानी (में डूबना), अग्नि (से जलजाना), विष (का अनजाने सेवन होना) शस्त्र (से कटजाना), क्षुधा (अनशन Starvation), रोग (से पीडित होना), पहाड़ (जैसे उच्च स्थानों) से गिरना इनमें से कुछ न कुछ निमित्त पाकर मनुष्य प्राणों का त्याग करता है ।

(१०) विष्वग्वातादिभिर्यद्वद् दीपो वर्त्यादिसंयुतः ।
निर्वात्यते क्षणाद् देही तथैवागन्तुमृत्युभिः ॥ डल्हण

बत्ती (तेल तथा जलनोपयोगी अन्य सामग्री) से युक्त दिया (जो वैसे दीर्घकाल तक जलता रहना चाहिए) झंझावात से जैसे खिनभर में बुझ जाता है, वैसे आगंतुकमृत्यु (के उपर्युक्त दो श्लोकों में दिये हुए कारणों) से मनुष्य (जो वैसे दीर्घजीवी होना चाहिए) खिनभर में मर जाता है ।

(११) कुसुमान्यपि गात्रसंगमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितं यदि ।
न भविष्यति हंत साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः ॥

(रघुवंश)

शरीर से सम्बन्ध होनेपर पुष्प भी यदि प्राणनाशन में समर्थ होते हैं तो आघात करनेवाले विधि के लिए जो प्राणघातक न हो सके ऐसा कौन सा दूसरा साधन हो सकता है ।

वक्तव्य—निर्वाण की दृष्टि से प्राणज्योति और दीपज्योति में कोई

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विशेष अन्तर नहीं होता। दीपज्योति अनेक बार अत्यन्त क्षुल्लक पतंग के संसर्ग से बुझ जाती है यह सर्वविश्रुत है—शलभीनिपाते कदाचित्प्रदीपोऽपि विनाशमधिगच्छति ॥ संकल्पसूर्योदय ॥ तात्पर्य, प्राणज्योतिनिर्वाण के लिए कोई विशेष या महान् प्रसंग की आवश्यकता होती है ऐसी बात नहीं, नैत्यिक व्यवहार का क्षुल्लक से क्षुल्लक प्रसंग, विधि चाहने पर या मृत्यु सामने उपस्थित होनेपर, इस काम के लिए समर्थ हो जाता है।

(१२) राजमूला महाबाहो योगक्षेमसुवृष्टयः।
प्रजासु व्याधयश्चैव मरणं च भयानि च ॥ (महाभारत)

हे महाबाहु! (प्रजा का) योगक्षेम, (भूमिपर) सुवृष्टि, प्रजामें विविध रोग, अकालमृत्यु और भय ये राजमूलक होते हैं।

(१३) राजदोषैर्विपद्यन्ते प्रजा ह्यविधिपालिताः।
असद्वृत्ते हि नृपतावकाले म्रियते जनः ॥ (रामायण)

यथाविधि पालित न हुई प्रजा राजदोषों से विपत्तियों में फँसी रहती है और दुर्वृत्त राजा होनेपर अकाल में मृत्यून्मुख होती है।

(१४) न हि राजापचारमन्तरेण प्रजायामकालमृत्युश्चरति ॥
(उत्तररामचरित)

राजा के द्वारा अपराध हुए बिना प्रजा में अकालमृत्यु का संचरण नहीं होता।

वक्तव्य—अकालमृत्यु के अनन्त कारण होते हैं। इनके तीन विभाग कर सकते है। (१) अतिवृष्टि, झंझावात, भूकम्प, ज्वालामुखी का उद्रेक, समुद्र का मुद्रातिक्रमण, दावानल, तडित् (lightning) का तथा पहाड़ों का गिरना इत्यादि नैसर्गिक कारण। इनके ऊपर किसी का नियन्त्रण नहीं है। अतः ये अनिवार्य कारण हैं। (२) आत्मापराध या प्रज्ञापराध याने जिसकी अपमृत्यु होती है उसके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अपचार। (३) परापचार या परापराध—लुटेरे, डाकू, हत्यारे, बेतहाशा वाहन चलानेवाले वाहनों के सारथी, लापरवाही से औषधियों का या शस्त्रकर्मों का उपयोग करनेवाले काय-तथा शस्त्रचिकित्सक, अन्न का कृत्रिम अकाल उत्पन्न करनेवाले तथा उसमें अभक्ष्य तथा विषैले द्रव्यों की मिलावट करनेवाले व्यापारी इत्यादि के अपराध के कारण होनेवाली प्रजा की अपमृत्यु। इन दोनों वर्गों से होने वाली प्रजा की अपमृत्यु निवार्य है।

प्रजा की अपमृत्यु के लिए उपर्युक्त तीसरे वर्ग के विविध लोग प्रत्यक्षतया उत्तरदायी होते हैं इसमें संदेह नहीं है, परन्तु अप्रत्यक्षतया उसके लिए राजा या आधुनिक परिभाषा में शासक या शासन तन्त्र ही उत्तरदायी होता है। क्योंकि यदि शासक दुबला, अशासनक्षम, अपचारी भ्रष्टाचारी, अधर्मी रहा तो उसके नीचे काम करनेवाले मन्त्री तथा अधिकारी भी अपचारी, भ्रष्ट, अकार्यक्षम होकर उपर्युक्त स्वरूप के समाज घातकी लोगों को प्रजा को लूटने मारने के लिए अच्छा मौका मिलता है—राजा राक्षसरूपेण व्याघ्ररूपेण मन्त्रिणः। सेवकाः श्वानरूपेण, यथा राजा तथा प्रजा॥ यदा वै देश (Province or State) नगर (city), निगम (Corporation) जनपद (District) प्रधाना धर्ममुत्क्रम्याधर्मेण प्रजां वर्तयन्ति, तदाश्रितोपाश्रितापौरजनपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति ॥ चरक॥ इसके विपरीत यदि शासक बलवान् शासनक्षम और धार्मिक मनोवृत्ति का रहा तो नीचे लोग भी अपना कर्तव्य ठीक करनेवाले होंगे। जिससे उपर्युक्त स्वरूपके समाज कटकों के ऊपर उनकी धाक जमा रहेगी और उनके द्वारा होने वाली प्रजाकी अपमृत्यु बहुत घट जायगी—राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा यथा राजा तथा प्रजा। भोजप्रबंध॥ तात्पर्य 'सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभोहि शुचिर्जनः' इस महाभारत के शाश्वत सिद्धान्त के आधार पर 'यथापराधदण्डानाम्,' 'स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्,' 'हन्त्येष नियमाद् वध्यान्' इत्यादि गुणों से युक्त रामचन्द्र के समान न्यायनिष्ठुर शासक ही अपने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कारण होनेवाली प्रजा की अपमृत्यु दूर कर सकते हैं इतर दुर्बल अक्रियावान् व्याख्यान देनेवाले शासक नहीं कर सकते ।। न्यायनिष्ठुर शासन के कारण ही रामराज्य में इस प्रकार की अकालमृत्यु नहीं होती थी।

(१५) अत्यन्तमतिमेधावी त्रयाणामेकमश्नुते ।
अल्पायुषो दरिद्रो वा ह्यनपत्यो न संशयः ।।

अल्पायुदर्शकलक्षण—अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य अल्पायुषी, दरिद्री अथवा अपत्यहीन इन तीनों में से एक जरूर होता है।

(१६) व्यञ्जनादि शुभा विद्या मेदो मेधादयो यशः ।
अल्पे वयसि यस्यैतन्न स जीवेच्चिरं नरः ।। (डल्हणटीका)

लिंगदर्शक चिह्न, उत्तमोत्तम विद्या, अत्यन्त मेदुरता, मेधा, कीर्ति इत्यादि जिसके अल्पवय में विकसित होते हैं वह मनुष्य चिरजीवी नहीं होता।

वक्तव्य—व्यंजन-मूँछे, स्तन इत्यादि स्त्री पुरुषत्व दर्शक बाह्य चिह्न-व्यंजनं लाञ्छनं श्मश्रुनिष्ठानावयवेष्वपि । अमरकोश ।। मेधा—मतिरागमिका ज्ञेया बुद्धिस्तत्कालदर्शिनी । प्रज्ञा चातीतकालस्य, मेधा कालत्रयात्मिका ।। हेमकोष ।। जन्म से मृत्युतक मनुष्य का जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा में जब मनुष्य का शारीरिक और मानसिक विकास नैसर्गिक गति से होता है तब इस जीवन यात्रा की एक विशिष्ट अवधि होती है। पृष्ठ २६७ पर (बाल्यं वृद्धिः छविर्मेधा) श्लोक देखिये। इस पूर्ण अवधि तक जीने को दीर्घायुष्य कहते हैं। परन्तु जैसे शीघ्रगतिक यान या वाहन से प्रवास होने पर प्रवास की कालावधि घटती है, वैसे शरीर ज्ञान विज्ञान की विकास की गति नैसर्गिक गति से तेज होने पर जीवन यात्रा की कालावधि घटकर मनुष्य अल्पायु में मर सकता है और प्रत्यक्ष व्यवहार में भी ऐसे लोग अल्पायु रहे हैं यह वस्तुस्थिति है। सुश्रुत के दीर्घायु के लक्षणों में, इसलिए, इसका स्पष्ट उल्लेख है—
गर्भात्प्रभृत्यरोगो यः शनैः समुपचीयते ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शरीरज्ञानविज्ञानैः स दीर्घायुः समासतः ॥

(१७) जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपञ्चान्यहानि । तत्रापि भोगयोग्यमल्पाल्पं वयःखण्डम् ॥ (दशकुमारचरित)

आयु की क्षणभंगुरता—प्राणियों का जीवित पाँचचार दिनों का होता है, उसमें भी भोगयोग्य जीवित अत्यल्प रहता है ।

(१८) न श्वः श्वमुपासीत । को हि मनुष्यस्य श्वो वेद ॥

(शतपथब्राह्मण)

कल (करूँगा) कल (करूँगा) की उपासना न करें, क्योंकि मनुष्य के (आनेवाले) कल को कौन जानता है ?

(१९) श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥ (महाभारत)

कल का कार्य आज और दोपहर का कार्य प्रातः करें, क्योंकि तुम्हारा कार्य हुआ या नहीं इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती है ।

वक्तव्य—उपर्युक्त दो वचनों का तात्पर्य निम्न प्रसिद्ध दोहा में भलीभाँति प्रकट हुआ है—काल करे सो आजकर, आज करे सो अब । पल में परले (प्रलय) होयगी बहुरि करोगे कब ॥

(२०) मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ॥

(रघुवंश)

(दार्शनिक)—विद्वान् मृत्यु शरीरधारियों की प्रकृति और जीवन उनकी विकृति कहते हैं । इसलिए यदि मनुष्य साँस लेता हुआ क्षणभर भी जीवित रहा तो वह लाभवान् है (ऐसा समझना चाहिए) ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—मरण-पंचमहाभूतात्मक जीवसृष्टि का प्रकृति में विलीन होना। 'पञ्चभिर्निर्मिते देहे' श्लोक देखिए। प्रकृति—सांख्यदर्शनानुसार पृष्ठ ६४० पर अचेतन अव्यक्त मूलतत्व, जो चेतन पुरुष तत्व के साथ मिलकर पंचमहाभूतात्मक जीवसृष्टि में निम्न प्रकार से विकसित होता है—प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ सांख्यकारिका ॥ विकृति—प्रकृति से जीवसृष्टि उत्पन्न करने के लिए विकसित हुए महदादि तत्व तथा उनका संघटित समुदाय। श्वसन्—श्वास-प्रश्वास चेतनावस्था का निदर्शक होता है, इसलिए जीवित।

अजराजा एक समय वन में क्रीडा करने के लिए इन्दुमति के साथ गया था। उस समय ऊपर से विमान में महर्षि नारद जा रहे थे। उनके विमान से एक माला नीचे इन्दुमती के शरीर पर गिर पड़ी और इन्दुमती का देहान्त हुआ। इससे अजराजा दुःखित होकर बहुत विलाप करने लगे। तब महर्षि वशिष्ठजी ने अपने शिष्य के साथ अज के सान्त्वनार्थ एक 'लघुसंदेशपदा सरस्वती' भेजी। उसमें से यह एक वचन है। इसमें सांख्यशास्त्रानुसार मरण की स्वाभाविकता, जीवन की अस्वाभाविकता और क्षणभंगुरता का सिद्धान्त प्रदर्शित किया है। इसके प्रथम श्लोकार्ध सें वसिष्ठ जी ने अज को यह कहा है कि मरण शरीर का स्वाभाविक धर्म होने से इन्दुमती के मरने पर तुम्हें विलाप करने का कोई कारण नहीं (आगे 'पञ्चभिनिर्मिते' श्लोक भी देखें) और द्वितीय श्लोकार्ध से वसिष्ठ जी ने अज के चित्त पर यह अंकित किया कि जहाँ इस संसार में क्षण भर का जीवित भाग्य की बात होती है वहाँ इन्दुमती बरसोंतक जीवित रही, तुम्हारे साथ विवाह होकर बड़े प्रेम से और आनन्द से रही, पुत्र भी हुआ तब तुम्हें उसके मरण पर विलाप करने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, तुम्हें अपने को बहुत भाग्यवान् समझना चाहिए और जरा सा भी विलाप या दुःख न करना

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

चाहिए। जिस संदर्भ में श्लोक आया है उसके अनुसार यह अर्थ दिया है। अब नीचे बिना संदर्भ के सामान्य अर्थ दिया जाता है।

(सामान्य अर्थ)—विचारी लोक (अकाल) मृत्यु को जीवधारियों की प्रकृति और (दीर्घ) जीवित रहने को विकृति कहते हैं (इसलिए) अल्पायु की प्राप्ति भी भाग्य (की बात होती) है।

वक्तव्य—मरण—अकालमरण, आगन्तुक मृत्यु जो असंख्य हैं और जन्म के पहले से भी जीवों के सामने सदैव उपस्थित रहा करते हैं। (पृष्ठ ६२३ पर) 'एकोत्तरं मृत्युशतं' श्लोक देखिए। प्रकृति, विकृति—जो सहज में, आप से आप, अनायासेन या स्वभाव से होता है वह प्रकृति है और जो सहज में, आप से आप, अनायासेन, स्वभाव से नहीं होता, जिसको प्राप्त करने के लिए विविध स्वरूप के प्रयत्न करने की आवश्यकता हुआ करती है वह विकृति है—उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥ रघुवंश ॥ क्षणम्—जीवन का एक अल्पांश—क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि च युवा कामरसिकः। वैराग्यशतक ॥

इस संसार में मनुष्यों की आयु गर्भाधान के समय से प्रतिक्षण उसके पीछे पड़ी हुई असंख्य आगन्तुक मृत्युओं से किसी समय समाप्त हो सकती है यह वस्तुस्थिति है जो बोलचाल की भाषा में तथा साहित्य में मनुष्यों के सामने सदैव रक्खी जाती है; जैसे कि उपर्युक्त तथा निम्नोक्त वचनों में किया गया है, इसलिए कि मनुष्य उसको ध्यान में रक्खे और सत्प्रवृत्त होकर 'व्यशेम देवहितं यदायुः'।—नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ॥शंकराचार्य॥ आयुर्ष्यं जललोलबिंदुचपलं फेनोपमं जीवितम् ॥ हितोपदेश ॥ आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः—ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥ वैराग्यशतक ॥ जलान्तश्चन्द्रचपलं जीवितं खलु देहिनाम्। तथाविधमिति ज्ञात्वा शश्वत्कल्याणमाचरेत् ॥ मृगतृष्णासमं वीक्ष्य संसारं क्षणभंगुरम्। सज्जनैः संगतं कुर्याद्धर्माय च सुखाय च ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हितोपदेश ।। शास्त्रों में मनुष्य की आयु सौ या उससे भी कुछ अधिक वर्षों की बतायी है इसमें संदेह नहीं । पृष्ठ २६८ पर 'शतं जीव शरदो वर्धमानं' तथा अन्य वचन देखिये । यह शतजीविता अनायासेन किसी के पल्ले नहीं पड़ती, उसकी प्राप्ति के लिए तथा उसका नाश करनेवाले असंख्य कारणों से रक्षण करने के लिए (१) देवताओं की प्रार्थना करने की आवश्यकता होती है—तुभ्यमेव जरिमन्वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।। मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।। द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।। विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत् ।। अथर्ववेद ।। (२) इसके अतिरिक्त वैद्यकोपदिष्ट पथ्यकर आहार-विहार का सेवन और आचार विचार का पालन करना पड़ता है (३) और 'जलमग्नि' (पृष्ठ ६३० पर श्लोक देखिए) इत्यादि आगन्तुक मृत्यु के कारणों से सावधान होकर दूर रहना पड़ता है—नित्यं हिताहारविहारसेवी' (पृष्ठ ३२५) श्लोक देखिए । इस प्रकार दैवव्यपाश्रय और युक्तिव्यपाश्रय विविध प्रयत्न करनेपर ही कुछ इने गिने लोग शतायुषी दिखाई देते हैं । इसलिए दीर्घायुष्य को व्यावहारिक दृष्ट्या प्रकृति कहना उचित नहीं मालूम होता । इसके विपरीत अकालमृत्यु को जो प्रकृति कहा है वह कथन व्यावहारिक दृष्ट्या अयथार्थ नहीं नहीं मालूम होता, क्योंकि, प्रयत्नप्रार्थना करें या न करें, अधिकसंख्य लोगों के भाग्य में वहा होती है । आधुनिक पाश्चात्य विद्वान भी शब्दभेद से यही कल्पना प्रकट करते हैं—Death from old age is, however, comparatively rare; the common cause of death is accident, in which term we include disease.' Halliburton's Physiology. दीर्घजीवन प्राप्त होने में प्रयत्न एक अंग है इसमें संदेह नहीं, परन्तु यदि बलवान् भाग्य या पूर्वकर्म साथ न हो तो केवल प्रयत्न से प्रतिज्ञा पर किसी को शतजीविता प्राप्त नहीं हो सकती। दीर्घजीवी मनुष्य उसे पूछने पर अपने दीर्घजीवन की कुछ न कुछ कुन्जी, महामन्त्र या अनुभव बताते हैं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

परन्तु यदि कोई यह समझे कि उसके अनुसार चलने पर उसे भी दीर्घजीवन निश्चिति से प्राप्त होगा तो उसका भ्रम है। तात्पर्य, दीर्घायु-प्राप्तिका कोई निश्चित राजमार्ग नहीं है, वह शुद्ध भाग्य या संयोग की घटना है। परन्तु यह भाग्य प्रथम स्थान में न होकर, जैसे कि गीता में बताया है, पंचम स्थान में है—अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चम्। अतः अकालमृत्यु प्रकृति होने पर भी, प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह अपना बुद्धिसर्वस्व तथा शक्तिसर्वस्व खर्चकर वैद्यक-शास्त्र के तथा संसार के प्राचीन तथा अर्वाचीन दीर्घजीवियों के अनुभवों के आधार पर (पृष्ठ ४४ पर 'परिश्रमो मिताहारः' श्लोक देखिए) अकालमृत्यु टालने की प्रयत्न पराकाष्ठा करें और यही बात नीचे के श्लोक में बतलायी गयी है।

(२१) मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम्।
यद्यसौ न निवर्तेत नापराद्धोऽस्ति देहिनाम्॥ (भागवत)

बुद्धिसर्वस्व और बलसर्वस्व खर्च करके बुद्धिमान् को अकालमृत्यु (के प्रत्येक प्रसंग) को टालने का कार्य करना चाहिए। तिस पर भी यदि अकालमृत्यु न टल जाय तो उसमें उसका कोई दोष नहीं होता।

वक्तव्य—मृत्यु—अकालमृत्यु। कालमृत्यु टालने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह अटल है फिर मनुष्य कहीं भी क्यों न चला जाय। नीचे का श्लोक देखिए।

(२३) अत्यन्तं कुरुतां रसायनविधिं, वाक्यं प्रियं जल्पतु
वार्धेः पारमियर्तु, गच्छतु नभो, देवाद्रिमारोहतु।
पातालं विशतु, प्रसर्पतु दिशं, देशान्तरं भ्राम्यतु
न प्राणी तदपि प्रहर्तुमनसा संत्यज्यते मृत्युना॥

(सुभाषितरत्नसंदोह)

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्राणी (डर के मारे या टालने की इच्छा से भले ही) बहुत रसायन विधि करें, मधुर बोले, समुद्र के दूसरी पार चला जाय, आकाश में चला जाय, मेरुपर्वत पर चढें, पाताल में प्रवेश करें, दशदिशाओं में भाग जाय, अन्य देश में भ्रमण करें, फिर भी प्रहार करने की इच्छा करनेवाले यमराज से वह नहीं छूट सकता।

वक्तव्य—रसायनविधि—कायाकल्प (Rejuvination) के लिए जो ब्राह्म्यादि रसायन सेवन किये जाते हैं उनके सेवन की विशिष्ट विधि। इस विधि से रसायन-सेवन करने पर ही रसायन के निम्न लाभ होते हैं—दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः। प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम्। वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात्॥चरक॥ कुटीप्रावेशिक और वातातपिक अथवा सौर्यमारुतिक करके दो विधियाँ हैं। इनमें प्रथम विधि श्रेष्ठ है। महामना मालवीयजी के कायाकल्प में इस कुटीप्रावेशिक विधि का प्रयोग किया गया था—रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः। कुटीप्रावेशिकं चैव वातातपिकमेव च। ताभ्यां श्रेष्ठतरः पूर्वो विधिः स तु सुदुष्करः॥ चरक॥

(२३) सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥ (रामायण)

सब संचयों का अन्त उनके क्षय में होता है, सब उत्थानों का अन्त उनके पतनों में होता है, सब संयोगों का अन्त उनके वियोगों में होता है और जीवित का अन्त मृत्यु में होता है।

(२४) यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम्॥ (रामायण)

जैसे परिपक्व फलों के लिए नीचे गिरने के अतिरिक्त और कोई भय नहीं है, वैसे (जराजीर्ण) मनुष्य के लिये मृत्यु के अतिरिक्त और कोई भय नहीं होता।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वक्तव्य—जातस्य—'जन्म लिया हुआ' इस पद का सरल अर्थ है—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ॥ गीता ॥ परन्तु यह श्लोक कालमृत्यु के सम्बन्ध में होने के कारण तथा प्रथम श्लोकार्ध में जो दृष्टान्त दिया है उसके आधार पर जातस्य का अर्थ 'पक्कजात' 'जराजर्जर' ऐसा ही करना चाहिए।

(२५) यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥

जैसे स्वप्न का जीव उत्पन्न होता है और मरता है वैसे संसार के सब जीव भी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

(२६) यथा मायामयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥

जैसे इन्द्रजाल से जीव उत्पन्न होता है और मरता है वैसे संसार के सब जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

(२७) यथा निर्मितको जीवो जायते म्रियतेऽपि च ।
तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥

जैसे (मन्त्रादि से) निर्मित जीव उत्पन्न होता है और मरता है वैसे संसार के सब जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं।

(२७) पञ्चभिर्निर्मिते देहे पञ्चत्वं च पुनर्गते ।
स्वां स्वां योनिमनुप्राप्ते तत्र का परिदेवना ॥ (रत्नावली)

पञ्चमहाभूतों से निर्मित देह (पूर्व जन्मार्जित कर्मों का फल भोगने के पश्चात्) फिर पञ्चमहाभूतों में चला जाने पर तथा प्रत्येक भूत अपनी योनि में प्रविष्ट होनेपर इसमें शोक करने की कौन सी बात है।

वक्तव्य—यही तत्व महाभारत के निम्न श्लोकों में शब्दान्तर से बताया है—अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधना-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

न्येव तत्र का परिदेवना ॥ अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः । न ते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥

(२९) कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रूह्यते च ॥

मृत्युकाल में (आयुष्य की रस्सी टूट जाने पर मृत्युरूप कूप में गिरने से) कौन (इस देह रूप घट को) बचा सकता है ? (घटीयन्त्रकी) रस्सी टूट जानेपर (उसके घट को कूप में गिरते समय) कौन पकड़ सकता है ? इस प्रकार जैसे जंगल समय-समय पर कटता रहता है और फिर बढ़ता है, वैसे यह जीवलोक भी जंगल के धर्म का होता है।

वक्तव्य—एवं लोकः—जैसे जंगल के वृक्ष समय-सथय पर कटने पर भी फिर से बढने के कारण जंगल सदैव वृक्षों से हरा भरा रहता है, वैसे इसलोक के जीव अपने-अपने समय पर मृत होने पर भी यह लोक जीवों से भरा रहता है। इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि जीव के लिए मृत्यु एक अपरिहार्य घटना है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इससे जीव के एक जीवन का अन्त जरूर होता है परन्तु उसके जीवनचक्र का अन्त नहीं होता जिससे जीवों के मरते हुए भी जीवलोक की परम्परा जारी रहती है—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ गीता ॥ पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ॥शंकराचार्य॥

(३०) धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

(जीवन भर इकट्ठा किया हुआ) धन (घर की) भूमि पर, (पालतु) पशु गोठे पर (जहाँ के तहाँ) रह जाते हैं, पत्नी (अधिक से अधिक) घर के द्वार तक आ जाती है, इष्ट-मित्र श्मशान तक पहुँच जाते हैं, (पाँचभौतिक) देह (जिस पर जीवन भर अत्यंत प्रेम किया) चिता पर (जलकर चुटकी भर राख होकर) रह जाता है और अकेले जीव को अपने कर्म के अनुसार दूसरे लोक के मार्ग में चलना पड़ता है।

वक्तव्य—कर्मानुगोगच्छति—मनुष्य जीवन भर जिस स्वरूप के कर्म किया करता है उसी स्वरूप की अन्तकाल में उसमें मति उत्पन्न हुआ करती है और उसी के अनुसार वह दुर्गति या नरक को तथा सद्गति या मोक्ष को प्राप्त होता है यह शास्त्र (पृष्ठ ३६३) सिद्धान्त है—कर्माण्यपि हि जन्मान्तरोपभोग्यं फलमारभमाणानि तदनुरूपं भावनाविज्ञानं प्रायणकाल आक्षिपन्ति, यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति, प्राणस्तेजसायुक्तः सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति। आप्रायणाधिकरण सूत्र का शांकरभाष्य। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतु रस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्यभवति सक्रतुं (क्रतुर्ध्यानं संकल्पविशेषो वा) कुर्वीत ॥ छांदोग्योपनिषत् ॥ तात्पर्य मनुष्य जीवन भर सद्वृत्त का पालन करें, सन्मार्ग से चले और जीवन का अन्त होने पर मोक्ष को प्राप्त करें।

(३१) मृत्योर्बिभेपि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति, कुरु यत्नमजन्मनि ॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन संकलिते वैद्यकसुभाषित-
साहित्ये कालाकालमृत्युविज्ञानीयोनाम
पंचचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे मूर्ख ! क्या मृत्यु से डर रहे हो ? क्या डरने पर मृत्यु पकड़ती नहीं ? ऐसा समझते हो तो यह मिथ्या धारणा है। मृत्यु केवल जो जन्मा नहीं उसीको पकड़ती नहीं, इसलिए फिर से जन्म ही न मिले इस प्रकार से प्रयत्न कर।

वक्तव्य—वर्तमानकाल में विज्ञानोन्नति से मनुष्यों के हाथों में संमोहनी सम अनेक आश्चर्यकारक औषध और वृक्कहृदयादि मर्मांगों के प्रतिरोपण (Transplantation) सम अनेक आश्चर्यकारक शस्त्र-कर्म उपलब्ध हुए हैं और भविष्य में ये सब साधन अधिक संख्या में और अधिक कार्यक्षम होने की पूरी संभावना है। परन्तु ये साधन परिहार्य अकाल मृत्यु के हैं इसको न भूलना चाहिए। कालमृत्यु के लिए न आजतक कोई साधन उपलब्ध हुआ है, न भविष्य में उपलब्ध होने की कोई संभावना है, क्योंकि ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पन्न करते समय उसका क्रम अविघ्न रूप से चले इसलिए उन साधनों पर मजबूत ताला लगाकर रख दिया है। फिर भी प्राच्य मनीषियों ने ब्रह्मा की सृष्टि में बाधा न हो इस प्रकार का साधन निकाला जो इस वचन के उत्तरार्ध में दिया है। इसका आशय यह है कि जीव जीवन में ऐसे कर्म करें कि जिससे उसको इहलोक में त्रिविध पुरुषार्थ और मरणोत्तर चतुर्थ पुरुषार्थ (पृष्ठ ७) प्राप्त होकर वह परमात्मा से एक रूप हो जाय और फिर से जन्म ग्रहण न करें। यह कार्य आयुर्वेदोपदेशानुसार ऐहिक जीवन रखने से सिद्ध होता है—अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकं च श्रेयः। सुश्रुत। अतः चतुर्विधपुरुषार्थसाध्य होने की दृष्टि से, साथ ही साथ जनसंख्यावृद्धि की समस्या अंशतः हल हो जाने की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह आयुर्वेदोपदेशानुसार जीवन व्यतीत करें। पृष्ठ ३३ पर 'आयुःकामयमानेन' श्लोक देखें।

इति श्रीभास्करशर्मणा गोविंदात्मजेन विरचितायां वैद्यकरहस्य-
दीपिकायां कालाकालमृत्युविज्ञानीयो नाम
पंचचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रार्थना

इति मुनिवचनानां जीवतोपाश्रयाणा-
मभिलषितसमृद्धौ कल्पवृक्षोपमानाम् ।
यदुदितमिह पुण्यं कुर्वतो मेऽनुवादं
भवतु विगतरोगो निर्वृतस्तेन लोकः ॥

(अष्टांगसंग्रह)

सर्वेत्र सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विविध सूची सम्बन्धो

षष्ठो भागः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

१. संस्कृत-ग्रन्थग्रन्थकारसूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मुण्डकोपनिषत्
मुद्राराक्षस
मृच्छकटिक
मेघदूत
मेदिनीकोश

य

यजुर्वेद
याज्ञवल्क्यस्मृति
योगरत्नाकर
योगरसायन
योगवार्तिक
योगवासिष्ठ
योगसूत्र

र

रघुवंश
रत्नकोश
रत्नावलि
रसकामधेनु
रसगङ्गाधर
रसरत्नसमुच्चय
रसरत्नावलि
रसहृदय
राजनिघण्टु
रामायण
रुद्रटाचार्य
रुद्रालङ्कारटीका

ल

लघुमंजूषा
लटकमेलक

व

वङ्गसेन
वसिष्ठसंहिता
वाक्यपदी[?]
वाग्भटालङ्कार
वाजसनेयसंहिता
वात्स्यायनन्यायसूत्रटीका
वासवदत्ता
वास्तुशास्त्र
विक्रमाङ्कदेवचरित
विक्रमोर्वशीय
विद्धसालभञ्जिका
विश्वकोश
विश्वमेदिनी
विश्वगुणादर्शचम्पू
विष्णुपुराण
विष्णुसहस्रनाम
वृद्धगौतमस्मृति
वृद्धचाणक्य
वृद्धभोज
वृन्दमाधव
वेणीसंहार
वैजयन्तिकोश
वैद्यचन्द्रोदय
वैद्यजीवन
वैराग्यशतक
वैशेषिकसूत्र
व्रतहेमाद्रि

श

शङ्कराचार्य (स्तोत्र)
शङ्करानन्द
शङ्खस्मृति
शतपथब्राह्मण
शशिलेखा अ० संग्रहटीका
शाङ्करभाष्य गीता टीका
शाङ्करभाष्य ब्रह्मसूत्रटीका
शाकुन्तल[?]

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

२. संपूर्णसंस्कृतवचनसूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

आ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

क

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ख

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitized by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

र

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

३. वैद्यकीयगद्यसुभाषितसूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

४. वैद्यकीयपद्यसुभाषित सूची

पृष्ठ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

१३ अर्धरात्रेऽपि भुञ्जानः परमार्थं बुभुक्षितः।
क्षुधी वैद्यपरित्यागी व्याधिभिर्नाभिभूयते॥ १४६

१४ अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधिभ्योऽधिकोरसः॥ ५०१

१५ अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।
आर्द्रेण वाससा वास्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः॥ ५६

१६ अशीतेनाम्भसा स्नानं, पयःपानं, वराः स्त्रियः।
एतद्वो मानवाः पथ्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम्॥ ३०३

१७ आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्यवगम्यते।
तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित्॥ २२

१८ आचार्यात्पादमाधत्ते, पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं स ब्रह्मचारिभ्यः, पादं काल क्रमेणतु॥ २८७

१९ आढ्यानां मासपरमं, मध्यानां गोरसोत्तमम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥ ११०

२० आत्माधीनशरीराणां स्वपतां निद्रया स्वया।
कदन्नमपि मर्त्यानाममृतत्वाय कल्पते॥ १५०

२१ आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो, येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ २२२

२२ आपादतलमूर्धस्थान् दोषान् पक्वाशये स्थितः।
वीर्येण बस्तिरादत्ते खस्थोऽर्को भूरसानिव॥ ४८८

२३ आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ ११४

२४ इतरवृक्षफलं फलमेव तन्
नृपरसालफलं स्वमृतं मतम्।
यदि तदीयरसः सितया युतः
सघृतपोलिकयास्य न चोपमा॥ १००

२५ उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यन्तावामयः स च॥ ३७३

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

२६ एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यं तथैकतः।
एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः॥ १६२, १७८

२७ एकोत्तरमृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषा आगन्तवः स्मृताः॥ ६२३

२८ औषधान्वेषणक्लेशैर्भृशमुत्क्लिश्यते कुतः।
रुग्विधतरणो हेतुं तरणिं शरणीकुरु॥ ४७४

२९ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ ११४

३० कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्॥ ४५

३१ कषायैरुपवासैश्च कृतामुल्लाघतां नृणाम्।
निर्जौषधकृतां वैद्यो निवेद्य हरते धनम्॥ ४०७

३२ कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रतः।
ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः॥ १७६

३३ कामः सर्वात्मना हेयः स चेद्धातुं न शक्यते।
स्वभार्यां प्रति कर्तव्यः सैव तस्य हि भेषजम्॥ २२०

३४ किमद्यममसंपन्नं प्रातर्वा भविता पुनः।
इति चिन्ताज्वरो नास्ति तेन जीवाम्यनामयः॥ २४२

३५ के वा भुवि चिकित्स्यन्ते रोगार्तान् मृगपक्षिणः।
श्वापदानि दरिद्रांश्च, प्रायो नार्ता भवन्ति ते॥ ५३८

३६ क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासःक्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला॥ २३

३७ ख्यातः सर्वरसानां हि लवणो रस उत्तमः।
गृहीतं च विना तेन व्यञ्जनं गोमयायते॥ १००

३८ ग्रीष्मे तुल्यगुडां, सुसैन्धवयुतां मेघावनद्धाम्बरे
सार्धं शर्करया शरद्यमलया, शुण्ठया तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे, वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः॥ ४६१

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

३९ चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।। ४५

४० चित्तं प्रसादयति लाघवमाददाति
प्रत्यङ्गमुज्ज्वलयति प्रतिभाविशेषम् ।
दोषानुदस्यति करोति च धातुसाम्य-
मानन्दमर्पयति योगविशेषगम्यम् ।। २२६

४१ चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरं
नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं
स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ।। ५२३

४२ चित्तायत्तं नृणा शुक्रं, शुक्रायत्तं च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ।। १७३

४३ जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलेन च ।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ।। ११६

४४ जाठरः प्राणिनामग्निः काय इत्यभिधीयते ।
यस्तं चिकित्सेत् सीदन्तः स वै कायचिकित्सकः ।। ४०५

४५ जिह्वालौल्यप्रसक्तानां जलमध्यनिवासिनाम् ।
अचिन्तितो वधोऽज्ञानां मीनानामिव जायते ।। ५२६

४६ जिह्वे प्रमाण जानीहि भोजने भाषणेऽपि च ।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी ।। ५२६

४७ तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ।। ४६६

४८ तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा ।
भेषजं प्रतिकुर्वीत य इच्छेत सुखमात्मनः ।। ५६१

४९ तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ।। ५२५

५० दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ।। ३२८

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

५१ द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ।
यो विदग्धो जडो बालो, यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ २४३

५२ धन्यो धन्वन्तरिर्नात्र, चरकश्चरतीह न ।
नासत्यावपि नासत्यावत्र चिन्ताज्वरे किल ॥ २४०

५३ धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ १७८

५४ धातूनां व्यापदि यच्च भेषजं नैव सिद्ध्यति ।
आमये दुस्तरे तस्मिन् शस्त्रमेव विधीयते ॥ ५५५

५५ न गृहं गृहमित्याहुस्तुलसी गृहमुच्यते ।
सदनं तुलसीहीनं श्मशानादतिरिच्यते ॥ ४६५

५६ न चाहारसमं किञ्चिद् भैषज्यमुपलभ्यते ।
शक्यतेऽप्यन्नमात्रेण नरः कर्तुं निरामयः ॥
भेषजेनोपपन्नोऽपि निराहारो न शक्यते ।
तस्माद्भिषग्भिराहारो महाभैषज्यमुच्यते ॥ ४७२

५७ न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिशुद्धमनोमलः ॥ ६१

५८ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ २१३

५९ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ४६०

६० न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ २८६

६१ न नामज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः ।
ओषधीनां परां प्राप्तिं कश्चिद् वेदितुमर्हति ॥ २४६

६२ न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारानुपयोजयेत् ।
परीक्ष्य हितमश्नीयाद्, देहो ह्याहारसंभवः ॥ ८६

६३ न हि वर्षशतस्यान्तं नरः संभृत्य जायते ।
उपायेन हि जीवन्ति नरा वर्षशतायुषः ॥ ३००

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

६४ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ७२

६५ नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता ।
नारायणं भजत रे भवभीतिभीता
नारायणात्परतरं न हि किञ्चिदस्ति ॥ ५०५

६६ नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ३२५

६७ नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तंयन्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥ २७७

६८ पथ्यं पथोऽनपेतं यद् यच्चोक्तं मनसः प्रियम् ।
यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत् ॥ ४३२

६९ पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ ४४०

७० परिश्रमो मिताहारो भूगतावश्विनीसुतौ ।
तावनादृत्य नैवाहं वैद्यमन्यं समाश्रये ॥ ४४

७१ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते ।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः ॥ ५१३

७२ पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥ ३२८

७३ प्रयोगः शमयेद्व्याधिं, योऽन्यमन्यमुदीरयेत् ।
नासौ विशुद्धः, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥ ५४७

७४ प्राणाः प्राणभृतामन्नं यदयुक्त्या निहन्त्यसून् ।
विषं प्राणहरं तच्च, युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ १०८

७५ प्राणाः प्राणभृतां यत्र स्थिताः सर्वेन्द्रियाणि च ।
तदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते ॥ २७५

७६ प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः ॥ ५१

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

७७ प्रातः स्नानं, गवां सेवा, आरामः पुष्पवाटिका ।
मातापित्रोश्च शुश्रूषा शास्त्राय च सुखाय च ॥ ५६

७८ प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।
काष्ठान्यपि ही जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः ॥ ४७७

७९ ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः ।
निद्रासंतोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते ॥ २३०

८० भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा, शयानस्य तु पुष्टता ।
आयुश्चंक्रममाणस्य, मृत्युर्धावति धावतः ॥ १२१

८१ भोजनान्ते पिबेत्तक्रं, वासरान्ते पिबेत्पयः ।
निशान्ते च पिबेद्वारि, त्रिभी रोगो न जायते ॥ ३२३

८२ भ्रमयति भवपित्तं चेद्व्रज भज नर सूतशेखरं कृष्णम् ।
सद्वोरसेन सहसितमनुत्रुटिकं सर्वथा त्यज स्नेहम् ॥ ५०९

८३ मधुना सिञ्चयेन्निम्बं निम्बः किं मधुरायते ।
जातिस्वभावदोषोऽयं कटुकत्वं न मुञ्चति ॥ २५९

८४ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७०

८५ मिताः स्यु सात्त्विकाहारा राजसाः पूर्णभोजनाः ।
तामसास्त्वधिकाहारा ह्याहारास्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ११५

८६ यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं, ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे यत्तदात्तं भूतिमिच्छता ॥ ११४

८७ यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा ।
तथौषधमविज्ञातं, विज्ञातममृतोपमम् ॥ ४६३

८८ यदपथ्यवतामायुर्यदनीतिमतां श्रियः ।
तदेतत्काकतालीयं तदेतच्च घुणाक्षरम् ॥ ४४०

८९ यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥ २४२

९० यस्मात्तद् व्यसति श्रेयस्तस्माद् व्यसनमुच्यते ।
व्यसत्यथो वा व्रजति, तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ २५२

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

९१ यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि घर्षितम् ।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति ॥ ४०७

९२ यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ११५

९३ यावदुच्छ्वसिति प्राणी यावद् भेषजमत्ति च ।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या, दैवस्य कुटिला गतिः ॥ ५६९

९४ येन जीवति जीवोऽयं निर्जीवो यं विना भवेत् ।
स प्राण इति विख्यातो वायुः क्षेत्रचरः परः ॥ ४८

९५ यो वर्तते शुचित्वेन स वै श्वा नर उच्यते ।
यो वर्ततेऽशुचित्वेन स वै श्वा नर उच्यते ॥ ६२

९६ यो व्याधितो व्याधिमवैति सम्यग्
व्याधेर्निदानं च तदौषधं च ।
आरोग्यमाप्नोति हि सोऽचिरेण
मित्रैरभिज्ञैरुपचर्यमाणः ॥ ३८६

९७ रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुद्ध्यन्ते धनभोगान्नसौख्यम् ॥ ३७९

९८ रसवीर्यविपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके ।
कीर्तिता इति तत् किं स्याद् भक्षणीयं विचक्षणैः ॥ १०६

९९ वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं
तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण ।
एतद् ब्रह्माभाषते ब्रह्मजो वा
का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः ॥ ४६०

१०० वातेऽम्लं सैंधवोपेतं, स्वादु पित्ते सशर्करम् ।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम् ॥ ४९०

१०१ वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः ।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ३२४

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

१०२ वायुरेव महाभूतं वदन्तु निखिला जनाः।
आयुरेवैष भूतानामिति मन्यामहे वयम्॥ ४७

१०३ विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं, विकारो दुःखमेव च॥ २८

१०४ विकारेऽल्पे महत्कर्म, क्रिया लघ्वी महागदे।
द्वयमेतदकौशल्यं, कौशल्यं युक्तकर्मता॥ ५५६

१०५ वैद्यानां शारदी माता, पिता च कुसुमाकरः।
यमदंष्ट्रा स्वसा प्रोक्ता, हितभुङ्मितभुग् रिपुः॥ ३६६

१०६ वैद्या वदन्ति कफपित्तमरुद्विकारा
ज्योतिर्विदा ग्रहगतिं परिवर्तयन्ति।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति
प्राचीनकर्म बलवन्मुनयो वदन्ति॥ ३४१

१०७ वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर।
यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च॥ ४०८

१०८ वैद्यो व्याधिमता यस्माद् व्याधेर्यत्नेन यद्यते।
स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः॥ ३५१

१०९ व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद् वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥ ४००

११० शक्तिं करोति सञ्चारे शीतोष्णे मर्षयत्यपि।
दीपयत्युदरे वह्निं दारिद्र्यं परमौषधम्॥ ४७७

१११ शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना॥ २६६

११२ शयनं पित्तनाशाय, वातनाशाय मर्दनम्।
वमनं कफनाशाय, ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥ ४८६

११३ शरीरे जर्जरीभूते, व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥ ५७२

११४ शान्तिरामाशयोत्थानां व्याधीनां लङ्घनक्रिया।
ज्वरस्यैकस्य चाप्येका शान्तिर्लङ्घनमुच्यते॥ ४८६

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

११५ षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम् ।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च ॥ ५०३

११६ समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ २७

११७ सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा ।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥ १४८

११८ सर्वत्र मैत्रीकरुणाऽऽतुरेषु, निरामदेहेषु नृषु प्रमोदः ।
मनस्युपेक्षापकृतिं व्रजत्सु, वैद्यस्यसद्वृत्तमलं तनोति ॥ ४२८

११९ सर्वौषधीनाममृता प्रधाना, सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं, सर्वेषु गात्रेषु शिरःप्रधानम् ॥ ४९२

१२० सुवर्णमालिनीं कृष्णामधुना भज चेद्भवः ।
जीर्णज्वरो बाधते त्वां पिण्डिकोद्वेष्टनादिभिः ॥ ५१०

१२१ स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते ॥ २१४

१२२ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ १६७

१२३ हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी ।
कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥ ४९२

१२४ हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ ३



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

५. वैद्यकीयश्लोकार्धसुभाषितसूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

६. वैद्यकीय श्लोकपाद सुभाषित सूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

७. हिन्दी सुभाषित सूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

८. आंग्लसुभाषित सूची



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

९. वैद्यकीय आंग्ल संज्ञासूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

१०. विस्तृत विषय सूची

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ड

त

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

फ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ष

स

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	२०	Subjectiu e	Subjective
,,	२२	Objectiu e	Objective
४४	४	सांधिक में एक में	सांधिक में
५०	२	स्थितवाडी	स्थिता नाडी
५६	१०	सतुप	सतुपं
७६	१४	पविव्रता	पतिव्रता
८२	२३	यया पयो	यथा पयः
९६	२२	वीजीवनीय	ए जीवनीय
११३	२१	चोष्णतया	चोष्णतया
१३९	१४	स्वरूप को	स्वरूप की
,,	२४	दशयन्त्याः	दर्शयन्त्याः
२४७	६	यस्यः	यस्य
१४९	१६	पृष्ट पर	पृष्ठ १२० पर
१५९	१८	धूतकारे	द्यूतकारे
१८१	११	व्यंजनादिगुमा	व्यंजनादि शुभा
१९१	२	Asthama	Asthma
१९२	२२	Consanguinous	Consanguineous
१९५	१५	रहनेपर पर	रहने पर
१९९	११	नैष्ठिक ब्रह्मचारी	वैवाहिक ब्रह्मचारी
२२०	१०	चेद्ध धातुं	चेद् धातुं
२३९	१७	व्यायामोऽशनं	व्यायामोऽनशनं
२४५	१३	काशलम्	कौशलम्
२४६	२६	अग्यासेन	अभ्यासेन
२६२	१०	नाश्नात्युपनाहम्	नाश्नात्युपाहनम्
२६५	२	नीमचडा	नीम चढा
२७१	१०	वयाः	वयः
३९०	२३	प्रसूति होता	प्रसूति से होता
२९७	१०	त्वम्	त्वक्
३१६	२	विशिष्ठ	त्रिशिष्ट
३१८	१४	स्पर्शनः	स्पर्शनं
३१९	१०	prebention	prevention
३३७	१९	sedantary	sedentary
,,	,,	sedantari	sedenatri
३३९	२४	रतिरोगसंभवो	रतिरागसंभवो

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४८	६	ग्रत्येक	प्रत्येक
३५२	२२	एकारोगो	एको रोग
३५३	२५	its	itis
३६५	२०	heredatory	hereditary
३६६	१०	Tingling	numbness
३६७	२०	scabes	scabies
३७३	३	धारणाधवर	धारणाज्वर
४००	१८	मुत्थापियुतुम्	मुत्थापयितुम्
४०५	५	Surgen	Surgeon
,,	१०	theraputist-	therapeutist
४०७	१९	convlescent	convalescent
,,	२०	Haemo	Homeo
४२०	४	मुञ्ज	मुञ्ज
४२४	२४	विषयों को	विषयों के
४३१	५	शरीरे न जर्जरी	शरीरे जर्जरी
४४८	६	Aphrodiasic	Aphrodisiac
४५९	२७	अत्यूर्जता	प्रत्यूर्जता
४६०	१०	दोप	दोप
४६३	५	पृष्ठ ४१ पर	पृष्ठ ४५७ पर
४७३	८	अन्नाद्वै प्रजायन्ते	अन्नाद्वै प्रजाः प्रजा
५७५	६	Taberculosis	Tuberculosis
४७९	११	कश्यते	कथ्यते
५०८	१४	Serofula	serofula
५३९	६	Haemostasis	Homeostasis
५४९	१८	पृष्ठ ९४ पर	पृष्ठ ६४ पर
५८६	२१	जरायुसर्प	जरायुजसर्प
६०३	९	सदैवद् डौम्ब	सदैवाड् डौम्ब
६०४	२	दष्ट्र	दंष्ट्र
६१८	२१	जता	जाता
६२८	२२	होने के कारण	इसको नीचे की पंक्ति में (पर अधिष्ठित) के पश्चात् पढ़िए।
६३७	१८	नहीं नही	नहीं
६३८	६	पञ्चम्	पञ्चमम्
६४०		म्रियते	म्रियते

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

टिप्पणी—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri